

DUE DATE SLIP

GOVT. COLLEGE, LIBRARY

KOTA (Raj)

Students can retain library books only for two weeks at the most

BORROWER'S No	DUE DATE	SIGNATURE

सस्ता साहित्य मण्डल : सर्वोदय साहित्य माला
चौरानवेदां ग्रंथ

महात्मा गांधी : अभिनन्दन ग्रन्थ

[७१वें जन्म-दिवस की भेंट]

संपादक

श्री सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

वाइस-चांसलर

[काशी हिन्दू विश्वविद्यालय]



सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

शाखाएँ

दिल्ली : लखनऊ : इन्दौर

पहला संस्करण
चर्खा द्वादशी, (नाश्विन कृष्ण १२)
१० अक्टूबर १९३९

मूल्य : ऐढ रुपया

मुद्रक
एस एन भारती,
हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस,
नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय,
मन्त्री, सस्ता साहित्य मण्डल,
नई दिल्ली

मण्डल की ओर से—

यह अभिनन्दन-ग्रन्थ विश्वव्याप महात्मा गांधी के जन्म-दिवस (आश्विन कृष्ण १२) पर हिन्दी में प्रकाशित करने की अनुमति देने के लिए हम सर राधाकृष्णन् के अत्यन्त आभारी हैं। अनुमति देने में सर राधाकृष्णन् ने एक शर्त रखी थी जो उन्हींके शब्दों में निम्न प्रकार है—

“...You will not make any profit out of it and that the resulting profit will be handed over to me for the relief of distressed Indian students in Great Britain.”

(“...आप इस पुस्तक से कोई मुनाफा नहीं उठावेंगे और जो मुनाफा होगा उसे बिलायत में पढ़नेवाले दीन-दुखी भारतीय विद्यार्थियों के सहायताार्थ मेरे पास भेज देंगे।”)

और इस शर्त को हमने सहर्ष स्वीकार किया, क्योंकि मण्डल तो एक सार्वजनिक संस्था है। उसका ध्येय सत्साहित्य का प्रसार करना है, पैसा कमाना नहीं।

अनुमति तो मिली, पर काम भारी था। साढ़े तीन सौ पृष्ठों का अनुवाद, छापाई आदि। उस पर समयभाव। अनुमति २४ सितम्बर को मिली और पुस्तक १० अक्टूबर (चर्खा द्वादशी) को गांधीजी को भेंट करनी थी।

इस मुश्तर भार को उठाने में हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस के प्रबन्धक और कार्य-कर्ताओं का सहयोग हमें पूर्ण रूप से मिला। जल्दी-से-जल्दी यथासाध्य पुस्तक छाप देने का जिम्मा उन्होंने लिया। अनुवाद के विषय में भी यही रहा। मण्डल के स्नेहियों, मित्रों और कार्यकर्ताओं ने उत्साहपूर्वक अपनी सुविधा-असुविधा का किंचित् विचार किये बिना अपना हार्दिक सहयोग दिया, अथक परिश्रम किया और अपना अनमोल समय दिया। अगर ये सब अपना काम समझकर हमारी सहायता को न दौड़ पड़ते तो इस ग्रन्थ का समय पर निकलना असम्भव ही था। अब हम ‘मण्डल’ की मित्र-मण्डली और हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस के संचालक तथा कार्यकर्ताओं के अत्यन्त आभारी हैं।

देश की महत्वपूर्ण समस्याओं में अत्यधिक व्यस्त होने पर भी हमारी प्रार्थना पर प० जवाहरलाल नेहरू ने, वर्षा जाते समय रेल में से, हिन्दी पुस्तक के लिए कुछ शब्द

लिख भेजे । इसके लिए हम उनके बहुत आभारी हैं । इसी प्रकार सर राधाकृष्णन् का भी हम पर बहुत अहसान है जो उन्होंने इस हिन्दी-संस्करण के लिए विशेष रूप से 'भूमिका' लिख भेजी । इसके लिए हम उनके उपकृत हैं ।

अनुवाद के विषय में भी दो शब्द कहना असंगत न होगा । मूल पुस्तक भाषा, विचार और भावों की दृष्टि से बहुत गंभीर और क्लिष्ट है । पश्चिमी विद्वानों ने महात्माजी को हृदय से न जान कर बुद्धि द्वारा जाना है और बौद्धिक ज्ञान प्रायः जटिल होता है । दूसरे, उन विद्वानों ने महात्माजी का अपने पाश्चात्य वातावरण को सम्मुख रख कर विवेचन किया है । फलस्वरूप उनके लेखों में ऐसे विदेशी मुहावरे, पारिभाषिक और शास्त्रीय शब्द आये कि जिनका हिन्दी में उल्था करना सुगम काम न था । उस पर सीमित समय । संभव है अनुवादको और अनुवाद-सम्पादक के सतत प्रयत्नशील और सचेत रहने पर भी इस ग्रंथ में कहीं कहीं शका और मतभेद के लिए गुंजाइश रह गई हो । विज्ञ पाठकों के ध्यान में यदि कोई ऐसी बात आये तो वे उसे हमें अवश्य सूचित करने की कृपा करें । जो विषय को समझाने की दृष्टि से जहाँ आवश्यक हुआ वहाँ कुछ फुटनोट दे दिये गये हैं ।

यह वक्तव्य हम श्री जैनेन्द्रकुमार को धन्यवाद दिये बिना समाप्त नहीं कर सकते । सारी पुस्तक का अनुवाद करा लेना तो आसान था, पर सारे अनुवाद को देखना, संपादन करना और संशोधन करना वही अधिक कठिन काम साबित हुआ । यदि श्री जैनेन्द्रकुमार इस समय हमारी सहायता को न आ जाते तो यह बीज इतनी सुन्दर और संपूर्ण नहीं निकल पाती । सारे अनुवाद को उन्होंने परिश्रमपूर्वक रात दिन एक करके देखा और संशोधन, संपादन आदि का कार्य किया । इसके लिए हम श्री जैनेन्द्रकुमारके अत्यन्त कृतज्ञ हैं ।

अन्त में कृपालु पाठकों से पुनः अनुरोध है कि पुस्तक में यदि छापे सम्बन्धी या अन्य त्रुटियाँ रह गई हो तो हमारी समयाभाव की परिस्थिति को ध्यान में रखकर उनके लिए हमें क्षमा करें और उनकी सूचना हमें देने की कृपा करें जिससे उन्हें अगले संस्करण में सुधारा जा सके ।

मेरी शिक्षक

कुछ महीने हुए, श्री राधाकृष्णन् ने मुझे लिखा था कि वह गांधी-जयन्ती के लिए एक निताव तैयार कर रहे हैं, जिसमें दुनिया के बहुत सारे बड़े आदमी गांधीजी के बारे में लिखेंगे। मुझसे भी उन्होंने इस निताव के लिए एक लेख लिखने को कहा था। मैं कुछ राजी हुआ, लेकिन फिर भी एक शिक्षक-भी थी। गांधीजी पर कुछ भी लिखना मेरे लिए आसान बात नहीं थी। फिर मैं ऐसी परेशानियों में फँसा कि लिखना और भी कठिन हो गया और आखिर मैं मैंने कोई ऐसा मजमून नहीं लिखा।

मैं यो अक्सर कुछ-न-कुछ लिखा करता हूँ और लिखने में दिलचस्पी भी है। फिर यह शिक्षक कैसे? कभी-कभी गांधीजी पर भी लिखा है। लेकिन जितना मैंने सोचा यह मजमून मेरे क्रावू के बाहर निकला। हा, यह आसान था कि मैं कुछ ऊपरी बातें जो दुनिया जाननी हैं उनको दोहराऊँ। लेकिन उसने फायदा क्या? अक्सर उनकी बातें मेरी समझ में नहीं आईं, कुछ बातों में उनसे मतभेद भी हुआ। एक जमाने से उनका साथ रहा, उनकी निगरानी में बाम किया, उनका छापा मेरे ऊपर पड़ा, मेरे खयाल बदले, और रहने का ढग भी बदला। जिन्दगी ने एक करवट ली, दिल बड़ा, कुछ-कुछ ऊँचा हुआ, आँखों में रोशनी आई, नये रास्ते देखे और उन रास्तों पर लाँछी और करोड़ों के साथ हमकदम होकर चला। क्या मैं ऐसे शक्त के निस्वत लिखूँ जो कि हिन्दुस्तान का और मेरा एक जुड़ हो गया और जिसने कि जमाने को अपना बनाया?

हम जो इस जमाने में बड़े और उसके असर में पड़े, हम कैसे उसकी अन्दाज़ा करें? हमारे रंग और रेशों में उसकी मोहर पड़ी और हम सब उसके टुकड़े हैं।

जहाँ-जहाँ मैं हिन्दुस्तान के बाहर गया, चाहे यूरोप का कोई देश हो या चीन या कोई और मुल्क पहला सवाल मुझसे यही हुआ “गांधी कैसे हैं? अब क्या करते हैं?” हर जगह गांधीजी का नाम पहुँचा था, गांधीजी की शोहरत पहुँची थी। ग्रँटो के लिए गांधी हिन्दुस्तान था और हिन्दुस्तान गांधी। हमारे देश की इज्जत बढ़ी, हैसियत बढ़ी। दुनिया ने तसलीम किया कि एक अजीब ऊँचे दर्जे का आदमी हिन्दुस्तान में पैदा हुआ, फिर से अंधेरे में रोशनी आई। जो सवाल लाँछा के दिल में थे और उनको परेशान करते थे, उनके जवाबों की कुछ झलक नज़र आई। आज उस जवाब पर अमल न हो,

तो कल होगा, परसों होगा । उस जवाब में और भी जवाब मिलेंगे, और भी अंधेरे में रोशनी पड़ेगी, लेकिन वह बुनियाद पक्की है और उसीपर इमारत खड़ी होगी ।

आज-कल की दुनिया में लड़ाई का तूफान फैल रहा है और हरएक के लिए मुसीबत का सामना और इम्तिहान का बख्त है । हम क्या करें, यह हर हिन्दुस्तानी के सामने सवाल है । बख्त इसका जवाब देगा । लेकिन जो भी कुछ हम करें उसकी बुनियाद उन उमूलों पर हो जिनको हमने इस जमाने में सीखा । बड़े कामों में हम पड़े, पहाड़ों की ऊँची चोटियों की तरफ हमने निगाह डाली और लम्बे कदम उठाकर हम बढ़े, लेकिन सफर दूर का है । इसके लिए हमको भी ऊँचा होना है और छोटी बातों में पड़कर अपने देश को छोटा नहीं करना है ।

बर्धा जाते हुए (रेल से)

६ अक्टूबर १९३९

जवाहर लाल नेहरू

विषय क्रम

१ गांधीजी का धर्म और राजनीति (मर एन रामाकृष्णन्)	—१
२. महात्मा गांधी: उनका मूल्य (हार्ले वा एन्क्वेयर)	—२६
३ एक मित्र की अद्वाजलि (मा एक एन्क्वेयर)	—३०
४ गांधीजी का जीवन-सार (गार्ने एन क्रण्डल)	—३६
५ भारत का सेवक (स्वरेण्ड वा एन अद्वातिया)	—३८
६ गांधीजी: सशक्त और समन्वयकार (अरन्थ वारवर)	—४१
७ ज्योतिर्मय स्मृति (लान वनिपन)	—४४
८ एक जीवन-नीति (ग्रीनजी एन एम वन)	—४५
९. गांधीजी के साथ दो भेट (लायनल् कर्गिन)	—४५
१० गांधीजी और कांग्रेस (डा० भगवानदान)	—४६
११. गांधीजी का राजनैतृत्व (एल्बर्ट वाइन्स्टाइन)	—४५
१२. गांधीजी: समाज-नीति के आविष्कर्ता (रिचर्ड बी ग्रम)	—४५
१३ कोल-मुद्रण (जराड ह्यड)	—५०
१४ गांधी: आत्म-शक्ति को प्रकाश-करण (बाल हीप)	—६४

१५	मुक्ति और परिग्रह (विलियम अर्नेस्ट हार्किंग)	— ६७
१	गांधी की महत्ता (जान हंस होम्स)	— ६८
१७	दक्षिण अफ्रीका से श्रद्धाजलि (जल्फड हानने)	— ७०
१८	गांधीजी दक्षिण अफ्रीका में (जान एच हाफमेयर)	— ७५
१९	गांधी और शान्तिवाद का भविष्य (लारेस हाउसमैन)	— ७७
२०	गांधीजी का सत्याग्रह और ईसा का आहुति धर्म (जान एस होयलण्ड)	— ७८
२१	एक भारतीय राजनेता की श्रद्धाजलि (सर गिरजा एम इन्माइल)	— ८६
२२	अनासक्ति और नैतिक बल का प्रभुता (सी ई एम जोड)	— १०१
२३	महात्मा गांधी और आत्म बल (रुक्म एम जोस)	— १०६
२४	गांधी का महत्त्व (स्टीफन हाउहाउस)	— ११०
२५	ब्रिटिश कामनवेल्थ को गांधीजी की देन (बरीडल कीथ)	— १२४
२६	जन्मोत्सव पर बधाई (जाज लेखदरी)	— १२६
२७	गांधीजी को श्रद्धा और उनका प्रभाव (प्रोफसर जान मरमरे)	— १२७
२८	अहिंसा की शक्ति (कुमारी ईथल मनिन)	— १२८
२९	गांधीजी और बालक (मेरिया माटीसरी)	— १३०
३०	गांधीजी का आध्यात्मिक प्रभुत्व (गिलबट मरे)	— १३४
३१	सुरूप से एक भेंट (मोन नागूजी)	— १३६

४६. सत्याग्रह का मार्ग	..	— २२०
(सोफिया काडिया)		
४७ हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए गांधीजी का अनशन	...	— २३०
(फ्रांस वेस्टकाट)		
४१ महात्मा गांधी और कर्मण्य शास्त्रिवाद		— २३४
(जक सी विसलो)		
४२ गांधीजी का नेतृत्व		— २३७
(एच जी वुड)		
४३ गांधीजी—सैतालीस वर्ष बाद		— २४२
(फ्रांसिस यंग हर्बर्ट)		
४४ देश-भक्ति और लोक-भावना		— २४४
(एल्फ्रेड जिमेर्न)		
४५ गांधीजी के प्रति दृष्टश्रुता-प्रकारा		— २४८
(आरनल्ड सिंग)		
४६ सत्य की हिन्दू धारणा		— २५०
(ज एच म्यूरहेड)		
४७ ईश्वर का दीवाना		— २५४
(रेजीनाल्ड रेनाल्ड्स)		
४८ विश्व-इतिहास में गांधीजी का स्थान		— २५८
(हरमन वाइशरलिंग)		
४९ योग युक्त जीवन की आवश्यकता		— २६०
(जान सार्वेडर डी मेवियागा)		
५० सम्पादक को प्राप्त पत्रों के अंश		— २६६
(लार्ड हेलीफोक्स, अप्टन सिक्नेयर ए एच काम्पटन)		

महात्मा गांधी

अभिनन्दन ग्रंथ

उपक्रम

गांधीजी का धर्म और राजनीति

सर एस. राधाकृष्णन्

[आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी]

मनुष्य-जीवन की कथा में सबसे बड़ी घटना उसकी आधिभौतिक सफलतायें अथवा उस द्वारा बनाये और बिगाड़े हुए साम्राज्य नहीं, बल्कि सचाई तथा भलाई की खोज के पीछे उसकी आत्मा की युग-युग की प्रगति है। जो व्यक्ति आत्मा की इस खोज के प्रयत्नों में भाग लेते हैं, उनको मानवी सभ्यता के इतिहास में स्थायी स्थान प्राप्त होजाता है। समय महान् वीरो को अन्य अनेक वस्तुओं की भाँति बड़ी सुगमता से भुला चुका है, परन्तु सन्तों की स्मृति कायम है। गांधीजी की महत्ता का कारण उनके वीरतापूर्ण सघर्ष इतने नहीं, जितना कि उनका पवित्र जीवन है। कारण उसकी यह विशेषता है कि ऐसे समय में जब कि विनाश की शक्तियाँ प्रबल होती दीख रही हैं, वह आत्मा की सृजन करने तथा जीवन देने की शक्ति पर बल देते हैं।

राजनीति का धार्मिक आधार

ससार गांधीजी के विषय में इतना ही जानता है कि भारतीय राष्ट्र के प्रचण्ड उत्थान का और उसकी दासता की शृंखलाओं को हिला डालने तथा क्षिपिल कर देने का काम उन्होंने अन्य किसी भी व्यक्ति की अपेक्षा अधिक किया है। साधारणतया, राजनीतिज्ञों की प्रवृत्ति धार्मिक होने की स्थािति नहीं है। क्योंकि, एक जाति की दूसरी द्वारा राजनैतिक पराधीनता और निर्धन तथा निबल मनुष्यों का आर्थिक शोषण आदि जो लक्ष्य राजनीतिज्ञों के सामने रहते हैं, वे धार्मिक लक्ष्यों से स्पष्ट ही इतने भिन्न तथा असम्बद्ध हैं कि वे लोग इनपर गम्भीरता से और ठीक-ठीक चिन्तन कर ही नहीं सकते, परन्तु, गांधीजी के लिए तो सारा जीवन एक ही वस्तु है। 'जिसे सब की सर्वव्यापक विद्व-भावना को अपनी आँख से प्रत्यक्ष देखना हो उसे निम्नतम प्राणी को आत्मवन् प्रेम करने में समर्थ होना चाहिए। और जिस व्यक्ति को यह महत्वाकांक्षा होगी वह जीवन के किसी भी क्षेत्र से अपनेको पृथक् नहीं रख सकेगा। यही कारण है कि मेरी सत्य-शक्ति मुझे राजनीति के क्षेत्र में खींच

लाई है, और मैं बिना तनिक भी सकोच तथा पूर्ण नम्रता से कह सकता हूँ कि जो लोग यह कहते हैं कि धर्म का राजनीति से कुछ सम्बन्ध नहीं, वे नहीं जानते कि धर्म का अर्थ क्या है।" और, "मुझे सत्सार के नश्वर साम्राज्य की इच्छा नहीं है, मैं तो स्वर्ग के साम्राज्य की प्राप्ति का यत्न कर रहा हूँ, जो कि आध्यात्मिक मुक्ति है। मेरा मुक्ति का मार्ग तो अपने देश और मनुष्य-मात्र की निरन्तर सेवा में से होकर ही है। मैं तो जीवमात्र से अपनी एकता कर देना चाहता हूँ। गीता के शब्दों में, मैं 'समः शत्रौ च मित्रे च' (मित्र और शत्रु में समदृष्टि) होना चाहता हूँ। अतः मेरी देशभक्ति भी अनन्त शान्ति तथा मुक्ति की ओर मेरी यात्रा का एक पड़ाव-मात्र है। इससे प्रकट है कि मेरे लिए धर्म से रहित राजनीति की कोई सत्ता नहीं। राजनीति धर्म की सेविका है। धर्म-रहित राजनीति मृत्यु का जाल है, क्योंकि उससे आत्मा का हनन होता है।" राजनैतिक जीव के रूप में यदि मनुष्य बहुत सफल नहीं हुआ, तो उसका कारण यही है कि उसने धर्म की राजनीति से पृथक् रक्खा, और इस प्रकार उसने दोनों को ही गलत समझा। गांधीजी धर्म की सत्ता मनुष्य के कर्मों से पृथक् नहीं मानते। भारत की वर्तमान परिस्थितियों में यद्यपि गांधीजी की स्थिति एक ऐसे राजनैतिक क्रान्तिकारी की है जो अत्याचार अथवा दासता के सामने मुकने से इनकार करता है, तथापि वह उस हठी क्रान्तिकारी से बहुत दूर है जिसकी शिक्षित प्रवृत्तियाँ मनुष्य की अप्राकृतिक तथा अमानुषिक कार्यों में फँसा देती हैं। अनुभव की अग्नि-परीक्षा में, वह न राजनीतिज्ञ है न सुधारक, न दार्शनिक है न आचारसारथी, प्रत्युत इन सबका सम्मिश्रण है। उनके व्यक्तित्व की रचना ही धार्मिक है। उनमें उच्चतम मानवीय गुण निहित होते हुए भी, वह अपनी शक्ति की सीमितता से परिचित होने तथा अपने स्वभाव की नित्य-प्रासादिकता (हास-परिहास-प्रियता) के कारण सबके प्रेमपात्र बन गये हैं।

धर्म का अर्थ है ईश्वर में वास

ईश्वर के विषय में हमारी जो भी सम्मति हो, गांधीजी के लिए वह परममहत्त्व और विशुद्ध वास्तविकता की वस्तु है। उनके ईश्वर-विश्वास ने ही उनकी वह मनुष्य बना दिया है जिसकी शक्ति, भावना और प्रीति का हम बार-बार अनुभव करते हैं। वह एक ऐसी सत्ता का अनुभव करते हैं जो उनके निकट ही है, एक आध्यात्मिक सत्ता है जो उनके मन की मयती है, सुख करती है और दवा लेती है, जिससे उसकी वास्तविकता का निश्चय होता है। बार-बार, जब सन्देह तथा सशय से उनका मन अस्थिर होता है, वह उस ईश्वर के भरोसे छोड़ देता है। रहा यह कि ईश्वर से उनको उत्तर मिलता है या

१. सी० एफ० एण्डरूज कृत 'महात्मा गांधी—हिंस्र ओन स्टोरी'। पृष्ठ

नहीं ? इसका जवाब हाँ भी होपा और नहीं भी । नहीं, इसलिए, क्योंकि गान्धीजी को गुप्तनम अपवा द्रनम कोई भी बाणी कुछ कहती सुनाई नहीं देती । हाँ, इसलिए, क्योंकि उनको उत्तर मिला जान पड़ता है, वह अपने आपको ऐसा सन्तुष्ट अनुभव करते हैं कि उनको उत्तर मिल गया हो । वह मिले हुए उत्तर को फिर पूर्ण युक्ति-युक्तता में भी ग्रहण करते और परख लेते हैं कि मैं अपने ही स्वप्नो या कल्पनाओं का गिकार तो नहीं हुआ । "एक अलक्षणीय रहस्यमय शक्ति है जो वस्तु-मात्र में व्याप्त है । मैं इसे देखना नहीं, परन्तु इसे अनुभव करता हूँ । यह अदृष्ट शक्ति अनुभव द्वारा ही गम्य है । प्रमाणों से इसकी सत्ता सिद्ध नहीं हो सकती, क्योंकि मेरी इन्द्रियो से गम्य जो कुछ भी है उस सबसे यह शक्ति सर्वथा भिन्न है । इसकी सत्ता बाह्य साक्षी में नहीं, प्रत्युत उन व्यक्तियों के रूपान्तरित व्यवहार तथा आचरण से सिद्ध होती है, जिन्होंने अपने अन्तःकरण में ईश्वर का अनुभव कर लिया है । यह साक्षी पंगम्बरो और ऋषियों की अविच्छिन्न मृतला के अनुभवों से, सत्र देशों और सब कालों में, निरन्तर मिलनी रही है । इस साक्षी को स्वीकार करना अपनेआपको ही अस्वीकार करना है ।" १

"यह युक्ति का विषय कभी नहीं बन सकता । यदि आप मुझे औरी की युक्ति द्वारा विश्वास करा देने को कहें तो मैं हार मानता हूँ, परन्तु मैं आपसे इतना कहे देता हूँ—आप और मैं इस कमरे में बैठे हैं, इस सच्चाई से भी अधिक मुझे उसकी सत्ता का निश्चय है । मैं यह भी कहता हूँ कि मैं बिना हवा और बिना पानी जी सकता हूँ, परन्तु उसके बिना नहीं । आप मेरी ओंखें निकाल लें, मैं मरेगा नहीं । आप मेरी नाक काट लें, मैं मरेगा नहीं । परन्तु ईश्वर में मेरे विश्वास को उड़ा दें तो मैं मर जाऊँगा ।" २

हिन्दू-धर्म की महती आध्यात्मिक परम्परा के अनुसार, गान्धीजी दृढ़तापूर्वक कहते हैं कि जब हम एक बार अपनी पाशविक वासनाओं द्वारा होनेवाले पतन की गहराई से ऊपर उठकर आध्यात्मिक स्वन्नता की ऊँचाई पर पहुँच जाते हैं तब जीव-मात्र में समन्दृष्टि होजाती है । यह ठीक है कि पर्वत-शिखर पर चढ़ने के मार्ग विभिन्न हैं, हम जहाँ नहीं हो वहींसे ऊपरको चढ़ना पड़ता है, परन्तु हम सबका लक्ष्य एक ही है । "इस्लाम का अल्लाह वही है जो ईसाइयों का गॉड और हिन्दुओं का ईश्वर है । जिस प्रकार हिन्दू-धर्म में ईश्वर के नाम अनेक हैं, उसी प्रकार इस्लाम में भी अल्लाह के बहुत-से नाम हैं । इन नामों से व्यक्तियों की अनेकता नहीं, बल्कि उनके गुण प्रकट होने हैं । छोटे मनुष्य ने, अपने छोटे ढग से, शक्तिशाली परमेश्वर को उसके नाना गुणों द्वारा बखानने का यत्न किया है, यद्यपि वह सर्वथा गुणानेन, वर्णनातीत और मानातीत है । ईश्वर में सजीव विश्वास का परिणाम सब धर्मों के प्रति

१ 'यंग इण्डिया'; ११ अक्तूबर, १९२८ ।

२ 'हरिजन'; १६ मई, १९३८ ।

समान सम्मान-बुद्धि होता है। ऐसा मानना असहिष्णुता की पराकाष्ठा होगी— और असहिष्णुता एक प्रकार की हिंसा है— कि आपका धर्म अन्य धर्मों से श्रेष्ठ है और अन्य व्यक्तियों से अपना धर्म बदलकर आपका धर्म स्वीकार करने के लिए आपका कहना उचित है।” अन्य धर्मों के प्रति गांधीजी की भावना निष्क्रिय सहिष्णुता की नहीं, प्रत्युत सक्रिय प्रशंसा की है। वह ईसामसीह के जीवन तथा कार्य को अहिंसा का एक श्रेष्ठतम उदाहरण बतलाते हैं। “मेने अपने हृदय में ईसामसीह को उन महान् गुरुओं की पक्ति में स्थान दिया है जिनका मेरे जीवन पर विशेष प्रभाव पड़ा है।” पैगम्बर मुहम्मद के चरित्र की, उसके हादिक विश्वास और व्यवहार-कुशलता की, और अली की कोमल दयालुता तथा सहनशीलता की वह प्रशंसा करते हैं। इस्लाम द्वारा उपदिष्ट महान् सत्यों की, ईश्वर की सर्वोपरि प्रभुता में आस्था-विश्वास को, जीवन की सरलता तथा पवित्रता को, भाई-भारे की तीव्र भावना को, और गरीबों की तत्परता-पूर्वक सहायता को, वह सब धर्मों के मौलिक तत्त्व के रूप में मानते हैं, परन्तु उनके जीवन पर प्रमुख प्रभाव, उसकी सत्य की कल्पना और आत्मा तथा उदारता की भावनाओं के कारण, हिन्दू-धर्म का पड़ा है।

सब धर्म मुख्य धर्म के सहायक हैं। “मैं यहाँ स्पष्ट करदूँ कि धर्म में मेरा अभि-प्राप क्या है। मैं हिन्दू धर्म को अन्य सब धर्मों से श्रेष्ठ मानकर उसकी पूजा नहीं करता। मैं तो उस धर्म को सर्वश्रेष्ठ मानता हूँ जो हिन्दू धर्म से भी बढ़कर मनुष्य की प्रकृति को ही बदल दे, जो अन्तःकरण के सत्य से आत्मा का अविच्छेद्य सम्बन्ध करदे और जो सदा शुद्धि करता रहे। मनुष्य-प्रकृति का यह स्थायी अंग है। यह अपनेको प्रकट करने के लिए किसी भी बाधा को कुछ नहीं गिनता। इसके कारण आत्मा तबतक बेचैन रहती है जबतक कि उसे अपना, अपने स्रष्टा का और स्रष्टा तथा सृष्टि के सच्चे सम्बन्ध का ज्ञान नहीं होजाता।”

सत्य के अतिरिक्त अन्य कोई ईश्वर नहीं है, और सत्य की उपलब्धि तथा अनुभव का एकमात्र उपाय प्रेम अथवा अहिंसा है। (सत्य का ज्ञान और प्रेम का आचरण आत्मशुद्धि बिना असम्भव है।) शुद्ध अन्तःकरण वाले को ही ईश्वर का साक्षात्कार हो सकता है। अन्तःकरण की शुद्धि, राग तथा द्वेष से मुक्ति, मनसा-वाचा-कर्मणा पक्षपात से रहितता, और मिथ्या भय तथा अभिमान से ऊपर होने के लिए ऐन्द्रियिक प्रवृत्तियों के संघर्ष और मन के विक्षेपों पर विजय पाना आवश्यक है। और इसका मार्ग है सग-ठित प्रयत्न, सयत् जीवन और तपस्या। तप से आत्मा घुलकर शुद्ध होजाता है। हिन्दू पुराणों में लिखा है कि देवताओं द्वारा समुद्र का मथन किये जाने पर जो द्रिय ऊपर आया उसे शिवजी निगल गये। ईसाइयों के गॉड ने मनुष्यमात्र की रक्षा के लिए अपने खास बेटे को निछावर कर दिया। ये सब यदि कोरी कहानियाँ हो, तो भी प्रश्न

यह है कि इनसे यदि मनुष्य की किन्हीं अन्तर्निहित भावनाओं का प्रकाशन नहीं होता तो इनकी कल्पना ही क्यों की गई ? जितना आप प्रेम करेंगे, उतने ही आप सहिष्णु बनने जायेंगे। अनन्त प्रेम का अर्थ है अनन्त सहिष्णुता। "जो कोई अपना जीवन बचावेगा वह उसे खो बैठेगा।" हम यहाँ ईश्वर का काम कर रहे हैं। हमें अपने जीवन का उपयोग उसकी इच्छाओं की पूर्ति के लिए करना है। यदि हम ऐसा नहीं करते, और अपना जीवन सचने की बजाय उसे बचाने का प्रयत्न करते हैं, तो हम अपनी प्रकृति के विपरीत आचरण करते और अपने जीवन को खो देते हैं। यदि हमें जहाँतक हमारी दृष्टि जा सकती है वहाँतक पहुँचने के योग्य बनना हो, यदि हमें दूरतम की पुकार पर अमल करना हो, तो हमें सात्त्विक अभिलाषा, यश, सम्पत्ति और ऐन्द्रियिक विषयों का परित्याग करना ही पड़ेगा।) निर्वनो और जाति-बहिष्कृतों से एकता प्राप्त करने के लिए हमें भी वैसा ही नियंत्रण तथा बहिष्कृत बनना पड़ेगा। निन्दा-प्रशंसा की परवा न करके, सत्य कहने तथा करने में और सबके प्रति प्रेम तथा क्षमा का वर्तव्य करने में स्वतन्त्र होने के लिए, वैराग्य की परम आवश्यकता है। स्वतन्त्रता (मुक्ति) उन बन्धन-रहितों के लिए है जो तृण-मात्र का भी स्वामी हुए बिना निखिल जगत् का उपभोग करते हैं। इस सम्बन्ध में गान्धीजी सन्यासी के उस उच्च आदर्श का पालन कर रहे हैं जो उसे कहीं भी टिककर रहने और जीवन की कोई भी एक प्रणाली स्वीकार करने की इजाजत नहीं देता।

परन्तु जब कभी तपश्चर्या के इस मार्ग पर पूर्णतया अमल करने का उपदेश, केवल मत्स्यासियों को ही नहीं, मनुष्यमात्र को किया जाता है, तब कुछ अतिगयोक्ति में काम लिया जाता है। उदाहरणार्थ, उपस्थेन्द्रिय का समय सबके लिए आवश्यक है, परन्तु आजन्म ग्रहचारी कुछ ही रह सकते हैं। स्त्री-पुरुष के संयोग का प्रयोजन केवल शारीरिक अथवा ऐन्द्रियिक सुख ही नहीं है, प्रत्युत प्रेम प्रकट करने और जीवन-शृंखला का जारी रखने का भी एक साधन है। यदि उससे दूसरों को हानि पहुँचे अथवा किसी-की आध्यात्मिक उन्नति में बाधा हो तो यह काम बुरा हो जाता है, वरना स्वयं काम में इन दोनों बुराईयों में से कोई भी वर्णमान नहीं है। जिस काम द्वारा हम जीते हैं, प्रेम प्रकट किया जाता है और जीवन-शृंखला बढ़ती है, वह लज्जा अथवा पाप का काम नहीं होमकता, परन्तु जब अध्यात्म के उपदेशक ग्रहचर्य पर बल देने हैं, तब उनका अभिप्राय यह होता है कि मन की एकता को ऐन्द्रियिक वासनाओं द्वारा नष्ट होने में बचाया जाय।

गान्धीजी ने अपना जीवन यथासम्भव सीमातक सयत्न बनाने में कुछ भी उठा नहीं रक्खा, और जो उनकी जानते हैं वे उनके इस दावे की मान जायेंगे कि वह "सगे सम्बन्धियों और अजनबियों, स्वदेशियों और विदेशियों, गोरों और कालों, हिन्दुओं और अन्य धर्मावलम्बी मुस्लिम, पारसी, ईसाई, यहूदी आदि भारतीयों में कोई भेद

नहीं करने।" वह कहते हैं, "मे यह दावा नहीं करता कि यह मेरा विशेष गुण है, क्योंकि यह तो मेरे किसी प्रयत्न का परिणाम होने की अपेक्षा मेरे स्वभाव का ही अंग रहा है, जबकि अहिंसा, ब्रह्मचर्य आदि अन्य मौलिक धर्मों के विषय में मैं खूब जानता हूँ कि मुझे उनकी प्राप्ति के लिए निरन्तर प्रयत्न करते रहना पड़ा है।"१

केवल शुद्ध हृदयवाला ही ईश्वर से और मनुष्य से प्रेम कर सकता है। सहनशीलता युक्त प्रेम आध्यात्मिकता का एक चमत्कार है। इसमें यद्यपि दूसरों के अन्याय हमें अपने कन्धों पर झेलने पड़ते हैं, तथापि उससे एक ऐसे आनन्द का अनुभव होता है जो शुद्ध स्वार्थमय सुख की अपेक्षा भी अधिक वास्तविक तथा गहरा होता है। ऐसे अवसरों पर ही ज्ञात होता है कि सत्सार में इस ज्ञान में बढ़कर मधुर अन्य कुछ नहीं कि हम किसी दूसरे को क्षणभर सुख दे सकें, इस भावना में बढ़कर मूल्यवान् अन्य कुछ नहीं कि हमने किसी दूसरे के दुःख में भाग बँटाया। अहंकार-रहित, अभिमान-शून्य, भलाई करने के अभिमान से भी शून्य, पूर्ण दयालुता ही धर्म का सर्वोच्च रूप है।

मानवता की भावना

यह स्पष्ट हो गया कि आध्यात्मिकता की कसौटी प्राकृतिक सत्सार से पूथक हो जाना नहीं, प्रत्युत यही रहकर सबसे प्रेम रखते हुए कर्म करना है। "यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद् विजानत।" अपने पड़ोसी से अपने समान ही (आत्मैव) प्रेम करो। यह धर्म पूरी पूरी है। जीव मात्र को स्वतन्त्रता और स्थिति की समानता प्राप्त होनी चाहिए। इस शर्त की पूर्ति के लिए विश्वभर में स्वतन्त्र मनुष्य-जाति की स्थापना तो परमआवश्यक है ही, साथ ही जो इसे स्वीकार करेंगे उनके लिए जाति और धर्म, धन और शक्ति, और वर्ण और राष्ट्र के बन्धनों को छिन्न-भिन्न कर देना भी आवश्यक होगा। यदि एक गिरोह या राष्ट्र दूसरे को बरबाद करके आप सुरक्षित होने का, जर्मन जाँको को बरबाद करके, जमींदार शासकों को बरबाद करके और पूजीपति मजदूरों को बरबाद करके, आप सुखी होने का यत्न करे तो यह उपाय प्रजानन्द-विरोधी होगा। इस प्रकार के अन्याय का समर्थन केवल शस्त्र-बल से किया जा सकता है। अधिकारहीन गिरोह का सदा अधिकार छिन जाने का भय रहता है और पीड़ित गिरोह स्वभावतः हृदय में क्रोध का सग्रह करता रहता है। इस अप्राकृतिक अवस्था का अन्त न्याय द्वारा ही हो सकता है—न्याय भी ऐसा जो मनुष्य-मात्र के समानाधिकार को स्वीकार करता हो। गत कुछ शताब्दियों में मानव-जाति का प्रयत्न मानवी बन्धुता की स्थापना करने की दिशा में ही रहा है। सत्सार के विविध भागों में आगे बढ़ते-के-छिन्न, जो प्रयत्न होते-देख-गये-ई-के-न्याय, के-व्यवस्था, समानता, सप, शोषण से स्वतन्त्रता जिसका कि मनुष्यों को अधिकार अधिक बोध होता जा रहा है और वे

माँगें जो अब पेश की जाने लगी हैं,—ये सब उन विघ्न-बाधाओं के ~~विघ्न-बाधाओं के~~ ^{सर्वप्रथम} ~~विघ्न-बाधाओं के~~ मनुष्य के विद्रोह के चिन्ह हैं, जो उसे रोक रखने और पीछे खींचने के लिए देर से इकट्ठी हो रही थी। स्वतन्त्रता के लिए जापान का प्रगति करने जाना मानवीय इतिहास का सार है।

हम बहुधा अपवाद-स्वरूप घटनाओं को, उनके विगड़े हुए रूप में देखकर, आवश्यकता से अधिक महत्व दे देते हैं। हम भलीभाँति यह नहीं समझते कि कभी-कभी पीछे हट जाने की घटनाएँ, अन्धेरी गलियाँ और अन्य आपत्तियाँ, सदियों से चली आरही साधारण प्रवृत्ति का एक अंग-भाव हैं, और इनको उस प्रवृत्ति के पृष्ठ-भाग पर रखकर ही देखना चाहिए। यदि हम मानव-जाति के सतत प्रयत्न का कहीं पृथक् अवलोकन कर पाते तो हम अत्यन्त चकित और प्रभावित हो जाने। गुलाम आजाद हो रहे हैं, काफ़िरो को अब जिन्दा जलाया नहीं जाता, जागीरदार अपने परम्परागत अधिकारों को छोड़ते आ रहे हैं, गुलामों को लज्जा के जीवन से मुक्ति मिल रही है, सम्पत्तिशाली अपनी सम्पन्नता के लिए समा-याचना कर रहे हैं, सैनिक साम्राज्य शांति की आवश्यकता बनला रहे हैं, और मानव-जाति की एकता के स्वप्न भी लिये जा रहे हैं। हाँ, आज भी हम शक्तिशालियों की वासना, पतितों की ईर्ष्या, मक्कारों की दगाबाजी, और दयैपूर्ण जतीयना तथा राष्ट्रीयता का उदय देख रहे हैं, परन्तु जिस किसी को प्रज्ञानन्त्र की महती परम्परा आज सर्वत्र व्याप्त होनी दृष्टि-गोचर न हो वह अन्धा ही होगा। उन लोगों के प्रयत्न अनयक हैं जो एक ऐसा नया मसार निर्माण करने में लगे हुए हैं जिसमें गरीब-से-गरीब आदमी अपने घर में पर्याप्त भोजन, प्रकाश, वायु और घुप का तथा जीवन में आशा, प्रतिष्ठा व सुन्दरता का उपभोग कर सकेगा। गांधीजी मानव-जाति के प्रमुख सेवकों में से हैं। बिल्कुल सामने ही खड़ी आपत्तियों को देखते हुए वह सुदूरवर्ती भविष्य की कल्पना से सन्तुष्ट नहीं हो सकते। वह तो दुराश्यों के सुधार और आपत्तियों के निवारण के लिए दृढ़ विश्वासवाले व्यक्तियों के साथ मिलकर, यथासम्भव प्रत्यक्ष तथा सीधे उपायों द्वारा काम करना पसन्द करते हैं। प्रज्ञानन्त्र उनके लिए बाद-विवाद की वस्तु नहीं, एक वास्तविकता है। दक्षिण-अफ्रीका और भारत की उनकी तमाम सार्वजनिक कारंवाइयाँ सामाजिक तभी समझ आ सकती हैं जब हम उनके मानव-प्रेम का जान लें।

यहूदियों के साथ नाज़ियों के व्यवहार से समस्त सभ्य सभ्य बिल्कुल हिल गया है, और उदार राजनीतिज्ञों ने जाति पक्षपात के पुन फूट पड़ने पर सम्भीरतापूर्वक अपना खेद तथा विमर्श प्रकट की हैं। परन्तु यह एक विधि परन्तु आश्चर्यजनक सचाई है कि ब्रिटिश साम्राज्य और यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ अमेरिका के प्रजातन्त्रों द्वारा शासित देशों में भी अनेक जातियों को केवल जातीय कारणों से राजनैतिक तथा सामाजिक कठिनाइयों का दुःख उठाना पड़ रहा है। गांधीजी जब दक्षिण-अफ्रीका

में थे तब उन्होंने देखा कि नाम को तो भारतीय ब्रिटिश साम्राज्य के स्वतन्त्र नागरिक थे, परन्तु उनको गम्भीर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। धर्माधिकारी और राज्याधिकारी दोनों ही गैर-यूरोपियन जातियों को समानाधिकार देने को राजी नहीं थे, और गान्धीजी ने इन अत्याचारपूर्ण पाबन्दियों का प्रतिवाद करने के लिए सामूहिक-रूपेण अपना निष्क्रिय प्रतिरोध का आन्दोलन आरम्भ कर दिया। उनका मूलभूत सिद्धान्त यह था कि मनुष्य मनुष्य समान हैं और जाति तथा रंग की बिना पर कृत्रिम भेदभाव करना तर्क विरुद्ध तथा नीति विरुद्ध है। उन्होंने भारतीय समाज को बतलाया कि उसका कितना पतन हो चुका है और उसमें आत्म-प्रतिष्ठा तथा आत्म-सम्मान की भावना जागृत की। उनका प्रयत्न भारतीयों के सुख तक ही सीमित नहीं रहा। उन्होंने अफ्रीकन मूल निवासियों के शोषण की ओर भारतीयों के साथ, उनकी ऐतिहासिक सभ्यता के आधार पर, कुछ अच्छे व्यवहार को भी उचित नहीं माना। भारतीयों के विरुद्ध अधिक आपत्तिजनक भेदभावपूर्ण कानून तो उठा दिये गये, परन्तु आज भी भारतीयों पर ऐसी अनेक अपमानकारक पाबन्दियाँ लगी हुई हैं, जो न तो उनके सामने झुक जानेवालों के लिए प्रशंसा की वस्तु हैं और न उन्हें लागू करन-वाली सरकार के प्रभाव को बढ़ाती हैं।

भारत में उनकी महत्वाकांक्षा यह थी कि देश के आन्तरिक विभागों और विवादों को मिटाकर जनता को स्व शासन के लिए संगठित किया जाय, स्त्रियों को उठाकर पुरुषों के समान राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक घरातल पर बिठाया जाय, राष्ट्र को विभक्त करनेवाले धार्मिक घृणा-द्वेषों का अन्त किया जाय, और हिन्दू धर्म को अस्पृश्यता के सामाजिक कलक से मुक्त किया जाय। हिन्दुत्व पर से यह धब्बा धोने में उनको जो सफलता प्राप्त हुई है, वह मानव जाति की उन्नति को उनकी एक महत्तम देन के रूप में स्मरण की जायगी। जकफ जल्लो की पृथक् भेणी रहेगी, गान्धीजी उसीमें रहेगे। “यदि मेरा पुनर्जन्म हो तो मैं अछूत होकर जन्मना चाहूँगा, ताकि मैं उनके दुःख-दर्द में और उनके अपमान में भाग ले सकूँ, और अपनेआपको तथा उनकी उस दयनीय अवस्था से छुड़ाने का यत्न कर सकूँ।” यह कहना कि हम अदृश्य ईश्वर को प्रेम करते हैं और साथ ही उसके जीवन द्वारा अथवा उससे प्राप्त जीवन द्वारा जीनेवाले मनुष्यों से क्रूरता का बर्तव्य करना, अपनी बात को आप ही वादना है। यद्यपि गान्धीजी कट्टर हिन्दू होने का अभिमान करते हैं तथापि जात-पात की बंठोरताओं व कठिनताओं की, अस्पृश्यता के अभिशाप की मंदिरों के अनाचार की, और पशुआ पर तथा प्राणि-जगत् पर क्रूरता की तीव्र आलोचना करनेवाला भी उनसे बढ़कर कोई नहीं हुआ। “मैं सुधारक तो पूरा-पूरा हूँ परन्तु मन जोश में आवर हिन्दुत्व के तत्त्वा में से एकका भी निषेध नहीं किया।

आजकल वह भारतीय राजाओं की स्वेच्छाचारिता का विरोधकर रहे हैं। और

इसका कारण इन राजाओं की करोड़ों प्रजा के प्रति उनका प्रेम है उदारतम निरीक्षक भी यह नहीं कह सकता कि रियासतों में सब कुछ ठीक है। मैं यहाँ कलकत्ता के "स्टेट्समैन" पत्र से कुछ वाक्य उद्धृत कर दूँ, क्योंकि यह पत्र ब्रिटिश स्वार्थों का प्रतिनिधि है। "कई रियासतों की दशा भयंकर है, यह कहकर हम व्यक्तियों की निन्दा नहीं कर रहे, केवल मनुष्य की प्रकृति को प्रकट कर रहे हैं। अच्छे और बुरे, दोनों ही प्रकार के जागीरदार किसी कानून के पाबन्द नहीं हैं। जिन्दगी और मौत की ताकत उनके हाथ में है। यदि वे लालची, जालिम और पापी हो तो उनके लालच, पाप और जुल्म के रास्ते में कोई भी रुकावट नहीं। यदि छुटभैये अत्याचारियों को रक्षक सन्धियाँ नहीं बदली जायेंगी, यदि अरक्षित की रक्षा करने की सर्वोच्च सत्ता की जिम्मेदारी केवल एक सम्मान की वस्तु रहेगी तो किसी दिन एक अनिरोध्य शक्ति की एक अचल वस्तु से टक्कर होगी, और इस समस्या के शास्त्रिक उत्तर के अनुसार कोई वस्तु धूल में मिल जायगी।" सब क्रान्तियों का कारण विकास की मन्दगति होती है। गांधीजी राजाओं के परममित्र हैं। इसी कारण वह उनको जागने और अपना घर ठीक कर लेने के लिए कह रहे हैं। मुझे आशा है कि वे समय बीतने से पहले ही समझ लेंगे कि उनकी सुरक्षितता तथा स्थिरता, उत्तरदायित्वपूर्ण शासन-पद्धति का शीघ्र आरम्भ कर देने में ही है। सर्वोच्च सत्ता (ब्रिटिश सरकार) तक की, अपनी सब शक्ति के रहते, ब्रिटिश भारत के प्रान्तों में यह जारी कर देनी पड़ी।

भारत में ब्रिटिश शासन पर गांधीजी का सबसे बड़ा आक्षेप यह है कि इससे गरीबों का उत्पीड़न होने लगा है। इतिहास के आरम्भ से ही भारत अपने धन और सम्पत्ति के लिए सर्ववर्धित रहा है। हमारे पास अत्यन्त उपजाऊ भूमि के विस्तृत क्षेत्र हैं, प्राकृतिक साधनों की अक्षय्य प्रचुरता है, और यदि उचित सावधानता तथा ध्यान से काम लिया जाय तो हमारे पास एक-एक स्त्री, पुरुष और बालक के भरण-पोषण के लिए पर्याप्त सामग्री है। तो भी हमारे देश में लाखों आदमी निर्धनता के शिकार हो रहे हैं, उनके पास खाने को अन्न नहीं और रहने को मकान नहीं, बचपन से बुढ़ापे तक निरन्तर सर्षप ही उनका जीवन है और अन्त को मृत्यु ही आकर उनके दुखी हृदय को ठण्डा करके उनकी रक्षा करती है। इन अवस्थाओं का कारण प्रकृति की क्रूरता नहीं, परन्तु वह अमानुषिक पद्धति है, जो न केवल भारत के अपितु समस्त मानव-जाति के लाभ के लिए स्वयं अपनी संपात्ति की पुकार कर रही है।

सन् १९३१ में गांधीजी ने लन्दन से अमरीका को जो भाषण ब्रॉडकास्ट किया था, उसमें उन्होंने "उन्नीस-सौ मील लम्बी और पन्द्रह-सौ मील चौड़ी सतह पर छाये हुए सात लाख गाँवों में जगह-जगह बिखरे पड़े करोड़ों अघ-भूखों" का भी जिक्र किया था। उन्होंने कहा था—"यह एक दुःखमयी समस्या है कि ये सीधे-सादे ग्रामीण, बिना किसी अपने कसूर के, वरस में लगभग छ माह निकम्मे बैठे रहते हैं। बहुत समय नहीं

बीता, जब हरेक ग्राम भोजन और वस्त्र की दो प्रारम्भिक आवश्यकताओं के मामले में आत्म-निर्भर था। हमारा दुर्भाग्य था कि तब ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने उस ग्रामीण दस्तकारी का नाश कर दिया—जिन साधनों से उसने ऐसा किया उनका बयान करना मैं पसन्द नहीं करता। तब करोड़ों कर्तव्यों ने—जो अपनी अँगुलियों की कुशलता से ऐसा मृदुमत्त मूत निकालने के कारण प्रसिद्ध हो चुके थे जैसा कि आज तक किसी वर्तमान मशीन ने नहीं काता—ग्रामों के इन दस्तकार कर्तव्यों ने एक रोज़ सुबह देखा कि उनका शानदार पेशा खतम हो चुका है। वस, उसी दिन से भारत निरन्तर निर्धन होता जा रहा है। इसके विपरीत चाहे कोई कुछ कहले, यह एक सचाई है।”

भारत ग्रामी में बसता है। उसकी सम्पत्ता कृषि-प्रधान थी, जो अब अधिकाधिक यान्त्रिक होनी जा रही है। गान्धीजी किसानों के प्रतिनिधि हैं, जो कि ससार का भोजन उत्पन्न करते हैं और जो समाज के आधार हैं। उन्हें भारतीय सम्पत्ता के उक्त आधार को सुरक्षित रखने और स्थायी बनाने की चिन्ता है। वह देखते हैं कि ब्रिटिश राज में लोग अपने पुराने आदर्शों को छोड़ते जा रहे हैं, और यान्त्रिक बुद्धि, आविष्कार की योग्यता, साहस और वीरता आदि अनेक प्रशंसनीय गुणों को पाकर भी वे आदिभौतिक सफलता के पुजारी, ऐन्द्रियिक विषयों के लोभी और सासारिक आदर्शों के उपासक बनते जा रहे हैं। हमारे औद्योगिक शहर जिस भूमि में बसे हुए हैं उसके अनुपात से बिल्कुल बाहर जा चुके हैं, उनका निरर्थक फैलाव होता जा रहा है, और उनके निवासी नागरिक धन तथा यन्त्रों की उलझन में फँसकर हिंसक, चंचल, अविचारी, अनियन्त्रित बेलिहाज और बेमुरीबत बन गये हैं। कारखाने में काम करने वाले लोगों का नमूना गांधीजी की दृष्टि में वे स्त्रियाँ हैं जो थोड़ी-सी मजदूरी के लिए अपना जीवन निष्फल बिताने को मजबूर की जाती है, वे बच्चे हैं जिनको अफीम देकर चुप करा दिया जाता है, ताकि वे रोकर काम में लगी अपनी माताओं को तग न करे वे बालक हैं जिनका बचपन छीनकर उनको छोटी आयु में ही कारखानों में काम पर मजबूर दिया जाता है, और वे लाखों बेकार हैं जो बीने और बीमार हो चुके हैं। उनका विचार है कि हम जाल में फँसकर गुलाम बनाये जा रहे हैं और हमारी आत्मायें अत्यन्त तुच्छ मूल्य पर खरीदी जा रही हैं। जो सम्पत्ता और भावना, उपनिषदों के ऋषिया, बौद्ध भिक्षुओं, हिन्दू सन्यासियों और मुस्लिम फकीरों का आश्रय पाकर उच्च आकाश में उड़ी थी, वह मोटरकारों, रेडियो और घन-बोलत के दूसरे दिशाओं से सन्तुष्ट नहीं हो सकती। हमारी दृष्टि घुन्घली हो गई है और हम रास्ता भूल गये हैं। हम गलन दिशा में मुड़ गये हैं जिससे हमारी वास्तविक-जनता निरधिष्ठित, निर्धन और दुखी हो गई है, हमारे मजदूर चरित्र-भ्रष्ट, अशिष्ट और अन्धे बन गये हैं, और जिसके कारण हमारे लाखों बालक, मावहीन चेहरा, मुरदा आँखें तथा झुकी हुई गर्दन लेकर ससार में आये हैं। हमारी वर्तमान निष्कलता, निराशा और परेशानी के नीचे जनता

का बड़ा भाग आज भी वास्तविक स्वतन्त्रता व सच्चे आत्मसम्मान के पुराने स्वप्न की पूर्ति का तथा ऐसे जीवन का भूखा हो रहा है जिसमें न कोई अमीर होगा न गरीब, जिसमें सुख व फुरसत की अतिशयता की समाप्ति कर दी जाएगी और जिसमें उद्योग तथा व्यापार साधारण रूप में रहेंगे।

गांधीजी का लक्ष्य ऐसा किसान-समाज नहीं है, जो मशीन के लाभों का सर्वथा परित्याग कर देगा। वह बड़े पैमाने पर उत्पादन के भी विरोधी नहीं है। उनसे जब यह प्रश्न किया गया कि क्या थरेलू उद्योग-धन्धों और बड़े बल-कारखानों में समन्वय हो सकता है, तब उन्होंने कहा, “हाँ, यदि उनका समूह ग्रामों की सहायता के लिए किया जाय। दुनियादी-व्यवसाय, ऐसे व्यवसाय जिनकी राष्ट्र की आवश्यकता है, एक जगह केन्द्रित किये जा सकते हैं। मेरी योजना के अनुसार तो जो वस्तु ग्रामों में भलीभाँति उत्पन्न हो सकती है, वह शहरों में पैदा नहीं करने दी जाएगी। शहरों को तो गाँव की पैदावार के बँटवारे का केन्द्र मात्र रहना चाहिए।”^१ खादी पर बार-बार बल देने में और शिक्षण की अपनी योजना का आधार दस्तकारी को बनाने में भी उनका प्रयोजन ग्रामों का पुनरुद्धार ही है। वह बार-बार चेतावनी देते हैं कि भारत की तलाश उसके कुछ शहरों में नहीं, उसके अनगिनत गाँवों में ही पूरी हो सकती है। भारत को भारी जनता को पुनः लौटकर भूमि का ही सहारा लेना चाहिए, भूमि पर ही रहना और भूमि की ही पैदावार से अपना निर्वाह करना चाहिए, ताकि उनके परिवार स्वावलम्बी बन जायें। जिन औद्योगिकों से वे काम करते हैं, जिस खेत को वे जोतते हैं और जिस घर में वे रहते हैं उन सबके वे स्वयं मालिक हों। देश की सभ्यता, समाज, अर्थ और राजनीति पर, कारखानों के वैयुनियाद तथा अस्थिर मजदूरों का नहीं, अपूर्ण तथा लालची महाजन या व्यापारी समाज का नहीं, बल्कि जिम्मेदार ग्रामीण जनता का और छोटी-छोटी देहानी मण्डियों के स्थायी व दुरुस्त-दिमाग लोगों का प्रभुत्व होना चाहिए। इस सब का अर्थ पुरातन युग में लौट जाना नहीं, इसका अभिप्राय केवल यह है कि भारत जीवन की ऐसी प्रणाली को ग्रहण करले जो उसके लिए स्वाभाविक है, और जो किसी समय उसको एक उद्देश्य, विश्वास तथा अर्थ प्रदान करती थी। हमारी जाति को सभ्य रखने का एकमात्र यही उपाय है। जब भारत के जीवन की विशेषताएँ उसके कादिकार और गाँव, ग्रामों की पचापत, जंगलों के ऋषि-आश्रम और अद्यात्म-चिन्तन के एकान्त-निवास थे, तब उसने सत्कार को अनेक महान पाठ पढ़ाये थे, परन्तु किसी मनुष्य में बुराई नहीं की थी, किसी देश को हानि नहीं पहुँचाई थी और किसी पर दासता करने की इच्छा नहीं की थी। आज तो जीवन का वास्तविक उद्देश्य ही भ्रष्ट हो गया है। निराशा के इस गर्त से भारत का छुटकारा किस प्रकार हो? सदिया की पराधीनता के पश्चात् अपनेआपको उससे मुक्त करने की

इच्छा ही लोगों में से नष्ट होगई दीखती है। उन्हें अपनी विरोधी शक्तियाँ अत्यन्त प्रबल दीखती हैं। उनमें पुनः आत्मविश्वास, आत्मसम्मान और स्वाभिमान उत्पन्न करना और उनको फिर उठाकर खड़ा करना सुगम कार्य नहीं है। तो भी गांधीजी ने एक मुस्त पीढ़ी को अपने अन्तःकरण में सुलगती हुई अग्नि से और स्वतन्त्रता की अपनी भावना से पुनः जागृत तथा चेतन करने का यत्न किया है। स्वतन्त्र अवस्था में स्त्री और पुरुष अपनी उत्कृष्टता को प्रकट करते हैं, परतन्त्रता में वे निकृष्ट हो जाते हैं। स्वतन्त्रता का उद्देश्य ही, साधारण मनुष्य को, उन आन्तरिक तथा बाह्य बन्धनों से मुक्त करना है जो उसकी वास्तविक प्रकृति को लपेटे रहते हैं। गांधीजी मानवी स्वतन्त्रता के महान् रक्षक हैं। इसीलिए वह अपने देश को विदेशी बन्धन से मुक्त करने का यत्न कर रहे हैं। देशभक्ति, जब इतनी शुद्ध हो तब वह, न अपराध रहती है न अशिष्टता। वर्तमान अस्वाभाविक अवस्थाओं के विपरीत लड़ना प्रत्येक भारतीय का पवित्र कर्तव्य है। गांधीजी आध्यात्मिक शस्त्रों का प्रयोग करते हैं, वह तलवार खींचने से इनकार करते हैं, और ऐसा करते हुए वह लोगों की स्वतन्त्रता के लिए तैयार कर रहे हैं, उन्हें उसे जीतने और रख सकने के योग्य बना रहे हैं। सर जार्ज लॉयड (अब लार्ड लॉयड) ने, जो तब बम्बई प्रान्त के गवर्नर थे, गांधीजी के आन्दोलन के विषय में कहा था, “गांधीजी का परीक्षण सत्सार के इतिहास में अत्यन्त विशाल था और इसकी सफलता में केवल इच्छा-शक्ति का अन्तर रह गया था।”

यद्यपि वह ब्रिटिश सरकार को हिला देने के अपने प्रयत्न में असफल होगये हैं, तथापि उन्होंने देश में ऐसी शक्तियाँ छोड़ दी हैं जो अपना काम सदा करती रहेगी। उन्होंने लोगों को नींद से जगा दिया है, उन्हें नया आत्म-विश्वास और उत्तरदायित्व देकर स्वतन्त्र होने के अपने निश्चय में एक कर दिया है। जहाँतक आज देश में एक नई भावना की जागृति का, एक नये प्रकार के राष्ट्रीय सम्मिलित जीवन की तैयारी का और दलित जातियों के साथ व्यवहार में एक नई सामाजिक भावना का सम्बन्ध है, वहाँतक इस सब का अधिकतर श्रेय गांधीजी के आन्दोलन की आध्यात्मिक प्रेरक शक्ति को है।

गांधीजी के दृष्टिकोण में साम्प्रदायिकता अथवा प्रान्तीयता तनिक भी नहीं है। उनका विश्वास है कि भारत की प्राचीन सस्कृति से सत्सार के विकास में सहायता मिल सकती है। नीचे गिरा हुआ भारत मानव-जाति को आशा का सन्देश नहीं दे सकता, जागृत स्वतन्त्र भारत ही पीड़ित सत्सार की सहायता कर सकता है। गांधीजी कहते हैं कि यदि ब्रिटिश लोग न्याय, शान्ति और व्यवस्था की अपनी कल्पना में सत्प्रेम, श्रेय, आत्मन्ता, यत्नियता, श्रेय, देयता और परमान् परित्यक्ति को ही कायम रखना पर्याप्त नहीं है। हमारे माने हुए आदर्शों के विपरीत जो परिस्थिति हो उसे सुधारने से इनकार करना भी हिंसा है। इस निष्क्रिय हिंसा से बचने का न्याय और

स्वतन्त्रता के हमारे प्रेम में बल होना चाहिए। यदि साम्राज्यो का निर्माण मनुष्य की तृष्णा, क्रूरता और घृणा ने किया है तो, सत्सार को न्याय तथा स्वतन्त्रता की शक्तियों का साथ देने के लिए कहने से पहले, हमें उनको बदलना होगा। हिंसा या तो सक्रिय होगी और या निष्क्रिय। आक्रान्ता शक्तियाँ इस समय सक्रिय हिंसा कर रही हैं, वे साम्राज्यवादी शक्तियाँ भी हिंसा की उतनी ही अपराधिनी और स्वातन्त्र्य तथा प्रजातन्त्र की विरोधिनी हैं, जो भूतकाल की हिंसा द्वारा प्राप्त अन्यायपूर्ण लाभों का उपभोग करने में आज भी सलग्न हैं। जबतक हम इस मामले में ईमानदारी से काम न लेंगे तबतक हम अब से अच्छी सत्सार-व्यवस्था स्थापित नहीं कर सकेंगे, और सत्सार में युद्ध तथा युद्धों का भय जारी रहकर, यहाँ अनिश्चय की अवस्था स्थायी हो जायगी। भारत को स्वतन्त्र कर देना ब्रिटिश ईमानदारी की अग्नि-परीक्षा है। गान्धीजी अब भी प्रति सोमवार की २४ घण्टे का उपवास करते हैं, ताकि सब सम्बद्ध लोगों को भालूम रहे कि स्वराज अभी नहीं मिला। और तो भी यह गान्धीजी का ही प्रभाव है, जो जनता की उचित महत्वाकांक्षाओं और ब्रिटिश शासकों के हठ की विरोधी शक्तियों से विभक्त तथा अधीर भारत को नियन्त्रण में रख रहा है। भारत में सबसे बड़ी शान्ति-रक्षक शक्ति यही है।

दक्षिण-अफ्रीका के सत्याग्रह की समाप्ति के पश्चात्, जब वह इंग्लैण्ड पहुँचे, तब उन्होंने देखा कि अफ्रीकी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की जा चुकी थी। उन्होंने लड़ाई के मैदान में 'ऐम्बुलेन्स' (घायलों की सहायता) काम करने के लिए, जबतक युद्ध चले तबतक, अपनी सेवायें बिना शर्त पेश कीं। उनकी सेवा स्वीकार कर ली गई और उन्हें एक भारतीय टुकड़ी के साथ एक जिम्मेदारी के पद पर नियुक्त किया गया, परन्तु अपना काम करते हुए ठण्ड लग जाने के कारण, उनको फ्लुरसी का रोग हो गया और उनका जीवन जीखिम में होने का संदेह किया जाने लगा। अच्छा होने पर उनको डाक्टरों ने भारत की गरम आब-हवा में छोड़ जाने की आज्ञा दी। उन्होंने युद्ध के लिए रगड़ों की भरती में अमूल्य मदद पहुँचाई—उनका यह काम उनके अनेक मित्रों के लिए भी पहेली बन गया है। युद्ध के पश्चात्, भारतीयों का सर्वसम्मत् विरोध होते हुए भी, रौलट-एक्ट पास हो गया। पंजाब में फौजी शासन के मातहत ऐसी कार्रवाइयाँ की गईं जिनको देख-सुनकर देश स्तब्ध हो गया। पंजाब के दंगों पर कांग्रेस की जांच कमिटी ने जो रिपोर्ट तैयार की, उसके लेखकों में गान्धीजी भी एक थे। यह सब होते हुए भी, दिसम्बर १९१९ में, उन्होंने अमृतसर की कांग्रेस को सलाह दी कि शांतिमसुधारों को स्वीकार करके उनपर वैध उपायों द्वारा अमल करना चाहिए। सन् १९२० में जब हण्टर-कमीशन की रिपोर्ट में सरकारी कार्रवाई की आलोचना डाँवाडोल शब्दों में की गई, और जब ब्रिटिश पार्लमेण्ट की लार्ड-सभा ने जनरल डायर की निन्दा करने से इनकार कर दिया, तब उन्होंने ब्रिटिश सरकार से सहयोग न करने

का अपने जीवन का महान् निश्चय किया। और सितम्बर सन् १९२० में कांग्रेस के कलकत्ता विशेषाधिवेशन ने उनका अहिंसात्मक असहयोग का प्रस्ताव पास कर दिया।

यहाँ उनके अपने ही शब्दों को उद्धृत करना उचित होगा। ता० १ अगस्त १९२० को उन्होंने वायसराय को एक पत्र में लिखा “अफसरो के अपराधों के प्रति आपका हलके जी का बर्ताव, आपका सर माइकेल ओडवायर को निरपराध कहकर छोड़ देना, मि० माण्टेग्नु का सरीता और सबसे बड़कर ब्रिटिश लार्ड-सभा की पञाब की घटनाओं से निर्लज्जतापूर्ण अनभिज्ञता तथा भारतीय भावनाओं की हृदयहीन उपेक्षा, इन घटनाओं ने साम्राज्य के भविष्य के विषय में मेरे हृदय को गम्भीर सवालों से भर दिया है, मुझे वर्तमान शासन का पूर्णतया विरोधी बना दिया है और जैसा कि मैं अबतक पूर्ण हृदय से सरकार को सच्चा सहयोग देता आया हूँ उसके मुझे अयोग्य बना दिया है।

“मेरी विनम्र सम्मति में जो सरकार अपनी प्रजा के सुख की तरफ से ऐसी सहूलताएँ हो जैसी कि भारत-सरकार साबित हुई हैं, उसे पदचात्ताप करने के लिए, दरखास्तों, डेपूटेशनो और इसी विस्म के आन्दोलन करने के दूसरे मामूली तरीकों से नहीं हिलाया जा सकता। यूरोपियन देशों में, खिलाफत और पञाब सरीखे भारी अन्यायों की निन्दा तथा प्रतिवाद का परिणाम जनता द्वारा स्वतन्त्र ऋन्ति होता। उन्होंने, सब उपायों से, राष्ट्रीय मान-मर्दन का विरोध किया होता। आधा भारत हिंसामय विरोध करने में असमर्थ है, और शेष आधा वैसा करना नहीं चाहता। इसलिए मैंने असहयोग का उपाय सुझाने का साहस किया है। इस द्वारा, जो चाहे वे, अपने आपको सरकार से अलहदा कर सकते हैं। यदि इस उपाय पर बिना हिंसा के और व्यवस्थित रूप में अमल किया गया, तो यह सरकार को अपना कदम वापस लेने की ओर किया हुआ अन्याय घोंगे की ज़हर भज्जूर कर देगा, परन्तु असहयोग की नीति पर चलते हुए, और जहाँतक मैं जनता को अपने साथ ले जा सकता हूँ वहाँतक जाते हुए भी, मैं यह आशा नहीं छोड़ूँगा कि आप अब भी न्याय के मार्ग पर चल पड़ेगे।”

यद्यपि उनकी राय है कि वर्तमान ब्रिटिश शासन ने भारत की “धन, पौरुष तथा धर्म में और उसके पुत्रों की आत्मरक्षा की सामर्थ्य में” पहले से निर्बल बना दिया है, तथापि उनकी आशा है कि यह सब परिवर्तित हो सकता है। ब्रिटिश शासन के विरुद्ध आन्दोलन करते हुए भी, वह ब्रिटिश सम्बन्ध के विरोधी नहीं है। असहयोग-आन्दोलन की पराकाष्ठा के दिनों में भी, उन्होंने ब्रिटेन से सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेद कर देने के आन्दोलन का दृढ़ता से विरोध किया था।

ब्रिटिशों के साथ मित्रों और साथियों के समान काम करने के लिए तैयार होने हुए भी, उनकी दृढ़ राय थी कि जबतक सरसक्तता और प्रभुता का ब्रिटिशों का अस्वाभाविक हथ कायम रहेगा, तबतक भारत की अवस्था में कोई सुधार सम्भव नहीं

होगा। याद रखना चाहिए कि तीव्रतम उत्तेजना के समय भी उन्होंने ब्रिटिशों का बुरा कभी नहीं चाहा। “मैं भारत की सेवा करने लिए इंग्लैण्ड या जर्मनी को हानि नहीं पहुँचाऊँगा।”

जब कभी, अमृतसर का हत्याकाण्ड अथवा साइमन-कमीशन की नियुक्ति सरीखे मूर्खता या नासमझी के किसी काम के कारण, भारत अपना धीरज और आत्म-सयम गवाकर ज़ांघ से प्रज्वलित हो उठा तब गाँधीजी सदा असन्तोष और क्षोभ को प्रेम और सुलह के शान्त प्रवाह में परिवर्तित करते देखे गये हैं। गोलमेज कानफ़ेस में उन्होंने ब्रिटिशों के प्रति अपने अमिट प्रेम, शक्ति के बजाय मुक्ति पर आश्रित ‘कामन-वेल्थ’ में विश्वास और मनुष्य-मात्र की भलाई करने की अभिलाषा की साक्षी दी थी। गोलमेज कानफ़ेसों के फलस्वरूप प्रान्तों को आत्म-शासन की एक अपूर्ण मात्रा दी गई थी, और जब जनता के बहुमत ने शासन-विधान को स्वीकार करने का और उसपर अमल करने का विरोध किया, तब गान्धीजी ही थे जिन्होंने अन्य किसी से भी बड़कर, काँग्रेस को शासन-मुधारों पर—जैसे कुछ भी वे हों—अमल करने को प्रेरणा की। उनका एकमात्र लक्ष्य ब्रिटेन के साथ शान्ति का सम्बन्ध रखना है, परन्तु इस शान्ति का आधार स्वतन्त्रता और मित्रता होना चाहिए। आज भारत का प्रतिनिधित्व एक ऐसा नेता कर रहा है जिसमें जाति द्वेष अथवा वैयक्तिक ईर्ष्या का लेश भी नहीं है, उसका बल-प्रयोग में विश्वास ही नहीं, और वह अपने देशवासियों को भी बल-प्रयोग का आश्रय लेने से रोकता है। वह भारत को ब्रिटिश कामन वेल्थ से पृथक् नहीं करना चाहता, बशर्ते कि यह स्वतन्त्र राष्ट्रीय की साजेशदारी हो। सम्राट ने २० मई को कनेडियन पार्लमेण्ट के अपने भाषण में कहा था कि ब्रिटिश साम्राज्य की एकता “आज ऐसे राष्ट्रों की स्वतन्त्र साजेशदारी द्वारा प्रकट हो रही है जो शासन के समान सिद्धान्तों का उप-भोग कर रहे हैं और जिनको शान्ति तथा स्वतन्त्रता के आदर्शों से समान प्रेम है और जो राजा के प्रति समान भक्ति द्वारा परस्पर सम्बद्ध हैं।” गान्धीजी इन “शासन के समान सिद्धान्तों” को भारत पर भी लागू कराना चाहते हैं। उनका दावा है कि भारतीयों को अपने घर का मालिक आप होना चाहिए। यह बात न तर्क-विरुद्ध है न नीति-विरुद्ध। वह, दोनों कम्पों में, सदभिलाषी पुरुषों के सहयोग द्वारा, सुन्दरतर सम्बन्ध स्थापित करने के तीव्र अभिलाषी हैं।

खेद की बात है कि उनकी अपील का अस्तर हवा की साँध-साँध से ज्यादा नहीं हो रहा। वरसों के अनथक थम और बीरता-पूर्ण सघर्ष के पश्चात् भी उनका महान् मिशन अपूर्ण ही पड़ा है, परन्तु उनका विश्वास और विचार अब भी जीवित हैं। स्वयं मुझे आशा है कि ब्रिटिश लोकमन अपनी बात मनवायेगा और ब्रिटिश सरकार को मजबूर करेगा कि वह, बिना किसी सीदे या टालमटोल के, बिना हिचक या देरी के विश्वास के स्पष्ट उत्तर सकेत के साथ कुछ जोखिम उठाकर भी एक स्वतन्त्र

स्वात्म-शासक भारत की स्थापना करे, क्योंकि मेरा खयाल है कि यदि यह काम गांधीजी की न्याय तथा इन्साफ की अपील के जवाब में न किया गया तो हम दोनों देशों के पारस्परिक सम्बन्ध और बुरे हो जायेंगे, खाई चौड़ी हो जायगी और कटुता बढ़कर दोनों के लिए ही खतरा व रुकावट पैदा हो जायेंगे ।

गांधीजी की आलोचना और आरोप का लक्ष्य चाहे दक्षिण अफ्रिका की सरकार हो चाहे ब्रिटिश सरकार, चाहे भारतीय मिल-मालिक ही चाहे हिन्दू पुरोहित, और चाहे भारतीय राजा हो, इन सब विभिन्न करंवाइयो में उनकी आधार-भूत भावना एक ही रहती है । “लाखों गूगों के हृदय में जो ईश्वर विराजमान हैं, मैं उसके सिवा अन्य किसी ईश्वर को नहीं मानता । वे उसकी सत्ता को नहीं जानते, मैं जानता हूँ । और मैं इन लाखों की सेवा द्वारा उस ईश्वर की पूजा करता हूँ जो सत्य है अथवा उस सत्य को जो ईश्वर है । ”

सत्याग्रह

“अहिंसा परमो धर्मः” यह महाभारत का वाक्य सर्व विदित है । ज़िन्दगी में इसका अमली इस्तेमाल ही सत्याग्रह है । इसका आधार यह कल्पना है कि “ससार सत्य की चट्टान पर ठहरा हुआ है । असत्य का अर्थ असत् अर्थात् अभाव (न रहना) भी है, और सत्य का अर्थ है सत्, भाव, जो है । जब असत्य का भाव यानी हस्ती ही नहीं तब उसकी जीत का तो प्रश्न ही नहीं उठ सकता । और सत्य क्योंकि है ही वह जा है (जिसकी हस्ती है), इसलिए उसका नाश नहीं हो सकता”^१—“नासतो विद्यते भावो ना भावो विद्यते सतः ।” ईश्वर एक वास्तविकता है । स्वातन्त्र्य और प्रेम की इच्छा वास्तविकता के अनुकूल है । जब मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए इस इच्छा का निषेध कर देता है तब वह अपना ही निषेध करता है । इस व्यर्थ व्यर्थ द्वारा वह स्वयं वास्तविकता के विरुद्ध खड़ा हो जाता है, उससे पृथक् होकर अपने आपको अकेला कर लेता है । इस निषेध का अभिप्राय है मनुष्य का अपने से ही विरुद्ध हो जाना, अपने विषय में ही सत्य से इन्कार कर देना, परन्तु यह काम आखिरी या अन्तिम नहीं हो सकता । इससे वास्तविक इच्छा का विनाश नहीं हो सकता । वास्तविकता अपने को व्यर्थ नहीं कर सकती । “नरक का द्वार सदा खुला नहीं रहेगा ।” ईश्वर का पराजय नहीं हो सकता । विनम्र लोग इस भूमि के स्वामी नहीं बनेंगे, परन्तु वे बलवान भी नहीं बनेंगे, जो अपना वचाव करने के प्रयत्न में अपना ही विनाश करने लगेंगे, क्योंकि इन लोगों का विश्वास घन-दोलत और घातक शस्त्रास्त्रों सरीखी अनात्मिक अथवा अवास्तविक वस्तुओं में है । अन्ततोगत्वा, मानव जाति पर वे शासन नहीं करते जिनका विश्वास निषेध, घृणा

१. ‘हरिजन’; ११ मार्च १९३९ ।

२. ‘महात्मा गांधी—हिंदू ओन स्टोरी’; पृष्ठ २२५ ।

और हिंसा में होता है, प्रत्युत वे करते हैं जिनका विश्वास बुद्धि, ~~नहीं और~~ अन्तरिक तथा वाह्य शान्ति में होता है।

सत्याग्रह की जब वास्तविकता की शक्ति में, आत्मा के आन्तरिक बल में, जमी हुई है। हिंसा से केवल बचते रहने का निष्क्रिय धर्म सत्याग्रह नहीं, बल्कि भलाई करने का सक्रिय धर्म है। "यदि मैं अपने विरोधी को माहूँ तो वह तो हिंसा है ही, परन्तु सच्चा अहिंसक बनने के लिए मुझे उससे प्रेम करना चाहिए और वह मुझे मारे तो भी उसके लिए प्रार्थना करनी चाहिए।" प्रेम एवम्ता है। इसकी बुराई से टक्कर होनी रहती है, जिसके विभिन्न रूप पृथक्ता, लिप्सा, घृणा, मार-पीट और हनन हैं। प्रेम बुराई से, अन्याय से, अत्याचार से अथवा शोषण से मेल नहीं कर सकता। यह उस प्रश्न को टालता नहीं, बल्कि निडरता से बुराई करनेवाले का सामना करता और उसकी बुराई को प्रेम तथा सहनशीलता की प्रबल शक्ति से रोकता है। शक्ति द्वारा लड़ना मानवी प्रकृति के विरुद्ध है। हमारे झगड़े तो समझदारी, नैक-नीयती, प्रेम और सेवा के मानवी उपायो द्वारा हल होने चाहिए। इस गडबड दुनिया में बचाव की एकमात्र वस्तु मनुष्य बनने का महान् प्रयास है। उत्पत्ति अपनेआपको विनाश के बीच में भी प्रकट करती रहती है। भय तथा रोक के होने हुए भी, मानवता का व्यवहार, किसान और जुलाहा, कलाकार और दार्शनिक, कुज में बैठा फकीर और रसायनशाला में बैठा वैज्ञानिक, सब करते हैं, जबकि वे प्रेम करते और कष्ट उठाते हैं। जीवन विशाल है।

शक्ति प्रयोग के समर्पक अरविन साहब की जीवन-सधर्प-सम्बन्धी कल्पना का हवाला एक भद्दे तरीके पर देते हैं। वे प्राणी-जगत् और मानव-जगत् में मौलिक भेद की उपेक्षा करके मानव भविष्य के सिद्धान्त पर भी साधारण मनु-वृत्ति को लागू करना चाहते हैं। यदि हिंसा द्वारा निरोध का व्यवहार उस जगत् में भी ठीक माना जाने लगेगा जिससे इसका सम्बन्ध नहीं तो मानव-जीवन भी नीचे उतर कर पशु-जगत् की सतह पर पहुँचने का खतरा हो जायगा। महाभारत में परस्पर लड़ते हुए मनुष्यों की तुलना कुत्तों से की गई है। "पहले वे पूछ हिलाते हैं, फिर भौकते हैं, जवाब में विरोधी कुत्ते भौकते हैं, फिर एक-दूसरे के चारों तरफ घूमते हैं, फिर दाँत दिखाते हैं, फिर गुराते हैं, और फिर लड़ाई शुरू हो जाती है। मनुष्यों की अवस्था भी यही है, भेद कुछ नहीं।" गान्धीजी कहते हैं कि लड़ना झगड़ना कुत्तों और बन्दरों के लिए छोड़कर, परस्पर मनुष्यों की भाँति बर्ताव करो और चुपचाप कष्ट सहकर सत्य व न्याय की सेवा करो। प्रेम और सहनशीलता शत्रु को जीत लेते हैं,—परन्तु उसका विनाश करके नहीं, उसकी बदल कर,—क्योंकि आखिर उसके हृदय में भी तो हम सरोखे ही राग-द्वेष आदि के भाव हैं। गान्धीजी के प्रायश्चित्त तथा आत्म-शुद्धि

१. एवमेव मनुष्येषु विशेषोनास्ति कश्चन।

के कार्य नैतिक साहस और त्याग से परिपूर्ण है ।

प्रेम का प्रयोग अब तक कहीं-कहीं कुछ व्यक्तियों ने निजी जीवन में ही करके देखा था, परन्तु गान्धीजी की परम सफलता यह है कि उन्होंने इसे सामाजिक तथा राजनैतिक मुक्ति की योजना बनाकर दिखा दिया है । उनके नेतृत्व में दक्षिण-अफ्रीका और भारत में संगठित समूहों ने इस अपनी शिकायतें दूर करने के लिए बड़े पैमाने पर प्रयोग में लाकर देखा है । राजनैतिक उद्देश्यों की सिद्धि के लिए शारीरिक हिंसा का सर्वथा परित्याग करके, राजनैतिक क्रान्ति के इतिहास में उन्होंने इस नयी योजना का विकास करके दिखाया है । यह योजना भारत की आध्यात्मिक परम्पराओं की हानि नहीं करती, बल्कि इसका जन्म ही उनसे हुआ है ।

यह निष्क्रिय प्रतिरोध, अहिंसात्मक असहयोग और सविनय आज्ञा-भंग के विविध रूप धारण कर चुकी है । इन सबका आधार बुराई से घृणा, परन्तु बुराई करनेवाले से प्रेम रहा है । सत्याग्रही अपने विरोधी से सदा विरोधित बर्ताव करता है । कानून का भंग सदा सविनय होता है, और "सविनयता का अर्थ केवल उस अवसर पर अपर से मोठा बोलना नहीं, बल्कि आन्तरिक मोठापन और विरोध का भी भला करने की इच्छा है ।" अपने सब आन्दोलनों में, जब कभी गान्धीजी ने शत्रु को काष्ट में देखा, वह उसकी सहायता को दौड़े गये । शत्रु की कठिनाई से फायदा उठाने के सब प्रयत्नों की वह निन्दा करते हैं । यूरोप में ब्रिटेन की कठिनाई में फँसा हुआ देखकर हमें उससे सौदा नहीं करना चाहिए । गत् महायुद्ध के समय उन्होंने भारत के बाइसराय को लिखा था—“यदि मैं अपने देशवासियों से कदम वापस करा सकता तो मैं उनसे कांग्रेस के सब प्रस्ताव वापस करना लेता और महायुद्ध जारी रहने तक किसी को 'होम रूल' या 'उत्तरदायी शासन' का नाम भी न लेने देता ।” जनरल स्मट्स तक गान्धीजी के उपायों से आकृष्ट हुए थे और उनके एक सेक्रेटरी ने गान्धीजी से कहा था, “मैं आपके देशवासियों को नहीं चाहता और मैं उन्हें मदद भी बिल्कुल नहीं देना चाहता, परन्तु मैं क्या करूँ ? आप हमारी जरूरत में हमारे मदद करते हैं । आप पर हम हाथ कैसे उठावे ? मैं बहुधा चाहता हूँ कि आपने भी अग्रेज हड़तालियों की भाँति हिंसा का सहारा लिया होता और तब हम आपको देख लेते, परन्तु आप तो शत्रु को भी हानि नहीं पहुँचाते । आप तो स्वयं काष्ट सहकर ही जीतना चाहते हैं और भद्रता तथा वीरता की लगामी हुई पावन्दियों से बाहर कभी नहीं जाते और इसी के कारण हम एकदम असहाय हो जाते हैं ।”

युद्धों की समाप्ति के लिए लड़े गए महायुद्ध के बीस वर्ष पश्चात् आज फिर करोड़ों आदमी हथियार बांधे हुए हैं और शान्ति-काल में भी सैन्य-संग्रह जारी है,

१. 'महात्मा गान्धी-हिंदू मोन स्टोरी'; पृष्ठ २४७ ।

२. ये वक्तियाँ यूरोप में युद्ध छिड़ने से पहले लिखी गई थीं ।

जहाजी वेडे समुद्र को नाप रहे हैं और वायुयान आकाश में एकत्र हो रहे हैं। हम जानते हैं कि युद्ध से समस्याओं का हल नहीं होता, बल्कि उनका हल कठिनतर हो जाता है। युद्ध के पक्ष-विपक्ष के मुक्ति-जाल से अनेक ईसाई स्त्री-पुरुष खिन्न हो रहे हैं। शान्तिवादी पुकार रहे हैं कि युद्ध एक ऐसा अपराध है जो मानवता को अपमानित करता है, और वर्चस्व के हथियारों से सम्पत्ता की रक्षा करने का समर्थन नहीं किया जा सकता। जिन स्त्री-पुरुषों में हमारा कुछ झगडा नहीं उन्हें कष्ट में डालने का हमें कोई अधिकार नहीं। युद्ध में पड़ा हुआ राष्ट्र शत्रु का पराजय तथा विनाश करने के भयंकर सक्त्त्व में अनुप्राणित होता है। वह भय और घृणा के प्रवाह में बह जाता है। घने घसे हुए नगर पर मृत्यु तथा विनाश की वर्षा हम प्रेम और क्षमा से प्रेरित होकर नहीं कर सकते। युद्ध का साफ तरीका शैतान को शैतान से सब्बा दिलाने का है। यह ईसा मसीह के हृदय, उसकी नैतिक शिक्षा और जीवन के विरुद्ध है। इनन और ईसाइयत में हम मेल नहीं कर सकते।

युद्ध के पुरस्कर्ता कहते हैं कि यद्यपि युद्ध एक भयानक बुराई है, परन्तु कभी-कभी यह दो बुराइयों में कम बुरी बुराई हो जाती है। सब वस्तुओं के तुलनात्मक मूल्य की ठीक-ठीक समझ लेना ही व्यवहार-बुद्धि बहलापी है। हमारी जिम्मेदारी समाज और राष्ट्र दोनों के प्रति है। और फिर राष्ट्र समाज का ही तो बनाया हुआ है। जान-भाल की रक्षा, शिक्षा और अन्य लाभ हम समाज का सदस्य होने के नाते ही उठाने हैं, और इनमें हमारे जीवन का मूल्य तथा सुख बड़ता है। इसलिए हमारा कर्त्तव्य है कि जब राष्ट्र पर आक्रमण हो तब हम उसकी रक्षा करें, हमारी विरासत पर जोखिम आवे तो उसे कायम रखें।

जिन लोगों से हमारा कोई बँध नहीं उन्हें काटने, मारने, घायल और नष्ट करने को जब हमसे कहा जाता है तब हमारे सामने इसी प्रकार की दलीलें पेश की जाती हैं। नाज़ी जर्मनी कहता है कि मनुष्य का प्रथम कर्त्तव्य अपने राष्ट्र की सदस्यता है और राष्ट्रीय लक्ष्यों की पूर्ति में ही उसकी वास्तविकता, भलाई तथा सच्ची स्वतन्त्रता है। राष्ट्र को अधिकार है कि वह अपने वडप्पन के सामने व्यक्तियों के सुख को गौण समझ ले। युद्ध का बड़ा गुण यह है कि मनुष्य अपनी निर्बलता में वैयक्तिक स्वतन्त्रता को जो इच्छा करने लगता है उसे वह नष्ट कर देता है। फासिस्ट पार्टी की स्थापना के बीसवें वार्षिकोत्सव पर अपने भाषण में मुसोलिनी ने कहा था, "आज की परम्परा तो यही है कि किसी भी सुख पर, किसी भी उपाय से, जिसे नागरिक जीवन कहा जाता है उसे बिल्कुल मिटाकर भी, अधिकाधिक जहाज, अधिकाधिक बन्दूकें, और अधिकाधिक वायुयान एकत्र किये जायें।" 'पूर्वतिहासिक काल से सदियों में से गुजर कर यही पुकार चली आ रही है, 'बेहथियारों का बुरा हो'।"

"हम चाहते हैं कि आगे भाईचारे, बहनचारे, भतीजा-भानजाचारे और उनके

नकली माँ-बापचारे की कोई बातें सुनाई न दें, क्योंकि राष्ट्रो के आपसी सम्बन्ध बल तथा शक्ति के सम्बन्ध होते हैं, और बल तथा शक्ति के सम्बन्ध ही हमारी नीति के निश्चायक हैं।" मुसोलिनी ने और भी कहा था "यदि समस्या का हल नैतिक दावे के आधार पर किया गया तो पहला दार करने का अधिकार किसी को भी नहीं रहेगा।" साम्राज्यो का निर्माण ताश के खेल-सा है। कुछ शक्तियो को अच्छे पत्ते मिल जाते हैं और वे ऐसे दग से खेलती हैं कि दूसरो का कहीं ठिकाना तक नहीं रहता। तमाम नफा अपनी जेब में भर लेने के बाद वे मुँह फेर कर कहती हैं कि जुआ खेलना बुरा है और ताज्जुब जाहिर करती हैं कि दूसरे लोग अब भी वही खेल खेलना चाहते हैं। ऊपर की पक्तियो से ऐसा नहीं समझना चाहिए कि जाति, शक्ति और सशस्त्र सेनाओं की पूजा केवल मध्ययूरोप में ही होती है।

ता० २० मार्च को ब्रिटिश लार्ड-सभा में भाषण करते हुए कंण्टरबरी के आर्क-बिशप ने "शक्ति का सग्रह ग्याय के पक्ष" में करने की वकालत की थी। उनकी दलील थी कि "हमें यह इस कारण करना पड़ रहा है कि हमें निश्चय हो गया है कि कुछ वस्तुएँ शान्ति की अपेक्षा भी अधिक पवित्र हैं और उनकी रक्षा होनी ही चाहिए।" "मैं नहीं समझता कि जिन वस्तुओं का मूल्य मानव सुख तथा सभ्यता के लिए इतना अधिक है उनकी यदि कुछ राष्ट्र रक्षा करेगे तो उनका काम ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध होगा।" गांधीजी उस दुर्लभतम धार्मिक पुरुष का उदाहरण हैं जो औशीले देशभक्तों की सभा में खड़ा होकर भी यह सकता है कि यदि आवश्यकता हुई तो मैं सत्य पर भारत को भी निछावर कर दूँगा। गांधीजी कहते हैं, "मैं जितने धार्मिक पुरुषों से मिला हूँ उनमें से अधिकतर को मैंने छपवेश में राजनीतिज्ञ ही पाया, परन्तु मैं राजनीतिज्ञ का वेश धारण करके भी हृदय से धार्मिक व्यक्ति हूँ।"

धार्मिक पुरुष का लक्ष्य अपने आदर्श को अमली माँग तक उतार देना नहीं, बल्कि अमल को आदर्श के नमूने तक चड़ा देना होता है। हमारी देशभक्ति ने मानव परिवार की आध्यात्मिक एकता को छिन्न-भिन्न कर दिया है। अपनी बृहत् मानव-समाज भक्ति की रक्षा, हम युद्ध में पड़ने से इन्कार नरके, और अपनी राष्ट्र-भक्ति की रक्षा, हम धार्मिक तथा मानुषिक उपायों से करना चाहते हैं। कम-से-कम धार्मिक व्यक्तियों को, ईसाई 'अपोकल्यो' की भाँति, "मनुष्य की बजाय ईश्वर की आज्ञा का पालन करना चाहिए।" हमारी दिक्कत यह है कि सब देशों में समाज का नियंत्रण ऐसे व्यक्तियों के हाथ में है जो युद्ध को अपनी नीति का औजार मानते हैं और उन्नति का विचार विजय के ही शब्दों में करते हैं।

आदमी यदि भनदूस ही न हो तो वह नम्रता और दया करके प्रसन्न होता है। निर्माण में सुख और विनाश में दुःख है। साधारण सिपाहियों को अपने शत्रुओं से १. ईसाइयत के १२ लाख धर्म-प्रचारक जो ईसामसीह के शिष्य में।

धृषा नहीं होती; परन्तु शासक-वर्ग उनके भय, स्वार्थ और अभिमान के नाम पर अपील कर-करके उन्हें मनुष्यता के मार्ग से झपट कर देता है। जिन मनुष्यों में बहकाकर धृषा और क्रोध के भाव उत्पन्न कर दिए जाते हैं, वे एक-दूसरे से लड़ पड़ते हैं, क्योंकि वे आज्ञा-मात्रन करना सीखे हुए हैं, परन्तु तब भी वे अपने ह्मन-कार्य में धृषा और द्वेष को नहीं ला सकते। जिस काम से वह नफ़रत करते हैं, वह भी उन्हें नियन्त्रण के कारण करना पड़ता है। अन्तिम जिम्मेदारी तो सरकार पर रहती है, जिसमें दया, तरस और सन्तोष नहीं होना। वे सीधे-सादे आदमियों को कुँद करती है और मनुष्यता से गिर जाते हैं। जो अन्यथा उत्पादन का कार्य करके प्रसन्न होते उन्हीं को बिनाशकारी जल, स्थल और वायु-सेनाओं में संगठित किया जाता है। हम खून-खराबी की प्रशंसा करते हैं और दया को लज्जा की वस्तु मानते हैं। हम सत्य की शिक्षा का निषेध करते हैं और असत्य के प्रसार की आज्ञा देते हैं। हम अपनी और परावों दोनों के सुख-समृद्धि और जीवन का अपहरण करते हैं और अपने-आपको सामूहिक कत्लो और आध्यात्मिक मृत्यु का जिम्मेदार बना लेते हैं।

जबकि सब राष्ट्र एक-दूसरे से स्वतंत्रता और मित्रता का व्यवहार न करेंगे, और जबकि हम विश्वरे हुए सामाजिक जीवन के पुनः संगठन की नई व्यवस्था न करेंगे तब तक हमको शान्ति नहीं मिलेगी। इस लोक के मानव समाज और सभ्यता का मविष्य आत्मा, स्वतंत्रता, न्याय और मनुष्य-प्रेम की उन गहरी विश्व-भावनाओं के साथ बँधा हुआ है जो गांधीजी का जीवन-स्वास्त बन चुकी है। हिंसा और द्वेष से पूर्ण इस समार में गांधीजी को अहिंसा एक ऐसा अत्यन्त सुन्दर मन्त्र प्रतीत होती है जो सभ्य नहीं हो सकता। उनके लिए ही ईश्वर सत्य और प्रेम ही है। और ईश्वर चाहता है कि हम मनीषे की परवा न करके सत्य और प्रेम के अनुयायी बनें। सच्चा धार्मिक पुरुष सत्य की खोज ऐसी ही तत्परता से करता है जैसे कि चपूर व्यापारी अपने लाभ-हानि की। वह अपने वैयक्तिक, जातीय और राष्ट्रीय प्रियतम हितों को निछावर करके भी यह खोज करता ही है। जो व्यक्ति अपने वैयक्तिक तथा सामाजिक स्वार्थों का सर्वथा परित्याग कर चुके हैं उन्हीं में यह कहने का बल और साहस हो सकता है कि "मेरे स्वार्थों की हानि भले ही हो, परन्तु ईश्वर की इच्छा पूर्ण हो।" गांधीजी इस सम्भावना को भी स्वीकार नहीं करते कि ईश्वर, सत्य और न्याय के प्रेम से कभी किसी को हानि हो सकती है। उनको निश्चय है कि ससार के विजेता और शोषण-कर्त्ता अन्तोगन्वा नैतिक नियमों की चट्टान से टकराकर स्वयं नष्ट हो जायेंगे। नीति-हीन होने में भी रक्षा नहीं, क्योंकि बल की इच्छा ही आत्म-पराजयकारिणी है। जब हम "राष्ट्रीय सुख की बात करते हैं तब हम यह कल्पना कर लेते हैं कि कुछ भू-भाग अपने कब्जे में रखने का हमारा अखण्डनीय और स्थायी अधिकार है। और "मम्यता"! मसार कई सभ्यताओं को युगों की धूल में नीचे जाता देख चुका है

और उन द्वारा निर्मित नगरो की जगह जगल खड़े हो चुके हैं और वहाँ चाँदनी रात में स्यार हूकते हैं ।

धार्मिक पुरुष के लिए सभ्यता और राष्ट्रीय सुख के विचार अप्रासंगिक हैं । प्रेम, नीति या हिसाब का विषय नहीं है । जो लोग निराश हो चुके हैं कि वर्तमान ससार की हिंसा को रोकने का बचकर भाग निकलने या नष्ट हो जाने के सिवाय कोई उपाय नहीं उनसे गांधीजी कहते हैं कि एक उपाय है, और वह हम सब की पहुँच में है । वह है प्रेम का सिद्धान्त, जोकि अनेक अत्याचारों में भी मनुष्य की आत्मा की रक्षा करता आया है, और अब भी कर रहा है । उनका सत्याग्रह चाहे पशु-शक्ति के विशाल प्रदर्शनों की तुलना में प्रभावहीन जैचे, परन्तु शक्ति से भी अधिक विशाल एक वस्तु है, वह है मनुष्य की अमर आत्मा, जो कि विशाल सख्याओं या ऊँची आवाजों से नहीं दबेगी । यह उन सब बेडियों को छिन्न-भिन्न कर देगी जिनमें अत्याचारी इसे जकड़ना चाहेंगे । गत माचं के सकट-काल में 'न्यूयार्क टाइम्स' के एक सवाददाता ने जब गांधीजी से ससार के लिए संदेश माँगा तब उन्होंने सब प्रजातन्त्र शक्तियों को एकदम निःशस्त्र हो जाने की सलाह दी थी और उसे ही एकमात्र हल बतलाया था । उन्होंने कहा था, "मुझे यहाँ बैठे हुए निश्चय है कि इससे हिटलर की आँखें खुल जायेंगी और वह आप निःशस्त्र हो जायगा ।" सवाददाता ने पूछा, "क्या यह चमत्कार नहीं है ?" गांधीजी ने जवाब दिया, "शायद । परन्तु इससे ससार की उस करलेआम से रक्षा हो जायगी जो अब सामने दीख रहा है ।" "कठोरतम धातु काफी आँच से नरम हो जाती है, इसी प्रकार कठोरतम हृदय भी अहिंसा की पर्याप्त आँच लगने से पिघल जाना चाहिए । और अहिंसा कितनी आँच पैदा कर सकती है इसकी कोई सीमा नहीं । अपने आधी सताब्दी के अनुभव में मेरे सामने एक भी परिस्थिति ऐसी नहीं आई जब मुझे यह कहना पड़ा हो कि मैं असहाय हूँ और मेरी अहिंसा निरुपाय हो गई ।" प्रेम मनुष्य-जीवन का नियम है, उसकी प्राकृतिक आवश्यकता है । हम ऐसी अवस्था के नजदीक पहुँच रहे हैं जब यह आवश्यकता और भी स्पष्ट हो जायगी, क्योंकि यदि मनुष्य इस नियम से बचेगा और इसका उल्लंघन करेगा तो मनुष्य-जीवन ही असम्भव हो जायगा । हमें लड़ाइयों का सामना इसलिए करना पड़ता है, क्योंकि हमारा जीवन इतना निस्वार्थ नहीं हुआ कि हमें युद्धों की आवश्यकता ही न हो । शान्ति का युद्ध तो मनुष्य के हृदय में ही लड़ा जाना चाहिए । उसकी आन्तरिक भावना की अभिमान, स्वार्थ, लालसा और भय की शक्ति पराजित करने में समर्थ हीना चाहिए । एक नए प्रकार के जीवन पर राष्ट्र-तन्त्र तथा सांसारिक व्यवस्था की नींव पड़नी चाहिए । वह जीवन ऐसा हो जो सब वर्गों, जातियों और राष्ट्रा के सच्चे हितों की वृद्धि, उन्नति और रक्षा करे । जिन मनुष्यों ने अपने-आपको अविद्या की अन्धकारमय और स्वार्थमय भावना की पराधीनता से स्वतन्त्र

कर लिया है, वही शान्ति की स्थापना और रक्षा में समर्थ हो सकते हैं। शान्ति जीवन का एक सक्रिय प्रदर्शन और कुछ विश्व-व्यापी सिद्धान्तों और आदर्शों का अमली आचरण है। हमें उसकी रक्षा के लिए ऐसे हथियारों से लड़ना चाहिए जिनमें नैतिक गुणों का और मनुष्य-जीवन का पतन तथा विनाश न हो। इस प्रयत्न में जो भी कष्ट हमारे मार्ग में आए उन सबको सहने के लिए हमें तैयार रहना चाहिए।

मैंने मत्स्य के विभिन्न भाषा की अपनी यात्राओं में देखा है कि गांधीजी की शान्ति, बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों और राष्ट्रा के नेताओं से अधिक व्यापक है और उनके व्यक्तित्व को किसी भी एक अथवा अन्य सबकी अपेक्षा, अधिक प्रेम और आदर की दृष्टि से देखा जाता है। उनका नाम इतना सर्व-परिचित है कि कठिनाई सही कोई किसान या मजदूर ऐसा होगा, जो उनको मनुष्यमान का भिन्न न समझता हो। वह ऐसा ममत्तन प्रतीत होते हैं कि गांधीजी सुवर्ण युग का पुनरुद्धार करेंगे, परन्तु हम उसको (युग को) इस प्रकार बुलाने नहीं सकते जिस प्रकार हम रास्ता चलती किराये-गाड़ी की बुला लेते हैं, क्योंकि हम किसी राष्ट्र की अपेक्षा भी अधिक बलवान और किसी पराजय की अपेक्षा भी अधिक अपमानकारक एक वस्तु के आधीन हैं,—और वह है अज्ञान। यद्यपि हमको सब शक्तियाँ जीवन के लिए दी गई हैं, परन्तु हमने अष्ट बनकर उनकी मृत्यु के लिए प्रयुक्त हो जाने दिया है। यद्यपि मनुष्यजाति की उत्पत्ति में ही यह स्पष्ट है कि वह सुख की अधिकारिणी है, परन्तु हमने उस अधिकार की अपेक्षा की है, और अपनी शक्ति का प्रयोग ऐसे धन और बल के सपने के लिए होने दिया है, जिन द्वारा बहुतांश का सुख कुछेक के सदिग्ध सन्तोष पर निछावर कर दिया जाता है। जिस मूल के आप और मैं चिन्तित हैं, सारा संसार भी उसीका गुलाम है। हमें धन और बल की प्राप्ति के लिए नहीं, प्रत्युत प्रेम और मानवता की स्थापना के लिए प्रयत्न करना चाहिए। मूल से मुक्त होना ही एकमात्र सच्ची स्वतन्त्रता है।

गांधीजी बचन-मुक्त जीवन के मन्त्र-दाना हैं। असाधारण धर्म भावना और कर्म-तेज के कारण कोटि-कोटि मनुष्यों पर उनका प्रभाव है। लोग सदा रहेंगे जो ऐसे सक्षम और पावन जीवन के विरल उदाहरणों से शक्ति पायेंगे और उनमें सत्य की झाँकी देखेंगे। यह झाँकी और यह उपलब्धि साधारण साधना में से कम प्राप्त होती है। और आधुनिक काल के अधिकांश उपद्रव्य लोग कुछ ऐसी ही रुढ़ नैतिकता या क्लामय कृत्रिमता का पाठ देते हैं। सतिष्ठ रहो और सरल, हृदय में निर्मल और आर्द्र, दुःख में प्रसन्न और मानव के आग स्फिर-बुद्धि और चिरतुष्ट, जीवन में प्रीति रक्तों और मृत्यु के प्रति अमय, सनातन आत्मा की सेवा में समर्पित होओ और गतात्माओं के भार में निरतन रहो—सृष्टि के आदिम दी गई और कौन निश्चय है जो इस निश्चय में बढ़कर है? अथवा कि वहाँ हमारा उदाहरण है जहाँ उस निश्चय का अधिक उत्पत्ता से पालन हुआ है।

महात्मा गांधी : उनका मूल्य

होरस जी. एलेक्जेंडर, एम. ए

[सेली ओक, बर्मिंघम]

किसी बड़े आदमी के जीवन-काल में उसका ठीक मूल्यांकन करना सुगम नहीं है। और अगर आपका उससे व्यक्तिगत परिचय है, तब तो वह और भी कठिन है, क्योंकि उचित दृष्टिकोण से एक आदमी को देखने के लिए आपको थोड़ा तटस्थ होना चाहिए। गांधीजी से थोड़ा भी तटस्थ मैं नहीं होना चाहता। जबतक वह जीवित है तबतक मेरे लिए तो यही प्रयत्न करना सर्वोत्तम है कि प्रत्येक सप्ताह उनके पत्र 'हरिजन' से उनके विचार को समझकर उनके इतना समीप रहूँ जितना कि रह सकता हूँ।

फिर भी समय-समय पर उन प्रश्नों का सामना करने के लिए आवश्यक रूप से तैयार होना चाहिए जिन्हें उनके बारे में ससार पूछना है, और उनके उत्तर देने का प्रयत्न करना चाहिए। मेरा अनुमान है कि इस ग्रन्थ का मुख्य उद्देश्य यही दिखाना है कि अपने समकालीनों में से कुछ पर गांधीजी ने क्या प्रभाव डाला।

यह सक्षिप्त असमर्थता दिखाकर मैं यह बताने का प्रयत्न करूँगा कि वर्तमान ससार व्यवस्था में मैं उन्हें किस प्रकार देखता हूँ।

हमारे युग में बहुत-से देशों में और विभिन्न रूपों में अपने अधिकारों से वंचित लोगों के विद्रोह हुए हैं। ट्रेड-यूनियन-आंदोलन और समाजवाद के विभिन्न तरीकों ने समस्त पश्चिम में औद्योगिक मजदूरों के अधिकारों की घोषणा की है। सम्भवतः अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संगठन इस हलचल की पहली पराकाष्ठा है, लेकिन इस में उसने और भी लम्बा कदम रखा है। वहाँ औद्योगिक मजदूर अब भामूली आदमी नहीं हैं। आपके कठोर व्यवहार पर वह आपकी काटेगा नहीं, उसे विशेष अधिकार का स्थान दिया गया है। अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संगठन या सोवियट, मजदूरों को, अधिक कार्य से शिथिल दुकानदारों को, दीन किसान, मछुओं और दूसरों को बिल्कुल भूलते हैं, सो नहीं, लेकिन जो कुछ इनके लिए किया गया है, वह किसी कदर बाद का विचार है।

जर्मनी में वट्टर समाजवादियों या औद्योगिक मजदूरों ने ही वही क्रांति में सफलता नहीं पाई। दूसरे चालाक या शायद सिद्धान्तों का विचार न करनेवाले दल ने दूढ़ निश्चाला कि जन-संस्था के दूसरे बड़े विभाग, मध्यमवर्ग, की सहायता को जैसे

जीता जा सकता है। वे भी निराश थे। सिक्के का पूर आया और बाजार एकदम चढ़ जाने के सबब उसमें उनकी आय में हाई मे उड़ गई थी और नीचे ऊपर से बड़ी शक्तियों के बीच वे कुचल गए थे। अगर कोई ऐसा वर्ग था जिसने दूसरों की अपेक्षा अधिक हिटलर की जीत कराई तो वह यही मध्यम वर्ग था जिसे कार्ल मार्क्स के अनुयायी बहुधा भूल जाते हैं और घृणा करते हैं।

लेकिन भारत से गांधीजी इन पश्चिमी क्रान्तियों को चुनौती देते हैं। औद्योगिक मजदूर, मध्यम वर्ग, बुद्धिवादी, रियासतों के मालिक, ये सब दल जो शक्ति के लिए पश्चिम में होड़ लगा रहे हैं, इस बुनियादी बात को भूल जाते हैं कि आदमी का पेट तो भरना ही चाहिए। मशीनों को वह नहीं खा सकता, व्यापार को भी वह नहीं खा सकता। स्कूल की किताबों को भी वह नहीं खा सकता, न डिबीडेडों को ही खा सकता है। इन सब चीजों के बिना भी मनुष्य जीवित रह सकता है, लेकिन वह रोजाना रोटी या चावल पाये बिना जीवित नहीं रह सकता। और अपने दैनिक भोजन के लिए, जिसे सभ्य और शहरी आदमी साधारण बात समझते हैं, उसे अन्तिम रूप से हिन्दुस्तान, चीन, पूर्वी यूरोप, कनाडा, अर्जेंटाइन, ट्रोपीकल अफ्रीका के लाखों मूक और बहुधा अधभूखे किसानों पर निर्भर रहना पड़ता है। इन तमाम देशों में प्रत्येक वर्ष किसान अन्न पैदा करने के लिए, जिससे लोग जीवित रहते हैं, घूप, हवा और मेंह के इस्तेमाल के लिए (और कितनी बार बहुधा वे उसे घोखा देते हैं!) कितने हाथ-पैर पीटता है। हजारों वर्षों से, पुस्त-पुस्तों से वे ऐसे रहते आ रहे हैं। युद्ध और क्रांतियाँ उनके परिश्रम के फल को थोड़े समय के लिए नष्ट करती हुई गुजर गई हैं, सूखा और बाढ़ उन्हें नष्ट करते रहे हैं। अन्त में अब उन्हें एक सहारा मिला है, महात्मा गांधी।

भारतवर्ष के करोड़ों आदमियों में ऐसा शायद ही कोई आदमी कठिनाई से मिलेगा जो गांधीजी का नाम नहीं जानता। पहाड़ी जातियाँ और मूल निवासी तक गरीबों के इस मित्र और रक्षक को जानते हैं और उससे प्रेम करते हैं।

यद्यपि उन्होंने वकील का शिक्षण प्राप्त किया था, फिर भी वह पुनः किसान बन गए हैं। अपने बाहरी जीवन में ही नहीं, किसान के मामूली कपड़े पहनकर, और सुदूर और पिछड़े हुए, ऐसे बँवार और रुढ़ि-मसन्द गाँव में रहकर जिसे महात्माजी स्वयं साफ और आधुनिक नहीं बना सकते, बल्कि अपने हृदय और मस्तिष्क से भी किसान बन गये हैं। वह सत्तार की किसान, चतुर, बेलिहाज, साफ, कभी-कभी कुछ रूखेपन, हास्य, दया, सतोष, की दृष्टि से देखते हैं। वह अगाध धार्मिक हैं, जीवन को सामूहिक रूप से देखते हैं और जानते हैं कि कुछ छिपी हुई शक्तियाँ ऐसे ढंगों से काम कर रही हैं जिन्हें हम नहीं समझ सकते, हालाँकि बहुधा हमें उनके बारे में ज्ञान और आशा हो सकती है अगर हम चुप रहने और सुनने के लिए उद्यत हैं।

मैं उन शब्दों को कभी नहीं भूल सकता जो उन्होंने मुझसे उस समय कहे थे जब मैं भारत में छ महिने घूमने के बाद पहली बार १९२८ के वसंत में साबरमती में उनसे मिला था। मैंने उनसे पूछा, "अपने घर इंग्लैंड पहुँच कर मैं क्या कहूँ?" उन्होंने उत्तर दिया, "अप्रेजो से कहिए कि वे हमारी पीठ पर से उतर जायें।" मोक्षिए इसका क्या अर्थ है, ध्येय के बारे में ही अर्थ नहीं, बल्कि उन साधनों के बारे में भी उन शब्दों का क्या अर्थ है जिनसे ध्येय सिद्ध किया जायगा।

क्योंकि वह ध्येय ही नहीं है, जोकि उनके सामने है जो गांधीजी को हनारेयुग के दूसरे क्रान्तिकारी नेताओं से अलहदा करता है। शायद उससे भी अधिक महत्वपूर्ण वे साधन हैं, जिन्हें वह उस ध्येय की पूर्ति के लिए काम में लाते हैं। भारतीय मामलों में सक्रिय भाग लेने से पहले १९०८ में लिखी गई उनकी पुस्तक 'हिन्द-स्वराज्य' में उन्होंने लिखा है—“बादशाह अपने दाही शस्त्री को सर्वदा प्रयोग में लायेंगे। बल्कि प्रयोग का तो उनके अन्दर पोषण हुआ है।” किसानों का दमन तलवार से नहीं हुआ है। कभी होगा भी नहीं। तलवार चलाना वे नहीं जानते और न दूसरों द्वारा चलाई गई तलवार से ही वे भयभीत होते हैं।” इसलिए किसान स्वराज्य, किसान राज्य या किसान-स्वतन्त्रता जोकि गांधीजी का उद्देश्य है, उन्हीं तरीकों से मिलनी चाहिए जो उनके सामने के ध्येय के अनुकूल हैं। वे लोग जिनका ध्येय मनुष्यों का शासक बनना है, तलवार चलाते हैं। हरेक शासक वर्ग का यह शस्त्र है। और जब समाजवादी या साम्यवादी, या नाज़ी या फ़ासिस्ट, 'शासक वर्ग' को उसीके शस्त्रों से नष्ट करने की उद्यत होते हैं तो उनकी सफलता केवल एक शासक वर्ग को हटाकर दूसरा शासक वर्ग ला रखती है। घरती के मालिक, बंको के मालिक या कारख़ानों के मालिक वर्ग के हाथों में रहने की अपेक्षा वह तलवार कम्युनिस्ट, फ़ासिस्ट या नाज़ी दल के हाथ में चली जाती है। मामूली नागरिक अब भी पद-दलित किये जाते हैं। एक नई शासक व्यवस्था लोगों की पीठ पर चढ़ जाती है।

लेकिन गांधीजी शासक-जाति या जमात के बोझ को सर्वदा के लिए किसानों की पीठ से दूर कर देना चाहते हैं। वर्तमान शासकों को इसलिए नहीं हटाना चाहते कि उससे उनके मित्र आगे बढ़ें। इसलिए उन्होंने एक ऐसे शस्त्र के निर्माण में अपना जीवन लगाया है, जिसको, शरीर से दुबल और शरीर से मजबूत, सभी चला सकते हैं। उनसे शिक्षा पाकर वे अपने पैरों पर सीधे खड़ा होना सीखते हैं और भारी बोझों के नीचे अब झुके नहीं रहते।

गांधीजी कहते हैं कि किसी को अपनी पीठ से उतारने के लिए उसकी पीठ पर सवार होने की अपेक्षा उसे नवतन सहयोग देने से इकार कर देना उचित है जबतक वह बहा रहा है। अन्त में उसे नीचे उतरना पड़ेगा और उसे टेकन या सहारे को

कुछ भी नहीं मिलेगा। मगर आप उसकी बराबर सहायता न करेंगे तो वह आपको हर प्रकार के दण्ड की धमकी दे सकता है। अपनी धमकियों को वह कार्य में भी परिणत कर सकता है, लेकिन अगर दण्ड और मृत्यु पर आपने हँसना सीख लिया है तो उसकी धमकियाँ और तलवार तक भी आपको विचलित नहीं कर सकेंगी। दबाव से वह ऐसा काम आपसे नहीं करा सकता है जिसे आपकी आत्मा कहती है कि गलत है।

कार्य के इस अहिंसात्मक तरीके को सक्रिय रूप से काम में लाने के पहले बहुत भारी कठिनाइयों पर विजय पानी होगी। तोप के गोलों के सामने डटे रहने के लिए उस दशा में भी सिपाहियों को तैयार करना कठिन है, जबकि उन्हें जवाब में गोली चलाने का अधिकार है। निश्चय ही उसमें कठिन लोगों को यह सिखाना है कि वे बिना अपनेको बचाये हर प्रकार का बलात्कार अपनेपर स्वीकार कर लें। वीस बरस पहले गांधीजी ने घोषणा की थी कि निष्क्रिय प्रतिरोधक (या जिन्हें अब वह 'सत्याग्रही' कह कर पुकारते हैं, अर्थात् वे जो कि हँवानी बल के प्रयोग की अपेक्षा आत्मिक बल का प्रयोग करते हैं) में योग्यता होनी चाहिए कि "वह पूर्णतया पवित्र रहे, निर्धन रहे, सच बोले, और निर्भयता की आदत डाले।" हर युग में ऐसे मनुष्य और स्त्रियाँ हुई हैं जिन्होंने आत्मविजयी अहिंसात्मक जीवन के रहस्य को अनुभव किया है। जर्मनी के ईबनजैलीकल पादरियों के जेल से हाल ही में आये पत्रों के पढ़ने से प्रमाणित होता है कि पश्चिम में और पूर्व में भी ऐसे चरित्र का निर्माण किया जा सकता है। और यदि, या जब, बहुसंख्यक लोग ऐसे दृढ़ चरित्र होजायेंगे तो मानव की स्वतंत्रता, और मानव का आदर्श समाज सामने दिखाई देंगे।

यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि गांधीजी शान्ति और स्वतंत्रता के सिपाहियों से पूर्ण आत्म-अनुशासन की आशा करते हैं, वह 'जनता' की बात नहीं करते। जब आप तोप के गोलों की परिमाणा में सोचते हैं, चाहे साम्राज्य स्थापित करने के लिए या शान्ति के लिए, तब स्वभावतः मानव-प्राणियों की पक्षी समाज में आप गणना करते हैं, लेकिन गांधीजी के लिए 'लाखों करोड़ों' में से प्रत्येक स्त्री-पुरुष एक व्यक्ति है, जिसका व्यक्तित्व उतना ही पवित्र है जितना उनका (गांधीजी का) अपना। वह जानते हैं कि बिल्कुल अनजान किसान तक से यह हार्दिकता के साथ किस प्रकार अपनी मित्रता करें जिनकी कि वह अपनी-जैसी शिक्षा के सतह के व्यक्ति के साथ करने हैं। उनके लिए कोई भी पुरुष या स्त्री साधारण या अस्वच्छ नहीं है। यह केवल एक सुन्दर सिद्धान्त ही नहीं है जिसका वह उपदेश देते हैं, बल्कि वह उनकी दैनिक क्रिया भी है।

ऐसे युग में जब कि हिंसा को नित नया प्रोत्साहन दिया जा रहा है, जब कि पश्चिम की एकमात्र आशा ऐसे बृहत् शस्त्रीकरण की 'सामूहिक सुरक्षितता' है जिसे

कि दृढ़-से-दृढ़ आक्रमणकारी भी पैदा नहीं कर सकता, जब कि एक लाट पादरी (आर्कबिशप) भी यही सलाह देते हैं कि अन्तिम शान्ति के लिए प्रथम कार्य यह हो कि “शक्ति का सग्रह न्याय के पक्ष में किया जाय”, तब हमारी आँखों के सामने—अगर हम उन्हें खोले और देख—एक आदमी है, जिसका शरीर दुबला-पतला है, स्वास्थ्य जिसका दुरा है, और विशेष गानसिक शक्तियाँ भी जिसमें नहीं हैं, वह अपने ही जीवन में अपनी जादू की-सी शक्ति से, जिसका प्रभाव उसके भारतीय साथियों पर पड़ता है, दिखा रहा है कि आदमी की आत्मा जब स्वर्गीय ज्वाला से प्रज्वलित होती है तो वह शक्तिशाली-से-शक्तिशाली शस्त्रीकरण से भी अधिक मजबूत होती है।

विनम्र व्यक्ति अब भी सत्तार में अपने अधिकार प्राप्त कर सकते हैं, यदि वे केवल अपनी विनम्रता में थड़ा रखें, हिटलर या स्टेलिन के भय को छोड़ दे और हमारे युग के इस सर्वोत्कृष्ट शिक्षक की ओर आशा से देखें।

: ३ :

एक मित्र की श्रद्धाञ्जलि

सी एफ़ एरंडरूज़

[बोलपुर, बंगाल]

इस लेख में मेरा उद्देश्य त्रिविध है। पहिले, मैं अपने पाठकों के सामने महात्माजी के चरित्र के गूढ़तर धार्मिक पहलू की स्फुरेला खींचने का प्रयत्न करूँगा। दूसरे, उनके व्यक्तित्व के मानव-समाज से सीधा सम्बन्ध रखनेवाले पहलू पर प्रकाश डालूँगा। और तीसरे, मैं संक्षेप में उन बातों का चित्र करूँगा जिन्हें मैं वर्तमान युग में मनुष्य-जाति के प्रति महात्माजी की दो मूलभूत देव मानता हूँ।

१

कुछ ऐसे मौलिक धार्मिक तत्त्व हैं जिनपर महात्माजी सबसे अधिक जोर देते हैं। उनकी मान्यता है कि उनके जरिये मरणधर्मा मनुष्य भी परमात्मा के भय से सत्तार में चिरस्थायी काम कर जा सकता है।

इनमें पहला गुण है, सत्य। वह इसे एक दैवी गुण मानते हैं। वह न सिर्फ मनुष्यों के शब्दों और कार्यों में प्रगट होना चाहिए प्रत्युत अन्तरात्मा में भी उसका प्रकाश चाहिए। झूठ न बोलना ही सत्यपालन के लिये पर्याप्त नहीं यद्यपि यह इसका एक आवश्यक अंग है। उनके विचारों के अनुसार सब सत्यों का आदिस्त्रोत हृदय है।

सत्य कितना महान् है, यह इसी बात से मालूम पड़ सकता है कि वह इसे परमात्मा के नाम के लिये प्रयुक्त करते हैं। अहंनिश उनकी जबान पर एक ही मूल

रहता है। और वह, "सत्य परमात्मा है और परमात्मा सत्य है।" उनका दैनिक जीवन इस बात का प्रमाण है कि वह सत्य की कितने उत्साह से आराधना करते हैं। किसी भी अश में सत्य से परे होने का इसलिये अर्थ है दिव्य स्रोत से दूर जा पडना और परिणामस्वरूप आध्यात्मिक रूप से हमेशा के लिये मर जाना। यह प्रकाश की जगह अन्धकार में चलने के समान है। महात्माजी की यह दैनिक प्रार्थना—

असतो मा सद्गमय

तमसो मा ज्योतिर्गमय

मृत्योर्माऽमृतं गमय।

इमे तीन रूप में स्पष्ट करती हैं। प्रकाश और अन्धकार तथा अमरत्व और आत्मिक मृत्यु, सत्य और असत्य के इसी मौलिक भेद के दूसरे पहलू हैं।

दूसरा तत्त्व जिसका भाविस्त्रोत परमात्मा है, अहिंसा है। अगर इसका हम अक्षरशः अनुवाद करना चाहे तो इसे न-सताना कह सकते हैं। मगर महात्मा गांधी के लिये इसका उससे कहीं अधिक अर्थ है। उसमें दूसरों का स्वयं हित करना भी आता है। जहाँतक युद्ध और रक्तपात का प्रश्न है, अहिंसा का अर्थ है इनमें भाग लेने से एकदम इन्कार कर देना, लेकिन वह अर्थ यहाँ समाप्त नहीं हो जाता, वह पूरा तब होता है जब हम अधिक-से-अधिक कष्ट उठाकर उनका हृदय जीतने को तत्पर हो जाते हैं जो हमारे साथ बुराई करते हैं। अभिप्राय यह कि यह भी सत्य की तरह ही परमात्मा का अपना स्वरूप है। 'अहिंसा परमो धर्म' एक पुरातन और पवित्र मन्त्र है जिसका अर्थ है 'अहिंसा सबसे बड़ा धार्मिक कर्तव्य है।' इसीलिये महात्मा गांधी अपना सारा जीवन इस महान् धार्मिक कर्तव्य की सम्भावनाओं का पता लगाने और उनका सत्य के साथ समन्वय करने में बिता रहे हैं। अहिंसा का सिर्फ यह अर्थ नहीं कि असत्य के मुकाबिले में निष्क्रिय प्रतिरोध किया जाय। इसमें उसका सक्रिय प्रतिरोध भी शामिल है। मगर यह क्रोध, ईर्ष्या और हिंसा के बगैर होना चाहिए।

तीसरा महत्वपूर्ण तत्त्व जिसपर महात्माजी सर्वाधिक जोर देते हैं, ब्रह्मचर्य है। वह बताते हैं कि यह सज्ञा ही संस्कृत के 'ब्रह्म' शब्द से बनी है जिसका अर्थ है परमात्मा। कई पुरातन काल से चली आती हुई अन्य मान्यताओं के समान वह मानते हैं कि भोग-कर्म के दमन और फिर उस शक्ति के ऊर्जस्तन से मनुष्य में एक आत्मिक-शक्ति पैदा होती है जो बाद में दिव्य तेज का रूप लेती है, उसमें फिर आश्चर्यकारक अन्तर्शक्ति विद्यमान रहती है। सत्य और अहिंसा के सच्चे अनुयायी को ब्रह्मचर्य का भी सच्चा पालक होना चाहिए और उसे समय के साथ जीवन बिताकर सत्कार के सामने आदर्श उपस्थित करना चाहिए। महात्माजी विवाह को भी मानव कमजोरी के लिये रियायत मानते हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि सम्भोग कर्म से एकदम दूर रहकर इस विषय में विचार तक भी न करने को महात्माजी आत्मिक

जीवन का, जिसे मनुष्य और स्त्री प्राप्त कर सकते हैं, सबसे ऊँचा स्वरूप मानते हैं। यहाँ मैं यह जिक्र किए बगैर नहीं रह सकता कि वह ब्रह्मचर्य और तपस्या के सिद्धान्त में इतनी दृढ़ता से विश्वास करते हैं कि वह उन्हें बहुत आगे ले गया है। उदाहरण के तौर पर उनका आमरण अनशन, जो तबतक जारी रहा जबतक कि उन्हें उसके उद्देश्य में सफलता नहीं मिली, मेरी समझ से बाहर की चीज़ है। इसमें मेरा उनसे कुछ मतभेद है, और इस बारे में उनसे कई मतवा में अपने विचार प्रकट भी कर चुका हूँ।

महात्माजी मुख्यतया एक धार्मिक मनुष्य हैं। वह परमात्मा की कृपा के अतिरिक्त और किसी भाँति बुराई से पूर्ण छुटकारा पाने की कल्पना का विचार तक भी अपने हृदय में नहीं ला सकते। इसलिए प्रार्थना उनके सब कार्यों का सार है। सत्याग्रही के लिए, जो सत्य के लिए मरना अपना धर्म समझता है, सबसे पहली आवश्यकता इस बात की है कि वह परमात्मा में विश्वास करे, जिसका स्वरूप है सत्य और प्रेम। मैंने उनके सारे जीवन की अन्तरात्मा की पुकार के अनुसार, जो उन्हें मूक प्रार्थना में सुनाई देती है, क्षणभर में बदलते पाया है। महान् क्षणों में वह एक विशेष आवाज़ सुनते हैं जो उनसे बात करती है, और दुर्घर्ष आश्वासन के साथ बात करती है, और जब वह इसे सुन लेते हैं तो कोई भी शक्ति उन्हें इस आवाज़ के, जिसे वह परमात्मा की वाणी समझते हैं, अनुसार कार्य करने से नहीं रोक सकती।

गीता उनकी सार्वजनिक प्रार्थना का एक अंग है। इसका वह हमेशा पाठ करते हैं। और जितना ही वह इसका पाठ करते हैं, उन्हें विश्वास होता जाता है कि आत्मिक जीवन का वह जी मार्ग समझते हैं वही वास्तव में इसका मार्ग है।

अगर मैं उनके लम्बे और घनिष्ट अनुभव से उनको ठीक तरह समझ सका हूँ तो उनके परमात्मा सम्बन्धी विचारों में हमेशा एक सहज श्रद्धालुता रहनी है। जैसे सदा किसी मालिक की आँख उनपर हो।

२

अब हम उनके मानव पहलू पर विचार करें। यहाँ कुछ ऐसी कोमल बातें मिलनी हैं कि जो छूकर प्रीति से भर जाता है। इन्हें जरूर उस कठोर तपस्या के साथ रखकर देखना चाहिए जिसका मैंने ऊपर अभी चित्र खोचा है।

कई साल पहले मैं महान् फ्रांसीसी लेखक रोम्या रोला द्वारा महात्माजी के बारे में लिखे गये उस लेख से बहुत प्रभावित हुआ जिसमें उन्होंने गांधीजी को वर्तमान युग का सन्त पाल बताया था। इसमें, मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे वास्तव में ही एक बहुत बड़ा सत्य निहित हो। क्योंकि गांधीजी सन्त पाल की भाँति धार्मिक पुरुषों की उस श्रेणी के हैं जो द्विजन्मा होते हैं। उन्होंने अपने जीवन में एक विशेष धर्म में मानव आत्मा के उस भयंकर कम्पन की अनुभव किया जो मानो कायाकल्प कर देता है। अपने प्रारम्भ के दिनों में महात्माजी लगन के साथ बैरिस्टरी शुरू करने पर लगे

थे। उनकी मुख्य महत्वाकांक्षा थी सफलता। अपने पेशे की सफलता, लौकिक और सामाजिक सफलता, और गहरे जावे तो, राष्ट्र का नेता बनने की सफलता।

वह दक्षिण अफ्रीका अपने काम पर वकील के रूप में, एक महत्वपूर्ण मुकदमे में जिसमें दो बड़े भारतीय व्यापारी फंसे हुए थे, पैरवी करने के लिए गये थे। इस समय तक उन्हें काले और गोरे रंग के भेद का बहुत दूर में ही ज्ञान था, लेकिन उन्होंने इसपर यह कभी नहीं सोचा था कि अगर उनका काल भारतीय होने के कारण किसीने अपमान किया तो वह उन्हें कैसा लगेगा। मगर जब वह पहली दफा डरबन स मैरिट्स-वर्ग गये तो उन्हें रास्ते में यह दुःखद अनुभव अपने पूरे नग्न रूप में हुआ। एक रेलवे के अधिकारी ने उन्हें रेल के डिब्बे में से उठाकर बाहर पटक दिया, और यह सब तब हुआ जबकि उनके पास फर्स्टक्लास का टिकट था। जब गाड़ी उनका इन्तजार किये वहीं ही आगे चली गई। यह घटना रात में हुई थी। महात्माजी ने देखा कि वह एवदम अजनबी स्टेशन पर थे और कोई भी व्यक्ति वहाँ उनको नहीं जानता था। इस अपमान को सहन करने और रातभर ठंड में सिकुड़ने के पश्चात् उनके हृदय में दो भावों में ज्वरान्त सघर्ष शुरू हो गया। एक भाव कहता था कि उन्हें इसी समय टिकट लेकर जहाज से भारत वापस चले जाना चाहिए तथा दूसरा भाव कहता था कि नहीं, उन्हें भी उन बप्टो और मुसीबतों को अखीर तक सहना चाहिए जिन्हें उनके देशवासी रोजाना सहते हैं। सुबह होने से पूर्व ही उनकी आत्मा में एक प्रकाश उदित हुआ। उन्होंने परमात्मा की दया से मद की भांति बढ चलने की ठानी। चले तो चल ही पडे। लौटने की बात कैसी! पर अभी तो ऐसे अपमान जाने कितने उन्हें सहने थे। और दक्षिण अफ्रीका में उनके मौकों की कमी न थी।

मैंने गन नवम्बर मास में महात्माजी के मुख से स्वयं इस रात की कहानी सुनी। वह डाक्टर मॉट को सुना रहे थे। उन्होंने साफ कहा कि उनके जीवन में यह एक परिवर्तनकारी घटना थी जिसके बाद से उनका एकदम नया ही जीवन प्रारम्भ हुआ।

महात्माजी में और भी अनेको ऐसे गुण हैं जिनकी तुलना सापसी सत पाल के चरित्र में मिलनी है। यह है—परमात्मा में अगाध निष्ठा, जो उन्हें मनुष्य के सामने झुकने की कभी इजाजत न देगी, पाप और विशेषकर शारीरिक पापों के विषय में भीषण आनक की भावना, सबसे अधिक प्रिय-जनो के साथ सल्लो ताकि वह उनसे की गई आशा से कम न उतरे। पर इसके साथ ही उनमें मन की एक ऐसी सक्लण वातरता है, जो चलन समझे जाने पर, मानो सहानुभूति की याचना कर उठती है।

उनमें इसमें भी अधिक कई गुण हैं, जो उन्हें असीमी के सत प्राप्ति के समीप ले आते हैं। दरिद्रता और शरीरी को उन्होंने बरण ही कर लिया है। उन्हें आज सच-मुच हम मेगाव के एक मामूली दीन कह सकते हैं। क्योंकि वह वहाँ पददलितों और शरीर ग्रामीणों में उनके भार में हिस्सा बँटाने हुए रह रहे हैं। दो अक्सरों पर मुझे

उनकी सत फासिस के साथ की यह समानता प्रकाश की भाँति स्पष्ट हो गई है।

पहिला अवसर तो डरबन के पास फिनिक्स में मिला। दिन और रात के मिलने का समय था। अंधेरी सध्या का सर्वत्र राज्य था। हम आश्रम में थे। महात्माजी तमाम दिन गरीबों में अनथक काम करते रहने के बाद विसृत आकाश में, एक वृक्ष के नीचे थके-मादे, इतने थके हुए कि आदमी इसकी कल्पना भी मुश्किल से कर सकता है, बैठे हुए थे। इतनी थकान में भी उनकी गोद में एक बीमार बच्चा था जिसकी वह सेवा-परिचर्या कर रहे थे और जो प्यार के मारे उनसे चिपटा जा रहा था। वही पर एक जुलू लड़की भी, जो आश्रम के परे की पहाड़ी पर एक स्कूल में पढ़ती थी, बैठी हुई थी। महात्माजी ने इस अवसर पर “मुझे भगवान् प्रकाश दो” (लीड वाइण्डलो लाइट) प्रार्थना-भजन गाने को कहा। इस समय सध्या और भी अंधेरी हो चली थी और चारों ओर अंधकार का साम्राज्य-सा छा गया प्रतीत होता था। उस समय यद्यपि महात्माजी इस समय की अपेक्षा पर्याप्त जवान थे, फिर भी उनका कमजोर शरीर दुखों से, जिन्हें वह एक क्षण के लिए भी अपने से पृथक् नहीं कर सकते थे, बहुत क्षीण और थका हुआ प्रतीत हो रहा था, लेकिन इस क्षीण और थकित शरीर के भीतर की उनको आत्मा उस समय एक दिव्य प्रकाश से चमक उठी जबकि प्रार्थनागीत ने रात्रि की निस्तब्धता को भग किया।

उस गीत का अन्तिम चरण इस प्रकार था—“सूर्योदय (प्रातः काल) के साथ उन देवदूतों के चेहरे मुस्कान से खिल उठे हैं। पर मैं कबसे प्यार से बिछुड़ गया हूँ और भटक गया हूँ।”

जब गीत समाप्त हुआ तो चारों ओर नीरवता थी। मुझे अब तक याद है कि उस समय हम कितने चुपचाप बैठे हुए थे। यह भी याद है कि इसके बाद महात्माजी उस चरण को मन-मन में दोहराते रहे थे।

दूसरा अवसर उड़ीसा में मिला। वह जगह यहाँ से नजदीक ही थी, जहाँ मैं इस लेख को बँटा लिख रहा हूँ। महात्माजी मरणासन्न हो चुके थे, क्योंकि उनपर यकायक ही हृद दर्ज की थकान की पत्ती छा गई थी और खून का दबाव इतना ऊपर चढ़ गया था कि खतरे की बात थी। बीमारों का तार मिलते ही मैं रातोंरात गाड़ी में बैठकर उनके पास मौजूद रहने के लिए चल दिया। पास पहुँचा तो मैंने उन्हें सारी रात बेचनी से गुजरने के बाद लाल सूर्य की ओर मुह नियो हुए लेटे पाया। हमने अभी बातचीत गुरु ही की थी कि दलित जाति की सबसे निचली श्रेणी का एक आदमी अपनी फरियाद लेकर उनके पास आया। क्षणभर में ही मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे उनकी अपनी

१ मूल अंग्रेजी में इस प्रकार है —

And with the morn those angel faces smile,
While I have loved long since and lost awhile.

बीमारी बिलकुल दूर होगई है। आदमी नीचे धरती पर लेटा हुआ था। उस निर्दय अपमान पर जिसने उसे मनुष्य के दर्जे तक से नीचे ला गिराया था, उनका जी सताप से फटने-सा लगा था।

३

दो बाने हैं, जिनके कारण महात्मा गांधी का नाम आज से सैंकड़ों साल बाद भी अमर रहेगा। वे हैं १—उनका सादी कार्यक्रम और २—सत्याग्रह का उनका प्रयोग।

इस मौजूदा जमाने में जब कि मनुष्य का काम मशीनों से लिया जाता है, महात्माजी पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने ससार के किसानों में ग्रामीण व्यवसायों और घरेलू उद्योग-धन्यों को बड़े पैमाने पर पुनरुज्जीवित किया है। उन्होंने इसे इसलिए शुरू किया था कि किसानों को साल के उन दिनों में भी कुछ काम मिल जाय जब कि उनके खेतों पर कोई काम नहीं होता और वह घर पर खाली बैठते हैं। भारतवर्ष में यह समय प्रत्येक साल में चार या पांच महीने रहता है। पहले जमाने में मशीनें नहीं थीं। कानने, बुनने और अन्य ग्रामीण व्यवसायों में परिवार का प्रत्येक आदमी, यहाँ तक छोटे-से-छोटे बच्चे भी, लगे रहते थे और रोजाना के काम के लिए घर पर ही खासा मजबूत कपड़ा कात और बुन लिया जाता था।

यह कहना गलत नहीं होगा कि मनुष्य-जाति का कम-से-कम आधा भाग ऐसा है जो इस प्रकार की सामयिक बेकारी से पीड़ित है। इसका एक बड़ा कारण मशीन के कपड़े का बड़ी तादाद में पैदा होना है जिसने अपने सस्तेपन के कारण गृहव्यवसायों और उद्योग-धन्यों को चौपट कर दिया है।

गांधीजी पहले व्यक्ति हैं जो इस बात में असीम विश्वास रखते हैं कि कुटी व्यवसायों का पुनरुज्जीवन अब भी सम्भव है और इनसे ग्रामीणों को न सिर्फ शारीरिक प्रत्युन नैतिक भूख से भी दबाया जा सकता है। उन्हें इस दिशा में लाखों हृदयों में आशा का सञ्चार करने में कामयाबी भी मिली है। उनकी प्रतिभा हिन्दुस्तान की चहार दीवारी तक ही सीमित नहीं रही है। चीन में युद्ध के दबाव के कारण किसानों ने स्वयमेव ही रुई बोना, उसे कानना और बुनना भी शुरू कर दिया है। यह भी बिलकुल सम्भव है कि कनाडा और उत्तर के अधिक ठंडे इलाके के कुछ ध्रुव-प्रदेशों में भी सर्दियों के लम्बे और अन्धेरे दिनों में इस प्रकार के घरेलू उद्योग-धन्यं फिर चल पड़ें।

(२) अहिंसा की मौलिक एवं वैधानिक पैरवी द्वारा महात्माजी न ससार को यह दिसा दिया है कि आज सामूहिक नैतिक प्रतिरोध और इच्छापूर्वक पवित्र मन से स्वीकार किये गये कटों, अर्थात् सत्याग्रह, द्वारा युद्ध को हिंसा पर भी विजय पाई जा सकती है। दक्षिण अफ्रीका में उन्हें इस दिशा में गर्व करने लायक कामयाबी हासिल हुई। द्रासवाल में जब उन्होंने ड्रेक्मस्वर्ग की पहाड़ियों को पार करके अपनी सत्याग्रही

फौज का संचालन किया तो जनरल स्मट्स ने उनकी वह सब शर्तें मानली जो उन्होने पेश की थी। इतना ही नहीं जनरल स्मट्स ने यह भी स्वीकार किया कि नैतिक लड़ाई का यह तरीका, जिसमें कोई भी हिंसात्मक हथियार प्रयुक्त नहीं किया जाता, ऐसा है कि उसका सामना नहीं होसकता।

लेख के इन सब विषयों पर बहुत अधिक लिखना सम्भव नहीं है। अन्य लेखक इसपर और प्रकाश डालेंगे। मैं इस लेख को सन्त फ्रांसिस के साथ उनकी समानता का एक और उदाहरण देकर पूरा करूँ। वह भी अपनी रोजाना की पोशाक में गाँववालों का घर का कता और बुना हुआ मोटा खुरदरा कपड़ा ही पहिना करते थे। इस प्रकार अपने समय में घर के कटे कपड़े को सम्मान और प्रतिष्ठा दिलाने का श्रेय उन्हें है। सन्त फ्रांसिस भी कोई हथियार कभी न लेते थे। सारसीन लोगों की फौज के बीच बेखटके जा पहुँचने थे कि उन्हें प्रेम का और शांति का संदेश दे। अहिंसा के ठीक वही विचार सन्त फ्रांसिस में थे जिसपर महात्मा गांधी आज दिन कटिबद्ध हैं। इस प्रकार दोनों आत्माएँ एक हैं। मगर अब महात्मा गांधी उससे भी एक कदम आगे बढ़ गये हैं और उनके खट्टर और सत्याग्रह के दो महान् परीक्षण, जैसा कि वह इन्हें कहते हैं, मनुष्य जाति के जीवन में सामूहिक प्रयोग की वस्तु बन गए हैं। उनका अभी इतने बड़े पैमाने पर प्रयोग किया गया है कि मानव इतिहास में इसकी मिसाल मुश्किल है। इस भाँति वह दूसरे किसी भी महान् जीवित व्यक्ति की अपेक्षा अधिक शान्ति के दूत और मनुष्य-जाति के कल्याण के विधायक हैं।

: ४ :

गांधीजी का जीवन-सार

जार्ज एस. थ्रएण्डेल

[अध्यक्ष, पियोसोफिकल सोसाइटी, अदियार, मद्रास]

यह मैं अपना गौरव मानता हूँ कि गांधीजी की ७१ वे जन्म दिवस पर निकलने वाले अभिनन्दन-ग्रन्थ में योग देने के लिए मुझे कहा गया है। सच यह है कि कोई ग्रन्थ भारत के प्रति उनकी महान् और अनुपम सेवाओं का पूरा मान नहीं कर सकता। भारतवासी भी स्वयं आज उन सेवाओं का यथार्थ यत्नगान और मान करने योग्य नहीं है। निर्णय अगली सन्तानियों के पास है जबकि गांधीजी को समय के पक्षपात के अभाव में देखना सम्भव होगा। पर तो भी ऐसा ग्रन्थ उनके जीवन की अनन्य निष्ठा के विभिन्न पहलुओं पर उपयोगी प्रकाश डाल सकता है, फिर चाहे वह उनके समकालीन व्यक्तियों द्वारा भी लिखा गया हो।

जिस प्रकार कि मैं उनके जीवन को चीन्टता हूँ, तीन बात मुझे खास दीखती है । पहली और प्रमुख है उनकी निर्मल सादगी । दूसरी, अपनी मूल मान्यताओं की सीधी और गंभीर पहचान । और तीसरी, उनकी सहज सम्पूर्ण निर्भीकता ।

जहाँ जिस अवस्था में देखिये, सादा और व्यवस्थित उनका जीवन पाटएगा । और साधारण ऐसा कि हर परिस्थिति में हर को सुलभ । ख्याति की रोगिनी सब वही हरदम उनको घेरे रहती है । पर उस सब प्रमिद्धि और व्यस्तता के बीच जैसे अनायास और सहज भाव से वह रहते हैं, वैसे यदि वही हम भी रह सकते हैं तो ? आत्मा उनकी जगन् के प्रति खुली है । छोटी-से-छोटी आदत उनकी सधी है, वह मोन की शक्ति का प्रयोग जानते हैं, जो कि हममें से बहुत ही कम लोग जानते होंगे ।

उनका जीवन एक पदार्थ पाठ है । नित्य-प्रति की साधारण-से-साधारण बातों में हम उनसे शिक्षा ले सकते हैं । दुनिया की कृत्रिमता और विषमता उनके पास आकर सुलझ रहती है और उनका व्यवहार सदासहज, अकृत्रिम और ईशनिष्ठापूर्ण होता है । मानव-परिवार या समस्त जीव-परिवार को अगर कभी शान्ति और समृद्धि प्राप्त होनी है, तो इसी सहज नीति से प्राप्त हो सकेगी ।

यह मैं एक क्षण के लिए भी नहीं कहता कि उनकी सब बातों की हूबहू नकल करनी चाहिए । लेकिन यह तो साग्रह कहता ही हूँ कि उनके जीवन की स्फूर्ति और भावना को हम अपनायें तो हमारा कल्याण होगा ।

अपने एक निजी और विलक्षण रूप में अन्धकार से प्रकाश में आने का मार्ग उन्होंने दिखाया है । वह दूरतः प्रकाश देखते हैं और उभर सकें करत हैं । हममें से कुछ उस आदि प्रकाश-स्त्रोत की देख न भी सके, पर स्वयं उनके व्यक्तित्व का प्रकाश तो देखते ही हैं । और दूसरे के पास का भी प्रकाश, फिर वह हमसे चाहे कितना भी भिन्न हो, पथ-प्रदर्शन में हमारी सहायता ही करना है । आखिर तो प्रकाश सच एक ही है । हम ही उसे नाना रूप और आकार देते हैं ।

कुछ तो उनके व्यक्तित्व से मिलनेवाली रोगिनी को मैं उपयोग में नहीं भी ला पाता हूँ । मैं शायद अपना जोर किन्हीं बातों पर डालना चाहूँगा, उनका जोर कहीं और है । लेकिन ऐसा होकर भी उनके मूल्य और उनके चुनाव से मुझे स्वयं अपने विवेक में मदद मिलती है । इसलिए अपने मूल विश्वास की इतनी प्रत्यक्ष और बारीक पहचान रखने के लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ । क्योंकि जो भी अपनी श्रद्धा पर निष्ठा से चलता है, जैसे कि गांधीजी चलते हैं, वह दूसरों में भी आत्म-श्रद्धा जगाता है । असल में, यह प्रश्न नहीं है कि जिस की मान्यता क्या है और कितना उसमें युक्तवत्त है । सारा प्रश्न असल में साधक की अचल सत्यता और निष्ठा का है ।

अन्त में उनकी निर्भीकता वह तो जैसे उनका सहज स्वभाव हो गया है । सहज है, इस से वह और भी स्पष्टीकृत है । कोई उसके लिए डटकर तैयारी नहीं की जाती ।

कमर कसकर स्पर्धा नहीं ठानी जाती ।

और वहाँ तो कसने को कोई बड़ी कसर ही कहाँ छूटी है ! कोई आठो याम चौकी पहरा नहीं, न किसी किस्म का तमाशा प्रदर्शन नजर आता है । निर्भीकता का मोका आता है और तत्क्षण अभय का प्रकाश उनके कृत्य में फूटकर चमक उठता है ।

और जिसकी मेरे मन में सबसे अधिक सराहना है, वह तो यह बात है कि वह कभी जोर की आवाज देकर, नारा उठाकर, मीड को अनुगमन के लिए उभाड़ते और ललकारते नहीं हैं । वह तो जैसे जाहिर भरकर देते हैं कि उनकी निर्भीकता का कार्मिक रूप अबके यह होनेवाला है । मानो उनके द्वारा जो होनेवाला है, उसीका भान उन्हें हो । होनहार के सिवा जैसे कुछ और उनसे ही नहीं सकता । ठीक यही बात माटिनलूयर के जीवन में मिलती है । उनका कहना था कि जो किया उसके अतिरिक्त कुछ और मैं नहीं कर सकता था, और जो होना था वही किया । गांधीजी तो बस इकले आगे चल पड़ते हैं । कोई पीछे आता है तो अच्छा, नहीं आता तो भी अच्छा ! और क्या अवसर ही यह सच होता हम नहीं देखते कि जो अकेला चलना जानता है, यानी जो बिना सगी-साथी या अनुयायी की राह देखे अकेला चल पड़ता है, इसलिए कि चले बिना वह रह नहीं सकता, उसी पुरुष को विजयप्री मिलती है । भला उसे सफलता कब मिली है, जो किसी सकल्य के पीछे चल पड़ने से पहले सार्वजनिक आन्दोलन पैदा होगया देखना चाहता है ।

गांधीजी की प्रकृति में ही अभय है । निर्भयता उनका सहज भाव है । सहज है, और यही उसका सौन्दर्य है । तभी तो जो राह में बाधक बनकर आते हैं उनका भी वह सम्कार और अभिनन्दन करते हैं । यह निर्भीकता ही है, जो शत्रु को मित्र बना देता है और युद्ध को शान्ति देती है ।

गांधीजी की राजनैतिक मान्यताओं और प्रवृत्तियों पर अपना अभिप्राय देने की कोशिश मैंने नहीं की है । सच कहूँ तो मुझे चिन्ता भी नहीं कि वह क्या है । आखिर तो साध्य से अधिक वह साधन ही है । और हो सकता है कि, सही या गलत, अपना कर्तव्य मानकर उनकी इस या उस राजनैतिक प्रवृत्ति का सचाई और ईमानदारी के नाते में विरोध भी कर जाऊँ । क्योंकि असल में जिसकी मेरे निकट कीमत है वह स्थूल कर्म नहीं है, वह तो है उनकी सचाई, निष्ठा, साहस उनकी निस्वार्थता, लोकमत की स्तुतिनिन्दा के प्रति उनकी उदासीनता । परदुःखान्तरता और उनकी बन्धुत्व-भावना । जो जगत को इन बन्तुओं का दान करता है, वह उन दातारों से असत्य गुना दानी है, जो दुनिया को कानून देते हैं, योजना देते हैं, नीति या वाद देते हैं ।

हमें आज जगत् में जरूरत है ऐसे पुरुषों की और ऐसी स्त्रियों की जो विश्व-बन्धुत्व की भावना से ज्वलत हो, सरल स्वभाव की महत्ता में जागरूक हो, जिनमें आदर्श को ऐसी अदम्य प्रेरणा हो कि वह आदर्श स्वयं जीवन से भी अधिक अनिवार्य

और महत्त्वपूर्ण उनके लिए हो आवे । फिर वे सही माने जावे, या गलत माने जावे । सही गलत का भेद किमते पाया है ? लेकिन हृदय उनका जगद्गर्भ में व्याप्त विराट् कक्षा के मुर के साथ वजना जानना हो ।

ऐसा पुरुष है गांधी । क्या और नहूँ ?

: ५ :

भारत का सेवक

रेवरेण्ड बी. एस. अज़ारिया, एम. ए., डी. सी. एल.

[बिशप दोर्नाकल, भारत]

मुझे हर्ष है कि गांधीजी की ७१वें जन्म दिवस के अवसर पर औरो के साथ मुझे भी उन्हें बधाई देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है ।

वर्तमान युग में किसी व्यक्ति का भारतीय जनता के निर्माण में ऐसा महत्त्वपूर्ण नाम नहीं है जैसा महात्माजी का । यूरोप में तो भारत को 'महात्माजी की भूमि' के नाम से ही पुकारा जाता है । रोम के पोप के महल के एक इटालियन दरवान से हुई छोटी-सी वार्तालाप को मैं कभी नहीं भूल सकता । जब मैंने उस अपना नाम और पता लिखकर दिया तो उसने मुझ से कहा—“भारत ?”

मैंने कहा, “हां ।”

उसने फिर कहा, “गांधी ?”

जब उसके मुंह से एक हल्की मुस्कान के साथ 'गांधीजी' का नाम निकला तो मैं फौरन समझ गया कि इसका अभिप्राय गांधीजी की भूमि से है और इसीलिए मैंने इसके जवाब में 'हां' कह दिया । यह नौ साल पहिले की बात है । मैं इटली में जहाँ भी कहाँ गया वहाँ ही मुझे लोगों के मुँह से गांधीजी का नाम सुनने का मिला ।

दो साल पहिले की एक और घटना मुझे इस प्रसंग में याद आ रही है । मे उस समय संपुक्त राष्ट्र अमेरिका में था और वहाँ एक दृष्टियों के प्राइमरी स्कूल को देखने गया था । स्कूल के हैडमास्टर ने आग्रह किया कि मैं बच्चों को भारत के बारे में कुछ बताऊँ । मैंने उन्हें बताया कि मैं कहानि आरहा हूँ और इसी तरह की बच्चा के जानने लायक कुछ और बातें कहीं । मगर उसके बाद मैं खुद पत्रपत्रों में पढ़ गया कि इन बच्चों को और मैं क्या कहूँ । मुझे जो कुछ कहना था वह पाँच मिनट के भीतर समाप्त होगया । इसके बाद हैडमास्टर ने कहा कि अब बच्चे आपसे भारत के बारे में कुछ प्रश्न पूछना चाहेंगे । एक ऊँची जमान की लड़की इसपर उठकर बोली कि गांधीजी के बारे में हमें कुछ बताइये । आप कल्पना कर सकते हैं कि भारत में इतने दूर स्थान पर और बच्चों की तरफ से इस प्रकार का प्रश्न पूछे जाने पर मुझे कितना आश्चर्य हुआ

होगा। महात्माजी को तमाम ससार में भारत का महत्तम व्यक्ति, उसकी स्वाधीनता का दुर्धर्ष पोषक और उसकी प्रतिभा और आत्मा की प्रतिमूर्ति समझा जाता है।

हम जो लोग भारत में रहने हैं, जानते हैं कि यह आत्मा या भावना क्या चीज है। यह है लोकोत्तर सत्ता की अनुभूति और जीवन की सब घटनाओं में मानव की परमानन्द-निर्भरता की खुली स्वीकृति, प्राकृतिक भागों पर नैतिक एवं आध्यात्मिक भावों की असंदिग्ध प्रधानता, और नैतिक एवं आध्यात्मिक उद्देश्यों की प्राप्ति में भौतिक और दारौरीय सुख-भोग के प्रति स्पष्ट उपेक्षा। कोई भी आदमी, जो भारत को जानता है, इस बात में ननिक भी सन्देह नहीं करेगा कि महात्माजी की महत्ता इन्हीं आदर्शों की उच्चता के कारण है।

भारत उनके प्रति इस बात के लिए बहुत अधिक ऋणी और कृतज्ञ है कि उन्होंने भारत के पुत्रों को फिर से इन आदर्शों को अपनाने के लिए आवाज उठाई है। समालोचना और उपहास के बावजूद दुनिया के सामने उस समय इन्हें रक्खा है जबकि सब जगह इन आदर्शों के अपमानित विषे जाने और रौंदे जाने का खतरा है। इस भौतिकवाद के उमाने में भी महात्मा गांधी ने लोगों को अध्यात्मवाद का अनुकरण करने और उसे स्वीकार करने की प्रेरणा दी है।

महात्मा गांधी ने भारत की एक और उल्लेखनीय सेवा की है, जिसके कारण वह भारत हितैषियों की कृतज्ञता और थड्याञ्जलि के भाजन है। यह सेवा है पददलितों और नीच मानेजायेवाली जातियों का उद्धार। यद्यपि उनसे पहिले भी धार्मिक सुधारकों ने अस्पृश्यता की प्रथा का विरोध किया है मगर उनमें से किसीको भी भारत के विचारशील नर और नारियों के अस्पृश्यता-सम्बन्धी भावों में, इतने आश्चर्य-जनक रूप से तब्दीली करने में कामयाबी नहीं हासिल हुई, जितनी कि महात्माजी को हासिल हुई है। लेकिन हमें स्वीकार करना चाहिए कि हमारे लिए यह बहुत बर्मे की बात है कि भारत का यह खूला नासूर अबतक उसी रूप में मौजूद है। कट्टर सनातनियों के सम्पर्क के कारण यह ठीक होने में नहीं आता। मगर अब हिन्दू भारत की आत्मा जागृत हो चुकी है, जातपात के गड टूट चुके हैं, अब तो यह सिर्फ समय की बात रह गई है कि वह कब ढहते हैं और कब मिट्टी में मिलते हैं। महात्मा गांधी ने बुराई पर आक्रमण करने का जो तरीका ग्रहण किया है उसके बारे में मतभेद होसकते हैं। सभी, यहाँ तक कि वह जाति के लोग भी जिन्हें इनसे लाभ पहुँचा है, उसके परिणामों से असहमत हो सकते हैं। तथापि यह तो मानना ही होगा पिछली दो या एक शताब्दि से अस्पृश्य समस्या के बारे में भारत का दृष्टिकोण एकदम बदल गया है और इसका समस्त श्रेय महात्मा गांधी को ही है।

आज हम उन्हें हादिक बघाई देते हैं। हम चाहते हैं कि वह हमारे बीच में हमारा नेतृत्व और प्यारे भारत की सेवा करते हुए और अनेकों साल जियें।

गांधीजी : संयोजक और समन्वयकार

अरनेस्ट बारकर, एम. ए., डी. लिट्

[प्रोफेसर राजनीतिविज्ञान, केंब्रिज विश्वविद्यालय]

गांधीजी की मुझे दो स्मृतियाँ याद हैं। एक स्मृति नवम्बर १९३१ की एक रात की है जब वह गोलमेज कान्फेंस में भाग लेने लन्दन आये हुए थे और मेरे घर पधारे थे। दूसरी सन् १९३७ के मध्य दिसंबर के एक मनोहर प्रातःकाल की है। गांधीजी उस समय बीमारी से उठने के बाद बम्बई से कुछ उत्तर जुहू में ताड़ के पेड़ों की सरसराहट के बीच स्वास्थ्य लाभ कर रहे थे। एक भारतीय मित्र मुझे दर्शन के लिए वहाँ साथ लेगये थे।

मुझे उनके केंब्रिज-दौरे की अवतक बहुत स्पष्ट स्मृति है। प्रार्थना के समय, जो एक कमरे में हो रही थी, उनके तथा कुमारी भीराबेन (मिस स्लेड) के साथ में सम्मिलित हुआ था। शाम को भोजन के उपरान्त वह हमारे घर आगये थे। आकर बैठक में चरखा कातते हुए हमसे बातें भी करते जाते थे। हमारी बातों के विषय बहुत ही सामान्य थे (मुझे अवतक खूब अच्छी तरह याद है कि मैंने अंग्रेजी जीवन में फुटबाल के स्वान और रगबी तथा अमोसियेशन के खेल के बीच विचित्र सामाजिक विभाजन का जब प्रसंग छेड़ा तो उन्होंने उसमें बहुत दिलचस्पी दिखाई), मगर ये तो सामान्य बातें थी। हमारी बात-चीत के मुख्य विषय इनसे कहीं गहरे थे। इनमें से एक विषय था प्लेटो। मेरा खयाल था कि गांधीजी के इस बारे में प्लेटो से विचार मिलत थे कि शासकों और राष्ट्र के प्रबन्धकों को घाड़े बेतन पर ही सत्र करना चाहिए। उन्हें इसी बात से अपने को सन्तुष्ट कर लेना चाहिए कि उन्हें जो शासक या अधिकारी बनने का सौभाग्य दिया गया है वही क्या कम है। इससे अधिक उपहार या इनाम की इच्छा उन्हें नहीं करनी चाहिए। मैंने उन्हें दलील देकर विश्वास कराने की कोशिश की कि सत्तार को अपना रोय और दबदबा रखना होता है और इसे रखने के लिए उसे विशेष अवस्थाओं और शान-शौकत की जरूरत होती है। इसलिए प्लेटो का उक्त सिद्धान्त इस अर्थ में ठीक नहीं उतरता। मुझे याद नहीं आता कि हम इस वादविवाद में किसी भी अन्तिम निर्णय पर पहुँच सके थे। किन्तु मुझे इतना अवतक याद है कि मैंने उस समय साफ़तौर पर यह अनुभव किया था कि मैं उनसे कहीं नीची रातह पर रहकर दलील कर रहा हूँ।

दूसरा विषय, जिसपर हमारी बातचीत हुई और जो मुझे अबतक याद है, भारत की रक्षा का विषय था। मैं उनसे दलील कर रहा था कि आखिरकार हिन्दुस्तान में शांति तो रखी ही जानी है, बाहर के आक्रमणों और आन्तरिक विद्रोहों का भी प्रबन्ध करना है, इसलिए भारत में उसकी रक्षा के लिए एक फौज का रहना अत्यावश्यक है। फिलहाल इस फौज के आवश्यक खर्चों की गारण्टी ही की जानी चाहिए और उन्हें भारतीय असेम्बली के बोटों पर, जो किसी समय उनके एकदम खिलाफ और किसी समय उन्हें बहुत अधिक काट देने के हक में हो सकते हैं, नहीं छोड़ना चाहिए। गांधीजी ने इसका जवाब एक उपमा से दिया। कहा कि कल्पना करो कि एक गाँव जंगल के जानवरों के उपद्रवों से तंग है। एक दयालु अधिकारी गाँववालों को गाँव के चारों ओर उसकी रक्षा के लिए एक बड़ी दीवार खड़ी करने को कहता है, ताकि गाँववालों का जीवन और उनकी सम्पत्ति सुरक्षित रह सके। मगर गाँववाले देखते हैं कि दीवार के बनाने के खर्च के एवज में उनपर इतना भारी टैक्स लद जाता है कि उनका जीवन-निर्वाह मुश्किल हो जाता है। इस हालत में क्या वह यह नहीं कहेंगे कि हम जंगल के जानवरों के उपद्रव का खतरा लेने को तैयार हैं। और हम जीवन-यापन की निश्चित करने के इस झमेले में, जो हमारी ताकत से बाहर है, नहीं पड़ना चाहते?

इन दोनों विषयों पर बातचीत करने से मुझे गांधीजी के उन दो पाठों का ज्ञान हुआ जो उन्होंने सत्कार को दिये हैं। यह हैं—प्रेम और प्रेम में की गई सेवा तथा अहिंसा। मुझे इस समय ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कि मैं एक पैगम्बर के सामने बैठा हूँ। मगर इसीके साथ मैंने यह भी अनुभव किया कि मैं एक उत्तरी देश के अंग्रेज (और शायद हर एक अंग्रेज की ही यह स्वाभाविक भावना है) की स्वाभाविक एवं आन्तरिक भावना को नहीं छोड़ सकता, जो कहती है कि अच्छी सेवा का इनाम भी अच्छा दिया जाना चाहिए और उसके लिए जितना पैसा दिया जायगा उतनी ही वह और बढ़ेगी, जो धारणा कि शांति और व्यवस्था को कायम रखने के लिए युद्ध और गड़बड़ी से सघर्ष आवश्यक समझती है और जो यह विश्वास करती है कि शांति और व्यवस्था उनकी रक्षा के प्रयत्न से ही कायम की जा सकती हैं। मगर यदि मैं एक अंग्रेज की इस आन्तरिक भावना को नहीं छोड़ सका तो भी मुझे उस समय उस भावना से ऊँची एक हस्ती को स्वीकार करना पड़ा। अगर जो वही मनुष्य यही स्वीकार करने को तैयार हो रहे—¹ (और यदि कोई श्रद्धा अलङ्घन कर सकता है कि मनुष्य इस बात के लिए तैयार है तो शायद है कि वह दूसरों में भी अपनी श्रद्धा से विश्वास जगादे और फिर मनुष्य सचमुच और अवश्य ही तैयार ही जावे। जैसे कि मैंने ही स्वीकार तो किया, मगर मैं ही अपनी स्वीकृति और विश्वास निपट्टा के बिंदु तक नहीं ला सका।)

गांधीजी के चले जाने के बाद मैं उन विभिन्न तत्त्वों के मिश्रण पर गौर करने लगा जो उनमें मिलता है। मैंने उनमें सन्त फ्रांसिस को पाया, जिसने समस्त विश्व के

साथ सामाजिक अनुभव करते और विश्व की सब वस्तुओं के साथ प्रेम करते हुए गरीबी की सारी जिन्दगी बिताने की प्रतिज्ञा की हुई थी। मैंने उनमें सन्त थॉमस एक्विन्स को भी पाया, जो ससार का एक महान् विचारक और दार्शनिक होगया है और जो बड़ी-बड़ी दलीले देना तथा विचारों के गव तोड़-मोड़ों में उनकी बारीकियों से भली-भाँति परिचित था। इन दोनों के अलावा मैंने उनमें एक व्यावहारिक मनुष्य को भी पाया, जिसके पास अपनी व्यावहारिकता को मजबूत बनाने के लिए कानून की शिक्षा भी मौजूद थी और जो अपनी नुसल सलाह से लोगों को पथ-प्रदर्शन करने के लिए पहाड़ की चोटी से घाटी में भी उतर कर आ सकता था। हम सब असरल हैं और जटिल हैं, मगर गांधीजी तो मुझे हम सबसे ही अधिक जटिल मालूम पड़े। उनका एक अत्यंत मोहक और रहस्यमय व्यक्तित्व था। अगर वह केवल सन्त फ्रांसिस होते तो समझने में कठिनाई न थी। मगर वंसा एकांत सतपन क्या उतना मगलमय और उनके देशवासियों के तथा ससार के लिए इतना लाभकारी और उपयोगी भी हो सकता? जब मैंने इस प्रश्न पर विचार किया तो मेरे मुँह में उत्तर आया 'नहीं'। रहस्य है असल में समग्र्य। विभिन्न तत्वों का मिश्रण ही व्यक्तित्व का सार और सत्य है। वह ससार के लिए जो कुछ है और ससार के लिए जितना कुछ वह कर सके हैं उसका कारण है उनका एक ही साथ एक से अधिक चीजें होना। यही बात मुझे इस लेख की अन्तिम और गांधीजी की एक और मौलिक विशेषता पर ले आती है जिसका शिष्ट किये बिना मैं नहीं रह सकता। मैंने अभी उन्हें वह मनुष्य बताया है जिसमें सन्त फ्रांसिस और सन्त थॉमस के साथ कानूनशा और व्यवहार-कुशल मनुष्य भी मिला हुआ है। इसीको मैं अधिक ठीक और दुरस्त शब्दों में यों कह सकता हूँ कि वह भक्तिपरक और दार्शनिक धर्म की एक महान् भारतीय परम्परा और जाति के जीवन में नागरिक और राजनैतिक स्वतन्त्रता की पश्चिमी परम्परा—इनका वह एक अद्भुत सम्मिश्रण है। और क्योंकि दोनों में भेद एक अरसे से विद्यमान रहता आ रहा है—गांधीजी उनमें सेतु हैं, एक महान् संयोजक हैं। उन्हें अपने देश राजनीति की सांसारिक दृष्टि से भिन्न दृष्टि से प्रस्तुत करने और संचालन करने में भी खासी कामयाबी मिली है। धार्मिक परम्परायें इसमें पूर्ववत् कायम रखी गई हैं। वह सफलतापूर्वक ब्रिटिश लोगों को दिखा सके हैं कि न बही राजनैतिक आन्दोलन-भर है, न भारतीय राष्ट्रीय समस्या निरी राजनीतिक है। समस्या को उससे बड़ा अधिक गाम्भीर्य और उच्चता उनसे मिली है। और उन्होंने न सिर्फ भारतीयों और ब्रिटिश लोगों के दमियान ही संयोजक-सेतु के रूप में प्रतिष्ठा पाई है प्रत्युन् पश्चिम (यूरोप) के समस्त आदर्शियों का ध्यान अपनी ओर उन्होंने खींच लिया है और सबके लक्ष्य का केन्द्र बन गये हैं। जो आदमी सांसारिक कर्म एवं आध्यात्मिक प्रेरणाओं को बिना परस्पर क्षति पहुँचाए मिला सकता है वह आज के विश्व

का विस्मय और विराट् पुरुष हो रहे, इसमें सन्देह ही क्या हो सकता था ।

इसलिए गांधीजी में आज मैं उस पुरुष का दर्शन और जयगान करता हूँ जिसने ऐहिक का अध्यात्म के साथ समन्वय साधा, जो दोनों में सच्चा उतरा और सिद्ध ठहरा । उनके स्मरण में मैं उस व्यक्ति की स्मृति प्रतिष्ठा करूँ, जो पूर्व और पश्चिम के बीच ऐक्य का सेतु बना और जिसने इस प्रकार अन्तर्गष्ट्रीय सबन्धों में सद्भाव के प्रसार में सर्वाधिक योग दिया । और न ही मैं उनमें उस मनुष्य को भूल सकता हूँ जो अपने देश के जीवन की घरेलू और घनिष्ट आवश्यकताओं को समझ सकता है और उनकी रक्षा और आदर और घोषणा कर सकता है । उनका चर्खा इसका प्रतीक है । अगर आप किसी भारतीय गाँव को देखें (और भारत तो गाँवों का एक महाद्वीप ही है) तो वहाँ आपको ग्रामीणों की जीवन की भूख और अकृत-काम दाखल पुकार करती सुन पड़ेगी । अगर व्यवसायी को गाँवों में लाया जाय और कुछ थोड़ी-सी बपड़े की मिलों को बम्बई के चारों ओर तथा थोड़ी सी जूट-मिलों को बलकत्ता में घसाना ही पर्याप्त समझा जाय तो गाँवों का आसानी से उद्धार हो सकता है । और क्योंकि गाँव भारत का बहुत बड़ा भाग है, अतः गाँवों के उद्धार में समूचे भारत का आधिक उद्धार स्वयमेव ही होगा ।

गांधीजी ने गाँवों के उद्धार के लिए जो भी कुछ किया है वह उनकी देश के प्रति अन्यान्य महान् सेवाओं में गणनीय होगा ।

यह विचार है जो गांधीजी के बारे में मेरे मन में उस सब सपक से उदय होते हैं, जो मैंने उनके बारे में सुन, देख और पढ़कर पाये हैं । अन्त में मैं यह कहकर अपना लेख समाप्त करता हूँ कि मेरे विचारों के अनुसार गांधीजी ने भारत तथा ससार को तीन बात सिखाने की कोशिश की है । वह है (१) प्रीति और प्रीत्यर्थ कर्म (२) कर्ममार्ग में हिंसा का परिहार (३) और सपूर्णता के निर्माण के हेतु जीवन में प्राप्त सब शक्तियों का समन्वित समर्पण यानी दिमाग से ही नहीं प्रत्युत हाथ से भी काम करना ।

: ७ :

ज्योतिर्मय स्मृति

लारेन्स वनियन सी. एच., डी. लिट्

[सन् १९४७]

मैं भारत के बारे में बहुत थोड़ा ज्ञान रखता हूँ । जो किंचित् रखता हूँ वह उसकी कला के द्वारा । और क्योंकि मैं अनुभव करता हूँ कि उस देश की समस्याओं

का वहाँ जाकर स्वयं अध्ययन किये वगैर कोई उनकी उलझनों के विषय में ठीक निर्णय नहीं दे सकता इसलिए मैंने गांधीजी के राजनैतिक जीवन के सम्बन्ध में कुछ कहना ठीक नहीं समझा। यह भी कहने का मैं साहस कहूँ कि मैं सब प्रवृत्तियों में उनकी नीति को पूरी तरह नहीं देख पाता हूँ। मगर इस समय में, जिसे इतिहास मनुष्य-जाति के लिए लाच्छन के रूप में देखेगा, मैं प्रत्येक दिन अधिक तीव्रता से यह अनुभव करता जा रहा हूँ कि आत्मा और मन की वस्तुयें, या कि वे घटनायें, जो उन्हीं प्रेरणाओं के फल में प्राप्त होती हैं, वही हैं जो वास्तव में इस अस्तव्यस्त और क्षुब्ध ससार में सबसे कीमत और महत्व की हैं। वही सारभूत और वही स्थायी हैं। और जैसा मैं समझता हूँ, गांधीजी उन्हींके समर्थन में जीते हैं। और वही कारण है कि उनकी स्मृति ज्योतिर्मय है।

: ८ :

एक जीवन-नीति

धीमती पलें एस. चक्र

[न्यूयार्क शहर]

गांधीजी का नाम उनके जीवन काल में ही एक व्यक्ति का पर्यायवाची न रहकर हमारे वर्तमान दुखी ससार के लिए एक आदर्श जीवन का पर्यायवाची बन गया है। भेरे लिए उनकी सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इस असयम और बुराई के बीच भी वह जीवन के उसी मार्ग पर फिर से जोर दे रहे हैं। गांधीजी ने अपने चुने हुए मार्ग पर चलने का जो आग्रह रखा है उससे, मुझे यहाँ यह कहते हुए प्रसन्नता होनी है कि दूसरे लाखों के साथ मुझे भी ससार में बढ़ते हुए अत्याचार का अजेय और अडिग दृढ़ निश्चय के साथ पूर्ण प्रतिरोध करने का साहस प्राप्त हुआ है। इसलिए, इस अवसर पर मैं उनको धन्यवाद देती हूँ और उनके प्रति अपनी अगाध श्रद्धा प्रदर्शित करती हूँ।

: ९ :

गांधीजी के साथ दो भेंट

लायोनल कर्टिस, एम. ए

[ऑल सोल्स कॉलेज, ओक्सफोर्ड]

१९०३ में पहली बार मैं गांधीजी से मिला। उसकी मुझ अवतक अच्छी तरह याद है। तब मैं उस विभाग में काम करता था जिसके जिम्मे भारतीय प्रवासियों का पेचीदा और कठिन प्रश्न भी था। उसके बाद से तो अबतक मुझे बहुत से भारतीयों

और चीनियों की मित्रता पाने का सौभाग्य मिला है, लेकिन मुझे विश्वास है कि गांधीजी पहले ही पूर्व-देशीय व्यक्ति थे जिनसे मैं मिला था। मिरपर हिन्दुस्तानी पहरावे को छोड़कर वह विलायती ढंग के कपड़े पहने हुए थे और उन्हें देखकर मैंने अनुभव किया कि वह एक सुयोग्य युवा वकील है। अपने देशवासियों के चरित्र की विशेषताएँ समझाने हुए उन्होंने बातचीत प्रारम्भ की। कहा कि हमारे देशवासी अध्ववसायी हैं, मितव्ययी हैं और सहिष्णु हैं। मुझे याद है कि उन्हें सुनने के बाद मैंने कहा था, 'गांधीजी, आप जा समझाना चाहते हैं वह तो मैं पहले ही से मानता हूँ। यहाँ के यूरोपियन हिन्दुस्तानीयों के दोषों से नहीं डरते। डर की चीज तो उनके गुण है।' बाद के व्यवहार में उनकी जिस विशेषता ने मुझे सबसे अधिक प्रभावित किया, वह उनका दृढ़ सकल्प था। उसके बाद से ही मैं यह समझने लगा हूँ कि इस दुनिया में ऐसी विशेषताएँ कम ही हैं जिनका मूल्य दृढ़ सकल्पता से अधिक है।

दरसो बाद, १९१६ में बड़े दिन के लगभग में लखनऊ के काँग्रेस कैंप में दूसरी बार गांधीजी से मिला। जोहान्सबर्ग के तेज युवक अटोर्नी के रूप में जिन गांधीजी को ट्रान्सवाल में मैं जाना करता था, उनमें इनमें जो परिवर्तन पाया, वह मैं कभी नहीं भूलूँगा। वह हिन्दुस्तान के देशाती केसे कपड़े पहने हुए थे और उनके चेहरे पर उम्र के साथ तपस्विता के चिन्ह थे। सवेरे का समय था। जोर का जाड़ा पड़ रहा था। अँगीठी रखी हुई थी जिस पर वह बातचीत करते-करते हाथ ताप रहे थे। अँगीठी के सहारे बैठकर हमने बातें की। उस समय उन्होंने भरसक वर्ण-व्यवस्था का गूढ़ अर्थ, जैसा कि भारतीय मानते हैं, मुझे समझाया।

गांधीजी के अतिरिक्त, यदि है तो, थोड़े ही ऐसे आदमी हमारी पीढ़ी में होंगे जिनके इतने अनुयायी हैं, जिन्होंने घटनाओं के चक्र में इतना परिवर्तन किया है और जिन्होंने एक से अधिक महाद्वीपों में लोगों के विचारों पर इतना प्रभाव डाला है। १९०३ में मिले सुयोग्य युवा वकील में जो आध्यात्मिक शक्तियाँ छिपी हुई थी, उनका मैं अनुमान न कर सका था। उस अपनी असफलता को मुझे नम्रतापूर्वक स्वीकार करना चाहिए।

: १० :

गांधीजी और काँग्रेस

डा० भगवान्दास, एम. ए., डी. लिट्.,

[बनारस]

बीसवीं शताब्दी के इन अंतिम चालीस वर्षों का मनुष्य जाति का तूफानी-इतिहास केवल बॉम्-बाईम नामों का ही खेल है। इनमें से आधे से कम आज भी जीवित हैं।

महात्मा गांधी केवल उनमें से एक हो नहीं हैं अपितु उनमें भी अद्वितीय हैं। कारण कि वह स्वयं राजनीति और अर्थशास्त्र के क्षेत्र में अहिंसामय आध्यात्मिकता के एकमात्र देवता हैं। बुद्ध के पश्चात् भारतीय इतिहास में गांधीजी से अधिक महान् या समान भी कोई नैतिक-शक्ति कल्पना में भी नहीं आ सकती। जब कभी 'वर्तमान' 'भूत' हो जायगा और 'वर्तमान' का निस्तीर्ण महत्त्व कटछटकर ठीक हो जायगा तब भले ही भावी ऐतिहासिक उनकी बराबरी के नाम लेने लगे। निश्चय ही यह तुलना अत्यन्त भिन्न व्यवस्था तथा विभिन्न समयों के प्रयोजनों के आधार पर ही होगी। आज तो महात्मा गांधी का व्यक्तित्व अद्वितीय है।

इसलिए यह स्वाभाविक है कि मैं उनका भारी प्रशंसक हूँ। मुझे श्रद्धा है उनके 'तप' में भी, आन्तरिक स्फूर्ति और उत्साह, तपोभूत पवित्रता, महत्वाकांक्षा और दृढ़ता की घनता, विपदासक्ति का खड्ग और दमन जो सब तप के ही अन्तर्गत हैं ऐसा सात्विक और विमुक्त "तृष्णाक्षय और इन्द्रियदमनवाला तप का स्वरूप प्राचीन भारतीय, अनन्तर प्रारम्भिक और मध्यकालीन ख्रीस्तीय और बाद में मुस्लिम धार्मिक परम्पराओं—में निरन्तर सजीव रहा, मेरी श्रद्धा इस कारण है कि इस तप से प्राप्त हुए आत्म-बल को एकचित्त होकर कभी ढोल दिये बिना भारत की उन्नति में लगाते रहने से उनके साथ उदात्त, युक्तियुक्त और पवित्र हो गया है।

इसलिए महात्मा गांधी के अद्भुत राजनैतिक नेतृत्व का मैं भारी प्रशंसक हूँ, उनकी तपोभूत पवित्रता और सबके प्रति उदारता के लिए मेरे हृदय में गहरा आदर भाव है। और उनके अद्भुत आत्म-सयम पर मन में विम्वय और आदर दोनों हैं। उनकी स्थिर सकल्पयुक्त सनत् आत्मपरिचालन 'धीरता' (धियम्नःइत्यति) की शक्ति ऐसी विलक्षण है कि गम्भीर परिस्थितियों में या परीक्षा के कठिन अवसरों और कष्टों में—और कष्ट के अवसर उन्हें घेरे ही रहते हैं—उनका साव्यजनिक वर्णन देखकर कहना होता है कि जब कभी परीक्षा हुई वह हर ओछे या हल्के विचार से मुक्त मिले। उनके सनत् स्थायी प्रताप और सौजन्यता, आत्मा की धीरता, भारत की सेवा में उनके अपनी आन्तरिक प्रेरणा के अनुसार मन और शरीर की अनन्य क्रियाशीलता, इन सबके कारण उनके भारी विरोधी भी उनकी प्रशंसा करते रहे हैं और प्रायः उनको इच्छानुसार काम करने के लिए तैयार हो गये हैं।

यह अनुभव करते हुए मैं यह समझता हूँ कि इस अवसर पर मैं कुछ श्रद्धा के पूल भेंट करके ही सतुष्ट न हो जाऊँ। ऐसे सन्चार से तो महात्मा गांधी अवतक धक् चुके होंगे। इसलिए मैं उनके महान् कार्य के सम्बन्ध में कुछ आलोचनात्मक विचार उपस्थित करने का साहस करता हूँ, ऐसे ही विचार पन्द्रह वर्षों से कुछ निर्देशों के साथ-साथ मैं उनके और भारतीय जनता के सम्मुख रखना आता हूँ। महात्मा गांधी ने भारत में त्रिम नवजीवन का संचार किया है उसके सम्बन्ध में मैं जो विचार प्रकट

कहेंगा वे सब मेरी अपनी बुद्धि की कल्पना से नहीं उपजे हैं, अपितु उनका आधार परम्परागत प्राचीन विज्ञान ही है।

विश्वपरिस्थिति : विशेषतः भारतीय परिस्थिति

मानव ससार चार वर्ष के पश्चात् सन् १९१८ में भयानक अग्निकुण्ड से बाहर निकल पाया। पर उसकी आँख नहीं खुली। अब फिर वह रौरव के तट पर खड़ा है और गिरना ही चाहता है। स्पेन इस युद्ध से नष्ट हो गया और इस युद्ध में फ्रान्को और फासिज्म की विजय हुई। चीन जापान से जीवन-मरण के संघर्ष में फँसा है। भारत—गुलाम, भूखा, नैतिकता से शून्य भारत—एक अहिंसामय राजनैतिक व आर्थिक संघर्ष में अटक है। इसपर बीच-बीच में साम्प्रदायिक दंगों का भी इसे शिकार होना पड़ता है और ये दंगे अहिंसामय से ठीक उलट हैं। मत्सर बुद्धि, धार्मिक और राजनैतिक भारतीय नेताओं की कुमप्रणायों और ब्रिटेन की कूटनीति का यह परिणाम है। धर्म की अपने नफे का पैसा बनाकर रखनेवाले मजहब के ठेकेदारों ने दोनों मजहबों, की उनकी यथापंथा से दूरकर, परिवर्तित, विकृत और कलुषित कर दिया है। इस मूल कारण से ब्रिटिश 'कूटनीतिज्ञ' फायदा उठा रहे हैं। यह कहना कि दोनों जातियों के कोई समान हित नहीं है, दूसरे की हानि में ही एक का लाभ है, इस पश्चिमी धारणा की ही हूबहू पर भीड़ी नकल है कि कोई देश, राष्ट्र या वंश दूसरे देश, वंश या राष्ट्र पर आतंक जमाकर या उसे दास बनाकर ही फलफूल सकता है। यह धारणा जीवन-संघर्ष की नीति का, जिसके अविष्कार की डोंग हांकी जाती है, स्वाभाविक परिणाम है और 'जीवन के लिए सहयोग के उत्तम और महत्वपूर्ण नियम को भुला देने का यह प्रतिफल है। इसका नतीजा यह है कि भारत का सारा वातावरण पारस्परिक द्वेष और अविश्वास को विपत्ती गन्ध से छाया हुआ है और प्रत्येक शांति-प्रिय, ईमानदार और भले हिन्दू और मुसलमान के लिए जीना दूबर हो गया है। बहुत पहले स्वर्गीय श्री गोपालकृष्ण गोखले ने कहा था— 'हिन्दू, मुसलमान, और ब्रिटिश शक्ति के त्रिकोण की कोई-सी दो भुजायें मिलाकर तीसरी से बड़ी है।' इसीलिए लन्दन में सन् १९३० से १९३३ तक हुई तीन गोलमेज कान्फ्रेंसों का परिणाम यही हुआ कि पृथक चुनाव-पद्धति पर स्वीकृति की मोहर लगाकर और उसे भविष्य में जारी रखकर दोनों जातियों के पृथक्करण की कलुषित पद्धति बना दी गई है। फिर यह तो होना ही था कि नौकरियों में साम्प्रदायिक अनुपात और समानुपात को बढ़ावा देकर ऊपर से नीचे तक की राष्ट्र की सब नौकरियों में साम्प्रदायिकता ला दी गई है। इन नौकरियों पर रहनेवाले स्वभावतः औसत नागरिक से अधिक चतुर और विज्ञ होते हैं, और इनके हाथ में मरवारी अधिकार की भारी शक्ति रहनी है। और आजकल शक्ति का अर्थ निर्वल, भले और ईमानदार की सहायता देने की अपेक्षा उसे हानि पहुँचाना और

बाधा पहुँचाना ही अधिक समस्या जाना है।

ब्रिटिश कूटनीति ने जब से पृथक् चुनाव-क्षेत्रों की स्थापना की है तबसे भारत में साम्प्रदायिक समस्या सब समस्याओं से अधिक तीव्र बन गई है। पहले तो ये पृथक् निर्वाचन इस शताब्दि के दूसरे दशक में म्युनिसिपल और जिला बाडों में दायित्व हुए, और फिर इन तीसरे दशक में धारासभाओं में प्रवेश पा गये।

२३ मार्च १९३९ को एक अमेरिकन सवावदाता ने महात्मा गांधी न प्रश्न किया—“क्या भारत आपकी भावना के अनुकूल ही उन्नति कर रहा है?” महात्माजी विचारमग्न होगये और फिर उत्तर दिया—“हाँ, कर रहा है। कभी मुझे आशंका तो होती है, लेकिन मूल में उन्नति है और वह उन्नति सार-युक्त है। सबसे बड़ी बाधा हिन्दू-मुस्लिम मतभेद है। यह एक गम्भीर रुकावट है। यहाँ, मुझे कोई प्रकट उन्नति नहीं दिखाई देती। लेकिन इस कठिनाई को भी हल होना ही है। जनता का मन स्वस्थ है, यदि और नहीं तो इसी कारण कि वह स्वार्थहीन है। दानों जानियों का राजनैतिक शिक्कापते एक ही है और आर्थिक शिक्कापते भी भिन्न नहीं हैं।”

यह सर्वथा सत्य है कि ये शिक्कापते एक ही हैं, परन्तु प्रश्न यह है कि फिर वह दोनों जानियों का यह पाल क्यों नहीं मनवा सके और क्या उनको एक नहीं कर सके? ‘कठिनाई को एक दिन हल होना ही है—निस्सन्देह यह हल होगी, परन्तु जैसे स्पेन में हुई वैसे ही या शानि से? क्या यह सम्भव है कि हम कुछ ऐसा करे कि शानि से यह हल होजाय। ‘जनता का मन स्वस्थ है, यदि और नहीं तो इसी कारण कि वह स्वार्थ-हीन है’—क्या यह कथन जरा गोल नहीं है?

चीन, जापान और रोप एशिया की तरह भारत में भी सबसे बड़ी ‘जन्ता’ विमान है। ये विमान सब जगह अन्यन्त ‘व्यक्तिगत परिधि में रहनेवाले और ‘स्वार्थी’ होते हैं। परन्तु यह मान भी ले कि ये अपेक्षनया ‘स्वस्थ’ और ‘निस्वार्थ’ हैं, तो भी क्या इन्हें धर्म की यथार्थता और सही सामाजिक संस्थान के सम्बन्ध में उचित शिक्षा मिली है? कठिनाइयों का शानि से हल स्वन होजानेवाला नहीं है। हममें से कुछ तो यह अनुभव करते हैं कि सब धर्मों के समान सिद्धान्त और सही समाज-व्यवस्था की बुनियादी मान्यताओं का मिहनन के साथ प्रचार करने से साम्प्रदायिक समस्या का हल सम्भव होगा।

कांग्रेस की स्थिति

कांग्रेस का राजनैतिक और आर्थिक प्रयत्न और युद्ध भी पद्यपि ऊपर से बहुत-कुछ अहिंसक है, परन्तु मन से वंसा नहीं है। कांग्रेस के भीतर अनेक प्रकार की बुराईया फैली हुई हैं। चुनावों में कांग्रेस के पदों के लिए मन-मेटिया लूटी गई, जलाई गई, उडाली गई, लाठियाँ चली और कई बार गहरी चाटें भी की गई—एवाध ऐसी

घटना में वह भी होगया, ब्रिटेन में भी कुछ दिन पहले तक ऐसा ही होता था। 'हरिजन' साप्ताहिक में महात्मा गांधी के लेख इसके गवाह हैं। दूसरी साक्षी की आवश्यकता ही नहीं है, यदि आवश्यकता ही पड़े तो त्रिपुरी कांग्रेस के खुले अधिवेशन में "अनीति विरोधी प्रस्ताव पर दिये गये भाषणों को पढ़िये। लेकिन इस चित्र का सुनहला पहलू भी है। निर्वाचकों की अमित सत्या और निर्वाचन—क्षेत्रों के विस्तार को देखते हुए तथा यह ध्यान में रखकर कि यह चुनाव का पहला अनुभव था, ऐसी ऐसी दुःखद घटनाओं की मर्यादा कुछ अधिक नहीं है।

रोग का निदान

इस परिस्थिति में जनता में जागृति उत्पन्न करने के लिए जो सर्वोत्तम साधन उपलब्ध थे वे जागृति उत्पन्न करने तक तो सफल हुए, परन्तु महात्मा गांधी के ये उपाय जितने सफल होने चाहिए थे, उतने सफल क्यों नहीं हुए? स्पष्ट ही नेतृत्व में कोई बड़ी सम्भीर कमी रह गई है। मैं यह यहाँ दुहरा दूँ कि भारत की वर्तमान परिस्थिति में अहिंसामय रत्याग्रह या भद्रअवज्ञा—कुछ भी कहिए—यही एक निश्चय सर्वोत्तम साधन है। इस तरीके से महात्मा गांधी ने भारतीयों में सकल्प की शक्ति भरने में जादू-सा किया है। उन्हें एक सशक्त सत्त्व दे दिया है। यह तरीका लोगो की प्राचीन परम्परा के अनुकूल है। धारणा (अत्याचारी के द्वार पर मरण का निश्चय करके बैठ रहना) प्रायोपवेशन (आमरण अनशन), उपवास, आज्ञाभंग, देश-त्याग, राज-त्याग, 'राजा तन विगर्ह्यते' (खुलेआम राजा की निन्दा) आदि में कुछ प्राचीन पुस्तकों में वर्णित अहिंसामय उपाय हैं जो अधिकार के दुरुपयोग को रोकने के लिए काम में लाये जा सकते हैं। हाँ, खास अवसर पर, शांतिमय उपायों के असफल होने पर, सशस्त्र युद्ध की न केवल आज्ञा ही नहीं है, अपितु इसका विधान भी है। ये सब उदात्त प्रयत्न यदि फल नहीं दे पाते हैं तो कारण है कि 'कुछ और भी चाहिए जो कि नहीं है।' किसी आवश्यक वस्तु के अभाव से ही नुस्खा रोग-निवारण में असफल रहा है। वह अवतक रोग को शान्त भी नहीं कर सका। महात्मा गांधी या 'हार्ड कमाण्ड' ने कभी कोई ऐसी योजना नहीं बनाई जिसके अनुसार मन्त्रिगण मिलकर, परस्पर सगति में, सर्व-साधारण के हित की दृष्टि से धारा-रचना का काम करें। वे भविष्य के गर्भ में निहित 'वैधानिक असेम्बली' की प्रतीक्षा में हैं कि वह यह काम करेगी। निरसन्देह कुछ प्रान्तों में अन्य प्रान्तों की अपेक्षा, 'अपने ही मन्त्रियों से यह असतोष बहुत अधिक है। है यह सब प्रान्तों में, कही किसी बात को लेकर, कही दूसरी बात को लेकर। क्योंकि प्रान्त प्रान्त से भिन्न हैं। हममें से कुछ पिछले वर्षों से कांग्रेस के 'हार्ड कमाण्ड' और 'लो कमाण्ड' तथा जतना का ध्यान इस 'मारी कमी' की ओर आकर्षित करने लगे हैं और उनकी पूर्ति के लिए कुछ निर्देश भी देते रहे हैं। परन्तु अब तक यह सब व्यर्थ रहा है।

शायद कांग्रेस में अब जो मनभेद पैदा होगया है, वह 'नेताओं' और जनता का ध्यान हटाने और आकर्षित करेगा। इस मनभेद का परिणाम अत्यन्त व्यापक होगा। यदि यह दूर न हुआ तो कांग्रेस ने पिछले वर्ष के आत्म-न्याय और बलिदान से जो कुछ प्राप्त किया है वह सब जाता रहेगा। उसमें यदि सुधार होगा और बल्लह की जगह एकता लगे तो यह प्रोग्राम में उम भारी नुस्ति को दूर करने पर ही सम्भव होगा। जो सकल्य-यक्ति देश ने हाल में समझौते की है अभी उसका शौक है इसी भाँति उसको अन्दरूनी ज्वर, वानरोग और आत्मघात से बचाया जा सकता है। इसी उपाय से हम राष्ट्र-मकल को वह ऐक्य प्राप्त होगा, जिसका अभाव उसे अकाल-मृत्यु के मुँह में लिये जा रहा है।

परन्तु ऊपर की आवश्यक बात कहते हुए भी हम यह नहीं भूल सकते कि कांग्रेसी-मयी बड़ी मिहनत में काम कर रहे हैं और मद्यपान की बुराई मिटाने, माधुरता फलाने, किसानों का ऋणभार कम करने, स्थानीय उद्योगों का उत्साहित करने, सफाई को प्रोत्साहन देने और रोगों से लड़ने में बड़ी कोशिशें कर रहे हैं। उन्हें पूरी मरुतना इसलिए नहीं मिल रही कि कांग्रेस के अनुयायियों की निर्वलता के कारण उन्हें स्थिर सरकारी सचिवों से पयोजन सहयोग नहीं मिल रहा है। और सबसे बड़कर इसलिए कि जनता को स्वराज्य, 'स्वशासन' शब्द की उचित व्याख्या नहीं बताई गई। न महात्मा गांधी ने, न प० जवाहरलाल नेहरू ने, न श्री सुभाषचन्द्र बोस ने, न हाई-कमांड के किसी मरुम्य ने, अथवा कांग्रेस के किसी और मान हुए 'नेता' ने ही कभी जनता के सम्मुख 'स्वराज्य' शब्द की व्याख्या करने का प्रयत्न किया (स्व० चित्तरजन दास ने एक बार किया था)। सन् १९३६ या १९३७ तक महात्मा गांधी तो समय पड़ने पर यही कहते थे कि वे 'औनिवेशिक' राज्य को ही स्वराज्य समझते हैं। अपनी एक हाल की भेंट में, जिसका पीछे शिक है, उन्होंने कहा था—'मैं स्वयं ठीक नहीं कह सकता कि मैं इस विषय में कहा हूँ।'

कुछ भी ही, औनिवेशिक राज्य तो उत्तरी ब्रिटिश शासन-मदति की नकल है, जिसे माना प्रजातन्त्र जाना है, पर मूल में है 'गुट्टक'। महात्मा गांधी ने भारत के लिए आवश्यक सामाजिक व्यवस्था के सम्बन्ध में भी, जो निरी शासन-मदति से भी कुछ अधिक खुरी चीज है—कोई निश्चित विचार प्रकट नहीं किये हैं। एक बार पूना में, यदि मे भूलना नहीं तो, सन् १९३४ में उन्होंने समाज-व्यवस्था के विषय को लेने में ही स्पष्ट इन्कार कर दिया था। कह दिया था यह तो 'बड़ी भाग' है। महात्मा गांधी ने बड़ी स्पष्टवादिता से बार-बार ऐसी बातें दूहराई हैं कि "मे आगे की बात नहीं जानना।" "मुझे अपने चारों ओर अधिरा दीक्ष पड़ता है।" "मुझे में पहले जेसा आन-विश्राम अब नहीं रह गया है।" "यदि मेरे पास स्वराज्य की योजना है तो जनता के सामने लाने में देर न करूँ।" "जनता के द्वारा चुने जानवाली भावी वधानिक

असेम्बली ही निर्णय करेगी।" भारत को स्वराज्य मिलेगा या नहीं इसका निर्णय भी यही वैधानिक असेम्बली क्यों न करे। इस सम्बन्ध में महात्मा गांधी के सम्पूर्ण विचारों का सग्रह उनकी 'हिन्द स्वराज्य' नामक पुस्तक में है। इस पुस्तक का सारांश यह है कि अर्वाचीन सभ्यता की जो विशेषताये या खास-खास चीजे हैं—यंत्र, रेलवे, जहाज, वायुयान, बिजली का प्रकाश, मोटर-गाड़ी, डाक, तार, छापेखाने, घड़ियाँ, अस्पताल, शिक्षा-पद्धति, शिक्षणालय, चिकित्सा-पद्धति आदि—ये सब बुरे हैं और इनको केवल सुधार लेना, सही कर लेना, और व्यवस्थित कर लेना ही पर्याप्त नहीं है, अपितु ये सर्वथा स्थाज्य हैं। जाहिरा तौर पर कहा जा सकता है कि इस भाँति प्राचीन भारतीय सभ्यता के बहुत से अंश भी—विशाल मंदिर, सुन्दर नक्काशी के घाट और महल, ललित कलायें, शाल और कमलाब, विभिन्न ज्ञान और साहित्य आदि जीवन की 'शोभा' बढ़ानेवाली सब चीजे भी हथ हैं और मिट जानी चाहिएँ, तथा आद्य कृषि-जीवन ही फिर हो रहना चाहिए, परमेश्वर और प्रकृति मनुष्य-जाति से मानो यही चाहते हैं। लेकिन सभ्यता और इसकी कलाये तथा विज्ञान भी तो प्रकृति की उपज हैं।

पर दुर्भाग्य यह है, जैसे महात्मा गांधी हृदय की निर्मलता में स्वयं खुलकर स्वीकार करते हैं वह "केवल सत्य का मार्ग दिखा सकते हैं, परन्तु स्वयं सत्य को नहीं।" और उन्होंने उस पूर्ण सत्य को स्वयं देखा भी नहीं है, जिसकी भारत के प्राचीन ऋषियों ने देखा, दिखाया और जिसका मार्ग भी बताया था। व्यक्ति-समष्टि-तंत्र के सत्य का जो सम्पूर्ण दर्शन ऋषियों ने पाया था वह महारथा गांधी को प्राप्त नहीं हुआ है। उनके 'हिन्द स्वराज्य' में जो सत्य है वह उसी तथ्य का अस्पष्ट आभास-मात्र है, जिसका कि उपनिषदों, गीता और मनुस्मृति ने प्रतिपादन किया है। उपनिषदादि प्रतिपादित तथ्य यह है कि व्यक्तिगत चेतना की पथक्ता और अह-जीवन का यह ससार-चक्र ही मूलतः इस आदि पाप, अविद्या भ्रान्ति के कारण है कि हाड-मांस का परिमित शरीर और असीम आत्मा एक है। यही से 'अहंकार', 'स्वार्थ-भावना', 'रामविराग', 'प्रेम और घृणा' का जन्म है, और इसी कारण 'परमार्थ', 'आत्म-सत्यम', 'दान-दया' आदि भावनायें सम्भव और यथार्थ बनती हैं। अन्त में सब मानवीय दुःख और सुख भी त्यागकर पूर्ण समाधि अर्थात् चित्तशक्ति के सर्वोच्च तत्त्व में लीन हो जाना चाहिए, लौटकर केवल किसानों जीवन पर पहुँच जाना काफी नहीं होगा। इस सच्चाई पर चलने के लिए और भी पीछे जाना पड़ेगा। राष्ट्रीय और व्यक्तियों को इसी प्रकार लौटना पड़ा है, लेकिन उचित अवसर देखकर, अर्थात् सब पदार्थों का भोग तथा परीक्षा करने और सापेक्ष कल्याण-मार्ग पर चलते रहने के पश्चात्, और 'ममता' और 'परमार्थ' की अपनी सब सहज इच्छाओं को सन्तुष्ट करने के पश्चात्। महात्मा गांधी ने प्रायः 'स्वराज' का अर्थ 'रामराज' बिना है, परन्तु यहाँ भी रामराज का निश्चित लक्षण नहीं बताया, लेकिन अगर वाल्मीकि का विश्वास करें तो वह रामराज तो निर्रे कृषि-जीवन

मे बहुत दूर था। इसमें कृषि-जीवन को प्रधानता अवश्य थी, लेकिन इसमें केवल गाँव ही नहीं थे, काफी शहर भी थे। राम की अयोध्या का वाल्मीकि का वर्णन कैसा महिमायुक्त है, यद्यपि सौम्य है, उसी तरह रावण की सुनहरी लका की जगमग कम नहीं है, यद्यपि वहाँ चमत्कार 'यानिब' अधिक है।

भारत की वर्तमान अवस्था और इसके अन्दरूनी मतभेदों को देखकर हमारी युवक शिक्षित सन्तति की आँखें रुस और उसके बोल्शेविज्म, समाजवाद या साम्यवाद पर जा टिकनी हैं—यद्यपि रक्तपात द्वारा जवत्तव की जानेवाली पार्टों शुद्धि की खबरी से वे भय भी खाते हैं। दूसरी ओर कांग्रेस और इसके बाहर के पुरानी पीढ़ी के लोगों की आँख, दास-भावना की निन्दा करके भी, ब्रिटेन और इसके उपनिवेशों, अमेरिका और शायद फ्रान्स के भी प्रजातन्त्रवाद—या उसे कुछ भी कहिए—पर जमी हुई है। भारत में कोई भी नाज़ीवाद या फासिज्म के 'आदर्श' का सुप्रत्यक्ष समर्थन नहीं करता दीख पड़ता। ता भी हममें से कम-से-कम कुछ तो यह अनुभव करते हैं कि यदि सब 'बाद' अपनी 'अनिश्चयता' छोड़ दे और इसके स्थान पर सच्चे आध्यात्मिक धर्म की थोड़ी-सी मात्रा और कुछ मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त ग्रहण कर लें तो वे तत्काल एक-दूसरे से हिलमिल जायेंगे। इन सब 'आदर्शों' और 'बादों' ने भलाई की है और पाप भी कमाया है। वे केवल अपने-अपने पक्ष के धर्म मिजाजियों के कारण ही एक-दूसरे को घूर रहे हैं, और यही इनके धर्मदिली अपने-अपने आदर्शों की शक्ति 'युद्ध' की व्यवस्था' करने में खर्च कर देते हैं, उसमें शान्ति की व्यवस्था' नहीं करते।

दुर्बल जातियों के साथ पश्चिमी सभ्यता ने जो पाप किये हैं वे अब फलते जाते हैं। भाग्य उसका सूत के धागे से लटकता दीखता है। उस सभ्यता की ऐमे सक्क और भ्रष्टाचार हाज़त देखकर हमारे 'प्रजातन्त्री' और 'समाजवादी' नेताओं का अनेक पश्चिमी बादो का मोह और जोश दूर नहीं तो कम तो पड़ता ही होगा। इन बादों की स्वयं पश्चिम के ही बहुत से प्रमुख वैज्ञानिक और विचारक प्रबल निन्दा कर रहे हैं। हममें चाहिए कि वे और हम अपने पुराने काल-परीक्षित समाज-व्यवस्था के सिद्धान्तों की ओर जायें और उन पर गौर से विचार करें। प्रश्न हो सकता है कि यदि वे सिद्धान्त इतने अच्छे थे तो भारत का पतन क्या हो गया? उत्तर यह है कि सरस्वती का चरित्र पतित हो गया, 'आत्मा' बदल गई, 'दिमाग' बिगड़ गया, भले सिद्धान्तों का व्यवहार छोड़ दिया गया उनकी उपेक्षा की गई, यही नहीं उनके स्थान पर बुरे सिद्धान्त घड़ लिये गए। भारत के शासन-व्यवस्था ने सरस्वती 'आत्म मयम' और सद्गुण दोनों से बँटे। कोई राष्ट्र, कोई जाति, कोई सभ्यता पतन नहीं सकती जबतक उसके अन्तर में सारभूत सत्य न हो और साहसयुक्त हृदय और मस्तिष्क न हो। राष्ट्र का चल होने है ऐसे व्यक्ति जिनके स्वभाव में दान है, जो आत्म-प्राप्ति हैं और धर्मवान हैं। जो राष्ट्र या जाति 'हृदय और मस्तिष्क' की इन शक्ति को नहीं बना या पाल

सकने वे क्षण में इन 'दुर्घटना' से या युद्ध के ध्वंस से अकाल ही काल के घास बनते हैं या गुलाम बन जाते हैं और दूसरों की दया पर जीवन पालने हैं। भारत की ऐसी ही गति है। परन्तु भारत में अभी तक जीवन है, और नया जीवन मिलने की भी पूरी सम्भावना है, यदि, महात्मा गांधी के 'तप' में आवश्यक 'विद्या' का मेल हो जाय।

महात्मा गांधी आज हमारी महत्तम नैतिक और तप शक्ति हैं। वस, आवश्यकता है कि समाज-व्यवस्था सम्बन्धी पुरातन शास्त्र-ज्ञानानुकूल बौद्धिक शक्ति का सयोग उन्हें और प्राप्त हो। गांधीजी तब भारत की रक्षा कर सकेगे और इसको पश्चिम के अनुकरण के लिए इसे एक ज्वलत आदर्श बना सकेगे—यह देश तब पश्चिम के स्वरूप का ही एक बेजान और विकृत छायाभात्र नहीं रहेगा।

यह काम तभी होगा जब कि महात्मा गांधी और कांग्रेस के दूसरे नेता इस सम्बन्ध में अपनी विचारधारा स्पष्ट कर लेंगे और भारतीय जनता के लिए सर्वोत्तम सामाजिक व्यवस्था के सम्बन्ध में निश्चित विचार बना लेंगे, तब उन्हें हिन्दू, मुसलमान, और ईसाई स्वयंसेवकों का एक बड़ा दल संगठित करना होगा। ये स्वयंसेवक आत्मसयमी घूमने-फिरने और काम करने के आदी, वाक्शक्ति-सम्पन्न और पर्याप्त शिक्षा सम्पन्न हों, यदि वह सम्पन्नता न हो तो उसे प्राप्त करने की तत्परता तो होनी चाहिए। ये स्वयंसेवक ऐसे हों कि जो मिल कर भारत के कोने-कोने में निम्न सन्देश सुनाने में अपना जीवन अर्पित कर दें। यह सन्देश दो प्रकार का होगा। प्रथम यह कि केवल भारतीयों के लिए ही नहीं अपितु जाति, धर्म रंग, वंश या लिंग भेद के बिना समग्र मानव-जाति के हित के लिए प्राचीन बुजुर्गों द्वारा प्रतिपादित वैज्ञानिक समाजवादी योजना और संगठन का ज्ञान प्रसार। दूसरा, एक ही विश्व धर्म की यह घोषणा कि यमार्थन सब धर्म एक ओर एक ही है। कांग्रेस कमेटीयों प्रत्येक नगर और जिले में हैं, और रियासतों में भी हैं, वे स्वयंसेवकों को इस काम में सह-लियत पहुँचा सकती हैं। वे स्वयंसेवक लोकमत को संस्कार देंगे और लोगों को बतायेंगे कि 'स्वतन्त्रता' का अर्थ अपने अधिकारों का प्रयोग तो है ही, पर उससे भी अधिक अर्थ है उन वर्तव्यों का पालन जो कि उक्त समाज-रचना की योजना में भिन्न-भिन्न व्यवसाय के लोगों पर नियुक्त हो।

: ११ :

गांधीजी का राजनेतृत्व

फ्लवर्ट आइन्स्टाइन, डी. एस.सी.

[दि इन्स्टीट्यूट ऑफ एडवांस्ड स्टडीज, स्कूल ऑफ मैथेमेटिक्स, प्रिन्स्टन
यूनिवर्सिटी, अमेरिका]

गांधीजी राजनैतिक इतिहास में अद्वितीय व्यक्ति हैं। उन्होंने पीड़ित लोगों के स्वातन्त्र्य-मार्ग के लिए एक दिलकुल नये और मानवीय साधन का आविष्कार किया है और उस पर भारी यत्न और तत्परता से अमल भी किया है। उन्होंने सभ्य ससार में विचारवान् लोगों पर जो नैतिक प्रभाव डाला है उसके पार्श्विक बल की अति-शयोक्ति से पूर्ण वर्तमान युग में बहुत अधिक स्थायी रहने की सम्भावना है, क्योंकि किसी भी देश के राजनीतिज्ञ अपने अमली जीवन और अपनी शिक्षा के प्रभाव द्वारा जिस हद तक अपने देशवासियों के नैतिक बल को जागृत और संगठित कर सकेंगे, उसी हद तक उनका काम चिरस्थायी रह सकेगा।

हम बड़े भाग्यशाली हैं और हमें कृतज्ञ होना चाहिए कि ईश्वर ने हमें ऐसा प्रकाशमान समकालीन पुरुष दिया है—वह भावी पीढ़ियों के लिए भी प्रकाश-स्तम्भ का काम देगा।

: १२ :

गांधीजी : समाज-नीति के आविष्कर्ता

रिचर्ड बी. मेग

[सांउय नाटिक, येसाच्युसेट्स, अमेरिका]

मनीषों पर गांधीजी के विचारों के सम्बन्ध में भारी छाप पड़े जाने के कारण, पश्चिम में उनको वैज्ञानिक से ठीक विपरीत समझा जाता है। परन्तु यह भूल है।

वहाँ एक समाज-वैज्ञानिक है, क्योंकि वह सामाजिक सत्य पर, निरीक्षण, परीक्षण और मानविक व बौद्धिक कल्पना के वैज्ञानिक उपायों से, अमल करते हैं। उन्होंने मुझे एकबार बतलाया था कि मैं पश्चिमी वैज्ञानिकों को बहुत पूर्ण नहीं मानता, क्योंकि उनमें से अधिकतर अपनी कल्पनाओं को अपने रूप में नहीं परखना चाहते।

परन्तु वह और किसी को अपनी कल्पनाओं पर अमल करने के लिए कहने से पहले, उनको अपने ऊपर परख कर देख लेते हैं। वह ऐसा अपनी सभी कल्पनाओं के बारे में करते हैं—वे चाहे भोजन, स्वास्थ्य, चरखा, जात पात अथवा सत्याग्रह, किसी भी विषय में क्यों न हो। उन्होंने अपनी आत्म-कथा का नाम ही “मेरे सत्य के प्रयोग” रखा था।

वह केवल वैज्ञानिक ही नहीं हैं, बल्कि वह सामाजिक सत्य के क्षेत्र में बड़े वैज्ञानिक हैं। वह, समस्याओं के अपने चुनाव, उन्हें हल करने के अपने उपाय, अपनी खोज में पूर्णता और निरन्तर लगन, और मानव-हृदय के गहरे ज्ञान की गहराई, इन सब दृष्टियों से महान् हैं। सामाजिक आविष्कारों के रूप में उनकी महत्ता इस बात से भी प्रकट होती है कि उन्होंने अपने उपायों को, जनता की संस्कृति, विचार-दिशा और आर्थिक तथा यात्रिक सामर्थ्य के अधिक-से-अधिक अनुकूल बनाकर दिखाया है। मेरी राय में, उनकी महत्ता का एक प्रमाण यह भी है कि क्या वस्तु रखनी चाहिए और क्या छोड़ देनी चाहिए, इसके चुनाव में उन्होंने बड़ी समझदारी से काम लिया है। किसी सुधार पर कब और कितनी शीघ्रता से अमल करना चाहिए, यह परख लेने की उनकी योग्यता भी उनकी महत्ता की साक्षी है। वह जानते हैं कि प्रत्येक समाज किसी भी अवसर पर एक विशेष सीमा तक ही परिवर्तन के लिए तैयार होता है। वह जानते हैं कि कुछ परिवर्तन तो गर्भावस्था में देर तक रहने पर भी एकदम जन्म ग्रहण कर लेते हैं, और अन्य अनेक परिवर्तन पूर्णतः प्राप्त करने के लिए कम-से-कम तीन पीढ़ी तक का समय ले लेते हैं। वह जानते हैं कि कई मामलों में लोग, जन्म-परम्परागत अभ्यासों और विचारों को त्यागकर, नये को पूर्णतया ग्रहण शीघ्र नहीं कर लेते। सामाजिक आविष्कार के मामले में उनकी महत्ता का एक और प्रमाण यह है कि वह जब कभी कोई नया सामाजिक सुधार आगे रखते हैं तब वह उसे पूरा करने के लिए आवश्यक प्रभावशाली संगठन पहले ही कर लेते हैं। वह संगठन और शासन की सब बारीकियों के पूर्ण ज्ञाता हैं। विविध क्षेत्रों में उनके काम के परिणाम से उनकी असाधारण महत्ता पहले ही सिद्ध हो चुकी है, और मेरा विश्वास है कि इतिहास उन क्षेत्रों में भी उनकी महत्ता सिद्ध कर दिखलायेगा, जिनमें उनका कार्य अभी आरम्भ ही हुआ है।

उन्होंने निम्न व्यापक और कठिन सामाजिक समस्याओं पर विशेष रूप से काम किया है—(१) गरीबी, (२) बेकारी, (३) हिंसा—व्यक्ति-व्यक्ति, जाति-जाति और राष्ट्र-राष्ट्र की, (४) सामाजिक विभागों का पारस्परिक सघर्ष और अनैक्य, (५) शिक्षा, (६) और कुछ कम हद तक सफाई, सार्वजनिक स्वास्थ्य, भोजन और कृषि-सम्बन्धी सुधार। ये सब समस्याएँ बड़ी हैं, इसे सब मानेंगे। मैं इन पर उल्टे क्रम से विचार करता हूँ।

सफाई और सार्वजनिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में गांधीजी अनुभव करते हैं कि कई समस्याएँ तब तक हल नहीं हो सकती जब तक कि लोगों की गरीबी कम न होजाय। तो भी उन्होंने अपने आश्रमों में स्वास्थ्य के कई ऐसे सरल उपायों पर परीक्षण और अमल किया है जो किसानों की—जोकि आबादी का बहुत बड़ा भाग है— पहुँच में हो सकते हैं। उन्होंने कई कार्यक्रमों को इन उपायों का प्रयोग सिखलाया है और धीरे-धीरे कई जगह उनपर अमल किया जा रहा है।

गांधीजी ने, एक-दूसरे से पृथक् सामाजिक विभागों का पारस्परिक भेद मिटाने में—विशेषतः हरिजनों के उद्धार में—बड़ी सफलता प्राप्त की है। मैं और कोई ऐसा देग नहीं जानता जिसमें सामाजिक एकता का आन्दोलन स्वेच्छापूर्वक, और इसलिए वास्तविक रूप में, इतना अधिक सफल हुआ हो। हिन्दू-मुस्लिम-संघर्ष की समस्या का बहुत बड़ा कारण राजनैतिक परिस्थितियाँ हैं, जिनपर गांधीजी या अन्य कोई भारतीय काबू नहीं पा सकता, तो भी जब भारत स्वतन्त्र होजायगा तब यह समस्या सुलझ जायगी, और इसे सुलझाने में गांधीजी का उपाय बहुत काम देगा। सार्वजनिक शिक्षा के क्षेत्र में गांधीजी ने हाल में एक ऐसी योजना आरम्भ की है, जिसमें विद्यार्थियों को सब कुछ दस्तकारी द्वारा सिखलाया जायगा—जो कुछ सिखाना होगा वह उस खास दस्तकारी से ही सम्बद्ध कर दिया जायगा। हम सबको जिन आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है, उनमें यह योजना विशेष सफल होने की सम्भावना है। इससे न केवल विद्यार्थी पढ़ने-पढ़ने अपनी पढ़ाई का खर्च कमाने सामक हो सकेंगे, बल्कि यह शिक्षा में से बहुत-से फालतू कूड़े-कचरे को साफ करके उसे जीवन के लिए उपयोगी बना देगी। एक और बड़ा लाभ यह होगा कि शिक्षा कम-से-कम राष्ट्रीय व्यव में जनता के लिए सुलभ होजायगी। इसके अतिरिक्त मानव जाति के विकास में मनुष्य का मन सदा हार्थ और आँख का सहारा लेता रहा है—यह योजना उसके भी अनुसार है।

हिंसा की समस्या और उसे हल करने के गांधीजी के उपाय पर मैंने अपनी पुस्तक "दि पावर आफ नॉन-वायलेन्स" (अहिंसा की शक्ति) में विचार किया है और यहाँ मैं उसपर ज्यादा बहस नहीं करूँगा। यद्यपि उनके उपाय से भारतवर्ष को अभी स्वतन्त्रता नहीं मिल सकी, तथापि इसने बड़ी उन्नति करके दिखाई है, और प्रायः सारी ही आबादी के राजनैतिक और सामाजिक विचारों को परिवर्तित कर दिया है। अधिकतर लोगों ने अपने-आपको पहले की भाँति हीन समझना छोड़ दिया है और उनमें आशा, आत्म-विश्वास, राजनैतिक शक्ति और नये प्रकार की प्रत्यक्ष सामर्थ्य आई है। मुझे विश्वास है कि गांधीजी के उपाय से भारत स्वतन्त्र होजायगा। इतना ही नहीं, बल्कि यह तमाम दुनिया को बदल देगा।

गरीबी और बेकारी का हल गांधीजी घुनने, कातने, कपड़ा बुनने और दूसरी दस्तकारियों के पुनर्द्धार द्वारा करना चाहते हैं। उनके इस विचार की क्षमता का

पश्चिम में—और पश्चिमी शिक्षा तथा रहन सहन में दीक्षित भारतीयों द्वारा भारत में भी—इतना अधिक विरोध किया जाता है कि मैं इसके पक्ष की कुछ युक्तियों पर, पश्चिमी विचार-दिशा से ही, विस्तार के साथ बहस करना पसन्द करूँगा। भारत में यह अनुभव किया जाता है, परन्तु अन्यत्र प्रायः नहीं, कि भारत की विशेष ऋतु के कारण, वर्षा-ऋतु का समय छोटा और गर्मी तथा सूखे का समय बहुत बड़ा होने के कारण प्रायः सारे भारत में किसान तीन से छ महीने तक बिल्कुल निकम्मा रहता है। बहुत सख्त गर्मी में वह बठोर जमीन को जोत नहीं सकता, और न फसल बो या काट सकता है। भारत के विशाल महाद्वीप में खेतों और, जंगलों में काम करनेवाले मजदूरों की सख्या लगभग बारह करोड़ है, और, इस कारण, देश की सारी आबादी के साथ ग्रामीणों की इस सामयिक बेकारी का अनुपात प्रतिवर्ष बहुत बड़ा रहता है। माली नुकसान बहुत ज्यादा होता है। इसके कारण होनेवाले नैतिक और मानसिक हास और क्षय भी भयंकर हैं। जबतक पश्चिम से मिल का बना कपड़ा भारत में नहीं आया था तबतक किसान इस निकम्मे समय को अपना कपड़ा वातने, बुनने और अन्य दस्तकारी धंधों में खर्च करते थे। आज भी हिन्दुस्तान में प्रयुक्त होनेवाले कपड़े का एक-तिहाई हाथ-कपड़ों पर बुना जाता है। रुई हिन्दुस्तान के प्रायः सब प्रान्तों में पैदा होती है। इस काम में आनेवाले हाथ-ओजारों का खर्च छोटी माली हैसियत के किसानों की भी पहुँच में है, हाथ की कारीगरी अबतक बिल्कुल बरबाद नहीं हुई। हाथबाने कपड़े की बाजारी कीमत मिल के कपड़े से बहुत ऊँची नहीं बैठती, और जो अपना सूत आप काते उनकी और भी कम पड़ती है। आबादी के ज्यादातर हिस्से में कपड़े का खर्च रहन-सहन के तमाम खर्च का पाँचवे से छठे भाग तक बैठता है। जो लोग अपना गुजारा बहुत कठिनाई से कर पाते हैं वे यदि बिना किसी खास मेहनत के अपने तमाम खर्च का दसवाँ हिस्सा भी बचा सके तो उनके लिए यह बड़ी चीज है। हाथ का यह काम न केवल आर्थिक दृष्टि से मूल्यवान है, बल्कि यह आशा, सूझ-बूझ, आत्म सम्मान और आत्मबलम्बन को भी प्रबलता से जागृत करनेवाला है। कहने की आवश्यकता नहीं कि देर तक की बेकारी और गरीबी से इन गुणों का नाश हो चुका है। दस्तकारी की इस चिकित्सक शक्ति को मानसिक रोगों के वर्तमान चिकित्सकों ने भी भलीभाँति स्वीकार किया है। और आजकल "ओक्यूपेशनल थेरापी" (इलाज-ए-पेशा) के नाम से दस्तकारी को अनेक मानसिक रोगों के, खासकर उदासी और पागलपन के, इलाज में प्रयुक्त किया जाता है। इन कारणों से भारतीय बेकारी को दूर करने के लिए इस धंधे को पुनरुज्जीवित करने का प्रस्ताव इतना बेहूदा नहीं है, जैसा कि ऊपर से मालूम पड़ता है।

लेकिन इतने पर भी बहुत-से लोग इस विचार का मजाक उड़ाते और यह कह-कर इससे नफरत करते हैं कि यह तो पीछे की लोटना हुआ, यह असामयिक है, यह

घड़ी की मुई को पीछे हटाने का मतलब है, यह श्रम-विभाग के अत्यन्त सफल सिद्धान्त की समाप्ति और यत्न और विज्ञान का परित्याग कर देना है।

किसी भी यान्त्रिक पद्धति का मुख्य प्रयोजन उन सब लोगों को लाभ पहुँचाना होता है जो उसके अधीन हो। यदि वह यांत्रिक पद्धति जनता की बहुत बड़ी अल्प मस्या का लाभ न पहुँचाती हो, और वह अल्प-संख्या किसी और ऐसी पद्धति को अपना ले जिसमें उनकी माली हालत में सचमुच सुधार हो जाय, तो इसे मूर्खता नहीं कहेंगे। अगर कोई पद्धति करोड़ों लोगों की माली जरूरतों को पूरा न करे, तो वह उनके लिए अँधेरी गली के समान होगी, और वे अपना कदम पीछे न हटाये तो वे मूर्ख होंगे। उन्हें कोई ऐसा रास्ता तलाश करना पड़ेगा, जिसपर वे स्वयं स्वतन्त्रता से चल सकें। उनके लिए तो आर्थिक घड़ी ठहरी हुई ही मानी जायगी। वे जिस किसी भी ऐसी पद्धति को स्वीकार कर लेंगे, जो उनकी माली जरूरतों को पूरा करती हो—चाहे वह किसी भी रूप-रंग से हो—उस घड़ी की मुई को पीछे हटाना नहीं बल्कि फिर से चलाना कहा जायगा। वर्तमान महायुद्ध, दस्ती औजारों की वनिम्बत, घड़ी को अधिक प्रभावशालिना से पीछे कर देनेवाले हैं, तो भी आज के राजनीतिज्ञ अधिकाधिक रक्तमें, बड़े-बड़े इजिनियरों और “सुशिक्षित” व्यक्तियों की अनुमति से, युद्ध की तैयारियाँ पर खर्च कर रहे हैं।

आज के कल-कारखाना ने हाथ के काम को उस जमाने से भी पीछे धकेल दिया है, जबकि दस्तकारी का रिवाज जारी था। हमारी नैतिक एकता दस्तकारी के जमाने में जिस मजिल पर थी उसमें जरा भी आगे नहीं बढ़ी। “पीछे कदम” तो तब हटा जब हमने और हमारे पुरखों ने मूर्खतावश इतना भी नहीं समझा कि मनुष्य-समाज एक इकाई है, और हमें ऐसे उपायों और औजारों को अपनाना चाहिए जिनसे इस इकाई की एकता हमारे रोज़मर्रा के वर्तान और काम में जाहिर हो।

दस्तकारी को अपनाने से श्रम-विभाग के सिद्धान्त का परित्याग नहीं होगा, बल्कि कुछ अर्थों में आप-से-आप चलनेवाली मशीनों ने ही इस सिद्धान्त को बिगाड़ा है। दूसरे अर्थों में, इस सिद्धान्त पर अभी हाल तक जो जोर का अमल होता आया था वह अब नहीं हो सकता, क्योंकि एक तो अब पहले के जितने बड़े बाजार नहीं रहे, और दूसरे मजदूर, मैनजर और मालिक में अब पहले का-सा सहयोग, सहायता और सामंजस्य का भाव नहीं रहा। श्रम-विभाग के लाभ की भी एक सीमा है और वह सीमा हाल में समाप्त-सी होगई है।

गांधीजी का प्रस्ताव मशीन या विज्ञान का परित्याग नहीं करता, बल्कि वह सादी मशीन को अवतक अप्रयुक्त मानवशक्ति के एक ऐसे विशाल भंडार के सामने पेश करता है, जोकि बेकारों की भारी सेना के रूप में उपस्थित है। वह कुछ खास मशीनों को पसन्द करत है, क्योंकि वे जनता की आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों

के अनुकूल हैं और क्योंकि उन खास मशीनों का प्रयोग उन सामाजिक और आर्थिक कठिनाइयों तथा समस्याओं को बढ़ायेगा नहीं जो कि पहले ही बड़े परिमाण में मौजूद हैं।

आजकल सब देशों में सैनिक तैयारियों और कार्रवाइयों के लिए राष्ट्रीय फंडों का अनुपात और परिमाण निरन्तर बढ़ रहा है, और इस कारण लोगों के रहन-सहन का, और शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य आदि सार्वजनिक सेवाओं का दर्जा गिरता जा रहा है। आर्थिक व्यवस्था आज उतार के युग में है। कम-से-कम पश्चिम में सामाजिक अवनति और असंगठन निरन्तर बढ़ रहे हैं, जैसा कि पागलपन, आत्मघात और अन्य अपराधों की बढ़ती हुई संख्या से प्रगट है। यदि कोई दूसरा युद्ध छिड़ गया तो मानव-जाति को बहुत बड़े पैमाने पर "ओक्युपेशनल थेरापी" (इलाज-ए-पेशा) की आवश्यकता पड़ेगी। सहर और सब किस्म की दस्तकारियाँ लोगों के लिए सब जगह ज्यादा कीमती होजायेगी—आर्थिक दृष्टि से भी और चिकित्सा की दृष्टि से भी।

हम इस सच्चाई को भी उपेक्षा नहीं कर सकते कि कल-कारखानों के सब देशों में आवादी जल्दी-जल्दी घट रही है। इस सच्चाई को कार-सीण्डर्स, कुकज़िन्स्की, टी० एच० मारशल, एनिड चान्स, एच० डी० हेण्डरसन, आरनॉल्ड प्लाण्ट और हीगबेन सरीखे अधिकारियों ने प्रमाणित कर दिया है। आवादी की इस घटती का भारी आर्थिक और सामाजिक प्रभाव सारे संसार पर, खासकर पश्चिम पर, बहुत करारा और भयकर पड़ेगा। इस कारण भी दस्तकारियों और विशेषकर सहर का प्रसार अत्यन्त सहायक सिद्ध होगा।

अन्य विचारों के अतिरिक्त इन कारणों से भी मुझे निश्चय है कि गाँधीजी एक महान् समाज-वैज्ञानिक और सामाजिक आविष्कर्ता हैं। उनकी सफलतायें देखकर मुझे एक पुरानी संस्कृत लोकोक्ति याद आती है, कि "मनुष्य को चमत्कारिक शक्तियाँ कठिन काम करने से प्राप्त नहीं होती, बल्कि इस कारण प्राप्त होती हैं कि वह उन्हें शुद्ध हृदय से करता है।" इसका अन्विष्ट यह है कि उच्च, सरल उद्देश्य और गहरी लगन ही चमत्कार दिला सकती है। गांधीजी के लिए ईश्वर का धन्यवाद करो !

: १३ :

काल-पुरुष

जेराल्ड हेयर्ड

[हॉलीवुड, यूनाइटेड स्टेट्स अमरीका]

पश्चिमी दुनिया ने जब यह कल्पना रखी थी कि घनवान होना ही सभ्य होना है, तो यह खयाल रहा होगा कि जरूरी तौर पर ज्यों-ज्यों यन्त्र-कोशल उत्पन्न

होगा त्यो-त्यो समृद्धि भी स्थायी होती जायगी। लोग सब समान माने जाने लगेंगे, क्योंकि सब तरह का सामान उन्हें समान भाव से मिल सकेगा। और इस तरह उन्नति की भी सीमा न रहेगी।

वह कल्पना अब उड़ रही है। अब ही उसकी आयु रही। पश्चिम का वह बहम सावित्र हुआ। अब यह कहना सम्भव है कि आधुनिक युग बराबर नहीं है। प्रकृति की मक्को भिन्न-भिन्न देन है और उनमें छोटे-बड़े भी होमकने हैं। यह भी जाहिर है कि सम्पत्ता अनिवार्य रूप में तरक्की ही नहीं करती जाती है, बल्कि उसमें उतार-चढ़ाव दानों जाने हैं। कभी तीव्र हास का युग भी आयाता है, तो कभी किसी विशिष्ट सृजन-शक्तिवाली अकेले व्यक्तित्व की स्फूर्ति-श्रेष्ठा में आकस्मिक उभार और परिवर्तन भी हो चलना है।

सत्य का यह उद्घाटन समय से पहले न माना जाय। उसका अब ऐन अवसर था। पश्चिमी दुनिया समझे बैठती थी कि एक भविष्य उसकी प्रतीक्षा में है। वहाँ आराम, ऐश और इक़रात होगी। सो पश्चिम उनीकी खुमारी में था और मूलभूत समस्याओं के न सिर्फ़ समाधान में गाफ़िल था, बल्कि उस समस्या के भार और उलझाव की दिन-दिन और बढ़ाता जाना था। वह मनन्या है कि पृथिवी पर न्याय का और व्यवस्था का समर्थन असल में किस मूल नियम में खोजा जाय। अगर हिमा ही एक तरीका है, जिसने न्याय और अमन को ब्रायम रक्ता जा सकता है, तो प्रश्न है कि इस न्याय और अमन की खुद हिंसा-विस्वासी शासक के हाथों सुरक्षा कैसे हो? इस प्रश्न का सामना सभी बड़े-बड़े मुद्धारकों को करना पड़ा। ईसा मसीह ने शास्त्र को नहीं छुआ, लेकिन उनके अनुयायियों के हाथ जैसे ही लोकमत्ता आई वैसे ही उन हाथों में तलवार भी दीवने लगी। मुहम्मद साहब ने भी प्रीति और सेवा के धर्म का उपदेश देना आरम्भ किया था; पर वहाँ भी अत्याचार को सुगम प्रचार का साधन बना लिया गया। तो भी सिद्ध है कि खूरेजी कभी सकल नहीं होती, फिर उसके उचित होने का तो प्रश्न ही जुदा है। हर नये आविष्कार के साथ धर्मास्त्र अपनी हिंस्रता में मीषण किन्तु निशाने में अनिश्चित होने जाते हैं। यही बात नहीं है कि मानो न मानो तो भी मानना होगा। दान तो इससे भी आगे पहुँची है। अब तो लड़ाई का प्रकार ऐसा होमया है कि दिन-देखे अपेपन से ही लोग मारे जाते हैं। इस तरह जिनका दुनियादी शगड़े से कोई वाला भी नहीं होना, ऐसे लोग भी आनान्ता के खिलाफ़ खिच जाते हैं। पुद्द अब महत्वाकांक्षा का साधन नहीं, बल्कि समाज में पैठा हुआ रोग है।

अतः अनेक मेधावी व्यक्तियों ने ऐसी शक्ति का मषय करना चाहा जो किसी आवेश से अधी न हो। आरम्भ में तो अपने लक्ष्य की ठीक-ठीक पहचान उन्हें न थी, पर समय बीतने के साथ-साथ आवश्यकता प्रत्यक्ष और उद्देश्य स्पष्ट होना गया। एक 'शासन' चाहिए था जो सजग हो, सक्षम हो, जो आत्मशास्त्राओं का शासन हो। श्री इग्नेश-

लोयला की मसोही सोसाइटी (Society of Jesus) ऐसे ही एक प्रयत्न का गणनीय उदाहरण है । इस सम्म्या में जो चुने हुए लोग थे, उन्हें ब्राह्म-योग की ही शिक्षा नहीं मिलनी थी, बल्कि हृदय को भी संस्कार दिया जाता था और तरह-तरह के अभ्यासों से गम्भीर सकल्य शक्ति-संग्रह की शिक्षा भी दी जाती थी । अनुशासन और बड़ों की आज्ञा-पालन की जहाँतक बात है, सोसाइटी का संगठन फौजी तरीक़े का था । घर बसाने या जाने की छूट न होती थी । न पुत्र-कन्यत्र होसकते थे, न धन दोलत, न मान-सम्भ्रम । इस तरह की शिक्षा और साधना में से तैयार करके फिर शिष्यों को एक गुरु-सेनानी के मातहत भेज दिया गया रोमन चर्च की खोई हुई विभुता की पुनः प्रतिष्ठा के लिए । मुघार-प्रवाह ने उस चर्च की आभा हर ली थी ।

इस निःशस्त्र सत्ता के विकास में अगला नदम पहले से भिन्न हुआ । इस बार किसी निश्चित धर्म मत के प्रचार का प्रयत्न नहीं था, बल्कि उन कुछ जीवन की प्रत्यक्ष, यद्यपि स्पूल, समस्याओं के निराकरण और समाधान की कोशिश थी जो अबनक हिंसक उपायों से हल होने में न आती थीं । नवीन मनोविज्ञान के उदय के साथ हम कह सकते हैं कि एकान्ती ही सही पर अहिंसा की विजय के लिए एक नवीन क्षेत्र खुल गया । उन्माद और मस्तिष्क-विकारों का इलाज दमन में नहीं बल्कि प्रीति में देखा जाने लगा । इस खुली वैज्ञानिक उपचार-पद्धति के आरम्भ से अहिंसा के तत्त्व की एक नई ही शक्ति प्रकाश में आई । पहले के रूढ़ हिंसक साधनों में वह शक्ति कभी भी नहीं पाई जा सकी थी । जबरदस्ती के विरोध में मृदुति और दमन के विरोध में प्रीति के सिद्धान्त के इस वैज्ञानिक प्रयोग से हमने बहुत-कुछ सीखा है । असम्य और पिछड़ी जातियों के साथ सपर्क की आवश्यकता सीखी, मानवता का विस्तार करना सीखा, जगली जानवरों को साधना सीखा और अपराधी को फिर समाज-योग्य बनाने की शिक्षा ली ।

तो भी हिंसक साधनों से दस में न आनेवाले पशुओं और मनुष्यों को मुघारने के विषय में उस अहिंसक पद्धति के अपूर्व फल तो दीख पड़े, पर ये फल अधिकतर व्यक्तिगत रूप में घटित और प्राप्त किये जाते थे । जैसे कि अतिशय धर्मशील जीवन बितानेवाले बड़े-बड़े लोगों ने जगह-जगह उन सिद्धान्त की सफलता कर्म द्वारा प्रमाणित की थी, पर इन प्रयत्नों में कोई वैज्ञानिक एकसूत्रता की प्रतिष्ठा नहीं हुई थी । उन्हें सफलतापूर्वक उपयोग में लानेवाले लोग भी उस तत्त्व को, उसकी सगति और सम्भावना को, स्वयं नहीं पहचानते थे । इसलिए युद्ध और शान्ति, या समाज-व्यवस्था अथवा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध—इन और ऐसे प्रश्नों के सम्बन्ध में उस सिद्धान्त की सशक्तता अनुभव में उस समय तक नहीं आ पाई थी ।

पर इस बीच युद्ध अधिकाधिक भीषण रूप धकड़ता गया । उसकी संहार-शक्ति की नोबत यहाँतक पहुँची कि जिसकी सम्भावना भी नहीं थी । यहाँतक कि कल्पना

भी उसपर थरा जाय। और, जैसा कि मनुष्य-जाति के विषय में अक्सर होता है, ज्यो-ज्यो उस युद्ध की विभीषिका और व्यर्थता बढ़नी चली गई, वैसे-ही वैसे वह युद्ध साधन के बजाय स्वयं साध्य समझा जाने लगा। लोग उसके उन्माद से बच नहीं पाते थे। और जिसको पहले कारगर ज़रूरत के तौर पर अनिवार्य कहकर समर्थन करने की काशिश की जाती थी, वह अपनेआप में ही महत्वपूर्ण और सद् वस्तु समझी जाने लगी।

इस प्रकार की दो अतियों और दो उन्मादों के बीच सवि और समन्वय साधने-वाले एक व्यक्ति की आवश्यकता थी ही। लोग थे जो सहारक शस्त्रों की अतुल शक्ति के आगे अंधे होकर झुक पड़े और उस गह फिर मशीन से भी विवेक-हीन समूह-शक्ति की सत्ता के ताबे आ रहे। ठीक ऐसे समय आवश्यकता थी उस पुरुष की जो सहार के राक्षसी यंत्रों के आविष्कारकों से भी पंनी आविष्कारिणी वैज्ञानिक बुद्धि रखता हो, उनसे बढ़कर जो कुशल हो, और भर-सहार के घमासान में भरने-कटने के लिए अपनी प्रजाओं को भेज देनेवाले नेताओं से भी बड़ी-चड़ी सत्ता का जो अधी-श्वर हो।

सन्देह को अवकाश नहीं कि इतिहासकार जब पायेंगे तो वह व्यक्ति होगा मोहनदास करमचन्द गांधी। यूरोप, एशिया और अफ्रीका के तीन महाद्वीप आपस के सम्पर्क में आकर तीनों विक्षिप्त और विलुब्ध हो रहे थे। उस समय भारत ने इस पुरुष का दान अफ्रीका को दिया। अफ्रीका की उस भूमि पर यूरोप के विरोध में (यूरोप के पक्ष में कहना शापद ज्यादा सही हो) इस व्यक्ति ने अपनी प्रतिभा और सिद्धान्त का पहला व्यापक परीक्षण किया। 'पक्ष में' इसलिए कहा, क्योंकि गांधी की अहिंसा एक ऐसी नीति है जो स्वभाव से ही पक्ष की भाँति विपक्ष का भी हित-साधन करती और उसे सुनस्कार देती है। भारत में जन्म लेकर यह योग्य हो या कि गांधी का पहला प्रयोग-क्षेत्र अफ्रीका हो। क्योंकि अहिंसा की नीति की शिक्षा एक देश या जाति के लिए नहीं है, बरन् वह समूची मानवजाति का हक है। मानवसमाज की भिन्न-भिन्न जातियों के बीच ही नहीं, बल्कि सब सजीव प्राणियों के बीच वही (अहिंसा का) समन्वय अकेला सही और उचित सम्बन्ध है। वही दो के बीच की एक कड़ी हो सकती है। उपलब्धि का वही साधन है। अफ्रीका के बाव जिस भारत ने अपने पुत्र को बाहर भेजा था वही उसके अगले आन्दोलन और इतिहास की भूमि बना। उसी भारत देश के स्वातन्त्र्य-आन्दोलन में उसका व्यक्तित्व तप और साधना से तपता हुआ अब अपनी परिपूर्णता पर आता जा रहा है। भारत वह देश है, जिसे विश्व का प्रतीक कहना चाहिए। महाद्वीप ही उसे कहे। तमाम जातियों के लोगों और समस्याओं की विषमता का तनाव उस देश की परिस्थिति में प्रतिबिम्बित और शरीर में अनुभूत होता है। उसी देश को वह पुरुष अपना जीवन होमकर गिछा रहा है कि युग-युग से अपने

प्राचीन ऋषियों की शिक्षा के सार का सामूहिक रूप से प्रयोग करके किस प्रकार स्वतन्त्रता को पाना होगा।

भविष्य में क्या है, हम नहीं देख सकते। लेकिन काल अथवा देश के भी हिमाय से यह निराश होकर कहा जा सकता है कि मृत्यु और जीवन की शक्तियों का अन्तिम युद्ध स्थल यही होनेवाला है। एक ओर तो विनाश की शक्ति होगी जो सुसायेगी कि सम्पन्न और इसलिए भीरु लोगों के हाथ ही बहुमध्यक लागी की सुरक्षा और अधीनता है। दूसरी ओर विधायक निर्माणकारी शक्तियाँ होगी, जिनके नये प्रेम-मन्त्र से दीक्षित, व्यवस्थित, जागरूक और अनुशासन-बद्ध सैनिक होंगे। ये जाकर मंदान लेगे और मनुष्यजाति के हित में ऐसी एक अपूर्व विजय पायेंगे, जिसमें वरवादी किसीकी भी नहीं होगी। न धन की धरवादी होगी, न जन की। वह विजय 'सर्वोदय' की विजय होगी। हम नहीं कह सकते कि परिणाम कैसे घटित होगा। फल हमारे हाथ नहीं। लेकिन इतना कह सकते हैं कि सफलता हो कि असफलता हो, राह वही है और वही एक है। जो साधियों को साध चाहते हैं और उनकी हत्या नहीं चाहते, उनके लिए वही राह दूसरी नहीं है। और वह राह यदि प्रशस्त होकर आज हमारे आगे खुली हुई है, तो उसका श्रेय सबसे ज्यादा उस व्यक्ति को है जो आज दिन अपने जीवन के और मानवजाति की सेवाओं के शिखर पर खड़ा है।

: १४ :

गांधी : आत्मशक्ति की प्रकाश-किरण

कार्ल हीथ

[अध्यक्ष, इण्डिया कन्सिलियेशन ग्रुप, लन्दन]

मानवता के इतिहास में अवतारी पुरुष को सदा दुर्धर्म सधर्म का सामना करना होता है। किसीकी उक्ति है, "प्रकाश की भाँति मैं जग में आया हूँ।" किन्तु प्रकाश-पुत्रों को जगत् यह स्वागत नहीं देता, क्योंकि लोगों को प्रकाश से अधिक अन्धकार में डूबस रहता है। अज्ञान, अनीति और उपेक्षा ही जैसे रक्षक बनकर उन्हें बचाये रखते हैं। अवतारी पुरुष इसी सुरक्षा के खोल को भग करते और आत्मा की जय साधते हैं।

जीवनभर इस अन्धकार से जूझते रहना और अज्ञान और जड़ता से बची न हारना, बल्कि सदा उसे परास्त करते रहना—यही गांधी के चरित्र की विशेषता है। यही वजह है कि आज दिन हिन्दुस्तान की सर्वश्रेष्ठ आत्मा और प्रतिभा के रूप में ही उनकी दीप्ति फैली हुई नहीं है, बल्कि तमाम सहृदय मानवता के स्फूर्तिदाता ही आज वह है। जीवन उनका सतत साधना, तपस्या, आर्त-बान्तर प्रार्थना और अनेक

उपवासो के इतिहास से भरा है। ऐसा है, तभी वह इतने महान् है।

बहुत पहले ही मोहनदास करमचन्द गांधी ने धीरता के परम रहस्य को पा लिया था। टॉमस ए० कैम्पिस ने कहा है, "अपार धैर्य मे तू शांति प्राप्त कर।" गांधी ने सचमुच ही उस कयनी की सच्चाई को अपने भीतर अनुभूत किया है। जो गांधी के जीवन का अध्ययन करेगे, उनके सार्वजनिक कृत्यों और सम्बन्धों को बारीकी से देखेंगे, वे यह अनुभव किये बिना नहीं रह सकते कि दूसरों का आवेश या जोश उनके खून के दबाव को खतरनाक ढंग से बढ़ा दे सकते हैं, पर उनके सहज धैर्य को भग नहीं कर सकते। धैर्य उनमें अगाध है। विरोधियों के प्रति, विदेशी सरकार के प्रति, अनभिन्नता दर्शनार्थियों के प्रति और न्यय करने अनुयायियों और शिष्यों के प्रति—सबके प्रति धैर्य ! कुछ हो, घोरत उनका अखण्ड रहता है। यह अनन्त धैर्य-धन उनका स्वत्व है, और दाहण-से-दाहण घटना या जघन्य-से-जघन्य अपराध भी उनके धीरभाव को विचलित नहीं कर सकता। कदाचित् कारण यह हो कि भीतर आत्मा में उनके अखण्ड निष्ठा है कि प्रभु के राज्य में अमंगल की तो कभी कोई आसका ही नहीं हो सकती। और मोहनदास करमचन्द गांधी उस प्रभु के राज्य के ही सेवक हैं।

और फिर वह सत्य के अनन्योपासक है। भूल से ऊँचे नहीं है और जब-जब भूल उनसे बन पड़ी है अनुपम साहस के साथ उसे उन्होंने स्वीकार किया है और सार्वजनिक आँखों के समक्ष उसका प्रायश्चित्त किया है। तीन वर्ष हुए, उन्होंने लिखा था, "अब तो मेरे ईश्वर का एक ही नाम और खतान है। वह है सत्य। उससे सम्पूर्णता में और नहीं जानता।" ध्यान रहे कि इस ईश-धर्म में वह काल्पनिक सच्चाइयों की दुनिया में नहीं जा रमते हैं, बल्कि इस भाँति उनकी कर्मनिष्ठा ही बढ़ती है। "ऐसे धर्म के तई बफादार रहने में व्यक्ति को जीव-भाव को सतत मेवा में अपने को खो देना होता है।" और यह सेवा ऊपर से की जानेवाली दया-दान की सेवा नहीं है। "यह तो अपनी क्षुद्र बूँद को जीवन के अपार महासागर में पूरी तरह डुबोकर मिला देना है।" "जीवन के सब विभाग उस सेवा में समा जाने चाहिएँ।" इस भाँति सत्य उनके लिए एक जीवन्त यथार्थ है।

और इसलिए गांधी ने जीवन का एक महासमन्वय देख पड़ता है। आत्मिक ऊँचाई में वही अलग जाकर वह नहीं खाड़े होते। यदि वह महात्मा हैं तो सर्वसाधारण के बीच सर्वाति साधारण भी हैं। दृष्टि स्पष्ट, ईश्वर के समक्ष मौन-मान, सच्चे अर्थ में विनय-नम्र, ऐसा यह प्रार्थना और अध्यात्म और ईश-लग्न का पुरुष एक ही साथ शरीर के काम में भी अनयक और चुस्त है। सबके प्रति सुलभ, अतिशय स्नेही और अत्यंत विनोदी। यह व्यक्ति मानव सघर्ष के विकट घमासान में भी अचल रहता है। वह नैतिक है और धार्मिक भी। पर उसी तरह सामाजिक भी वह है और राजनीतिक भी।

कभी वह रहस्य की भांति दुरधिगम्य भी हो जाता है। लेकिन आत्मा उसकी विमल है और भीतर तक उसमें स्वच्छता और सरलता है। अन्दर का मेल कोने-कोने में से उन्होंने धोया है सो उस निर्मलता को प्यार ही अब किया जा सकता है। अन्दर मेल नहीं ता बाहरी परिग्रह भी उनके पास नहीं ही जितना है। और इसके लिए भी लोग उन्हें प्रेम किये बिना नहीं रह सकते। उनके अपने या अन्य देश के स्त्री-पुरुष बड़ी सत्पत्नी में दूर-दूर से लिखकर उनके पास पहुँचते हैं। स्वयं के नाम सब उन्होंने तज दिया है। धोरो की भांति कुछ न रखकर सब पा जाने का आनन्द वह जानते हैं। और समूची जीव सृष्टि की सेवा के अर्थ सत्य-राघ म अपने को गला देनेवाले वह गांधी लक्ष-लक्ष स्त्री-पुरुषों के आश्वासन और आकांक्षा के केन्द्र पुरुष बन गये हैं।

दक्षिण अफ्रीका में अपने राष्ट्रवासियों के हक से उनके मुद्द की याद कीजिए, हिन्दू-सनातन के अस्तुष्य जन हरिजनो के अर्थ उनके आन्दोलन का स्मरण कीजिए, भारतवासियों के और उनकी स्वतन्त्रता के लिए किये गये प्रयत्नों की देखिए, दीन दुर्बल और शिक्षाहीन छिन्दे-छाये हिन्दुस्तान के गांवों की देखिए, सरहद के पठानों और कबीलेवालों की देखिए, मुस्लिम-हिन्दू ऐक्य या राजवदियों के छुटकार की बात लीजिए, सब स्थिति जाति, सम्प्रदाय और धर्म के स्त्री-पुरुषों की देखिए, गोरक्षा की भावना से व्यक्त होनेवाले पशु-जगन् का लीजिए—गांधी का कर्म सब जगह व्याप्त दोखेगा। असत के प्रति अहिंसात्मक प्रतिरोध की शिक्षा उनकी जीवित और अमर देन है। दुनिया में जो लोग युद्ध की जिघांसा से युद्ध करने में प्रवृत्त हैं, उन सबको उनके उदाहरण में आश्वासन और दिशा दर्शन प्राप्त होगा। अपने समूचे और विविध लौकिक कर्म के बीच उस व्यक्ति ने किसीके प्रति असद्भावना को प्रथम नहीं दिया। सदा बिचार पर विजय पाई और इस भांति "भारत के और मानवता के एक विनम्र सेवक कहलाने के गौरव का अधिकार पाया।

सत्याग्रह के सिद्धान्त को ऐसी अटूट निष्ठा के साथ उन्होंने पकड़े रक्खा, यह योग्य ही है, क्योंकि वह स्वयं आत्म-शक्ति के अवतार है। अपनी सब सामाजिक और राजनीतिक प्रवृत्तियों के ऊपर और भीतर होकर प्रवृत्त भाव में सदा अध्यात्मकीन पुरुष ही रहे हैं। अब आधुनिक युग के लिए उनकी वाणी चुनौती की वाणी हो उठी है, यही उनका अगम महत्व है। इसीम उनकी अवतारता सिद्ध है। जेल में रहकर; त्रस्त होकर, उपेक्षा, अपमान और उपहास के शिकार बनकर भी वह मानवता की माप में हर पग पर ऊँचे ही ऊँचे चढ़ते गये।

मनुष्या तथा अन्य जीवधारियों के प्रति उनकी मानवी सहृदयता के कारण इस धरती पर हर देश और हर जगह उन्हें अनेक स्नेही बन्धु प्राप्त हुए हैं। उनके मन में हिन्दू या मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, पारसी, यहूदी या और धर्मों के लोगों के बीच कोई भेद-भाव नहीं है। सब उनके मित्र हैं और सत्य के अनन्त परिवार के सब अंग हैं।

और सत्य ही ईश्वर हैं। मनुष्य अथवा मनुष्येतर, अर्थात् प्राणिमात्र के प्रति अहिंसा की भावना उनके जीवन का नियम है। इस युग के लिए सभ्य और परिपूर्ण मानवता का उन्हे नमूना समझिए।

: १५ :

मुक्ति और परिग्रह

विलियम अर्नेस्ट हॉकिंग, अध्यापक दर्शनशास्त्र

[हारवर्ड-यूनिवर्सिटी]

आदमी पाना है कि आस-पास की अपनी स्थिति और अपने समाज-संबंधों के कारण गोश कर्म और विचार को उसकी स्वतंत्रता पर बाधा पहुँचती है। यह समस्या सबकी समस्या है। और गांधीजी के जीवन में जबकि इस युग के लिए अनेक शिक्षाएँ हैं, तब इस समस्या का समाधान भी वहाँ है।

अपनी समस्याओं पर जब हम विचार करते हैं, तो उसका सबसे पहला असर शायद यह होता है कि हम उसके दोषों या त्रुटियों से अपने को सावधान करले, हमारी पारंपरिक जातियों में शिक्षित मनुष्य के लिए यह कठिन होजाता है कि वह अमुक पथ (चर्च) से अपना सम्बन्ध स्थापित करे, क्योंकि वह प्रचलित मत-पथों में उनके किसीके स्वरूप को स्वीकार नहीं कर सकता, या कि किसी राजनैतिक दल का सदस्य बने, क्योंकि सभी दल बेवकूफी और स्वार्थ-भावना से कलकित हैं। दर्शन-शास्त्र के अध्ययन में एक दृढ़ प्रवृत्ति यह होती है कि मनुष्य को इन बन्धनों से अलग करदे और कुटुम्ब तथा देश के बन्धनों से भी विमुक्त करदे। दार्शनिक को किसी खास पक्ष का होना ही नहीं चाहिए, उसे पक्ष-विपक्ष से परे होना चाहिए। धर्म इस अनासक्ति को एक कदम और आगे ले जाता है। वह सर्वात्मा से ऐक्य स्थापित करता है, सर्वात्मक्य की ओर लेजाता है, भेद-बुद्धियाँ नष्ट हो जाती हैं और सिद्धान्ततः मनुष्य विस्वात्मा होजाता है। साथ ही, वह किसी उपयोग और अर्थ का भी नहीं रहता है।

गांधीजी परमात्मा को सत्य के नाम से पुकारते हैं। यह सिद्धान्त विश्वव्यापी है और तन्मात्र धार्मिक मतों से परे है। वह उसे राम भी कहते हैं। राजनीति में भी उनका मार्ग उस एकात्मदेव की ओर ही जाता है। ऐसे लोगों के साथ भी चर्चा का घरातल उन्हे सुलभ है, जो नीति और हित में उनसे बहुत अधिक मतभेद रखते हैं। यह होते हुए भी उनका एक पक्ष है। लगभग यह कहा जा सकता है कि अपना पक्ष स्वनः वह है। वह प्रस्तुत प्रश्नों की व्याख्या करते हैं, निश्चित योजनाएँ बनाते हैं, 'हरिजन' और दूसरे पत्रों द्वारा उन प्रश्नों के पक्ष में चर्चा चलाते हैं। उपयोग-हीनता

और अर्थहीनता के इस तरह वह बिलकुल उलटे हैं ।

संक्षेप में, गांधीजी ने यह बतला दिया है कि सन्यासी की अनासक्ति राजनेता की सफलता को किस प्रकार योग दे सकती है, और सांसारिक कर्तव्य की स्वीकृति और अनेकविध समारम्भों का ग्रहण किस प्रकार अधिक-से-अधिक वैयक्तिक स्वाधीनता में योग दे सकता है । क्योंकि मैं जितने लोगों से मिला हूँ उनमें से किसी के विषय में मझ पर ऐसा प्रभाव नहीं पड़ा कि उसने नित्य के जीवन में कर्तव्य-कर्म को उतनी परिपूर्ण सहृदयता के साथ करना चाहा हो और उसके करने में अत्यन्त आनन्द प्राप्त किया हो ।

उनके लिए तो यह एक साधारण-सी बात है, पर यही एक वस्तु स्पष्टता के अभाव में सत्तार के अधिकांश क्लेशों और अज्ञानियों की जड़ बनी हुई है । हमारे खुद के अमेरिकन समाज में ऐसे आदमी भरे हुए हैं जो अपने आश्रितों और उनके प्रति किये जानेवाले कर्तव्यों से भागकर स्वाधीनता-प्राप्ति का प्रयत्न कर रहे हैं, जिस कोट्टुम्बिक बन्धन को स्वीकार कर धुके उसे तोड़कर स्वाधीनता के लिए आतुर हो रहे हैं । अधिक क्या कहे, राजनीतिक कार्यों के सघर्ष से, संगठित धर्म से, और अन्त में स्थानीय स्थापनाओं सहित अपने खुद के प्रयोग-सिद्ध अस्तित्व से भागकर स्वाधीनता के लिए छटपटा रहे हैं । लोक-सत्ता स्खलित हो जाती है, क्योंकि उसकी कल्पना ऐसे व्यक्तियों की सेवा से वंचित रह जाती है जो उसके भार को सबसे अच्छी तरह वहन कर सकें । 'अपूर्ण' की महिमा हमें अब भी सीखनी है, जो विशेष या व्यक्त और स्थानीय वस्तुओं को अलग रखकर छूटना चाहता है, वह स्वयं अस्तित्व से मुक्ति प्राप्त कर रहा है, क्योंकि अस्तित्व सविशेष है ।

गांधीजी ने हमें यह सिखलाया है कि अपनी आत्मा की महत्ता के अतिरिक्त दूसरी कोई महत्ता नहीं है । अपने आत्मिक प्रान्त के अन्दर जो सार्वलौकिकता है उससे परे कोई सार्वलौकिकता नहीं है । स्वपरिग्रह से मुक्ति ही सच्ची मुक्ति है, अन्य मुक्ति नहीं ।

: १६ :

गांधी की महत्ता

पादरी जॉन हेंस होम्स

[दि कम्प्यूनिटी चर्च, न्यूयार्क, अमरीका]

कोई दोम वयं हुए होंगे, जब मैंने अमरीका की जनता के आगे यह घोषित किया था कि "गांधीजी सत्तार में सबसे महान् पुरुष हैं ।" उन दिनों मेरे देशवासी

गांधीजी के बारे में कुछ नहीं जानते थे—हमारे पाश्चात्य सप्ताह में उनके नाम ने तब मुश्किल से ही प्रवेश पाया होगा। किन्तु उस समय से उनका नाम इतना अधिक प्रसिद्ध होगया जितना कि किसी भी महापुरुष का हो सकता है, और अमरीकावासी इस बात को जानते हैं कि जब मैंने गांधीजी को सबसे महान् कहा तब मैंने यह ठीक ही कहा था। गांधीजी की महत्ता इस युग में साधारणतः ऐसी किन्हीं वस्तुओं के कारण नहीं है जिसकी कि महान् प्रतिभा या पराक्रम के अन्दर गणना होती हो। न तो उनके पास बड़ी-बड़ी सेनाएं हैं और न उन्होंने किसी देश को ही जीता है। न वह कोई उच्च-पदासीन राजनीतिज्ञ ही हैं जो राष्ट्रों के भाग्यविधाता बहे जा सके। वह कोई दार्शनिक ऋषि भी नहीं हैं—उन्होंने न कोई बृहत् ग्रन्थ लिखे हैं, न बड़े-बड़े काव्य।

उनमें तो स्पष्ट और विशिष्ट व्यक्तित्व के वे तत्त्व ही नहीं हैं जो कि मनुष्य को वाह्यतः कम-से-कम एक प्रभाव डालनेवाला नेता बनाते हैं। उनकी प्रतिभा तो आत्म-शक्ति के क्षेत्र में सन्निहित है। यह उनका आत्मबल ही है जिसने उन्हें अनुपम प्रभाव और नेतृत्व के पद पर बिठा दिया है, और 'भी वस्तुओं को प्राप्त कराया है जो इतिहास के षोडशे बड़े-से-बड़े व्यक्तियों को छाड़कर बाकी सबकी पहुँच और गति से परे है।

भारत को अन्त में जब स्वतन्त्रता प्राप्त हो जायगी तब उसका श्रेय जितना गांधी को दिया जायगा उतना किसी दूसरे भारतीय को नहीं मिलेगा। यह भी श्रेय गांधी को ही मिलेगा कि उन स्वाधीनता के योग्य अपने देशवासियों को उन्होंने बना दिया है और ऐसा उन्होंने उनकी अपनी संस्कृति का पुनरुद्धार करके, आत्मगौरव और आत्मसम्मान की भावना को उनके अन्दर जागृत करके, उनमें आत्मनियंत्रण का अनुशासन विकसित करके, अर्थात् उन्हें आध्यात्मिक तथा राजनीतिक दृष्टि से मुक्त करके, किया है। इसके अलावा, उनका एक महान् कार्य अस्पृश्यों के उद्धार का है—यह अकेला काम ही उनका इतना महान् है जो मानव जाति के उद्धार के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा। फिर, गांधी के जीवन को श्रेष्ठ वस्तु अहिमात्मक प्रतिरोध का सिद्धान्त है, जिस सिद्धान्त को उन्होंने विश्व में मुक्ति, न्याय और शान्ति प्राप्त करने के लिए एक श्रेष्ठ आध्यात्मिक बल में परिणत कर दिया है। दूसरे मनुष्यों ने जिस वस्तु को एक व्यक्तिगत अनुशासन के रूप में सिखलाया है गांधी ने उसे विश्व की मुक्ति के लिए एक सामाजिक कार्यक्रम के रूप में परिणत कर दिया है।

अनीत युगों के तमाम महापुरुषों से गांधी महान् हैं। राष्ट्रीय नेता के रूप में वह अफेंड वालेस, वॉशिंगटन, कोमिन्सको, लफाइट्री की कक्षा में आता है। गुलामों के ताना के रूप में वह क्लार्कसन, विल्वरफोर्स, गंभेजन, लिंकन आदि की भाँति महान् हैं। धिस्ती धर्मग्रन्थों में जिसे अप्रतिरोध और इससे भी सुन्दर शब्द अमोघ 'प्रेम' कहा है उसकी शिक्षा देनेवाले के रूप में वह सन्त फ्रांसिस, थॉरो और टात्सटाय की श्रेणी में आता है। सर्व युगों के महान् धार्मिक पैगम्बरों के रूप में वह लाओज़े, बुद्ध,

जरथुस्त और ईसा का समकक्ष माना जा सकता है। सर्वश्रेष्ठ रूप में वह मानव है, जिसके विषय में मैंने 'री-थिंकिंग रिलीजन' नामक अपनी हाल की पुस्तक में लिखा है।

“वह विनम्र है, सौम्य है और निर्दोष है। उसकी विनोदशीलता अदम्य है, उसकी सादगी मोहक है। उसकी सकल-शक्ति को कोई दबा नहीं सकता, उसका साहस मानो लोहा है, फिर भी उसके तौर-तरीके शान्त और मृदु होते हैं। उसकी सच्चाई पारदर्शक स्फटिक मणि के समान है, सत्य के प्रति उसकी निष्ठा अनुपम है, खोने के लिए कुछ न होने के कारण उसकी स्थिति ऐसी है कि उसपर आक्रमण नहीं किया जा सकता। हरक बस्तु का खुद जिसने उत्सर्ग कर दिया है वह दूसरो से किसी भी वस्तु को त्यागने के लिए कह सकता है। उसके जीवन से सासारिक विचार, सासारिक महर्वाकांक्षाएँ और चिन्ताये वभी की विलुप्त ही चुकी हैं। उसमें तो सत्य और प्रेम ही सार्वत्रिक स्थान पाये हुए हैं। गांधी कहता है, “मेरा धर्म-सिद्धान्त ईश्वर की सेवा है और इसलिए मानव-जाति की सेवा है और सेवा का अर्थ है शुद्ध प्रेम।”

: १७ :

दक्षिण अफ्रीका से श्रद्धांजलि

आर एफ़ अल्फ्रेड होर्नले, एम ए., डी लिट्

[विटवाटरस्वर्ड युनिवर्सिटी, जोहन्सबर्ग, दक्षिण अफ्रीका]

गांधीजी की भावना और उनके आदर्शों के प्रति जहाँ ससारभर से श्रद्धांजलि अर्पित हो, वहाँ कम से-कम एक तो दक्षिण अफ्रीका के श्वेतांग की ओर से भी होनी उचित ही है।

कारण कि पहले-पहल सन् १८९३ में दक्षिण अफ्रीका में ही गांधीजी ने भारतीयों का नेतृत्व किया। रोज़ युनिवर्सिटी जाते आते रास्ते में पड़नेवाला जोहन्सबर्ग का यह 'किला' ही उनके और उनके साथियों का पहला कारागार बना। ट्रान्सवाल की स्वायत्त शासन के अधिकार मिल जाने पर उपनिवेश-मन्त्री के पद पर नियुक्त जनरल स्मट्स से ही उन्होंने दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतीयों के भविष्य के सम्बन्ध में समझौते की वानचीन चलाई। निष्क्रिय प्रतिरोध की मुक्ति को पहले-पहल बरतने और उसके परीक्षण का पहला अवसर भी उनको यहाँ ही मिला, जब कि उन्होंने वर्गभेद के आधार पर बनाये कानूनों के खिलाफ़ उठाये गये भारतीयों के आन्दोलन में उसका प्रयोग किया। दक्षिण अफ्रीका के बहुत से भारतीयों के घरो और सब सार्वजनिक इमारतों में 'महात्मा' का चित्र अपना एक खास आदर का स्थान

रखना है। दक्षिण अफ्रीका में आज भी वे स्त्री-मूर्त—श्वेतांग और भारतीय दोनों—जोड़ित हैं, जिन्होंने उस सपने में गांधीजी का साथ दिया था और कष्ट सहन किये थे। उनका एक पुत्र वहीं रहकर 'इंडियन ओपिनियन' नामक पत्र का सम्पादन करता है। इस पत्र की स्थापना गांधीजी ने ही की थी, और यह अब भी नेटाल की 'फिनिकस' बस्ती से प्रकाशित होता है। यह बस्ती भारतीयों की उन्नति के सम्बन्ध में गांधीजी की कुछ आशाओं की पूर्ति के उद्देश्य से बसाई गई थी। आध्यात्मिक और राजनीतिक नेतृत्व के अपने स्वाभाविक गुणों का अपनी जन्मभूमि और उसके निवासियों पर प्रयोग आरम्भ करने से पहले गांधीजी ने, निश्चय ही, दक्षिण अफ्रीका के इतिहास में एक ऐसा म्यान बना लिया था जिसे कभी भी भुलाया नहीं जा सकता।

मैंने गांधीजी के एक श्वेतांग मित्र और समर्थक जोहन्सबर्ग के ईसाई पादरी रेबरेण्ड जोमेक जे० डोक द्वारा लिखित उनका जीवन-चरित्र (M K Gandhi An Indian Patriot in South Africa) पढ़कर यह जानने की कामना की कि अपने देश-वासियों पर उनके नियंत्रण और बहुत-से श्वेतांग विरोधियों पर भी उनके गहरे प्रभाव का रहस्य क्या है। मुझे नीचे लिखी बात विशेष जान पड़ी।

पहली बात उनकी मानसिक शक्ति है। इस इच्छा-शक्ति द्वारा ही वे अहिंसा के प्रति अपनी श्रद्धा को ऐसे उत्तेजना के वातावरण में भी अमल में लाते रहे हैं, जब कि और आदमी लड़ने के लिए तैयार हो जाते और हिंसा के मुक्ताविले में हिंसा का ही प्रयोग करते। अपनी शक्ति की उच्चता प्रदर्शित करने और इस 'कुली' का शाति का सबक पढ़ाने का यही तरीका समझनेवाले श्वेतांगों ने उन्हें कितनी ही बार ठोके मारी, घुने मारे और गालियाँ भी दी, लेकिन उन्होंने कभी धल प्रमाण से बदला नहीं लिया। प्रेसिडेंट क्रूपर के घर के सामने की पटरी पर ठोकर मारनेवाले कुली पर मुकदमा चला देने से उन्होंने इन्कार कर दिया; और जब उनके अपने देश-वासियों में से उनके विरोधियों ने ही उनपर इतना बर्बर हमला किया कि वे लहलुहान और असहाय हो गये, तब भी उन्होंने पुलिस से यह प्रार्थना की कि वह उनके हमलाबरा को सजा न दें। गांधीजी ने कहा—“अपनी दृष्टि से वे ठीक कर रहे थे, और उनपर मुकदमा चलाने की मेरी तनिक भी इच्छा नहीं है।” स्पष्ट ही दूसरों पर उनके नियंत्रण की पहली कुंजी उनका आत्म-नियंत्रण ही है।

दूसरी बात यह है कि गांधीजी दक्षिण अफ्रीका के प्रवासियों का दक्षिण-अफ्रीका में उन्हें अस्पृश्य बनानेवाले कानून के विरुद्ध उकसाने और उसके विरोध के लिए उन्हें संगठित करते हुए केवल अधिकार माँगकर ही सतुष्ट नहीं थे, भारतीयों में आत्ममग्नता की भावना पैदा करने की ओर उनका अधिक ध्यान था। उन्होंने देखा कि ये भारतीय निरसाह और उदासीन हैं, अपने कष्टों का विरोध तक नहीं करते। गांधीजी ने उन्हें उनकी मर्दानगी का स्मरण दिलाया और मर्दानगी को ही श्वेतांगों

से अपने साथ मनुष्यता का व्यवहार करने की मांग का नैतिक आधार बताया। रेवरेण्ड डोक के शब्दों में, भारतीयों के भविष्य के सम्बन्ध में उनकी कल्पना यह थी "दक्षिण अफ्रीका की भारतीय जाति, जिसके हित और आदर्श एकसमान हों, जो शिक्षित हों, नैतिक हों, विरासत में मिली अपनी प्राचीन सस्कृति की पात्र हों, जड़ से भारतीय रहते हुए भी उसका व्यवहार ऐसा हों कि दक्षिण अफ्रीका अपने इन पूर्वोक्त निवासियों पर अभिमान कर सके, और इन्हें वे अधिकार दे जो हरेक ब्रिटिश प्रजाजन को मिलने चाहिएँ।"

फिर गांधीजी यह भली भाँति जानते थे कि नेतृत्व के साथ विनय का मेल कैसे होता है। अपेक्षाकृत अधिक धनी भारतीयों के सामने उन्होंने लोक-भावना का आदर्श पेश किया, उन्हें जो कुछ मिलता था वह उसे खुशी-खुशी भारतीयों के हित में खर्च कर दिया करते थे। गरीबों में वे गरीब की भाँति रहते थे। अपनी रियासत के प्रधानमन्त्री के पुत्र पद, प्रतिष्ठा, अधिकार, और मुशिक्षा में पले परिवार के लड़के, इंग्लैंड में बैरिस्टर बनकर आये, शिक्षित यूरोपियों के साथ बराबरी का अधिकार रखनेवाले होकर भी उन्होंने अपने लिए कोई विशेष रियासते कभी नहीं चाही, दूसरे भारतीयों के साथ होनेवाले वर्ताव को ही पसन्द किया। कानून के अनुसार हरेक हिन्दुस्तानी को लाजिमी था कि वह अपनी पहचान के लिए सास रजिस्टर में अपना अगूठा लगाये। वह इसमें बरी किये जा सकते थे, लेकिन अपने भाइयों के सामने उदाहरण रखने के लिए उन्होंने सबसे पहले इसका पालन करना उचित समझा।

चौथी बात, हिन्दुस्तानियों को अधिकार मिलने का आन्दोलन करते हुए भी उन्होंने इस बात पर हमेशा जोर दिया कि जो नागरिक अधिकारों का पात्र होने का दावा करते हैं उन्हें चाहिए कि वे अपने इस दावे को सिद्ध करने के लिए, आवश्यकता पड़ने पर, किसी प्रकार की मांग न होते हुए भी स्वेच्छा से अपना पाटे अदा करें। यही कारण था कि उन्होंने बोअर-युद्ध के समय मेटाल की लड़ाई में स्ट्रेचर उठाने के लिए हिन्दुस्तानियों की एक सैनिक टुकड़ी बनाने की इच्छा प्रगट की। प्रस्ताव पहले नामजूर हुआ, लेकिन पीछे मान लिया गया और हिन्दुस्तानियों ने अमूल्य सेवाएँ की। जनरल रोबर्ट्स का पुत्र सलत घायल हुआ। उसे हिन्दुस्तानियों ने ही सात मील पर शीवेली के अस्पताल में पहुँचाया। १९०६ के जुलू-युद्ध में यही सेवा हिन्दुस्तानियों ने फिर की। और सन् १९०४ में जोहन्सबर्ग में महामारी फैलवाने के अवसर पर अगर गांधीजी उद्यम न करते तो जितनी प्राणहानि हुई उससे कहीं अधिक होती।

जातीय संघर्ष के उस वातावरण में 'निष्पक्ष प्रतिरोध' के अरथ का प्रयोग करनेवाले इस पुरुष के ये गुण और ये भावनाएँ थीं। उनसे ही अपने शब्दों में, उसने भारतीय विवेक-बुद्धि की समझ में न आनेवाले कानून को मानने से इन्कार कर दिया, लेकिन एक कानून-भावन्त प्रजाजन की भाँति कानून द्वारा दिये गये दण्ड को भुगता।

वह जानते थे और कहते थे कि 'निष्क्रिय प्रतिरोध' से उनका आदर्श आघात ही स्पष्ट होता है। "उससे मेरा सारा उद्देश्य व्यक्त नहीं होता। रीति तो उससे प्रगट होती है, पर जिस 'प्रयोग' का यह केवल एक अंशमात्र है, उसकी ओर कोई निर्देश प्राप्त नहीं होता। सच्ची खूबी, और वही मेरा उद्देश्य, तो यह है कि बुराई के बदले भलाई की जाय।" इस भावना के अनुसार ही उनका यह दावा था कि अपने शत्रुओं से प्रेम करना तथा अपने द्वेषी और पीड़कों की भी भलाई करने की ईसा की आज्ञा हिन्दुस्तानी दूरदर्शी विचारकों और धर्मप्रचारकों के वचनों के सर्वथा अनुकूल ही है।

मैं यहाँ 'निष्क्रिय प्रतिरोध' के 'अस्र' के सम्बन्ध में कुछ अपने विचार प्रगट करदूँ। यह तो साफ है कि यह एक स्थायी सिद्धान्त बन गया है। लोगों ने इसे कई प्रकार से प्रयुक्त किया है और करेंगे। व्यक्ति (जैसे कि युद्ध के समय इसके नैतिक विरोधी) व्यक्ति के रूप में इसका प्रयोग कर सकते हैं। राजनीतिक और सैनिक दृष्टि से असमर्थ समूह इसको एकमात्र सम्भव साधन समझकर इसपर निर्भर रह सकते हैं। नैतिक शस्त्र के रूप में (शारीरिक शस्त्र के रूप में नहीं), यह राजनीतिक युद्ध के घरातल को ऊँचा उठा देता है। इसके प्रयोग करनेवाले मोढ़ा स्वेच्छा से दुःख और अपमान सहते हैं और उन्हें आत्मनिग्रह और इच्छा-शक्ति असाधारण पैमाने तक बढ़ानी पड़ती है। इसकी सफलता का प्रकार यही होता है कि जिनसे विरुद्ध इसका प्रयोग किया जाता है उनकी विवेक-बुद्धि पर इसका असर पड़ता है। 'सच्चाई उनमें ही है', यह विश्वास उनका जाता रहना है। शारीरिक शक्ति व्यर्थ हो जाती है, तथा दुःख देने में अपना हिस्सा अनुभव करने से उत्पन्न पाप की एक प्रकार की भावना उनके दरादे को ढीला कर देती है। विवेक-बुद्धि की न माननेवाले विरोधियों पर भी इस शस्त्र का कोई सफल प्रभाव हो सकता है, इसमें मुझे सन्देह है। जैसा कि समाचारपत्रों में प्रकाशित हुआ है, गांधीजी ने जर्मनों के यहूदियों की 'निष्क्रिय प्रतिरोध' से अपनी रक्षा करने की सलाह दी है। यदि सलाह पर अमल किया जाय, तो शायद यही पता लगेगा कि नाज़ी बंबडर सेनाओं और उसके नेताओं की विवेक-बुद्धि पर ऐसे नैतिक दबाव का कोई असर नहीं होता।

और भी। निष्क्रिय प्रतिरोध एक नैतिक अस्र है। समूहरूप से लोगों के लिए यह प्रायः सम्भव नहीं होगा कि वे निस्वार्थ भाव के उस क्षेत्र तक पहुँच सकें, अथवा वहाँ पहुँचकर स्थिर रह सकें, जिस क्षेत्र पर पहुँचने से मनुष्य की स्वभावजन्य कलहेच्छा, शोध, बदले में बुराई करने की प्रवृत्तियाँ, घृण्य, क्षमा और प्रेम में बदल जाती हैं। इस 'रीति' को उस 'प्रयोग' से जुदा करके, जिसका कि यह केवल एक अंशमात्र है, बरता ही नहीं जा सकता। अर्थात्, अपने शत्रुओं के प्रति प्रेम और बुराई के बदले में भलाई करने की भावना के बगैर इसका प्रयोग हो नहीं सकता।

मिलकर काम करने के लिए नेता चाहिए ही, लेकिन मनुष्य-समूह को इतना

ऊँचा उठाने के लिए नेता की और भी अधिक आवश्यकता है। और वह नेता साहस तथा नैतिक दृढ़ता की साक्षात् मूर्ति ही होना चाहिए, ताकि बड़े-बड़े प्रचार-साधनों या बवडर सेनाओं की बन्दूकों की सहायता के बिना भी वह अपने अनुयायियों को अपने आचरण और उपदेश के बल से ही साहसी और दृढ़निश्चयी बना सके। ऐसे नेता विरले ही होते हैं। जीवनभर में एक बार भी गांधी पैदा नहीं हुआ करता।

दक्षिण अफ्रीका के श्वेतान्त उन दिनों गांधीजी की आलोचना इसलिए करते थे कि उनको डर था कि हिन्दुस्तानियों के निष्क्रिय प्रतिरोध की तकल यहाँ के आदि-निवासी भी करेंगे। दक्षिण अफ्रीका को 'श्वेतान्त' का देश बनाने के लिए इन आदि निवासियों को कानून और चलन दोनों से हिन्दुस्तानियों की स्थिति से भी नीचे रखा जाता था और रखा जाता है। गांधीजी उत्तर देते थे कि विद्रोह, हिंसा और खूनखराबी से तो नैतिक असन बेहतर ही है, इसका प्रयोग ही न्याययुक्त प्रयोजन का सूचक है। इसलिए यदि आदि-निवासियों का ध्येय न्याययुक्त है और निष्क्रिय प्रतिरोध के तरीके का प्रयोग करने के लिए सभ्यता की उचित मात्रा तक वे पहुँचे हुए हैं, तो वे वस्तुतः 'मत्त' देने के अधिकारी हैं और दक्षिण अफ्रीका के अनेक जातीय ताने-बाने में उन्हें अपना स्थान नियत करने के लिए आवाज उठाने का पूरा अधिकार है।

ये तीस साल पहले की बातें हैं। दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानी आज भी गांधीजी के नेतृत्व को याद करते हैं, पर जबसे वह हिन्दुस्तान छोड़े, आज तक उन्होंने निष्क्रिय प्रतिरोध के असन का प्रयोग नहीं किया। और आदि-निवासी, अनेक बाधाओं की मौजूदगी में भी पर्याप्त आगे बढ़ गये हैं। लेकिन कोई निश्चयपूर्वक यह नहीं कह सकता कि वे इस असन का प्रयोग कभी करने के लिए तैयार होंगे भी तो जब तक। वे निरस्त्र हैं, परस्पर मतभेद हैं, और असहाय हैं, इसलिए अन्त में यही असन उनका एकमात्र सहारा है। परन्तु आदिनिवासी गांधी का दिन अभी नहीं निकला। इसके निकलने की कभी जरूरत भी न हो, परन्तु दक्षिण अफ्रीका के अल्पसंख्यक गोरे सदा इसी कोशिश में रहते हैं कि यहाँ के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र की उन्नति में किसी गैर की पहुँच हो ही न सके। इन कोशिशों का सम्भव परिणाम यही होगा कि यहाँ की सब गैर-यूरोपियन जातियाँ इनके विरुद्ध संगठित हो जायेंगी। उस अवस्था में हो सकता है कि हिन्दुस्तानियों में से कोई गांधीजी के पद-चिन्हों पर चलता हुआ, गैर-यूरोपियनों के निष्क्रिय प्रतिरोध के मोर्चे का नेतृत्व करे।

गांधीजी दक्षिण अफ्रीका में

ऑनरेबल जान एच. हाफमेयर, एम. ए.

[चांसलर, बिटवाटरसैंड यूनिवर्सिटी]

प्रसिद्ध मिशनरी मुत्सद्दी डा० जोहन आर० मांट इस बार ताम्बरम्-क्वार्क्वेस के लिए हिन्दुस्तान गये। सेगाव गये तो उन्होंने महात्मा गांधी से मेट की। वहाँ उन्होंने जो प्रश्न गांधीजी से पूछे उनमें से एक यह था—“आपके जीवन के वे अनुभव क्या हैं, जिनका सबसे विधायक प्रभाव हुआ?” इसके उत्तर में यहाँ महात्माजी के उत्तर को ही उद्धृत कर देना ठीक होगा।

“जीवन में ऐसी अनेक घटनाएँ हुई हैं। लेकिन इस समय मुझे एक घटना खास-तौर पर याद आती है, जिसने कि मेरे जीवन का प्रवाह ही बदल दिया। दक्षिण अफ्रीका पहुँचने के सात दिन बाद ही वह घटना घटी। मैं वहाँ निरे जीविकोपार्जन और स्वार्य-साधन का उद्देश्य लेकर गया था। मैं अभी लड़का ही था और कुछ धन कमाना चाहता था। मेरे आसामी ने अचानक मुझे प्रीटोरिया से डरवन जाने के लिए कहा। यह यात्रा सुगम नहीं थी। चार्ल्सटाउन तक रेल का रास्ता था और जोहन्सबर्ग तक बाधी में जाना पड़ता था। रेलगाड़ी का मैंने पहले दर्जे का टिकट लिया, पर बिस्तर का टिकट मेरे पास नहीं था। मेरिक्सबर्ग स्टेशन पर जब बिस्तर दिये गये, तो गाड़ें ने मुझे बाहर निकाल दिया और माल के डब्बे में जा बैठने के लिए कहा। मैं नहीं गया और गाड़ी मुझे सर्दों में बाँपता छोड़कर चल दी। यहाँ वह विधायक अनुभव आता है। मुझे जानतक का डर था। मैं अँधेरे वेस्टिंगहम में घुसा। कमरे में एक गौरा था। मुझे उसमें डर लगा। मैं सोचने लगा कि क्या करूँ? मैं हिन्दुस्तान लौट आऊँ या परमात्मा के भरोसे आने बखू और जो मेरे माग्य में बड़ा है, उसको सहन करूँ। मैंने फैसला किया कि यही रूँघा और सहन करूँगा। जीवन में मेरी सक्रिय अहिंसा का आरम्भ उसी दिन से होता है।”

इस घटना का स्मरण दक्षिण अफ्रीका निवासी को रुचता नहीं है, लेकिन गांधीजी के जीवन में दक्षिण अफ्रीका के महत्व पर इससे प्रकाश पड़ता है। क्योंकि दक्षिण अफ्रीका में ही सत्याग्रह के सिद्धान्त की कल्पना उठी और वही ‘हिंसा-रहित प्रतिरोध’ का अस्त्र गढ़ा गया। प्रायः घटनाएँ एक दूसरे का बदला चुकाती हैं। हिन्दुस्तान ने, यद्यपि स्वेच्छा से नहीं, दक्षिण अफ्रीका की सबसे अधिक कठिन समस्या

पैदा की और दक्षिण अफ्रीका ने, वह भी स्वेच्छा से नहीं, हिन्दुस्तान को सत्याग्रह का विचार दिया।

दक्षिण अफ्रीका में हिन्दुस्तानी इसलिए आये कि गोरो के हित में उनका आना आवश्यक समझा गया। नेटाल के किनारे की भूमि से लाभ उठाना प्रतिज्ञाबद्ध मजदूरों के बिना असम्भव जान पड़ा। इसलिए हिन्दुस्तानी आये और उन्होंने नेटाल को हरा-भरा बनाया। फिर और भारतीय भी आते रहे। स्वतन्त्र प्रवासी भी आये और गिर-मिटिया (प्रतिज्ञाबद्ध) लोग भी। उनसे देश की खुशहाली बढ़ी। लेकिन समय आया और यूरोपियनों को खतरा पैदा होगया कि हमारे एकाधिकार के किसी-किसी क्षेत्र में अपने रहन-सहन के न्यूनतर मान से हिन्दुस्तानी हमें मात कर देंगे। वर्ण-विद्वेष के लिए इतना ही पर्याप्त था। हिन्दुस्तानियों को लार्ड मिलनर के शब्दों में, "स्वागत की अनिच्छुक जाति पर अपने आपको बलात् लादनेवाले विदेशी" कहा जाने लगा। यह पक्षपात ही मेरिक्सबर्ग स्टेशन पर युवक गांधी के हृदय पर अंकित हो गया और इसका फल हुआ सत्याग्रह का जन्म।

दक्षिण अफ्रीका में महात्माजी ने जो काम किया उसका वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है। यह लम्बा सचर्चा था। इसमें उनके प्रतिद्वन्द्वी जनरल जे० सी० स्मट्स भी आज ससार के प्रसिद्ध पुरुषों में से हैं। दोनों में बहुत-सी समानताये थीं। कुछ साल पहले मैं एक उच्च सरकारी अफसर के साथ जोहन्सबर्ग के बाहर हिन्दुस्तानी और देसी बच्चों के लिए बनी रिफार्मेटरी देखने गया—यह पहले जेल ही थी। मेरे साथी ने मुझे वह कौठरी बताई जिसमें तीस साल पहले गांधीजी को रखा गया था और बताया कि यह एक जूनियर मजिस्ट्रेट की हैसियत से उन्हें दर्शनशास्त्र की पुस्तकें देने आये थे। ये पुस्तकें उनके अफसर जनरल स्मट्स ने उपहारस्वरूप भेजी थीं। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि अन्त में इन दोनों महापुरुषों के पारस्परिक सम्मान और मित्रता के भावों की विजय हुई और आज भी वह मेल बना हुआ है।

दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी को क्या मिला? वे स्मट्स को उनका मुख्य उद्देश्य पूरा करने से नहीं रोक सके—यह उद्देश्य दक्षिण अफ्रीका में हिन्दुस्तानियों के प्रवास को रोकना था। लेकिन गांधीजी इस बात में सफल हुए कि प्रवास के कानून में हिन्दुस्तानियों का खासतौर पर जो अपमान होता था, उससे वे बच गये और वहाँ पहले से बसे हुए हिन्दुस्तानियों की छोटी-छोटी शिकायतें भी दूर हो गईं। दक्षिण अफ्रीका से लौटते समय उनकी यह जो आशा थी कि स्मट्स के साथ हुए उनके समझौते का परिणाम एशिया निवासियों के विरुद्ध होनेवाले वर्ण-पक्षपात का नाश होगा, इसमें वे जरूर निराश हुए हैं। दक्षिण अफ्रीका में यह पक्षपात आज भी वंसा ही मजबूत है और इसने कई रूप तो दक्षिण अफ्रीका का नाम ही बदनाम करते हैं।

फिर भी दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों पर गांधीजी के नेतृत्व की अमिट

छाप है। गांधीजी ने ही उन्हें इस योग्य बनाया कि वे निम्न जाति में पैदा होने से लगी हुई अयोग्यतायें दूर कर सकें और उन्हें जानीय अभिमान का ज्ञान हुआ जो अमिट रहेगा। दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानी पृथक्करण के बलक का विरोध करने के लिए उसी दृढ़ता से तैयार है जिस दृढ़ता में कि वे गांधीजी के झंडे के नीचे अपमानजनक कानूनों के विरुद्ध लड़े थे। लेकिन सबसे अधिक महत्व की बात तो यह है कि जिन दिनों गांधीजी ने कानून तोड़ा, अंगूठा लगाये बिना प्रांतीय सीमायें पार कीं, जेल गये और आये, उन दिनों वे वस्तुतः आत्मनिग्रह का पाठ पढ़ रहे थे और इसकी शक्ति तथा शस्त्र के रूप में इसकी साधकता की परीक्षा कर रहे थे।

इसलिए यह कहा जा सकता है कि दक्षिण अफ्रीका ने उस महापुरुष के विकास में महत्वपूर्ण भाग लिया है, जो केवल भारत का महात्मा ही नहीं, बल्कि ससार के महान् आध्यात्मिक नेताओं में से एक होनेवाला था।

हा, वहाँ के स्वेन शासक उस विशिष्ट परिस्थिति का सन्तोष के साथ कठिनाई में ही स्मरण करते जो उस महान् आत्मा के परिवर्तन में कारणीभूत हुई।

: १६ :

गांधी और शान्तिवाद का भविष्य

लारेन्स हाउसमैन

[स्ट्रीट, सोमरसेट, इंग्लैंड]

महान् शान्तिवाद के जीवित आविष्कारकों में महात्मा गांधी का आसन सबसे ऊँचा है। उन्होंने यह दिखला दिया है कि व्यावहारिक शान्तिवाद ससार की राजनीति में कुन्द हथियार नहीं है। बल और दबाव द्वारा शासन करने के हथियार से भी यह हथियार अधिक मजबूत साबित हुआ है। दक्षिण अफ्रीका में यह पूरा सफल रहा। हिन्दुस्तान में इसे पर्याप्त सफलता मिली और अगर इसके प्रयोग करनेवालों की सख्या और अधिक होती और वह प्रयोग एतदमान हिंसा-रहित होता, तो महात्मा के इस गान्धिमय अस्त्र की अवश्य विजय होती।

‘व्यावहारिक राजनीति’ के नाम से प्रसिद्ध क्षेत्र में शान्तिवाद की शक्ति के इस महान् प्रयोग की कीमत कूती नहीं जा सकती और स्वाधीनता की कोशिश करनेवाले राज्यों और जातियों के लिए तो वह प्रकाश-स्तम्भ ही है।

आहमा की सफलता इसलिए और भी अधिक महत्वपूर्ण माननी चाहिए कि आज तक मनुष्यजाति प्रायः जिन हथियारों का प्रयोग करती आई है उनसे यह सर्वथा निराला है और अन्याय को दूर करने के लिए हिंसा को ही साधन मानने की सदा से

चली आई परिपाटी के सर्वथा विपरीत है। इस प्रचलित परिपाटी के बावजूद ऐसी कठोर अग्नि-परीक्षा में से गुजरने के लिए महात्मा गांधी को इतने अधिक और विश्वस्त लोगो का सहयोग मिला, यह बात ही इसमें प्रमाण है कि महात्मा गांधी की शिक्षा मानवीय प्रकृति का अतमूल मूलसत्य ही है। तथा, जैसा कि उदाहरण से स्पष्ट है, यह सत्य साधारण स्त्री-पुरुषों की समझ से परे की वस्तु नहीं है और वे महान् उद्देश्यों की साधना से उस सच्चाई को धारण कर उसपर बखूबी आचरण कर सकते हैं।

ये कारण हैं, जिनसे मेरा विश्वास है कि आज महात्मा गांधी का जीवन अनमोल है। उनकी ७१वीं जन्म-तिथि पर बधाई भेजते हुए भी इच्छा यही है कि वे कई साल छोटे हाते ताकि ससार को उनके विमल नेतृत्व का और अधिक काल तक के लिए आश्वासन मिल पाता।

: २० :

गांधीजी का सत्याग्रह और ईसा का आहुति धर्म

जॉन एस० होयलैण्ड

[बुडबुक बस्ती, सेली ओक, बर्मिंघम]

सन् १९३८ की सरद ऋतु के अन्त में, मद्रास में ट्रीस्ट राजनेताओं की एक सभा हुई थी। इसमें ससार के सब देशों, खासकर अफ्रीका और पूर्व के नये गिरजों, के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। वहाँ विचार इस बात पर हुआ कि हजरत ईसा के सन्देश की दृष्टि से दुनिया की वर्तमान समस्याओं का हल क्या है। इस मद्रास-कान्फ्रेंस से पहले एक अपूर्व घटना घटी। धनी-मानी ईसाइयों में प्रतिष्ठित इन प्रमुख ईसाई नेताओं में से कई, रास्ता छँ करके, एक हिन्दू-नेता गांधीजी के दर्शन और उनके चरणों में बैठकर शिक्षा लेने पहुँचे। इनका उद्देश्य गांधीजी से यह मीलना था कि हजरत ईसा के उपदेश पर आचरण करने का बेहतर तरीका कौन-सा है। यह तो निर्विवाद है कि पहले की किसी ऐसी ईसाइयों की अन्तर्राष्ट्रीय सभा के समय ईसाई नेताओं ने ऐसी बात नहीं की थी। अब जब उन्होंने ऐसा किया तो इससे पहली बात तो यह प्रगट होती है कि ईसाई गलत रास्ते पर चल रहे हैं। (आधुनिक यज्ञवाद और साम्राज्यवाद प्रमाण है) यह खयाल अधिक दृढ़ हो चुका है और यह भी कि हिन्दुस्तान का यह महान् ऋषि हजरत ईसा के मन की बात हमसे अधिक अच्छी तरह समझता है और उसके निर्दिष्ट मार्ग पर चलने में भी हमसे आगे बढ़ा हुआ है।

इन ईसाई नेताओं से गांधीजी की जो अत्यन्त सहृदयपूर्ण बातचीत हुई उसमें उन्होंने पहले धन का प्रश्न लिया। थोड़े शब्दों में उन्होंने अपना विश्वास प्रगट करते

हुए कहा, "मेरे विचार में राम और रावण की साथ-साथ सेवा नहीं की जा सकती। मुझे शक है कि रावण को तो हिन्दुस्तान की मेवा में भेज दिया गया है, राम वहीं रह गये हैं। परिणाम इसका यह होगा कि एक दिन राम का हमें बदला चुकाना होगा। मैंने यह हमेशा अनुभव किया है कि जब किसी धार्मिक सस्था के पास उसकी आवश्यकता से अधिक धन जमा हो जाता है तब यह भय भी हा जाता है कि कहीं वह सस्था ईश्वर के प्रति अपना भरोसा न खा बैठे और धन पर निर्भर न रहने लगे। धन पर निर्भर रहना एकदम छोड़ देना होगा।

'दक्षिण अफ्रीका में जब मैंने सत्याग्रह-यात्रा शुरू की तो मेरी जेब में एक पैसा भी नहीं था और मैं खुशी-खुशी आगे बढ़ा। मेरे साथ तीन-तीन लोगों का काफीला था। मैंने सोचा, 'कुछ फिक्र नहीं, अगर भगवान् की मर्जी हुई तो वह मदद करेगा। हिन्दु-स्तान से धन की वषों हानि लगी। मुझे राजना पड़ा, क्योंकि ज्यों ही धन आया, अफ़्त भी शुरू होगई। जहाँ पहले लोग रोटी के टुकड़े और घोंड़ो-सी शक्कर में संतुष्ट थे, अब सबकुछ माँगने लगे।

"और इस नये शिक्षा-सम्बन्धी परीक्षण का लीजिए। मैंने कहा कि यह परीक्षण किसी प्रकार की आर्थिक सहायता माँगे बिना ही चलया जाये। नहीं तो, मेरी मृत्यु के बाद सारी व्यवस्था तीन-तीन हो जायगी। सब बात तो यह है कि जिस क्षण आर्थिक स्थिरता का निश्चय हो जाता है, उसी समय आध्यात्मिक दिवालियेपन का भी निश्चय हो जाता है।"

यह अन्तिम वाक्य गांधीजी के आदर्शवाद का सर्वोत्तम नमूना है। उन्होंने बार-बार इस बात पर जोर दिया है कि मुनाफ़े की इच्छा से एकत्रित फंडों पर स्वत्व जमाना किसी जीवन आन्दोलन का आध्यात्मिक विनाश करता है। स्वेच्छा से और स्थायित्व की भावना से बने स्वयंसेवक फिर उस आन्दोलन से लाभ उठानेवाले लागू बन जाते हैं। आन्दोलन और उसका फंड बार-बार, खूब और चतुराई से दुही जानेवाली गाय के सामान बन जाते हैं। बुराई और पतन तब अनिवार्य हो जाते हैं और सब प्रकार के दम और छल चलने लगते हैं।

लेखक को महामारो, दुर्भिक्ष और युद्ध के पश्चात् सहायता में धन बाँटने का कुछ अनुभव है। उसके आधार पर उसे निश्चय है कि गांधीजी ठीक कहते हैं। वस्तुतः जीवन आध्यात्मिक आन्दोलन, जहाँतक अधिक-से-अधिक सम्भव हो, धन-संचय करने से बचेगा और उनना ही उसका बल बढ़ेगा। गांधीजी के इन विचारों की उत्पत्ति 'असत्याग्रह' की भावना से हुई है। यह सिद्धान्त फ्रांसिस् के अनुयायियों के 'स्वयं-सेवा'—वैयक्तिक सम्पत्तिवाद—को छोड़ने के सिद्धान्त से मिलना-जुलना है। गांधीजी के अत्यन्त समीपस्थ शिष्यों में से एक ने सार-म्य में यह बात भी कही है "धन उम उद्देश्य की पूर्ति के लिए आया जिसके लिए तुम अपना जीवन उन्मार्ग करने

तैयार हो, लेकिन जब धन नहीं होगा तो तुम विफल नहीं होगे, उद्देश्य पूरा होता रहेगा, और शायद धन के अभाव में और भी अधिक अच्छी तरह पूरा होगा।”

दूसरा महत्व का प्रश्न जो इस वार्तालाप में छिड़ा, वह यह था कि ‘डॉकू’ जातियों से कैसा वर्ताना होना चाहिए। हम अंग्रेजों के लिए यह अच्छा है कि ऐसे प्रश्नों पर विचार करते हुए हम मान ले कि बहुत-से लोग हम अंग्रेजों की गिनती ‘डॉकू’ जातियों में करते हैं। यह बात, कि ब्रिटिश साम्राज्य में नौ नई आबादियाँ मिलाने के बाद सन्, १९१९ के पीछे लूट की अपनी डेरी को बढ़ाना हमने बन्द कर दिया है और तब से पर्याप्त सन्तोष से और शांति से बँडे हैं, दूसरे राष्ट्रों का सन्तोष नहीं करती। इतने से ही वे यह अनुभव नहीं करते कि अन्तर्राष्ट्रीय लूट के नये लोलुपों से हम किसी तरह कम डॉकू हैं। जो लोग ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर शासित जातियों की दुःखपूर्ण स्थिति में हैं, वे खासतौर से उत्सुक हैं कि इस अन्तर्राष्ट्रीय डॉकूपन से हमारी विवेक बुद्धि ऊँच उठे और जर्मनी, इटली तथा जापान के साथ बदाबदी में हमारा कोई लगाव न रहे।

गांधीजी ने इस बात पर जोर दिया कि जिनकी अहिंसा से श्रद्धा है और इस पर आचरण करना सीखे हैं उन्हें यह मानना होगा कि आधुनिक डॉकूपन के इस अत्यन्त अप्रिय और भीषण रूप का मुकाबला भी अहिंसा से किया जा सकता है और किया जायगा। उन्होंने कहा—“बल का प्रयोग चाहे कितना ही न्यायसंगत क्यों न हो, अन्त में हमें उसी दलदल में ला पटकना जिसमें कि हिटलर और मूसोलिनी की ताकत ला पटकती है। केवल भेद होगा ती परिमाण का। जिन्हें अहिंसा पर श्रद्धा है, उन्हें इसका प्रयोग सकट के क्षण में करना चाहिए। चाहे हम इस समय जड़ दीवार से अपना सर टकराते फिरते अनुभव करें, लेकिन डॉकूजों के दिल भी एक दिन पसीजेंगे—हमें यह आशा नहीं छोड़नी चाहिए।”

कुछ देर बाद बातचीत में किसी ऐसे रचनात्मक परीक्षण का विचार होने लगा जो पाप के विरुद्ध अहिंसामय कार्य के लिए जीवन को निश्चित सफलता दे सके। गांधीजी ने यहाँ अपना वह अनुभव सुनाया जो १९वीं सदी के अन्तिम दशान्त में दक्षिण अफ्रीका पहुँचने के सात दिन बाद ही उन्हें भुगतना पड़ा था। इस घटना से गांधीजी की दो सफलताएँ प्रगट हैं। प्रथम तो भय पर उनकी विजय। पश्चिम के किसी राष्ट्र के निवासी, जो प्रायः परस्पर समान भाव से रहते हैं, उस भय की कल्पना भी नहीं कर सकते जिस भय से औसतन हिन्दुस्तानी श्वेतांग को देखता है—अथवा देखना था। श्वेतांग किसी दूसरे ग्रह से उतरकर आया प्राकृतिक शक्तियों पर दैवी प्रभुत्व रखनेवाला प्राणी लगता था उसका आतंक प्रायः गुलामी

१ यह घटना गांधी से निकाल दिये जाने तथा एक गाडीवान के हमले की है।
 २ श्री हाकमेयर के लेख पृष्ठ ७५ पर विस्तार से उद्धृत की गई है।

पैदा कर देता था, उसके सामने कांपना और बिना आनाकानी उसकी आज्ञा मानना हुना था। यह बिल्कुल ठीक कहा गया है कि गांधीजी ने अपने वन्द्युओं को सत्रमे बड़ी भेंट यही दी है कि वे अब श्वेतांगों के सामने बिल्कुल निडर रहने हैं। गांधीजी ने हिन्दुस्तानियों का, खासकर किसानों को सिखाया कि गोरो के सामने सीधे खड़े हो, निडर होकर उनसे और मिलायें और जब उनकी कोई आज्ञा देस के लिए हानिकर प्रतीत हो, उसका जान-बूझकर उल्लंघन करे। डर छूट से फलता है और निर्भयता भी। गांधीजी में निर्भयता की भावना है और इसे दूसरा मे पहुँचाने की बड़ी भारी ताकत भी। उन्होंने भारतीय किसान मे यह हिम्मत भर दी है कि वह अन्याय से मांगा गया लगान न दे, जिन्हे के अफसर उसके विरुद्ध चाहे कुछ भी कपो न करे। जो हिन्दुस्तान को जानते हे उनके लिए यही काफी प्रमाण हे यह सिद्ध करने के लिए कि भय पर विजय पाने की गांधीजी में अनुपम शक्ति है।

मेसिस्वरंग रेलवे स्टेशन पर हुई इस उन्माद-वर्धक घटना ने दूसरी बात यह प्रगट होती है कि कष्ट-सहन से अमलन दूसरा का उद्धार किया जा सकता है—गांधीजी अपने सारे जीवन में इसे मानने आये हैं। रेल के डब्बे से निकाल दिये जाने और गांधीवान के हमरे को बटना खूब प्रतीत होती हो, लेकिन याद रहे कि उस अनमान और पीडा को एक सकाचशील और कोमलहृदय युवा ने साहसपूर्वक, दूसरों के लिए स्वय सहन किया था। उमी दिन व्यवहाररूप में, केवल सिद्धान्त मे ही नहीं, गांधीजी के सत्याग्रह का जन्म हुआ। इसका आदर्श यह है कि “कष्ट-सहन से सब निकलने की कोशिश मत करो, साहन मे उसमें क्रूर पडो, बाहबाही छूटने या बिरत्न बनने के लिए नहीं, लेकिन इसलिए कि अगर तुम दूसरा की सहायता करने की सच्ची भावना मे इन कष्टों को सेलोगे तो यह कष्ट-सहन बुराई को भलाई बना देनेवाली रचनात्मक शक्ति बन जायगा। लगभग तीस साल बाद अपने देश का भविष्य उज्ज्वल बनाने की इच्छा से जिस उल्लाम और जोश से टाई लाख हिन्दुस्तानी जेलो में चले गये, वह इस नव-युग के उस साहस का ही परिणाम था जिमने कि इस युवा ने नैटाल में अपना यह कठोर परीक्षण किया। कष्ट-सहन या अपमान कोई ऐसा नहीं है, जो तद्भावना मे सेना जाय और फिर उससे दूसरों की भलाई न हो। कारण कि सत्याग्रह किसी देश का म्यत्र कराने या उसमें एकता पैदा कराने, या सैनिकवाद और युद्ध को जीतने, अथवा भ्रष्ट सामाजिक आर्थिक व्यवस्था को ठीक करने का ही माधन नहीं है। यह ता और अधिक गहराई में पहुँचता हे। यह यत्र का, क्रॉस का यानी अमर आहुति-धर्म का मिद्धान्त है। यह सिद्धान्त सन पाल के डम कथन का स्मरण दिलाता है कि “मे ईसामसीह के कष्टों की शोली भरता हूँ।” जो मनुष्य सत्याग्रह के इस सच्चे अर्थ को कुछ भी मन्त्र लेता है वह इतिहास की लम्बी पन्थियों में, सब जगह, जानियों के मारे क्रमिक विकास में, उम जानि का उन्नत और जीवित रहना देखता है, जिससे अगणित व्यक्तियों

ने वलिदान और कष्ट-सहन किया है। वह देखता है कि वास्तव्य जैसा कोई भाव सृष्टि में काम करता है। पीछे वही भाव सामाजिक सहयोग के रूप में प्रगट होता है। आरम्भ में सहयोग धीमे-धीमे और परीक्षण के रूप में बढ़ता है। बाद में वही निश्चित और बलशाली हो चला होता है। लेकिन यह तत्त्व जहाँ किसी भी रूप में काम करता है वहाँ दूसरों—अपने बराबरी अथवा साथियों—की मलाई के लिए स्वेच्छा से स्वीकृत कष्टों और मृत्यु द्वारा व्यक्ति की आत्म-निग्रह की भावना साम होती है। ज्यों ज्यों वह इतिहास के पन्ने उलटता है यह तत्त्व अधिकाधिक स्पष्ट दीख पड़ता है। इतिहास और उन्नति की सारी कुजो ईसा के आहुति-मार्ग में है।

इस प्रकार सत्याग्रह के विद्यार्थी को यह मानना पड़ता है कि गांधीजी ने अहिंसक रहते हुए दूसरों के लिए स्वेच्छा से कष्ट उठाने के आन्दोलन में अपने देशवासियों को डालकर एक बार फिर उस विश्व-विदित सिद्धान्त को प्रगट कर दिया है जो पश्चिम की स्वार्थमय, विलासमय और लालचभरी भावना से धुंधला पड़ा था। औद्योगिक क्रान्ति के आरम्भ-काल में लगभग डेढ़ सताब्दि तक ईसाई मजहब ने क्रॉस (कष्ट-सहन) का बहुतेरा उपदेश दिया, परन्तु सर्वव्यापी स्वार्थपरता की भावना के आगे इसकी एक न चली और यह केवल व्यक्तियों की मुक्ति का एक रुढ़ विद्विमान रह गया है। हमारी सततियों के सामने एक भारी काम है। (और अगर यह पूरा न हो सका तो सभ्य मानवों में हमारी सतति सबसे पिछड़ जायगी) वह यह कि वे ऐसे क्रॉस की खोज करें जो केवल रुढ़िमान न हो बल्कि अन्याय, युद्ध और हिंसा रोकने में समर्थ और अविनाशी सिद्धान्त के प्रतीक-रूप में हो। हमें फिर से यह सीखना है कि ईसाभसीह के 'क्रॉस को लेकर मेरे पीछे चलो' शब्दों का असली मतलब क्या था। हमें फिर से यह सीखना है कि जिस प्रकार उसने किया उसी प्रकार हम भी स्वेच्छा से हानि, कष्ट और मृत्यु तक का आलिगन कर सकें। यह सब हमें सुधार की भावना से—मनुष्यजाति को पाप और अन्याय से बचाने के लिए—सर्वथा अहिंसक रहकर, पीड़क और अन्यायी के प्रति तनिक भी द्वेष-भावना न रखते हुए, उसके साथ वैसे ही व्यवहार करने की जरा भी कोशिश न करते हुए करना है। और फिर नफ़रता, घोरता, मित्रता तथा सद-भावना से ही करना है।

लेकिन हज़रत ईसा के जीवन से यह प्रतीत होता है कि ईश्वर का नये सिरे से बोध ही हज़रत के क्रॉस उठाने का कारण था। गांधीजी के सन्देश में भी इसी विश्वास की भनक है। हमें एक बार फिर ईश्वर की मृत्ता अनुभव हुई है। परमात्मा की अपनी प्रक्रिया ही क्रॉस और अहिंसा की प्रक्रिया है। क्रॉस का यह मार्ग केवल कुछ अथ शातिवादियों का दुर्बल विचार ही नहीं है। पाप और अन्याय की सफल विजय का ईश्वरीय और अमर यही मार्ग है। 'क्रॉस' की छाया सत्तार के सारे इतिहास और व्यक्ति के जीवन के पार पहुँचनी है। मनुष्य के लिए यह ईश्वर की इच्छा ही है।

हजरत ईसा ने हमें बताया कि परमेश्वर किबूलखर्ब लडके के बाप की मर्दा, गलतो करनेवाले का भी स्वागत बिना डांट-उपट करता है। वह भले चरवाहे की भाँति अपनी एक भो भटकी भेड को ढूँढ़ने और बचाने के लिए घर के आराम को छोड़कर जंगला पहाडो, आँधो और पानी में घूमता-फिरता है। अन्याय के विरुद्ध ऐसी कार्यवाही करना परमेश्वर की इच्छा है, उसका विधान है, उसका अपना स्वभाव और स्वरूप है।

यह वह परमेश्वर है जिसके हम ऋणी है, और मानवता के कलको—युद्ध और दरिद्रता आदि को समय रहते जीतने के लिए मनुष्यजाति ऋणी है।

गांधोजो से एक प्रसिद्ध ईसाई नेता (डा जॉन आर मॉट) ने पूछा कि आपत्ति, सन्देह और सशय के समय उन्हें गहरा सनाप किससे हुआ है। उन्होंने उत्तर दिया—“परमात्मा में सच्चा धृढा से। परमेश्वर चर्मचक्षु या सामने आकर दर्शन नहीं देना, वह तो कार्यरूप में प्रगट हुआ करता है। इस सम्बन्ध में गांधोजो ने अस्पृश्यता-निवारण सम्बन्धी अपने इक्कीस दिन के उपवास का अनुभव बताया। यदि परमेश्वर की इच्छा हमारे द्वारा पूर्ण होनी है, तो वह स्वयं अपने ही तरीके से जरूरी पथ-प्रदर्शन करेगा। हजरत ईसा ने एक जगह कहा था—“वह जो परमेश्वर की इच्छा का अनुसरण करता है, उसे सच्चा उपदेश अवश्य मिलेगा।” और बलिदान से ठीक पहले अपने शिष्यों के पैर धोकर जब उसने सेवा के महान्, पर भूले हुए आदर्श की पवित्रता को फिर से स्थापित किया तब उसने कहा—“यदि तुम्हारे प्रभु ने तुम्हारे लिए यह किया है तो तुम्हें भी यह करना चाहिए। जो आदर्श मैंने तुम्हारे सामने पेश किया है उसको समझकर उसपर चलने से तुम सुखी रहोगे।” आचरण में ईसा की समानता करने से ही हम अपने जीवन के चरम उद्देश्य को पा सकते हैं। और विश्व के एकान आदि हेतु के साथ ऐक्य अनुभव कर सकते हैं।

महात्मा गांधी ने इस बात पर भी जोर दिया कि अगर बदो को जीतने में जीवन को सचमुच सफल बनाना हो तो इसके लिए ‘मोन’ भी बहुत जरूरी है। उन्होंने कहा, “मैं यह कह सकता हूँ कि मैं अब सदा के लिए एक मोन जीवन व्यतीत करनेवाला व्यक्ति हूँ। अभी कुछ ही दिन पहले मैं लगभग दो महीने पूर्णत मोन रह। और उस मोन का जादू अभी भी हटा नहीं है।” “आजकल शाम की प्रार्थना के समय से मैं मोन हो जाता हूँ और दो बजे जाकर मिलनेवालों के लिए उसे छोड़ता हूँ। आज आप आये तभी मैंने मोन तोड़ा था। अब मेरे लिए यह शारीरिक और आध्यात्मिक—दोनों प्रकार की जरूरत बन गई है। पहले-पहल यह मोन काम के बोझ में छुटकारा पाने के लिए किया गया था, तब मुझे लिखने का समय चाहिए था। पर कुछ दिन के अभ्यास में ही इसने आध्यात्मिक मूल्य का भी मुझे पता लग गया। अचानक मुझे सूझा कि परमेश्वर ने माना बनाये रखने की यही सबसे अच्छी रीति है। और अब तो मुझे यही प्रतीत होता है कि मोन मेरा प्राकृतिक अंग हो है।”

गांधीजी के भीतर काम कर रही धर्मपरायणता की सकल शक्ति का दृढ़ आध्यात्मिक आधार क्या है, यह इन शब्दों से बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है। परमेश्वर के साथ व्यवहार करने के इन धीरे क्षणों में ही गांधीजी को पैगम्बर और ऋषियों की-सी दिव्य शक्ति प्राप्त होती है और इस शक्ति से ही उनका अपने प्रेमियों और अनुयायियों पर असाधारण अधिकार है।

और एक अवसर पर गांधीजी ने कुछ अन्य ईसाई नेताओं से इस विषय पर विचार किया कि हम सभीको फिर से लड़ाई में झोक देनेवाले भावी महासंकट से मनुष्यजाति को कैसे बचाया जा सकता है। सभ्यता की जड़ों को छा जानेवाली 'नपुंसकता' की लाछना से सभ्यता की रक्षा कैसे की जा सकती है? पश्चिम की सभ्यता दो हजार बरस से ईसा का सन्देश सुन रही है, पर इतने अंतर में भी वह उस सन्देश पर अमल नहीं कर सकी। वर्तमान और भविष्य के सम्बन्ध में सारे पश्चिम में गहरी बेचैनी है। इसलिए यह उचित ही था कि मेरे ईसाई नेता उस व्यक्ति के चरणों में आते जिसने कि ईसा के उपदेश के केन्द्रीय तत्त्व पर आचरण करने का प्रयत्न करना अपना ध्येय बनाया है। इस महापुरुष के प्रयत्न से ईसा का उपदेश गैर ईसाई वातावरण में एक बार फिर जीवित होल पड़ने लगा है।

क्या हम जाना करें कि पश्चिम यद्यपि आर्थिक शक्ति के शुरू होने के समय से आज तक अबाधित धन-तृष्णा के पीछे ही दौड़ रहा है, तो भी 'क्रास' का संदेश फिर कुछ कर दिखायागा और क्रास का यह पुनर्जीवन सर पर लटकते हुए सर्वनाश से हमें बचावेगा?

गांधीजी से एक सज्जन ने पूछा कि आपने भारत के लिए जो कुछ किया है उसका प्रेरक उद्देश्य कैसा है? क्या वह सामाजिक है, राजनीतिक है अथवा धार्मिक? गांधीजी का कार्यक्षेत्र इन तीनों क्षेत्रों में फैला हुआ होल पड़ता है और हिन्दू-समाज के शरीर और हिन्दुस्तान की राजनीतिक स्थिति—दोनों पर उसका गहरा रम पड़ा हुआ है। इसलिए यह प्रश्न स्वाभाविक था।

गांधीजी ने उत्तर दिया—“मेरा उद्देश्य विषुद्ध धार्मिक रहा है...। सम्पूर्ण मनुष्यजाति के साथ एकीकरण किये बिना धार्मिक जीवन व्यतीत करना बन नहीं सकता, और मनुष्यजाति से एकीकरण राजनीति में हिस्सा लिये बिना सम्भव नहीं। आज तो मनुष्य के सब व्यवसायों का समूह एक अखण्ड इकाई है। इन्हे सामाजिक, राजनीतिक या विषुद्ध धार्मिक आदि पृथक् भागों में नहीं बांटा जा सकता। धर्म का मनुष्य के क्रिया-कलाप से पृथक् होना मेरे ज्ञान में नहीं है। सब मनुष्य के वापों को नैतिक आधार मिलता है। इस नैतिक आधार के अभाव में तो जीवन गंजन-संजन मात्र रह जाता है, जिसका कोई भी मूल्य नहीं होना।”

इस सम्बन्ध में गांधीजी से प्रश्न किया गया कि आपके सेवाभाव का प्रवर्तक क्या है—कार्य के प्रति प्रेम या सेवा की पात्र जनता के प्रति प्रेम? गांधीजी का स्वाभाविक

उत्तर था, मेरा प्रेरक कारण तो जनता के प्रति प्रेम ही है। लोक-सेवा के बिना उद्देश्य-पूजा कुछ भी अर्थ नहीं रखती। गांधीजी ने अपने जीवन की घटनाओं का उदाहरण-स्वरूप वर्णन किया और बताया कि वे वचन से ही असमर्थों से सहानुभूति और उनकी उन्नति का प्रयत्न करने लग गये थे। एक दिन उनकी माता ने उन्हें एक अत्यज बालक के साथ खलने से रोक दिया। इससे उनके मन में तर्क-वितर्क उठने लगे और "मेरी शान्ति का वह पहला दिन था।"

"पश्चिम में तो आपकी अहिंसा का इतना व्यापक या सफल प्रयोग सम्भव नहीं मालूम पड़ता, फिर भी उसके बारे में जो आपका हल है उसको कुछ विस्तार से समझायें?" यह पूछने पर गांधीजी ने कहा—“मेरी राम में तो अहिंसा किसी भी तरह निष्क्रियता नहीं है। मैंने जहाँतक समाजा है, अहिंसा सत्कार की सबसे अधिक कार्यात्मक शक्ति है” अहिंसा परम धर्म है। अपनी आधी शताब्दी के अनुभव में कभी ऐसी परिस्थिति नहीं आई कि मुझे कहना पड़ा हो कि अब मैं यहाँ असमर्थ हूँ, अहिंसा के पास इसका इलाज नहीं है।

"यहूदियों के ही सवाल को ले लीजिए। इनके सम्बन्ध में मैंने लिखा है। अहिंसा के पथ पर चलनेवाले किसी यहूदी को अपने आपको असह्यम महसूस करने की जरूरत नहीं। एक मित्र ने अपने पत्र में मेरी इस बात का विरोध किया है कि मैंने यह मान लिया है कि यहूदियों की भावना हिंसामय थी। यह ठीक है कि वे शरीर से हिंसामय नहीं हुए, परन्तु उनकी वह अहिंसा व्यवहार में नहीं थी, अन्यथा अधिनायकों के कुटलों की देखकर भी वे कहें 'हमें इनके हाथ से दुख तो मिलना ही है, इनके पास इसमें अच्छा और क्या है।' परन्तु यह दुख उनके डग से हमें नहीं झेलना।' यदि एक भी यहूदी इसपर अमल करता, तो वह अपना स्वमान बचा लेता और एक उदाहरण छोड़ जाता। जो उदाहरण सन्नामक बनकर सारी यहूदी कोम की रक्षा करता और मनुष्यजाति के लिए भारी विरासत बन जाता।

"आप पूछेंगे कि चीन के बारे में मेरी क्या राय है। चीनियों की किसी दूसरे राष्ट्र पर आँखें नहीं हैं। राज्य बढाने की उनकी इच्छा नहीं है। शायद यह सच है, पर चीन के पास हमला करने की शक्ति ही नहीं है। और शायद जो उसकी यह शान-वृत्ति सी दोखनी है वह वस्तुतः उसकी जड़ता हो। हर मूल्य में चीन की यह अहिंसा व्यवहार में नहीं आई है। जापान का मुकाबला करना ही इस बात का प्रमाण है कि चीन कभी इरादतन अहिंसक नहीं रहा। अहिंसा की दृष्टि से इसका यह कोई जवाब नहीं है कि चीन आत्मरक्षा के लिए लड़ रहा है। इसलिए जब उसकी व्यावहारिक अहिंसकता की परीक्षा का अवसर आया, तो चीन इस कमीटी पर पूरा नहीं उतरा। यह चीन की कोई टीका नहीं है। मैं तो चीनियों की विजय चाहता हूँ। प्रचलित मान्यता में तो उसका बनाव बिल्कुल सही ही, पर जब परत अहिंसा की कमीटी में

की जाय, तो कहना पड़ेगा कि ४० करोड़ चीनियों को, सुसभ्य चीनियों को, यह शोभा नहीं देता कि वे जापानियों के अत्याचार का प्रतिकार जापानियों के तरीके से ही करें। यदि चीनियों में मेरे विचारानुकूल अहिंसा होनी, तो जापान के पास विध्वंस के जो नये नये यंत्र हैं चीन को उनका प्रयोग करना ही नहीं पड़ता। चीनी जापान से कहते—“अपनी सारी मशीनरी ले आओ, हम अपनी आधी जन सख्या तुम्हें भेंट करते हैं, लेकिन बाकी २० करोड़ तुम्हारे आगे घुटने नहीं टेकेगे।’ यदि अगर यह करते तो जापान चीन का गुलाम बन जाता।’

महात्मा गांधी का अपने अहिंसा के विश्वास का इससे और अधिक असंशयपूर्ण वर्णन क्या हो सकता है ? अधर्म के स्थान पर धर्म-स्थापना करने की युद्ध की पद्धति का दोष यह है कि यह 'शैतान को शैतान से हटाने' का प्रयत्न है। इसमें मनुष्यों को जला देना, गोली मार देना, उनके हाथ-पैर ताड़ देना, दातना देना आदि पाप कृत्यों के प्रयोग से इन्हीं साधनों से काम लेनेवालों का प्रतिकार करना होता है। इस प्रक्रिया से वह पाप-संकल्प मिट नहीं सकेगा जिसने प्रथम आक्रमण होने दिया है। इसमें तो पाप-संकल्प और अधिक दृढ़ और अधिक भयानक बनता है। अन्याय को हटाकर न्याय को उसके आसन पर बिठाने के लिए सफल पद्धति यह नहीं है कि शैतान को शैतानियत में मात किया जाय, हिंसा का अन्त करने के लिए और हिंसा की जाय—यह तो मूर्खता युक्त और मूलतः व्यर्थ पद्धति है। अत्याचार की भावना को मित्रता की भावना में बदलने के लिए स्वेच्छा से कष्ट-सहन करने की सद्भावना ही सफल पद्धति है। गांधीजी ने इस जगह 'गोली की मारक और अनाकी' कविता की प्रसिद्ध पंक्तियाँ दोहराईं। काम कि लोग उन्हें और अच्छी तरह समझ पाते --

शांत और स्थिरमति रहकर वन की भाँति सघन और निःशब्द खड़े होजाओ। हाथ जुड़े हुए हो, और आँखों में तुम्हारे ही अविजित योद्धा का तेज।

और, तब यदि अत्याचारी का साहस हो तो आने दो, मचाने दो उसे मार-वाट। बोटी-बोटी करे तो करने दो, उसे मनचाही मचा लेने दो।

१. मूल अंग्रेजी पद्य इस प्रकार है :—

Stand ye calm and resolute,
Like a forest close and mute,
With folded arms and looks which are
Weapons of unvanquished war
And if then the tyrants dare,
Let them ride among you there,
Slash, and stab, and maim, and hew—
What they like, that let them do.

और तुम बढ़ाजलि और स्त्रिरदृष्टि से, बिना भय और बिना आश्चर्य, उनकी यह खूँरेजी देखने रहो। आखिर श्रेयान्ति उनकी बूझ जायगी।

तब वे जहाँसे आये थे, वहाँ अपना-सा मुँह लिये लौटेंगे। और वह रक्त, जो इस तरह बहा था, लज्जा में उनके चेहरे पर पुनः दीक्षा करेगा।

उठो, जैसे नींद से जगा शेर उठता है। तुम्हारी अमित और अजेय मल्ल्या हो। बेडिया झिटककर धरती पर छोड़ दो, जैसे नींद में पड़ी ओस की बूँद ऊपर से छिटक देने हो। अरे, तुम बहुत हो, वे मूट्ठीभर है।

अब मवाद इसी विषय के एक दूसरे अंग पर चला गया। गांधीजीने कहा—
"यह शका की गई है कि यहूदिया के लिए तो अहिंसा ठीक हो सकती है, क्योंकि वहाँ व्यक्ति और उसके पीढ़क में शारीरिक सम्पर्क सम्भव है। लेकिन चीन में तो जापान दूरभेदी बन्दूको और वायुयानों से पहुँचना है। नभ से मृत्यु की बौछार करने-वाले सौ बेचारे कभी यह जान ही नहीं पाने कि किनको और कितनों को उन्होंने मार गिराया है। ऐसे आकाश-युद्धों में जहाँ शारीरिक सम्पर्क नहीं होता, अहिंसा कैसे लड़ सकती है?"

"इसका उत्तर यह है कि आदमिया का कलंका करनेवाले शमा की ऊपर से छोड़ने-वाला हाथ तो मानवीय ही है और उस हाथ को चढ़ानेवाला पीछे मानवीय हृदय भी ता है। आनकवाद की नीति का आधार यह कल्पना ही है कि पर्याप्त मात्रा में इसका उपयोग करने से उत्पीड़क के इच्छानुसार विरोधी को झुका देने का अभीष्ट सिद्ध होता है। लेकिन मान लीजिए कि लोग निश्चय कर लेते हैं कि वे उत्पीड़क की अभिलाषा कभी पूरी न करेंगे, और न इसका बदला उत्पीड़क के तरीके से ही देंगे, तब पीड़क देखेगा कि आतक से काम लेना लाभदायक नहीं है। उत्पीड़क को पर्याप्त भोजन दे

With folded arms and steady eyes,
And little fear, and less surprise,
Look upon them as they slay,
Till their rage has died away.
Then they will return with shame
To the place from which they came,
And the blood thus shed will speak
In hot blushes on their cheek.
Rise like lions after slumber
In unvanquishable number—
Shake your chains to earth, like dew
Which in sleep has fallen on you—
Ye are many, they are few,

की जाय, तो कहना पड़ेगा कि ४० करोड़ चीनियों को, सुसभ्य चीनियों को, यह शोभा नहीं देता कि वे जापानियों के अत्याचार का प्रतिकार जापानियों के तरीके से ही करें। यदि चीनियों में मेरे विचारानुकूल अहिंसा होनी, तो जापान के पास विध्वंस के जो नये-नये यंत्र हैं चीन को उनका प्रयोग करना ही नहीं पड़ता। चीनी जापान से कहते—‘‘अपनी सारी भूमि नदी ले आओ, हम अपनी आधी जन-संख्या तुम्हें भेंट करते हैं, लेकिन बाकी २० करोड़ तुम्हारे आगे घुटने नहीं टेकेगे।’’ यदि अगर यह करते तो जापान चीन का गुलाम बन जाता।

महात्मा गांधी का अपने अहिंसा के विश्वास का इससे और अधिक असंशयपूर्ण वर्णन क्या हो सकता है ? अधर्म के स्थान पर धर्म-स्थापना करने की युद्ध की पद्धति का दोष यह है कि यह ‘शैतान को शैतान से हटाने’ का प्रयत्न है। इसमें मनुष्यों को जला देना, गोली मार देना, उनके हाथ-पैर तोड़ देना, यातना देना आदि पाप कृत्यों के प्रयोग से इन्हीं साधनों से काम लेनेवालों का प्रतिकार करना होता है। इस प्रक्रिया से वह पाप-संकल्प घिट नहीं सकेगा जिसने प्रथम आक्रमण होने दिया है। इससे तो पाप संकल्प और अधिक दृढ़ और अधिक भयानक बनता है। अन्याय को हटाकर न्याय को उसके आसन पर बिठाने के लिए सफल पद्धति यह नहीं है कि शैतान को शैतानियत में घात किया जाय, हिंसा का अन्त करने के लिए और हिंसा की जाय—यह तो मूर्खता-युक्त और मूलतः व्यर्थ पद्धति है। अत्याचार की भावना को मित्रता की भावना में बदलने के लिए स्वेच्छा से कष्ट-सहन करने की सद्भावना ही सफल पद्धति है। गांधीजी ने इस जगह दोली की ‘मास्क ऑव अनाकी’ कविता की प्रसिद्ध पंक्तियाँ दोहराईं। काश कि लोग उन्हें और अच्छी तरह समझ पाते —

सात और स्थिरमति रहकर वन की भाँति सघन और निःशब्द खड़े होजाओ। हाथ जुड़े हुए हों, और आँखों में तुम्हारे ही अविजित योद्धा का तेज।

और, तब यदि अत्याचारी कात्ताहस हो तो आने दो, मचाने दो उसे मार-काट। बोटी-बोटी करे तो करने दो, उसे मनचाही मचा लेने दो।

१. मूल अंग्रेजी पद्य इस प्रकार है :—

Stand ye calm and resolute,
Like a forest close and mute,
With folded arms and looks which are
Weapons of unconquished war
And if then the tyrants dare,
Let them ride among you there,
Slash, and stab, and maim, and hew—
What they like, that let them do

और तुम बढ़ागलि और स्थिरदृष्टि से, बिना भय और बिना आश्चर्य,
उनकी यह सूरेंजी देखते रहो । आखिर क्रोधाग्नि उनकी बुझ जायगी ।

तब वे जहाँसे आये थे, वही अपना-सा मुंह लिये लौटेंगे । और वह
रक्त, जो इस तरह बहा था, लज्जा में उनके चेहरे पर पुता दीक्षा करेगा ।

उठो, जैसे नींद से जगा दोर उठना है । तुम्हारी अभित और अजेय
मर्या हो । बेडिया झिटककर परती पर छोड दो, जैसे नींद में पडी ओस की
बूंद ऊपर से छिटक देने हो । खरे, तुम बहुत हो, वे मुट्ठीभर है ।

अब सवाद इसी विषय के एक दूसरे अंग पर चला गया । गांधीजीने कहा—
“यह दावा की गई है कि यहूदियों के लिए तो अहिंसा ठीक हो सकती है, क्योंकि
वहाँ व्यक्ति और उसके पीछे में शारीरिक सम्पर्क सम्भव है । लेकिन चीन में तो
जापान दूरभेदी बन्दूको और वायुयानों से पहुँचता है । नभ से मृत्यु को बोछार करने-
वाले तो बेचारे कभी यह जान ही नहीं पाते कि कितनों और कितनों को उन्होंने मार
गिराया है । ऐसे आकाश-मुद्दो में जहाँ शारीरिक सम्पर्क नहीं होता, अहिंसा कैसे
लड सकती है ?

“इसका उत्तर यह है कि आदमियों का क्लेश करनेवाले बमों को ऊपर से छोड़ने-
वाला हाथ तो मानवीय ही है और उस हाथ को चढ़ानेवाला पीछे मानवीय हृदय भी
तो है । आनकवाद की नीति का आधार यह कल्पना ही है कि पर्याप्त मात्रा में इसका
उपयोग करने से उत्पीडक के इच्छानुसार विरोधी को मुक्त देने का अभीष्ट सिद्ध होता
है । लेकिन मान लीजिए कि लोग निश्चय कर लेते हैं कि वे उत्पीडक को अभिलाषा
कभी पूरी न करेंगे, और न इसका बदला उत्पीडक के तरीके से ही देंगे, तब पीडक
देखेगा कि आतंक से काम लेना लाभदायक नहीं है । उत्पीडक को पर्याप्त भोजन दे

With folded arms and steady eyes,

And little fear, and less surprise,

Look upon them as they slay,

Till their rage has died away.

Then they will return with shame

To the place from which they came,

And the blood thus shed will speak

In hot blushes on their cheek.

Rise like lions after slumber

In unvanquishable number—

Shake your chains to earth, like dew

Which in sleep has fallen on you—

Ye are many, they are few,

दिया जाय, तो समय आयगा कि उसके पास अत्यधिक भोजन से भी अधिक इकट्ठा होजायगा।

“मैंने सत्याग्रह का पाठ अपनी पत्नी से सीखा। मैंने उसे अपनी इच्छा पर चलाना चाहा। एक ओर तो उसने मेरी इच्छा का दृढ़ प्रतिवाद किया और दूसरी ओर मैंने अपनी मूर्खतावश उसे जो कष्ट पहुँचाये उन्हें शान्ति से सहन किया। इससे मैं अपनेसे ही लजाने लगा और ‘मैं उसपर शासन करने के लिए ही जन्मा हूँ यह सोचने का मेरा पागलपन जाता रहा, तथा अन्त में वह अहिंसा में मेरी शिक्षा बन गई। और दक्षिण अफ्रीका में मैंने जो कुछ किया वह उस सत्याग्रह के नियम का विस्तारमात्र ही था, जिस सत्याग्रह का वह भोलेपन से अपनेमें अभ्यास कर रही थी।”

सत्याग्रह का यह दूसरा अत्यन्त महत्वपूर्ण नियम है। यह एक ऐसा आन्दोलन और विधायक नियम है, जिसमें स्त्रियाँ पुरुषों के साथ समान भाग ले सकती हैं। इतना ही नहीं, इस आन्दोलन में स्त्रियाँ खूब योग्यता से नेतृत्व भी कर सकती हैं। अनगिनती सदियों से स्त्रीत्व का उत्कृष्ट अस्त्र धीरता से तिरस्कृत होता रहा है, पर साथ ही वह हिंसा और अत्याचार का स्पष्टवादी और निर्भीक गवाह भी बना रहा है। अब उसको यह भार सौंपा जा रहा है कि वह इसी भावना और पद्धति को ससार के बचाने का मूल साधन बनाये।

आइए, यहाँ हम सत्याग्रह की चार आधारभूत बातों का स्मरण करेंगे

(१) ससार में अन्याय खुलकर खेल रहा है।

(२) अन्याय को मिटाना चाहिए।

(३) अन्याय का हिंसा से नहीं मिटाया जा सकता, हिंसा से तो कुत्सित सकल्प और अधिक गहराई तक पहुँचकर ज्यादा मजबूत होजाता है और इसे निर्दयता से क्यों न कुचला गया हो, एक-न एक दिन इसका फूट निकलना अनिवार्य होजाता है और यह कई गुनी अहिंसा के साथ।

(४) अन्याय का प्रतिवार यही है कि इसे धीरता से सहन किया जाय। इसका अर्थ है सद्भावना से स्वेच्छापूर्वक अन्यायजनित दुःख—मृत्युतक—को भी आमंत्रित करना। व्यक्ति रूप में सत्य पर सत्याग्रही का जीवन बलिदान होजाने पर भी ऐसी भावना को पुनर्जीवन मिलता है।

इन चार मूलभूत मान्यताओं का अर्थात्क सम्बन्ध है, स्त्री अनन्तकाल से इन्हें जानती है और सत्याग्रह का प्रयोग करती रही है। जिस अत्याचार को उसने अपने ऊपर शेल है उस अत्याचार ने स्त्री की चेतना को अन्याय का बलात् अनुभव करवाया है। कभी उसे ज्ञान हुआ और उसने कुछ भी देकर इस अन्याय का अन्त करने के लिए उसे कटिबद्ध कर दिया। वह हिंसक उपायों से इस अन्याय का अन्त नहीं करती और स्त्री-पुरुष सम्बन्धी समस्याएँ ऐसे तरीकों से हल हो सकती हैं, इसकी कल्पना भी वह नहीं

करती। उमने कार्य की दूसरी ही प्रणाली पकड़ी, अत्याचार घर में हो या राष्ट्रीय राजनीतिक क्षेत्र में—उसका अविचल भाव से साहमपूर्वक प्रतिरोध किया जाय। स्त्री ने—न केवल स्त्री-आन्दोलन की नेत्रियों ने बल्कि लम्बो साधारण स्त्रियों ने भी—दूसरो की खातिर कष्टों को स्वयं बरण करने की भावना से अत्याचार की कठोरतम यंत्रणाओं को उद्धार की दृष्टि से सहन करने की आज्ञा डाली। बच्चों की उत्पत्ति, उनके लालन-पालन आदि प्राणि-विज्ञा-सम्बन्धी प्राकृतिक नियम स्त्री को सत्याग्रह की मान्यताओं में केवल परिचित ही नहीं करा देने, उन्हें अमलन सत्याग्रही भी बना देने हैं। यीशुमसीह या उनके 'क्रास' का जीवित शक्ति बना देने का प्रयत्न करनेवाले हमारे युग के नेताओं का भले ही उन्होंने नाम मी न सुना हो। बच्चे का जन्म ही स्वयं बरण किये कष्ट में से होना है और दूसरो के लिए सब कुछ सहन करनेवाला प्रेम उसका पालन करता है।

इसलिए पीपु के 'क्रास' के तत्त्व को, विस्तृत-ने-विस्तृत क्षेत्र में भी मनुष्य को मुलज्ञान में प्रयोग करने का गांधीजी का अनुरोध वस्तुतः स्त्रियों के लिए है। वे इन आदर्शों के नेतृत्व के लिए आगे बढ़ें और मनुष्य-जाति के बड़े-बड़े अभिशाप, दरिद्रता, उत्पीड़न, युद्ध आदि का अन्त करे।

हम संजीव हैं, यही इसमें प्रमाणभूत है कि हमारी माताओं ने सत्याग्रह किया है, 'क्रास' के पथ का अनुसरण किया है, केवल प्रसव-वेदना के समय ही नहीं बल्कि हमारे बचपन की प्रतिदिन की हजारों विस्तृत घटनाओं में भी। उन्होंने स्वेच्छा से और खुशी-भुशी हमारे लिए कष्ट उठाया है, कारण कि वे हमें प्रेम करती हैं। हमें यही आश्वासन है कि हम खुशी-खुशी कष्ट-सहन की इसी भावना से मनुष्य-जाति की रक्षा के लिए आगे बढ़ें। यदि हम मनुष्या में कुछ भी समझ हैं, तो हमें ज्ञात होगा कि स्त्रियाँ तो इस विद्या में हमसे बहुत आगे बढ़ चुकी हैं, और इसलिए वे यहाँ हमारा नेतृत्व और पथ-प्रदर्शन कर सकती हैं। उनके नेतृत्व के बिना हम निश्चय ही असफल होंगे।

गांधीजी के एक मुलाजानों ने तब उनके सामने अधिनायकता की समस्या पेश की। कहा, 'यहाँ तो किसी नैतिक अपोल का तनिक भी असर नहीं होता। यदि अधिनायकों में डराये जानवाले उनका अहिंसा से मुकाबिला करे, तो क्या यह उनका नाश नाचना नहीं कहलायगा? अधिनायकता तो लक्षण से अनैतिक है। ता क्या उनके मामलों में भी नैतिक परिवर्तन का सिद्धान्त लागू होने की आशा है?'

गांधीजी का इस सम्बन्ध का उत्तर भी अत्यन्त हृदयप्राही था। उन्होंने कहा—
"आप पहले ही यह मान लेते हैं कि अधिनायकों का उद्धार नहीं हो सकता। परन्तु अहिंसा को धृढा का आधार यह धारणा है कि यथार्थतः मनुष्य-प्रकृति एक है। इसलिए प्रेम का उगपर अमर होना लाजिमी है। यह स्मरण रखना चाहिए कि इन अधिनायकों ने जब कभी हिंसा का प्रयोग किया है, उसका जवाब तत्काल हिंसा से

दिया गया है। अबतक उन्हें यह अवसर नहीं मिला कि कभी संगठित अहिंसा से किसीने उनका मुकाबिला किया हो। कभी साधारणतः किया भी हो, परन्तु पर्याप्त परिमाण में तो ऐसा कभी नहीं हुआ। इसलिए यह केवल बहुत सम्भावित ही नहीं है, मैं तो इसे अनिवार्य समझता हूँ कि वे अहिंसामय प्रतिगोच को हिंसा के अधिक-से-अधिक प्रयोग से अधिक धनितशाली अनुभव करेंगे। फिर अहिंसा-व्रती अपनी सफलता के लिए अधिनायक की इच्छा पर निर्भर नहीं करता। कारण कि सत्याग्रही तो उस परमात्मा की अचूक सहायता पर निर्भर करता है, जो अपार दीप्त पड़ने-वाली विपत्तियों में उसे सहारा देता है। परमात्मा में श्रद्धा सत्याग्रही को अदम्य बना देती है।"

इससे भी हमें पता लगता है कि यीशु के 'क्रॉस' की भाँति गांधीजी का सत्याग्रह का आदर्श कितना धर्म-प्रधान है। हमें पीडा और अत्याचार से होनेवाले कष्ट की चेतना और उसकी याद मन में लेकर नहीं चलना है, यद्यपि यह कठिन है। हमें परमात्मा पर निगाह रखकर चलना आरम्भ करना है। हमें यहाँ सबसे पहले इस प्रश्न का उत्तर देना होगा कि मैं परमात्मा की इच्छा किसे समझता हूँ और परमात्मा को मैं कैसा मानता हूँ? यदि इस प्रश्न के उत्तर में हम यह मानते हैं कि परमात्मा का सकलप शुभ सकलप है, और यह शुभ सकलप भुक्ति और न्याय की मानव-प्रकृति में सर्वोच्च आसन देना चाहता है, तब हमें इतना ही और करना रहता है कि इस परमपिता परमात्मा का हम हाथ धाम ले—और हम ईसाई तो सक्षेप में यह कह सकते हैं कि वह हमारे प्रभु यीशुमसीह का परमात्मा और पिता है। यदि हम इस प्रकार उसका हाथ पकड़ ले (और थोड़ी ही देर में हमें ऐसा लगेगा कि यथार्थ में उसने ही हमारा हाथ पकड़ा है) तो हमें वह 'क्रॉस' पथ पर लेजायगा—अर्थात् दूसरी को पीडा और अन्याय से उड़ाने की खातिर सद्विच्छा अथवा दूसरे शब्दों में ईश्वरेच्छा के विरुद्ध प्रयुक्त उत्पीड़न और अन्याय के निकृष्टतम परिणाम को स्वेच्छा से धरण कर, अहिंसक रहकर, उसे सहन करने का मार्ग दिखायगा।

हमारे मार्ग का आरम्भ परमेश्वर है। हमारे सब वाद-सवादों और हमारी सब योजनाओं का आधार परमात्मा की सत्ता है। यदि हम उसे कुछ गिने ही नहीं, तो निस्सन्देह हम असफल रहेंगे। और यदि वह एक जीवन परमेश्वर है तो, जैसा कि गांधीजी बताते हैं, मीन में ही उसकी खोज करनी चाहिए। कारण कि अत्यन्त ललित भाषा में उससे कुछ कहना कुछ महत्व नहीं रखता, बल्कि महत्व की बात यह है कि वह अपनी इच्छा हमें बताये और हमें अपना मार्ग दिखाये। ऐसा पथ-प्रदर्शन और भगवद्विच्छा के साथ अपनी इच्छा मिलाने से उत्पन्न चल हमें तभी प्राप्त हो सकता है जब कि मीन होकर हम उसकी सेवा में उपस्थित हो और उसकी वाणी को सुने। तब भगवान् की उपासना में उसके सकलप को समझने में, जैसा कि गांधीजी

कहते हैं, हमारे हृदय पर वह ज्वलन श्रद्धा अंकित होगी जिसकी सहायता में हम सारी विघ्न-बाधाओं को पार कर सकेंगे।

किन्तु हमारा आरम्भ परमेश्वर से होना चाहिए। उसकी उपासना करनी होगी। हमारी राजनीति और हमारे कार्यों में हमारी अपनी भावना नहीं, उसकी ही भावना प्रधान होनी चाहिए।

अधिनायकों के मुकाबिले में क्या करना होगा इसपर और अधिक विचार करते हुए गार्फीजी के एक मुलाकाती ने पूछा कि उम हालत में क्या किया जाय जब कि अन्यायी प्रत्यक्ष रीति में बल-प्रयोग तो न करे और अपनी अभीष्ट वस्तु पर भारी आंक में ही साँचा कट्टा करले ?

गार्फीजी ने उत्तर दिया —

“यान लीजिए कि ये लोग जाकर चेक प्रजा के खदानों, कारखानों और दूसरे प्रहरी के साधनों पर बग़ावत कर लें, तो इतने परिणाम सम्भव हैं —

“(१) चेक प्रजा को सविनय अवज्ञा करने के अपराध पर मार डाला जाय। अगर ऐसा हुआ तो वह चेक राष्ट्र की महान् विजय और जर्मनी के पतन का आरम्भ बनना जायगा।

“(२) अपार समुद्र के सामने चेक प्रजा हिम्मत हार जाय। ऐसा सभी युद्धों में होता है। पर अगर ऐसी भीलता प्रजा में आजाय तो यह अहिंसा के कारण नहीं, बल्कि अहिंसा के अभाव से, अथवा पर्याप्त मात्रा में सक्रिय अहिंसा न होने के कारण, होगा।

“(३) तीसरे, यह हो कि जर्मनी विभिन्न प्रदेश में अपनी अतिरिक्त जनसंख्या को लेकर बसा दे। इसे भी हिंसात्मक मुकाबिला करके नहीं रोका जा सकता, क्योंकि हमने यह मान लिया है कि ऐसा मुकाबिला असम्भव है।

“इसलिए अहिंसात्मक मुकाबिला ही सब प्रकार की परिस्थितियों में प्रतिकार का सबसे अच्छा तरीका है।

“मैं यह भी नहीं मानता कि हिटलर तथा मुसोलिनी लोकमत की इतनी उपेक्षा कर सकते हैं। आज वैश्व लोकमत की उपेक्षा में वे अपना सतोष मानते हैं, कारण कि तयामयिन बड़े-बड़े राष्ट्रों में से कोई भी साफ़ हाथा नहीं आता और इन बड़े-बड़े राष्ट्रों ने इनके साथ पहले जो अन्याय किया है वह उन्हें खटक रहा है। थोड़े ही दिन की बात है कि एक अग्रज मित्र ने मेरे सामने स्वीकार किया था कि नाज़ी जर्मनी इंग्लैंड के पाप का फल है और वासाई की सवि ने ही हिटलर पैदा किया है।”

यहाँ लेखक के सामने वह चित्र अंकित होजाता है जबकि वासाई की शांति के बाद भोजन की कमी के दिनों में अमेरिका के बालकों को भोजन देने की व्यवस्था पर बमल गुरु होने से पहले वह विद्यार्थी के बच्चों के अस्पतालों में गया था। यहाँ

हमारे घेरे' और उससे उत्पन्न हुई भीषण बीमारियों के शिकार अनगिनती बच्चे थे, उनके शरीर नुडे-नुडे और खडित थे। इस महान् अन्तर्राष्ट्रीय पाप से मरनेवाले जर्मन और आस्ट्रियन स्त्री-बच्चों की संख्या दस लाख कूती गई है। जब विस्मार्क ने सन् १८७१ में पेरिस पर कब्जा किया था तो उसने जल्दी-से-जल्दी गाड़ी से वहाँ भोजन भेजने की व्यवस्था की थी। हमने अपने हारे शत्रु को उससे अपनी मनचाही सधि की शर्तों पर 'हाँ' भरवाने के लिए जर्मनी और आस्ट्रिया को आठ महीने तक भूखा मारा। वह सधि-शांति हमें मिल गई। मूलतः वह भेदी शांति थी, पर इस शांति को प्राप्त करने का तरीका—'घेरा'—जितना अधार्मिक रहा, इस शांति से होनेवाले सब अपमान और अन्याय (युद्ध के दोषारोपण को धारा और जर्मनी को उपनिवेश बनाने के अयोग्य करार देना) उतने अधार्मिक नहीं थे। मुझे याद है कि इन बच्चों को देख-कर मैंने मन-ही-मन कहा था कि "एक दिन इस काले बारानामे का लेखा चुकाना ही पड़ेगा।" वह दिन आज आगया है। उन बच्चों में से बचे हुए या उनके समयवयस्क ही आज नाज़ी सेनाओं के सेनापति हैं। इन्हींमें से नाज़ीवाद के अधभक्त बने हैं। हम विजयी मित्रों ने ही, युद्ध के बाद इटली के साथ किये गये व्यवहार से, मुसोलिनी पैदा किया है। व्यवहार की बानगी लीजिए। चौदह शासनाधिकार के प्रदेशों में से ब्रिटेन ने नौ ले लिये और इटली को एक भी नहीं मिला। घेरे के दिनों और बार्साई की सधि द्वारा हमने जो बर्नाब जर्मनी और आस्ट्रिया से किया, उसी व्यवहार का परिणाम हिटलर है। इतने बड़े-बड़े अन्तर्राष्ट्रीय अपराध करके भी यह दुराशा रखना कि भावी भीषण प्रतिक्रिया के बीज नहीं बोये गये, बन नहीं सकता। यदि इतिहास कुछ भी सिखाता है, तो यही। परन्तु हम पीडा और अपमान के उन दिनों पर दृष्टि डालें। नाज़ियों में यह मशहूर है कि यहूदी इसके जिम्मेदार हैं। इस बिलक्षण गायब के अनुसार उस समय, जबकि जर्मन सेनायें आगे युद्धक्षेत्र में हिम्मत हारे बगैर खूब लड़ रही थी, यहूदियों ने देश में विद्रोह की आग जलाकर विश्वासघात किया। इसलिए य जर्मन यहूदियों का। सबसे पहले दडनीय शत्रु मानते हैं। अतः जर्मनी के यहूदियों की विपत्ति का कारण विजेता राष्ट्रों के 'घेरे' और उसकी मनमानी सधि-शांति से हुए कटु अन्तर्राष्ट्रीय पाप की प्रतिक्रिया है। यहूदियों के प्रति नाज़ियों की नीति की निन्दा करने का हमें अधिकार नहीं है, क्योंकि जो इस नीति के कारण हमही हैं। हमें तो अपना दोष मानना चाहिए और फिर इन यहूदियों को जितनी भी सहायता कर सके करनी चाहिए।

एक मुलाक़ाती ने प्रश्न किया, "मे बहैसियत एक ईसाई के अन्तर्राष्ट्रीय शांति के काम में किस तरह योग दे सकता हूँ? किस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय अधाधुनी नष्ट

१. मित्रराष्ट्रों ने युद्ध के बाद शत्रु-देशों पर घेरा डालकर छात्र-सामग्री आदि का वहाँ जाना बंद कर दिया था।

कर शांति-स्थापन में अहिंसा प्रभावकारी हो सकती है ?”

वह दृश्य कितना कुछ मनोहर रहा होगा ! दो हजार वर्ष तक मेहनत करने के बाद भी ईसा के आहुति-धर्म की पद्धति से युद्ध की समस्या हल करने में असमर्थ रहकर, शांति के राजकुमार के ये चुने हुए राजदूत, छिन्न-सशय हिन्दू होने का गर्व रखनेवाले गांधीजी के चरणों में, उनसे अपनी ईसाइयत की मूलभूत याचनाओं को उत्पादक बनाने के सही मार्ग की शिक्षा लेने के लिए ससार के कोने-कोने से आकर वहाँ एकत्रित थे ।

गांधीजी ने उत्तर दिया —

“एक ईसाई के रूप में आप अपना याग अहिंसात्मक मुकाबिला करके दे सकते हैं, फिर भले ही ऐसा मुकाबिला करते हुए आपको अपना सर्वस्व होम देना पड़े । जबतक बड़े-बड़े राष्ट्र अपने यहाँ निःशस्त्रीकरण करने का साहसपूर्वक निर्णय नहीं करेंगे, तबतक शान्ति स्थापित होने की नहीं । मझे ऐसा लगता है कि हाल के अनुभव के बाद यह चीज बड़े-बड़े राष्ट्रों को स्पष्ट हो जानी चाहिए ।

“मेरे हृदय में तो आधी सदी के निरंतर अनुभव और प्रयोग के बाद पहले कभी इतना निःशक विश्वास नहीं हुआ जैसाकि आज है कि केवल अहिंसा में ही मानवजाति का उद्धार निहित है । बाईबिल की शिक्षा भी, जैसाकि मैं उसे समझा हूँ, मुख्यतः यही है ।”

सारी बात का सार यही है । गांधीजी जब ‘अहिंसा’ या ‘सत्याग्रह’ कहते हैं तो उससे उनका अभिप्राय इसी यज्ञ अथवा आहुति मार्ग का होता है । तभी तो धर्मिधर्म की हमारी बस्ती में आनेपर उन्होंने प्रार्थना के लिए ओ गीत चुना वह था When I survey the wondrous Cross अर्थात् ‘जब मैं अद्भुत क्रॉस को देखता हूँ ।’ मानो विश्व-सत्य का सार वह इसमें देखते हो । ये साक्ष्य स्पष्ट है कि वह मानते हैं कि मनुष्यजाति का उद्धार ‘क्रॉस’ और प्रभु ईसा के “अपना क्रॉस लेकर मेरे पीछे चलो” शब्दों का अक्षरशः पालन करने से हो सकता है ।

हम यह कब सीख सकेंगे कि हमारे धर्म का क्या उद्देश्य है ? बहुत करके यह आशा की जा सकती है कि इस महान् हिन्दू का कथन, और कथन से भी बढ़कर उतना अपनी मान्यताओं का जीवन में अमल, ईसाइयत की जागृति के दिन नजदीक लायाया । यूरोप के सबसे अधिक घनी बस्ती के ईसाई देश में चर्च पर आक्रमण शुरू हो ही गये हैं, तथा राष्ट्र और धर्म के एक नये विस्तृत झाड़े में ईसाई धर्म के खिलाफ और भयानक आक्रमण होंगे, ऐसी अफवाहें फैल रही हैं । क्या जर्मन ईसाई आज समय पर काम आयेगे और ईसाइयत को पुनरुज्जीवित करने और शायद सभ्यता को बचाने के लिए क्रॉस की भावना में कष्टों का सामना करेंगे ? कैदखानों को महान् मानकर उनमें प्रवेश करने और यह समझेंगे कि उन्हें ईसामसीह के लिए

कष्ट उठाने का पाव गिना गया है ? और क्या हम अपनी समस्याओं का, खासकर युद्ध और दारिद्र्य का, मुकाबिला करने में भी इस मान्यता पर अमल करेंगे ? काँस केवल सक्रिय पीड़न के समय में धारण करने की ही चीज नहीं है । ग़े, भूख, रोगी और पीड़ित जो लोग 'प्रभु के अपने हैं' उनके कष्टों और आवश्यकताओं से आत्म-सम्पर्क जोड़ने का सिद्धान्त ही काँस है ।

गांधीजी ने इसके बाद उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त के अपने लाख अनुभव का जिक्र किया और बताया कि वहाँ की लड़ाकू जातियों में अहिंसा की भावना कैसे बढ़ती जा रही है । कहा—'वहाँ मैंने जो कुछ देखा उसकी आशा मुझे नहीं थी । वे लोग सच्चे दिल से और पूरी लगन से अहिंसा का साधन कर रहे हैं । उन्हें स्वयं अहिंसा से पूरी आशा है । इसमें पहले वहाँ घोर अघकार था । कुटुम्ब में खूनी लड़ाई-झगड़े चलने रहते थे । वे पड़ान शेरों की तरह भादी में रहते थे । हालांकि वे सदा छुरियों, खजरों और बन्दूकों से लैस रहते थे, पर अपने बड़े अफसरों को देखते ही काँप जाते थे कि कहीं कोई कमर न निकल आवे और उन्हें अपनी नौकरियों से हाथ धोना पड़े । आज वह सब बदल गया है । जो लोग खान साहब के अहिंसात्मक आन्दोलन के प्रभाव के नीचे आगये, उनके धरो से खूनी लड़ाई-झगड़े नेस्तनाबूद होते जा रहे हैं, और तुच्छ नौकरियों के पीछे मारे-मारे फिरने के बजाय वे अब खेत खलिहान में जीविका कमा रहे हैं । और अगर उन्होंने अपना वचन निबाहा, तो वे दूसरे गृह-उद्योग भी जारी करेंगे ।'

इन पिछले शब्दों से प्रकट होता है कि गांधीजी कठोर मेहनत और खासकर खेत-खलिहान की मेहनत को बहुत महत्व देते हैं । जब वह सन् १९३७ में इंग्लैंड आये तो उन्होंने इसी बात पर जोर दिया था कि जातीय वस्तियाँ होनी चाहियें, इससे बेरोजगारी का सवाल भी हल होगा और ईसाई सभ्यता की फिर से नींव पड़ेगी । भारत को भी उनका यही सदेश है । इसके साथ वह कहते हैं कि प्रतिदिन किसी किस्म के गृह-उद्योग में, खासकर चर्खा कातने में, पर्याप्त समय लगाना चाहिए ।

यहाँ यह स्मरण कर लेना लाभदायक होगा कि पाँचवीं शताब्दि में जब पुरानी, सभ्यता नष्ट होगई तब इसका पुनर्निर्माण उन लोगों ने किया जो छोटे छोटे गुट्टों में, कभी की उपजाऊ पर उस समय की वीरान पड़ी भूमियों में जा बसे । यहाँ उन्होंने ईसा के नाम पर छोटी-छोटी वस्तियाँ और मठ बना लिये । प्रारम्भ के ये पादरी, जिन्होंने फिर से वैज्ञानिक कृषि गुरु की, फिर शिक्षा, धर्म, और कला फैलाई, मुख्यतः खुरपा कुशारी से काम करनेवाले ही थे । खुरपा से ही इन खोर नेताओं ने मध्यकालिक महनी सभ्यता का निर्माण किया । यह सभ्यता हमारी सभ्यता की अपेक्षा बड़ी प्रकार से अधिक रचनात्मक और बहुत अधिक यथार्थता में ईसाई थी । उनका यह खुरपा उनके निजी स्वार्थ की पूर्ति का साधन नहीं था, वे इसको अपनी जाति, अपने

प्रभु और बर्बर लोगों के आक्रमण से घायल अपने साथियों की रक्षा के लिए धारण करते थे।

यह तो सम्भव है हो कि इस युग में भी सम्पत्ता, जो अपनी सैनिकता और औद्योगिक मुकाबिले के कारण इस हालत में है, फिर नये विश्व-युद्ध में चक्काचूर होजाय। यदि ऐसा हुआ तो ऐस लाना की एक बार आवश्यकता पड़ेगी जा साहस के साथ प्रभु पीपु के लिए अपन हाथ की भेटून स नवनिर्माण आरम्भ करे। निजी लाभ के लिए नहीं, बल्कि जाति के अर्थ, युद्ध स मनाये लोगो और उनके प्रभु के निमित्त फावड़ा चलायें और धरती सादें। लेकिन इतकी तैयारी तो अभीसे करनी पड़ेगी। यह एक कारण है कि इंग्लैंड और वेल्स में जहाँ-तहाँ बेरोजगारों को रोजगार दिलानेवाली सस्याये स्थापित होगई है। इसी कारण यह भी आवश्यक है कि कुछ भाग्यशाली वर्ग के लोग ऐसी सस्याओं में पर्याप्त सस्या में सम्मिलित हो और उनके कार्य में हाथ बटाये।

इनके बाद ईसाई नेताओं और गांधीजों का सवाद फिर धर्म पर चल पड़ा। गांधीजी से पूछा गया कि उनकी उपासना की विधि क्या है? उन्होंने उत्तर दिया, "सुबह ४ बजे २० मिनट पर और सायंकाल ७ बजे हम सब सम्मिलित प्रार्थना करते हैं। यह कम कई घरों से जारी है। गीता और अन्य प्रामाणिक धार्मिक पुस्तकों से, सत्ता की वाणियों का, कभी संगीत के साथ कभी उसके बिना ही, पाठ होता है। वैयक्तिक प्रार्थना का शब्दों में वर्णन नहीं हो सकता। यह तो सत्य और अनजाने भी जारी रहती है। कोई ऐसा क्षण नहीं आता जबकि मैं अपने ऊपर एक परम 'साक्षी' की सत्ता अनुभव न कर सकता होऊँ। इसीमें समाहित होने का मेरा प्रयत्न है। मैं अपने ईसाई मित्रों की भाँति प्रार्थना नहीं करता।" (शायद गांधीजी यहाँ पन्थ-प्रचलित प्रार्थना की आर इशारा करते हैं) "इसलिए नहीं कि इसमें कहीं गलती है, पर इसलिए कि मुझे शब्द सूझते ही नहीं। मैं समझता हूँ कि यह आदत की बात है। भगवान् हमारे अभाव जानते और बूझते हैं। देवता को मेरे प्रार्थनापत्र की आवश्यकता नहीं है। 'हाँ, मूत्र अपूर्ण मनुष्य को उसके संरक्षण की वैसे ही आवश्यकता है, जैसे कि पुत्र को पिता के संरक्षण की। भगवान् से मेने कभी घोखा नहीं पाया। जब कभी क्षितिज पर अंधेरा नज़र आया, जेलों में मेरी जल्मि परीक्षाओं में, जब कि मेरे दिन अच्छे नहीं गुज़र रहे थे, मैंने सदा भगवान् का अपने समीप अनुभव किया।

"मुझे याद नहीं कि मेरे जीवन में एक भी ऐसा क्षण बीता हो जबकि मुझे ऐसा लगा हो कि भगवान् ने मुझे छोड़ दिया है।"

गांधीजी ने मुलाक़ात करनेवाले इन ईसाई नेताओं का पहला रख जाननेवाले कुछ साथियों का उक्त सवाद बड़ा रुचिकर प्रतीत हुआ। इनमें से एक प्रसिद्ध नेता एक बार केम्ब्रिज पधारें। उस समय लेखक वहाँ छात्र था। उन्होंने इसी सतति में

सत्तार के ईसाई होजाने के सम्बन्ध में एक वाग्मितापूर्ण भाषण दिया । इस महत्वपूर्ण भाषण में विश्वास और व्यवस्थित निश्चय की ध्वनि थी । हम प्रोटेस्टेन्ट ईसाइयो (विशेषतः, हमसे प्रिसबिटेरियन) के तो पास सत्य का सदेश था । मानो उलझन इतनी ही थी कि पूर्व को सत्य के अभाव में वहाँ ध्वस को बचाने के लिए हम अपने सदेश के साथ पहुँचे ।

फिर महापुद्ग आया । अब अवस्था कितनी बदल गई । हमने देखा कि एक वह पुरुष जो हिन्दू होने का गर्व करता है, हमारी अपेक्षा ईसामसीह के सत्य और क्रॉस के सत्य के अधिक समीप है । हमारे नेताओं का यह सही और बुद्धिमत्ता का ही कार्य था और है कि वे उसके चरणों में बैठकर ईसाइयत का अभिप्राय सीखने का प्रयत्न करें । क्योंकि यदि ईसाइयत का सार कुछ है तो वह मसीह का क्रॉस ही है । क्रॉस यानी यज्ञ, आहुति ।

: २१ :

एक भारतीय राजनेता की श्रद्धांजलि

सर मिरज़ा एम. इस्माइल, के. सी. आई. ई

[दीवान, मंसूर राज्य]

महात्मा गांधी के जीवन और कार्यों पर लेखों व सस्मरणों की पुस्तक में कुछ लिख देने का अनुरोध सर एस राधाकृष्णन् ने मुझसे किया है । यह पुस्तक महात्मा गांधी की ७१वीं जन्म तिथि पर उन्हें भेंट की जायगी । सर राधाकृष्णन् के इस अनुरोध का पालन करते हुए मुझे बहुत प्रसन्नता होरही है ।

म० गांधी का ७० वर्ष पूरा कर लेना उनके हजारों-लाखों मित्रों व प्रशंसकों के लिए, जिनमें शामिल होने का मुझे भी गर्व है, आनन्द खुशी के इजहार से वही ज्यादा महत्त्व रखता है । उनकी हरेब जयन्ती सभस्त राष्ट्र को आनन्दित कर देनेवाली एक घटना की तरह देखी जाती है । और उनकी ७१वीं जयन्ती भी, इसमें मुझे कोई शक नहीं कि, सारे देशभर में ज़रूर अपूर्व उत्साह का संचार करेगी ।

मेरे अपने लिए इस अवसर पर उन परिस्थितियों का वर्णन करना खास दिलचस्पी की चीज है, जिनमें मुझे इस महान् आत्मा के, जो शिक्षक और नेता दोनों ही हैं, निकट-सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ ।

१९२७ में या इसके लगभग, जब म० गांधी का स्वास्थ्य गिर रहा था, वह बंगलौर के आरोग्यवर्धक जल और नन्दी पहाड़ी की तराई-जगह पर देनेवाली वायु का सेवन करने के लिए इधर आये । इस जलवायु-परिवर्तन की उन्हें बहुत ज़रूरत थी

थी। इन्हीं दिनों मुझे उनके निकट सम्पर्क में आने का अवसर मिला। वह कुछ ही हफ्ते यहाँ ठहरे थे, लेकिन इसी अरसे में वह मंसूर निवासियों के दिलों में कई सुखद स्मृतियाँ छोड़ गये। उन दिनों में महात्माजी से जितनी बार मैं मिल सकता था, मिला। उन्हें देखकर उनके प्रति मेरे हृदय में सम्मान, प्रेम और स्नेह के भाव पैदा हुए। यही भाव उस मित्रता के आधारभूत हैं जो लगातार बढ़ती ही जाती है और जिसे मैं अपने लिए बहुत मूल्यवान समझता हूँ।

भारतीय गोलमेज परिषद् के, और खासकर परिषद् की दूसरी बैठक के दिनों में लन्दन में मैंने जो बहुत मुखसमय बिताया था उसे याद करके मुझे विरोध प्रसन्नता होती है। इस दूसरी बैठक में कांग्रेस ने भी भाग लिया था। २० गांधी इसके एक मात्र प्रतिनिधि थे। इसमें कोई शक नहीं कि वह भारत से आये हुए प्रतिनिधियों में सबसे अधिक प्रतिष्ठित और विदोष व्यक्ति थे। बैठक के दौरान में उन्होंने जो योग्यता-पूर्ण भाषण दिये, उनसे हमें सचमुच बहुत स्फूर्ति मिली। इस कांग्रेस की दूसरी बैठक में मेरे अपने लिए इस कारण और भी स्मरणीय हो गई कि महात्मा गांधी ने मेरी उस योजना का समर्थन (यद्यपि कुछ शर्तों के साथ) किया, जो मैंने फंडरल स्ट्रक्चर कमेटी में फंडरल कौंसिल (रईसी कौंसिल) के बनाने के बारे में रखी थी। मेरी योजना यह थी कि फंडरेशन में शामिल होनेवाले सब प्रान्तों या रियासतों के प्रतिनिधियों की एक फंडरल कौंसिल भी बनाई जाय। महात्माजी दूसरी रईसी कौंसिल के बनाने के सदा से विरोधी थे, लेकिन वह अपने रुख को इस शर्त पर बदलने और मेरी योजना का समर्थन करने को तैयार हो गये कि फंडरल कौंसिल का रूप एक सलाहकार संस्था का हो। दरअसल, जैसा कि मैं मंसूर-असेम्बली के एक भाषण में पहले भी स्वीकार कर चुका हूँ, “मैंने महात्मा गांधी को इसी गोलमेज परिषद् में अपने एक तात्कालिक मित्र के रूप में पाया, जब कि उन्होंने ट्वाइल पेपर के विधान पर की गई उस आलोचना का समर्थन किया, जो मैंने रईसी चैम्बर के विधान के बारे में की थी। इसके बाद का घटनाक्रम इतिहास का विषय है, लेकिन मैं इस घटना की इसलिये याद दिलाता हूँ क्योंकि यह इस बात का बहुत अच्छा उदाहरण है कि महात्मा गांधी भारत का एक दृढ़ विधान बनाने के प्रत्येक प्रयत्न में सहायता देने के लिए बहुत उत्सुक हैं।

मुझे अपने निजी सस्मरणों को छोड़कर भारतभाता के इस महान् पुत्र के जीवन तथा कार्य के महत्त्व की भी चर्चा करनी चाहिए। उनके जीवन व कार्य का महत्त्व केवल भारत के लिए ही नहीं, बल्कि समस्त ससार के लिए भी कम नहीं है। यह अवसर कहा जाता है कि किसी व्यक्ति के जीवन-काल में उसकी अमरता की भविष्यवाणी करना खतरनाक है, क्योंकि आनेवाली सन्तति आज के किसी व्यक्ति पर अपना निर्णय अपनी इच्छानुसार ही देगी। लेकिन महात्माजी के नाम के साथ अमरता की भविष्यवाणी करते हुए हमें कोई सकोच नहीं होता, क्योंकि उनकी अमरता की भविष्यवाणी को

इतिहास कभी असत्य ठहरायेगा, इसकी सम्भावना बहुत कम है। आज तो सभी एक स्वर से यह मानते हैं कि उनके जैसा महान् भारतीय पैदा ही नहीं हुआ। वह निस्सन्देह आज के भारतीयों में सबसे महान् और प्रतिष्ठित व्यक्ति है। और जैसा कि कुछ साल पहले मैंने एक सार्वजनिक भाषण में कहा था “वह भारत की आत्मा के सबसे सच्चे प्रतिनिधि हैं और किसी भी दूसरे में अधिक योग्यता से भारत की भावनाओं को प्रगट कर सकते हैं।” उन्होंने अपने देशवासियों के हृदयों को अपनी सार्वजनिक सहानुभूति और अपने ऊँचे आदर्शों के प्रति अटूट भक्ति के कारण जीत लिया है। सेवाभाव की ओर खिंचने वाले सभी लोग उनकी इज्जत करते हैं। सचमुच सत्सार के असाधारण महान् व्यक्तियों में से वह एक है। वह भारत के राष्ट्रीय जीवन में एक अद्वितीय स्थान रखते हैं। उन्होंने अपनी इस असाधारण स्थिति का उपयोग सदा मातृभूमि के हित के लिए किया है। महात्मा गांधी का अपने देशवासियों के हृदयों पर जितना महान् प्रभाव है, उसे देखते हुए उन्हें ब्रिटिश साम्राज्य के वर्तमान अत्यन्त शक्तिशाली महान् पुरुषों में से एक गिना जा सकता है।

यह कुछ बेदुसी सी बात तो लगती है, लेकिन इसमें सच्चाई जरूर है कि राजनीति बहुत गन्दा खेल है। इसमें प्रायः विषम परिस्थितियों से विवश होकर न्याय और धर्म के पथ से गिरना पड़ता है। कहा जाता है कि राजनीति में अक्सर वही व्यक्ति सफल होता है, जो न्याय-अन्याय की दुविधाओं की बहुत परवाह नहीं करता। लेकिन महात्मा गांधी की बात निराली है, वह अत्यन्त न्यायपरायण, सतर्क तथा ऊँचे आदर्शों पर दृढ़ रहनेवाले हैं और फिर भी सबसे अधिक सफल राजनीतिज्ञ। वह भारत की दुर्लभ पहली है। दुर्लभ चारित्रिक उन्नति, निर्दोष व्यक्तिगत जीवन, स्फटिक की तरह साफ़ दीखनेवाली व्यवहार की शुद्धता व गंभीरता और दृढ़ धार्मिक मनोवृत्ति—इन सब गुणों के अद्भुत समन्वय गांधीजी हमें महान् आध्यात्मिक नेताओं और सन्तों की याद दिलाते हैं। दूसरी ओर भारतीयों में एक नयी भावना, आत्म-सम्मान और अपनी सस्कृति के लिए अभिमान के भाव पैदा करने और पुनर्जीवित भारत का स्फूर्तिदायक नेता होने के कारण वह एक महान् राजनीतिज्ञ से भी कहीं अधिक हैं। वह महान् और दूरदर्शी राजनीतिज्ञ हैं। सचमुच जैसा कि रिचार्ड क्रिअड ने ‘स्पेक्टेटर’ में लिखा है—“एक भारतीय राष्ट्र का अत्यन्त अधीरता के साथ उदय हो रहा है। अभी यह परीक्षणकाल में है, लेकिन उसकी बाह्य रूपरेखा को हम देख सकते हैं। गांधीजी इसके निर्माता हैं।”

महात्मा गांधी सन्त, राजनीतिज्ञ और नेता के एक अद्भुत समन्वय हैं। अंग्रेजों के लिए वह कठिन पहली है और उनके भारतीय अनुयायी भले ही उन्हें समझ न सकें, उनका नेतृत्व तो अवश्य मानते हैं। म० गांधी सत्सार के ऐसे महान् पुरुषों में से एक हैं, जिनकी प्रशंसा सब करते हैं, लेकिन समझ बहुत कम करने हैं। उन्होंने राजनीति को धर्म और सदाचार के साथ मिला दिया है और राजनीतिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए

राजनीतिक क्षेत्र में भौतिक शक्तियों के साथ युद्ध करने के लिए नये नैतिक हथियारों का आविष्कार किया है। जहाँ एक ओर उन्होंने राजनीति को धर्म के साथ मिला कर उसे आध्यात्मिक बना डाला है, वहाँ दूसरी ओर धर्म में भी राजनीति का पुट देकर धर्म में अनेक ऐसे पहलुओं से लौकिक बना दिया है, जिन्हें पुराणप्रिय हिन्दू एकमात्र धार्मिक रूप देने थे। हरिजनों का उत्थान भी ऐसे अनेक प्रश्नों में से एक है, जिनपर उन्होंने पंडितप्रिय हिन्दुओं के विरुद्ध विवेकशील भारतीयों के विद्रोह का नतुत्व किया है। लेकिन उनके साथ न्याय करने के लिए यह भी मुझे कहना चाहिए कि इस देश से सम्पत्तिका अभिमान नष्ट करने की उनकी कांक्षित क मूल में पराधकार तथा दया की सहज भावना, मुबार का उत्साह और राजनीतिक अन्तर्दृष्टि, ये सब गुण कार्य कर रहे हैं।

महात्मा गांधी का अपनेआप में अगाध विश्वास है—ऐसा विश्वास, जो अध्यात्म शक्ति पर श्रद्धा के साथ बड़ा है और जो उनमें कभी-कभी स्फूर्ति और नव चेतनता का संचार करता रहता है। दिमाग की वनिस्वन दिल, और बुद्धि की अपेक्षा अन्तःकरण गांधीजी के जीवन पर अधिक प्रभाव डालने हैं। बहुत दफा जब विचित्र परिस्थितियों में वे अपने अनुयायियों का परेतान कर दनवाली सल्लह देते हैं या स्वयं सर्वसाधारण के लिए कोई दुर्बोध बंदम उठाने हैं, तब उसका सनर्थक 'मेरी अन्तरात्मा की आवाज' इन सीने-सादे मगर रहस्यमय शब्दों से करते हैं। 'सादा जीवन और ऊँचे विचार' यह गांधीजी के जीवन का मूल आदर्श है। जिस सीमातक उन्होंने अपने मनोभावों, अपनी क्रियाओं और अपने मन पर नियन्त्रण किया है, दूसरे आदमी उसे देखकर 'बाह बाह' करने लगते हैं और उसके साथ हम इस सीमातक नहीं पहुँच सकते, यह विराता का भाव भी उनमें पैदा हो जाता है। "गांधीजी अनुभव करते हैं कि अगर तुम अपने पर डाँवू पाला, तो राजनीतिक क्षेत्र पर तुम्हारा अधिकार स्वयं हो जायगा।" वह अपनी दुर्बलताओं के कारण अपने साथ कोई रियायत नहीं करते। वह अपने स्वभाव और हृदि में बहुत सरल और तपस्वी हैं। अन्य जीव जहिसा ये दो ध्रुवतारे हैं, जिन्हें उन्होंने सदा अपना मार्ग टटोला है और कांग्रेस व राष्ट्र के जहाज को भारतीय राजनीति के तूफानी समुद्र में खेने की कोशिश की है।

मुझे अगर कोई यह पूछे कि भारत की जनता के दिल व दिमाग पर गांधीजी के इतने प्रभाव का क्या रहस्य है, तो मैं उनकी राजनीतिज्ञतापूर्ण योग्यता का—भले ही यह भी गांधीजी में चरम सीमातक है—संकेत नहीं करूँगा और न उनकी उस महान् सफलता का निर्देश करूँगा, जिसे प्राप्त करने लिए उन्होंने भारत की समस्याओं के हल के अपने तरीकों का इस्तेमाल किया है। भारतीय लोग स्वभावतः चौरव के प्रति विशेष रूप से भावुक होते हैं और बौद्धिक नेतृत्व की अपेक्षा चारित्रिक नेतृत्व के प्रति वे अधिक आकृष्ट होते हैं। उद्देश्य की गंभीरता और हृदय की पवित्रता के साथ शानदार

व्यक्तिगत चरित्र का सम्मिश्रण गांधीजी में एक ऐसी चीज है, जिसने न केवल उनके अपने राजनीतिक अनुयायियों, बल्कि कांग्रेस-संगठन से बाहर के उन लोगों का भी विश्वास और प्रेम जीत लिया है, जो न उनके सब विचारों से सहमत हैं और न उनके राजनीतिक सिद्धान्तों और तरीकों पर विश्वास करते हैं।

पाँच साल से कुछ ही ऊपर हुआ कि मैंने मैसूर-असेम्बली में एक भाषण के सिलसिले में कहा था— 'दूसरे सब लोगों से ऊँचा एक मनुष्य है, जो हमारी दिक्कतों को सुलझाने और स्वशासन के आधारभूत नवीन चरित्र के निर्माण में हमारी सहायता कर सकता है। मैं उन लोगों में से नहीं हूँ, जो यह चाहते हैं कि महात्मा गांधी राजनीति से रिटायर हो जावे। अब से पहले इतना बुरा समय कभी नहीं आया था, जबकि हमें सच्चे वास्तविक नेतृत्व की इतनी अजहद जरूरत हो और गांधीजी में हम एक ऐसा नेता देखते हैं, जिसकी देश में असाधारण स्थिति है और जो न केवल माना हुआ शान्ति का इच्छुक तथा दृढ़ देश-भक्त है, बरन् अत्यन्त दूरदर्शी और व्यवहार-कुशल भी है। मैं अनुभव करता हूँ कि देश में परस्पर संधर्ष करते हुए विभिन्न दलों का एक-साथ मिलाने और उन सब को स्वराज्य के मार्ग पर ले जाने की योग्यता उनमें अधिक किसी दूसरे नेता में नहीं है। उन्हींमें—सिर्फ ग्रेट ब्रिटेन और भारत में परस्पर अच्छे संबंध स्थापित करने का सामर्थ्य है। मुझे यह निश्चय है कि वे सरकार के एक सक्रियशाली मित्र और ग्रेट ब्रिटेन के सच्चे साथी हैं। यदि आज इस नाजुक हालत में वे राजनीति से अलग हो जायें तो इस बात के लक्षण दीख रहे हैं कि बहुत सभ्यत भारत के राजनीतिक क्षेत्र पर वातुनी और कल्पना-क्षेत्र में उड़नेवाले लोग कब्जा कर लेंगे। उन्हें स्वयं कोई स्पष्ट मार्ग तो सूझता नहीं। निरर्थक चिन्ही व नारी का प्रयोग करते हुए वे देश की गलत रास्ते पर भटका देंगे।'

ऊपर लिखे ये शब्द जब मैंने कहे थे, उस समय वे आज तक बहुत-सी घटनाएँ घट चुकी हैं। सभी प्रान्तों में व्यवस्थापिका सभाओं के प्रति जिम्मेदार मंत्रियों की सरकारें कायम हो चुकी हैं। भारतीय सभ की समस्या आज विचार के लिए हमारे सामने प्रमुखरूप में आ गई है। गांधीजी के अपने शब्दों में वे 'कांग्रेस में नहीं रहे, मगर कांग्रेस के आज भी हैं।' लेकिन अवतत् एक भी ऐसी बात नहीं हुई कि मुझे अपना उक्त वक्तव्य को वापस लेने या उसमें कुछ तब्दीली करने की जरूरत महसूस हो। देश में म० गांधी के सिवा, जो आज भी देश में सबसे प्रधान शक्ति हैं—उत्तरे ही प्रबल जिनने कि पहले कभी थे—एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं जिसपर हम नेतृत्व के लिए पूरी तरह निर्भर हो सकें। राजनीति में समय, तर्क और क्रियान्वयता, इन सब का समन्वय करनेवाली एक खास शक्ति म० गांधी में है। आज जबकि हम आगे देख सकत हैं, उस समय तक भारत का गांधीजी के बिना मुझारा नहीं हो सकता।

यदि महात्मा गांधी भारत में हमारे लिए इतने अधिक उपयोगी और कीमती हैं,

तो यह भी उतना ही सही है कि उनके जीवन और कार्य बाहरी दुनिया के लिए भी, जो आज युद्धों व युद्ध की धमकियों के कारण इतनी अधिक व्याकुल हो उठी है, कम महत्व के नहीं हैं। उनकी राजनीतिक टेक्निक का मुख्य आधार शान्ति है, और राजनीतिक व्यवहार की फिलासफी का आधार प्रेम, सत्य और हिंसा की चरम सीमा है। उनकी ये दोनों चीजें—राजनीतिक टेक्निक और राजनीतिक व्यवहार की फिलासफी—उन राष्ट्रों के लिए काफी विचार सामग्री दे सकती हैं, जिनके आपसी संबंध आजकल कूटनीति, घृणा और युद्ध द्वारा नियंत्रित होते हैं।

अन्त में मैं प्र० गांधी की उनको ७१ वीं जयन्ती पर हार्दिक बधाई देता हूँ और मंगलमय भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि वह स्वस्थ और प्रसन्न रहते हुए बरसों भारत की विशेषता, तथा ममान्यत समस्त दुनिया की सेवा करने में समर्थ हो।

: २२ :

अनासक्ति और नैतिक बल की प्रभुता

सी. ई. एम. जोड, एम. ए., डी लिट्

[बर्कंदरू कालेज, लण्डन यूनिवर्सिटी]

मानवजाति की सबसे बड़ी विशेषता क्या है ? कुछ लोग कहेंगे नैतिक गुण, कुछ कहेंगे ईश्वरभक्ति, कुछ साहस, और कुछ आत्म-बलिदान को मानवप्राणी की विशेषता बनाने हैं। अरस्तू ने बुद्धि को मनुष्य की विशेषता माना है। उसका कहना था कि इसी बुद्धि की विशेषता के कारण हम पशुओं से पृथक् हैं। मेरा खयाल है कि अरस्तू ने उत्तर में सचाई का एक ही अर्थ है पूर्ण नहीं। तर्क-बुद्धि तटस्थ और पदार्थ-विषयक होती है।

मर्याद पर, अहंकार से बचने के लिए, भले लोग जो आवरण चढ़ा देते हैं, उन्हें भेदकर बुद्धि शुद्ध गन्त मर्याद को देख लेगी, यह उसका गर्व है। एक शब्द में बुद्धिवादी डरता नहीं है। वह जब सब वस्तुओं के मर्याद रूप का ज्ञान कर लेता है, तब उसका मन चला जाता है। वह हर पदार्थ को मर्याद रूप में देखने का प्रयत्न करता है। उसे जबरदस्ती अपने अनुकूल देखने की कोशिश नहीं करता। वह अपनी इच्छा को सर्वोपरि निर्णायक नहीं मानता और न अपनी आकांक्षा को ही यह झूठा जज बनाना है।

इसलिए बुद्धिमान् मनुष्य अनासक्त रहता है, अर्थात् उसकी बुद्धि जिस वस्तु का आलोचन करती है, उसमें आसक्त नहीं होती।

लेकिन क्या विद्वान् और बुद्धिमान् मनुष्य भी तटस्थ होता है ? मेरा खयाल है कि

नहीं। मैं ऐसे अनेक मनुष्यों को जानता हूँ, जिनकी बौद्धिक योग्यता बहुत ऊँचे दर्जे की है, लेकिन जा जूते का तस्मा टूट जाने पर या गाड़ी चूक जाने पर आपे से बाहर हो जाते हैं। बड़े बड़े गणितज्ञ और वैज्ञानिक अपने मन की शुद्धता के लिए बर्फी प्रसिद्ध नहीं होते और दार्शनिक, जिन्हें समबुद्धि होना चाहिए, बड़े तुनकगिजाज होते हैं। दार्शनिक तो छोटी-छोटी बातों पर अपने उत्तेजित होनेवाले स्वभाव के लिए प्रसिद्ध ही हैं। इसलिए मेरा खयाल है कि अस्तु का कबन सत्य की ओर सिर्फ निर्देश करता है, पूर्ण सत्य को प्रगट नहीं करता। सचाई तो यह है कि मानवजाति की विशेषता अपने आत्मा के विस्तार में, अपने मानसिक आवेगों, प्रलोभनों, आशाओं व इच्छाओं में उस तटस्थ अनासक्त वृत्ति का प्रवेश करना है, जिसका कि तार्किक अपने बुद्धिप्राप्त्य प्रतिपाद्य विषय पर प्रयुक्त किया करता है। अपन प्रति अनासक्ति रखकर कुछ सत्यो के प्रति तीव्र भक्ति-भाव रख सकना और कुछ सिद्धान्तों के विषय में अनासक्त भाव रख पाना—यही मेरे मन से उस गुण को जागृत करना है जो मानव की विशेषता है। वह है नैतिक शक्ति।

अपने आपसे भी अनासक्ति या एकाग्रता का यही गुण है, जो मेरे खयाल में गांधीजी की शक्ति और प्रभाव का मूल स्त्रोत है। उनकी अनासक्ति का एक मोटा-सा चिन्ह है अपने शरीर पर उनका अपना नियंत्रण। अनासक्त मनुष्य का शरीर उसके क़ाबू में रहता है, क्योंकि वह इसे अपनी आत्मा से पृथक् अनुभव करता है और आत्मा के काम के लिए बनौर एक औजार के इसका इस्तेमाल कर सकता है। इसलिए गांधीजी के लिए यह कोई असाधारण और अस्वाभाविक बात नहीं है कि वह बिना एक क्षण की सूचना के एकदम इच्छानुकूल समयतक गहरी नींद सो जाते हैं या भोजन में बिना कोई परिवर्तन किये जान-बूझकर अपना वजन घटा या बढ़ा लेते हैं।

अनासक्ति के उपर्युक्त गुण का दूसरा चिन्ह यह है कि वे साधनों को यथा-सम्भव अधिक-से-अधिक व्यावहारिक बनाते हुए उद्देश्य पर कट्टर निश्चय के साथ उनका सम्बन्ध कायम रखते हैं। अनासक्त मनुष्य मोही और हठी नहीं होता। वह कभी अपने मार्ग के मोह में इतना नहीं डूब जाता कि उसे छोड़ ही न सके या उसी जगह कोई दूसरा रास्ता पकड़ न सके। जबतक उसके सामने ध्येय स्पष्ट रहता है, वह हरेक ऐसे रास्ते से उसनक पहुँचने की कोशिश करेगा, जो घटनाओं या परिस्थितियों से बन गया हो। यही कारण है कि गांधीजी राजनीतिज्ञ और सन्न दोनों एकसाथ हैं। इसे देखकर बहुत-से लोग परेमान हो जाते हैं। राजनीतिज्ञता और सन्नत्व के अलावा सवि चर्चा में आना, दच्चा की सी सरलता, जा फिर पीछे अत्यन्त गहन राजनीतिक पटुता के रूप में दीखती है, एकदम समझौते के लिए उद्यत हो जाना आदि उनकी स्वभावगत विशेषताएँ हैं। वे अपने ध्येय के सम्बन्ध में ता इ निश्चयी हैं, लेकिन उस उद्देश्य तक पहुँचने के किसी मार्ग में उन्हें मोह नहीं है। इसी

कारण हम देखते हैं कि राजनीतिक हथियार के तौर पर सविनयभंग के आविष्कारक गांधीजी अब देखते हैं कि इससे सफलता की सम्भावना नहीं है तो उसे वापस लेने में तैयार भी नहीं हिचकिचाते। इसी तरह गांधीजी जो आत्मशुद्धि के लिए उपवास करते हैं, अपने उपवास की सीढ़ी का सवाल बनाकर इस्तेमाल करने और जब उपवास का राजनीतिक उद्देश्य पूरा हो जाता है, फिर अन्न-ग्रहण करने के लिए सदा तैयार रहते हैं। नये शासन-विधान के बट्टर विरोधी गांधीजी आज उस विधान को जिस विधान को उन्होंने अमल में लाने के लिए सिर्फ एक शर्त पर सहयोग देने की तैयारी है, इनकी सख्त निन्दा की यो। वह शर्त यह है कि रियासतों के प्रतिनिधि भी प्रजा द्वारा निर्वाचित हों, न कि राजाओं द्वारा नामजद, जैसा कि विधान में लिखा है। और अन्न में हम देखते हैं कि जीवनभर अंग्रेजों के प्रतिपक्षी गांधीजी आज भारत में अंग्रेजों के सर्वोत्तम मित्र—ऐसे मित्र जिनका प्रभाव न केवल सविनयभंग को फिर शुरू नहीं होने देना, बल्कि आन्दोलन पर भी नियन्त्रण करता है—माने जाते हैं। क्या अंग्रेज बहुत अधिक देर हो जाने से पहले ही थोड़ी-सी रियायतें, जो वे आज मांगते हैं, दे देंगे? क्या अंग्रेज अपनी इच्छा और शोभा के साथ रियायत खुद दे सकेंगे? या कि, फिर उन रियायतों को, जिसे आज भारत मनुष्य हो सकता है, देने से इन्कार करके इस देश का सख्त विरोधी होकर आयरलैण्ड बन जाना पसन्द करेंगे?

फिर अनासक्ति के तत्व पर आये। अनासक्ति उस शक्ति का एक बहुत प्रभाव-शाली अंग है, जिसे हम आसानी से पहचान सकते हैं, पर जिसकी व्याख्या करना बहुत कठिन है। यह शक्ति नैतिक बल है। और सब जीवधारी प्राणियों में मनुष्य ही उसका अधिकारी होता है।

भौतिक बल की न तो कोई समस्याएँ हैं, न इससे कोई नये सवाल ही उठते हैं। यदि एक आदमी शारीरिकबल में आप से ज्यादा ताकतवर है और आप उसकी इच्छा को ठुकराते हैं, तो वह प्रत्यक्षतः अपनी प्रबल शारीरिक शक्ति के द्वारा बाधित करके या अप्रत्यक्षतः दण्ड का भय दिखाकर आपसे निवट ही लेगा। प्रत्यक्ष पशुबल के प्रयोग का फल यह होता है कि आप उठाकर पटक दिये जाते हैं, और परोक्ष बल का फल यह कि उस बल के परोक्ष दबाव के भय से आदमी इस जीवन से मुह मोड़कर ईश्वर को प्रसन्न करना चाहता है ताकि अगले जन्म में इस सदा की मुसीबत से बच सके। शरीर-बल को, इस भाँति, ऐसी शक्ति कहा जा सकता है जो अपनी मर्जी के मुताबिक दूसरे को इस डर से काम कराने को लाचार करती है कि न करे तो फल भुगतना होगा।

लेकिन नैतिक बल में ऐसे किसी दण्ड का भय नहीं है। यदि मैं नैतिक बल का मुराविला भी करता हूँ, तो उससे मुझे कोई नुकसान नहीं होता। तब मैं नैतिक बल वाले की बात क्यों मानता हूँ? यह कहना कठिन है। मैं उसके प्रभाव और शक्ति

को स्वीकार कर लेता हूँ। उसका मुकाबिला करने के बावजूद भी मैं जानता हूँ कि वह सही रास्ते पर है और मैं गलत रास्ते पर हूँ। मैं यह सब वाते इसलिए मानता और जानता हूँ, क्योंकि मैं स्वयं भी एक आत्मा हूँ। आत्मा हूँ, इससे उच्चतर आत्म-धर्म जहाँ देखता हूँ वही उसे पहचानता और स्वीकार करता हूँ। इस तरह नैतिक बल में दबाव नहीं, प्रभाव है। एक मनुष्य दूसरे मानव-प्राणी के मन और क्रिया पर एक विशेष प्रभाव पैदा करता है, दण्ट के भय या पुरस्कार के लालच से यह प्रभाव पैदा नहीं होता, बल्कि दूसरे व्यक्ति को वास्तविक उच्चता को अन्तःकरण स्वयं स्वीकार कर लेता है और इस तरह नैतिक बलशाली का प्रभाव पैदा होता है।

यह नैतिक बल ही था, जिसने गांधीजी ने हजारों भारतीयों को जेलों में बंद हो जाने के लिए प्रेरित किया। यह नैतिक बल ही था कि गांधीजीने हजारों को इस बान के लिए तैयार कर लिया कि उनपर चाहे कितना ही भीषण लाठी प्रहार हो, वे आत्मरक्षा में एक अगुली तक न उठावे।

नैतिकबल से सविनयभंग को बहुत प्रेरणा मिली है। सविनयभंग आज की पश्चिमी दुनिया के लिए बहुत महत्त्व की वस्तु है। आज तो राष्ट्र की सारी वचत ही नरसंहार माघनों को जुटाने पर क्या खर्च नहीं हो रही है? क्या ये सब नर-संहार के साधन प्रजा की इच्छानुसार प्रयुक्त होते हैं? जब एक सरकार किसी दूसरे राज्य की प्रजा का नरसंहार करना वाछनीय समझती है, तब क्या वहाँ के लोग जीवित रहने की आशा कर सकते हैं? क्या युद्ध में पड़े हुए राष्ट्र के पास विरोधी राष्ट्र की प्रजा को अधिवाधिक सग्या में हत्या करने के सिवा अपने प्रयोजन की श्रेष्ठता सिद्ध करने का और कोई मार्ग नहीं है? ये कुछ सवाल हैं, जिनका जवाब पश्चिमी सत्तार को ज़रूर देना चाहिए। और जवन्व हमें अतीत काल में इन प्रश्नों के दिये गये उत्तर के सिवा कोई दूसरा उत्तर नहीं दिया जायगा तवन्व पश्चिम की सभ्यता विनष्ट होने में नहीं बच सकती।

गांधीजी को इन बात का बहुत अधिक श्रेय प्राप्त है कि उन्होंने इन सवालों का दूसरा उत्तर बनाया है और अपने में उसे लाकर दिखाया है। उन्होंने ठीक ही कहा है कि ईनामसीह और बुद्ध प्रयोगन मही रात पर ये। लडाई-झगडे के लिए दो पार्टियों का होना ज़रूरी है और यदि आप दृढ़ता के साथ दूसरी पार्टी बनने में इन्कार करें, तो कोई भी आपन नहीं लड़ सक्ता। तलवार के ज़ार में मुकाबिला करने से इन्कार कर दीजिए, उस समय न केवल आप अपने उद्देश्य का हिंसात्मक उपायों की अपेक्षा अधिक आनानी व प्रभावशाली तरीक़े में पा सकेंगे, बल्कि आप अहिंसा की निरयंकता के प्रदर्शन द्वारा हिंसा का भी पराजित कर देंगे। यह या तो बहुत पुराना, जब से कि मनुष्य साधने लगा है, तब का तरीक़ा है। पर गांधीजी ने मानवी सम्पत्तियों के निदान और मनाघान के प्रयाग में जो उने नया आविष्कार दिया है, इसके लिए सचमुच हमें उनका

वही जनता का प्रिय और प्रचलित विचार बन गया।

इन्हीं अर्थों में गांधीजी एक चारित्र्य-क्षेत्र की प्रतिभा हैं। उन्होंने सगड़ों के निबटारे के लिए एक नया मार्ग बतया है। यह मार्ग बल-प्रयोग के उपाय की जगह ले लेगा इसे संभव ही नहीं मानना है, बल्कि जब मनुष्य संहार के मद में अधिकाधिक शक्ति-संग्रह करते जा रहे हैं, तब यदि मानव-सभ्यता की रक्षा करनी हो, तो हमें देखना होगा कि वह जगह ले लेता ही है। गांधीजी का ही एकमात्र ऐसा मार्ग है, जिसपर, दूसरे सब मार्गों को छोड़कर चलना पड़ेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आज गांधीजी का उपाय सफल नहीं हुआ। इसमें भी कोई शक नहीं कि जितने की उम्मीद उन्होंने रखी और दिलाई है वह सब कर नहीं सके। लेकिन यदि मनुष्य जितना कर सके है, उससे अधिक की आशा न रखते और न देते तो यह ससार और दरिद्रतर होता, क्योंकि प्राप्त सुधार अप्राप्त आदर्शों का अंश ही तो है। गांधीजी श्रद्धावान हैं, इसलिए लोगों को उनमें श्रद्धा है। और उनका प्रभुत्व, कोई सत्ता प्राप्त न होते भी, दुनिया पर उसके भी जीवित किसी पुरुष से अधिक है।

: २३ :

महात्मा गांधी और आत्मबल

रफस एम जोम्स. डी. लिट्

[हंवरफोर्ड कालेज, हंवरफोर्ड, पैन्सिलवेनिया]

जिस किसीको महात्मा गांधी और उनके सावरमनी-आश्रम में ध्यान-भाव से रहनेवाले लोगों की देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वह जरूर उनकी ७१वीं जयन्ती के उपलक्ष में निकलनेवाले अभिनन्दन-ग्रन्थ में लेख लिखने के अवसर का स्वागत करेगा। मुझे भी दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है और मैं इस ग्रन्थ में लेख लिखने के अवसर का प्रसन्नता के साथ स्वागत करता हूँ। मेरे जीवन की विचार-दिशा और जीवन-क्रम पर उनका गहरा प्रभाव है। मैं सार्वजनिक रूप से इस आदर्श-जनक पुरुष के प्रति अपने ऋणी होने की घोषणा करता हूँ। यह मेरा सौभाग्य है कि मैं भी उनके जीवनकाल में रहता हूँ।

मैंने सबसे पहले १९०५ में असीसी के सन्त फ्रांसिस का जीवन पढ़ा था और तभी से मैं उनके जीवन को एक ऊँचा आदर्श मानता हूँ। गांधीजी, जिन लोगों को मैं जानता हूँ उनमें, फ्रांसिस से ही सबसे अधिक मिलते हुए मालूम पड़ते हैं। १९२६ में जब मैं गांधीजी से मिला, मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि गांधीजी असीसी के उस "दीन-हीन आदमी" के बारे में बहुत कम जानते हैं। मैं उनके पास बैठ गया

के “पहाड़ पर के उपदेश” से परिचित कराया। उन्होंने ईसा की शिक्षा, उनके जीवन-क्रम और प्रेम के सन्देश आदि के प्रति मेरी सहानुभूति और श्रद्धा पैदा की। इस शिक्षा से मेरी अन्तर्दृष्टि और भी गहरी हो गई और अदृश्य शक्ति में मेरी आस्था और भी बढ़ गयी। अनेक महान् आत्माओं ने मेरे जीवन और विचार-दिशा को बनाने में बहुत भाग लिया है। टालस्टाय, रस्किन, थोरी और एडवर्ड कारपेण्टर मेरे ऐसे मित्र हैं, जिनसे मैंने बहुत-कुछ सीखा है।

सत्याग्रह से गांधीजी का मतलब उस ठंडी शक्ति के प्रवाह से है जो ठंडी तो है, पर बंसी ही, बल्कि अधिक, वास्तविक है जैसी कि डाईनेमो से फूटकर चमत्कारी काम करनेवाली स्थूल शक्ति। डाईनेमो कोई नई शक्ति पैदा नहीं करता। यह शक्ति को अपने में से गुजर जाने देता है, जो यही कुछ आत्म-बलवाले व्यक्ति के विषय में है। वह शाश्वत व्यापक चैतन्य के प्रकाश का माध्यम है। वह शक्ति उसके सीमित क्षुद्र व्यक्तित्व की नहीं, बल्कि गहन गम्भीर स्रोत का प्रवाह है। व्यक्ति का जीवन अपने गूढान्तर में चित और शक्ति के अगाध सागर के प्रति मानो खुल जाता है। वहाँ तो प्रेम और सत्य और ज्ञान का अबाध प्रवाह है। भोगयुक्त होने पर वह प्रवाह व्यक्ति के माध्यम से फूट निकलता है। उपनिषदों में पुरुष के असीम रूपों का कथन आता है। प्रत्येक आत्मा में परमात्मा की सत्ता दबलाई है।

जो व्यक्ति यह जान लेता है कि इन सूक्ष्म और गहरी जीवन शक्तियों को किस तरह विकसित किया जाय, वह न केवल शान्ति और निर्मलता का अधिकारी होता है, बल्कि उसके साथ वीरतापूर्ण प्रेम, साहस और उत्पादनशील क्रिया शक्ति का भी केन्द्र बन जाता है। गांधीजी आत्मबल का जो अर्थ समझते हैं वह भी कुछ इसी तरह का है। उनका जीवन आत्मबल का अनुपम प्रदर्शन है। यह वीरतापूर्ण शान्ति या निष्क्रियता ही नहीं है, उससे बहुत अधिक है।

एक दफा मैंने उनसे पूछा कि इस फटित ससार की सब कठिनायियों और निराशाओं के बावजूद भी क्या आप ‘आत्म-बल’ में विश्वास करते हैं? उन्होंने कहा कि—“हाँ, प्रेम और सत्य की विजय करनेवाली शक्ति में मैं सदा अपने अन्तरतम से विश्वास करता हूँ। ससार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो इस शक्ति पर से मेरा विश्वास विचलित करदे।” जब ये शब्द उनसे आ रहे थे, उनकी आँगुलियाँ अपनी निक्ली हुई हड्डियों और पसलियों पर धूम रही थी। दरअसल वे अपने इस छोटे-से दुर्बल और कमजोर शरीर की शक्तियों की बात नहीं सोच रहे थे। वे तो प्रेम और सत्य के अनगिनती स्रोतों के भण्डार सूक्ष्म आत्मशरीर की शक्तियों का चिन्तन कर रहे थे।

वीरतापूर्ण प्रेम का यह संदेश और हिसा से बहुत ऊँचा यह जीवनत्रम कुछ ऐसे लोगों में भी था, जिन्हें गांधीजी नहीं जानते, लेकिन वे भी धामा और नम्रता के इसी मार्ग के पथिक थे। मैं इनका संक्षिप्त परिचय देकर वीरतापूर्ण और इस जीवन

रुम के कुछ और उदाहरण देना चाहता हूँ। सबसे पहले मैं १७वीं सदी के स्क्वेयर जेम्स नेलर का नाम लूँगा। इनपर नास्तिकता का अपराध लगाकर इन्हें क्रूरतापूर्वक दण्ड दिया गया था। लोहे की एक गरम लाल सलाख से उनकी जित्वा छेदी गई थी। उन्हें दण्ड देने के निमित्त बने सहन लकड़ी के साधे में दो घंटे तक रखा गया। छक्के के पीछे बांधकर, पीठ पर जल्लाद के हाथों चाबुक की मार सहते उन्हें लदन की गलियों में घसीटा गया था। उनके माथे पर दाग से दाग दिया गया था। यह भी हुक्म उन्हें हुआ था कि वह ब्रिस्टल में घोड़े की पीठ पर उलटा मुंह करके सवार हो, सरेबाजार उन्हें चाबुक लगाये जायें और फिर वाइडवेल के जेल के एक तहखाने में कैद कर दिया जाय, जहाँ उन्हें कलम-रवात कुछ न दी जायें। अंत में बहुत समय बाद पार्लमेंट ने एक कानून बनाकर उन्हें छोड़ा।

इस मनुष्य ने मनुष्य की अमानुषिकता का तिकार हाकर अपने साथ अन्याय करनेवाले ससार को यह शिक्षा दी, “मृत में एक ऐसी आत्मा है, जो कोई बुराई न करके, किसी अन्याय का बदला न लेकर आनंदित होती है। वह तो सब-कुछ सहन करने में ही प्रसन्न होती है। उसे यह आशा है कि अन्त में सब भला ही होगा। वह क्रोध, सब झगडों और अपनी प्रकृति से विरुद्ध सब दुर्गुणों पर विजय पा लेगी। यह आत्मा ससार के सब प्रलीभनों को पार कर दूर की चीख देखती है। इसमें स्वयं कोई बुराई नहीं है, इसलिए यह और भी किसीकी बुराई नहीं साच सकती। यदि कोई इसके साथ धोखा-धड़ी करे, तो यह सहन कर लेती है, क्योंकि परमात्मा की दया और क्षमा इसका आधार-बल है। इसका चरम विकास नम्रता है, इसका जीवन स्थायी और अकृत्रिम प्रेम है। यह अपना राज्य लड़-झगड़कर लेने की अपेक्षा मधुरता से बढ़ाती है और उसकी रक्षा भी हृदय की विनम्रता से करती है। इसे केवल परमात्मा के सान्निध्य में ही आनन्द आता है। यह निर्विकार और निर्लेप है। दुखों में इसका बीज निहित है और दुखों में ही यह जन्म लेती है। कष्ट या सात्सारिक विपत्ति में यह कभी विचलित नहीं होती। यह विपत्ता का सहर्ष स्वागत करती है और सात्सारिक सुखसभोग में अपनी मृत्यु मानती है। मैंने इसे उपेक्षित एकाकी अवस्था में पाया। झोपडों और उजाड़ स्थानों पर रहनेवाले ऐसे दरिद्र लोगों से मेरी मित्रता है, जो मृत्यु पाकर ही पुनर्जन्म और अनन्त पवित्र जीवन पाते हैं।” आत्मबल का यह एक सुन्दर उदाहरण है।

विलियम ला १८वीं सदी के प्रमुख रहस्यवादी अंग्रेज में। उन्होंने नेलर जितने कष्ट तो नहीं सहें, लेकिन फिर भी उन्हें काफी नष्टों की चक्की में पिसना पड़ा। उन्होंने भी बहुत सुन्दर और सतत स्मरणीय शब्दों में आत्मबल का यही संदेश दिया है। उनकी एक व्याख्या निम्नलिखित है

१. लिटल बुक आफ सिलेक्शन्स फ्रॉम दी चिल्ड्रन आफ दी लाइट,—लेखक रफस एम जोन्स, पृष्ठ ४८-४९

‘प्रेम अपने पुरस्कार की अपेक्षा नहीं रखता, और न सम्मान या इज्जत की इच्छा करना है। उसकी तो केवल एक ही इच्छा रहती है कि वह उत्पन्न होकर अपने इच्छुक प्रत्येक प्राणी का हितसम्पादन करे। इसीलिए यह क्रोध, घृणा, बुराई आदि प्रत्येक विरोधी दुर्गुण से उसी उद्देश्य में मिलता है, जिससे कि प्रकाश अन्धकार से मिलता है। दोनों का उद्देश्य उसमें हावी होकर कृपा करना होता है। यदि आप किसी व्यक्ति के काथ या बुराई से बचना चाहते हैं या किसी लोगों का प्रेम प्राप्त करना चाहते हैं, तो आपका उद्देश्य कभी पूर्ण नहीं होगा। लेकिन अगर आपके अन्दर सर्वभूतहित के सिवा और कोई कामना है ही नहीं, तो आपको जिस किसी स्थिति में भी गुजरना पड़े, वही स्थिति आपके लिए निश्चित रूप में सहायक सिद्ध होगी। चाहे शत्रु का क्रोध हो, मित्र का विश्वासघात हो या कोई और बुराई हो, सभी प्रेम की भावना को और भी विजयी और अधिक व्यापक और प्रभावकारक बनाने में सहायक सिद्ध होते हैं। आप पूर्णता या प्रसन्नता जिस किसीका भी विचार करे, वह सब प्रेम की भावना के अन्तर्गत आ जाते हैं और आना भी चाहिए, क्योंकि पूर्ण और आनन्दमय परमात्मा प्रेम और भूतहित की अपरिवर्तनीय इच्छा के सिवा और कुछ नहीं। इसलिए यदि सर्वभूत-हित की इच्छा के सिवा किसी और इच्छा से कोई काम करना है, तो वह कभी प्रसन्न और सुखी नहीं हो सकता। यही प्रेम की भावना का आधार, प्रकृति और पूर्णता है।”

: २४ :

गांधी का महत्त्व;

शांति-प्रतिज्ञा एक ईसाई की मनोनुभूति

स्टीफेन हॉवडाउस एम. ए.

[ब्राँक्सबान, हर्ट्स, इंग्लैण्ड]

हमारा धर्म अथवा दशन कितना भी बहिर्गत प्रतीत हो, किन्तु हमसे जो जिसी भी विचार और उद्भावना की क्षमता है, उसे एक अपनी ही दुनिया का निर्माण उन वस्तुओं में से करना पड़ा है जो कि उससे चहुँ ओर की गूढ़ और अज्ञात परिस्थिति द्वारा उसे उपलब्ध हुई हैं। हमारी चेतना के इस विश्व में कुछ ऐसी वस्तुएँ हैं—शक्ति, गुण, आदर्श अथवा व्यक्ति कहकर उन्हें पुकारते हैं—जो एक अद्भुत और प्रभावकारी आकर्षण द्वारा हमारे स्वभाव, हमारे हृदय और हमारी बुद्धि

१. सिलेक्टिव मित्रिकल, टाइटिलम, ब्राऊ, मित्रिकम, ला, स्टीफेन,—हॉवडाउस द्वारा सम्पादित पृष्ठ १४०-१४१

के केन्द्रीय तन्तुओं में हलचल कर देती है। और तब अपनी स्वस्थतर घड़ियों में एक निरन्तर चाहना हममें जग आती है, कि उन्हें हम जाने, उन्हें प्रेम करे, उनसे अविविक्त रूप में तादात्म्य करले। और वरावर इस कोशिश में होते हैं कि जो कुछ भी तुच्छ, अनावश्यक, असुन्दर और अपवित्र देखना है, उससे मुक्ति पा ले।

वे लोग, जिनका अन्तःकरण भिन्न है, इस केन्द्रोद्योजक आकर्षण को बहुत कुछ मानव-कला की कृतियों में या वैज्ञानिक प्रक्रिया को सूक्ष्म रागनियों में पायेंगे। मैं उन अनेकों में से एक हूँ, जिन्हें उसका दर्शन व्यक्तित्व की अनिवर्चनीय-विस्मयकारिता और मौन्दर्य में होता है, जिसको कल्पना कि उसकी जीवनगति संपूर्णता में उन श्रेष्ठ और सुन्दरतम नर-नारियों द्वारा होती है जो कि देह-मय में अथवा पुस्तकों में हमारी दृष्टि की राह में गुजरते हैं और या उसी व्यक्ति-रूप विस्मय और सौन्दर्य की एक अकथनीय भावना द्वारा, जो कि हममें आकाश, धरती और चेतन जगत् में प्रत्यक्ष प्रकृति से उस समयभर उठती है जब कि उस प्रकृति की ओर हमारी मनोभावनाओं में एक शक्तिप्रद अन्तर्लक्ष्य होता है। और अपने उच्चतम अनुभव के इन दो केन्द्रों से मैं अनिवार्यतः उस आस्था में लिप्त आता हूँ, जिसे हम परमात्मा कहते हैं, यानी एक उस अनन्त इन्द्रियातीत और फिर भी एकदम इन्द्रियान्तरगत और सर्वाच्च कल्याणकारी सत् की परीक्षा और खोज के प्रयास में, जो कि जीवन और सौन्दर्य के उन समस्त पृथक् जीवन-केन्द्रों का एक साथ आदि और अन्त है जो कि मेरे भीतर और मेरे चहुँ-ओर मुक्ति और अभिव्यक्ति की चेष्टा में रहते हैं।

साथ ही, कुछ है कि उनमें ही मेरी चेतना में विकृति और विभेद के वे तमोमय और नाशकारी तत्त्व भी रहते हैं जो कि अपने दुष्टिक्या से स्वस्थ जीवन के विकास में बाधक बना करते हैं। कुछेक हृदयों के विकारी शक्तिशाली स्वभाव के ऊपरी तल में मौजूद रहती मालूम होती हैं किन्तु, जिस हृदयक भी मानव की सहृदयी आत्मा स्वभाव को विपरीतता पर काबू पाने और उसे व्यर्थ करने में आश्चर्यकारी क्षमता से युक्त है, वे (विकारी शक्तियाँ) आज मनुष्यों के हृदयों में ओर सासतौर से मेरे हृदय में कहीं अधिक खतरनाक हैं। बिना सहारे में भी अत्यधिक बार आस्था खो बैठता हूँ और इन दुष्टप्रवृत्तियों को आमुरी शक्ति के आगे निस्सहाय होने-होते बचता हूँ। और तब सहायता और रक्षा के लिए किन्हीं दूसरे व्यक्तित्व से, वह मानवी हो अथवा देवी, आत्मा का निकटतर सग पाने का वाध्य होना हो चाहिए।

विधि का आदेश है कि मैं उस सम्प्रदाय में पैदा हुआ और पला हूँ जहाँ भूत और वर्तमान दोनों ने मिलकर ईशानमयी की ऐतिहासिक मूर्ति को मुझे उस अगाध चिन्मत्ता के सर्वोच्च अवतार रूप में साक्षात् कराया, जो कि शिव और सुन्दर मातृ के हृदय में विराजती देखती है। चिन्मत्ता ने, प्रार्थना ने, और एक और भी शक्तिमयी उम परम्परा के प्रभाव ने, जो कि पुरातन को विवेकशालता से पवित्र हुई और अब,

जैसा कि पहले शायद कभी भी नहीं, विपरीत जग हुआ मलो से विशुद्ध हुई है, मुझे विश्वस्त कर दिया है कि यह इतिहास-गण्य व्यक्ति विश्व और विश्वपति के हृदय में वह स्थान ग्रहण किये हुए है जो कि अन्य किसी भी मानव-मूर्ति या दैवी अवतार की पटुध के बाहर है। उसी आत्मा का अन्य मानव-प्राणियों में भी कुछ कम किंतु फिर भी गौरवमय गरिमासहित अधिवास है। अनेक उनमें वे हैं, जिनकी स्मृति का पीछे अब कोई भी उल्लेख नहीं रह गया है और कुछ उनमें ऐसी आत्माएँ कि जिनकी यादगार को अपने जाति-इतिहास के उज्ज्वल और जगमगाते रत्नों के रूप में सुरक्षित रखा गया है। उनके आभामण्डल पर एक थोड़े-से काले चिन्ह असल में मिल जाये, लेकिन इनसे उसकी कल्याणमयता नहीं ही के बराबर धुधली हो पाती है। मैं इन सब को शाश्वत ईसा के दूत या पैगम्बर के रूप में देखता हूँ। भले ही उनमें से कुछ ईसा को प्रभु और परमात्मा स्वीकार नहीं कर पाये या करने की उद्यत नहीं हुए।

इन महान् पथ-प्रदर्शकों में, एक सबसे बड़े, प्रतीत होता है, मोहनदास करमचन्द गांधी हैं, और वह अहिंसा-सत्याग्रह का पैगाम लेकर जगत् में जनमे हैं। निश्चय ही, अपने इस युग के ती वे सबसे बड़े व्यक्ति हैं। प्राचीन मतो और नीति की मान्यताओं के ह्रास ने, मशीन द्वारा हुए अत्याचार ने और उदभ्रान्त व्यवसायवादियों और सेनावादियों द्वारा हुए वैज्ञानिक ज्ञान के दुरुपयोग ने अनेक नई और सुन्दर सचाइयों की हाल में होनेवाली उपलब्धि के बावजूद भी, एक ऐसा सकट ला खड़ा किया है कि उस जैसा दुनिया में दूसरा नहीं मिलता। यहाँ तक कि ऐसा आभास होने लगा है कि सभ्यता, या कही कि नियम भलमनसाहत के साथ रहनेवाले शिक्षित समाज, जैसा कि कुछ भाग्यशाली व्यक्तियों ने उसे समझा है, अब शायद पहले कभी की भी अपेक्षा अधिक पूरे तौर से उम विश्व-व्यापी अराजकता और विनाशकारी युद्ध में नष्ट-भ्रष्ट हो जाये, जिसे कि स्वार्थ-साधन में नग्न मानव की स्वेच्छाचारी वासनाओं ने जन्म दिया है।

मैंने इस लेख में, यह समझाने की कोशिश की है कि गांधी के महान् और अत्यंत सबद्ध अहिंसा और सत्याग्रह के आदर्श ही केवल वह उपाय जान पड़ते हैं जिससे हमारी छिन्न-विच्छिन्न और राग्न अवस्था को मुक्ति और स्वस्थ और सच्चा जीवन प्राप्त हो सक्ता है। और ऐसा करते समय, साथ-ही-साथ मुझे यूरोपीय विचार-माला के गत इतिहास में आये इन आदर्शों के उल्लेखों पर भी नजर डालने जाना है, क्योंकि अधिकांशत आँखों से ओझल और प्राय ईसाई सस्कृति के नेनाओं द्वारा तिरस्कृत और उपेक्षित रहकर भी वे अभी कायम हैं। (भारत और चीन में अहिंसा का जो इतिहास रहा, उसने बारे में लिखने का मैं अधिकारी नहीं हूँ।)

उस यूरोप के मध्य में जो आज अपनी बरवादी के लिए तलवारों से भी नहीं

अधिक भयंकर असम्य साधन जुटाने में तेज़ी के साथ लगा है जर्मन प्रदेश सिलोसिया है और वहाँ गोरलिज़ नामक एक प्राचीन नगर है, जो अब आधुनिक साज सज्जा से सज्जित है। यहाँ एक प्रमुख सड़क पर जहाँ कि मोटरों की धूँ-धूँ से वायु गुँजा करती है, एक महान् किन्तु अल्पस्थान ईसाई जेक्ब वाहमे के सम्मान में एक प्रस्तर मूर्ति फोर्दे पन्द्रह वर्ष हुए स्थापित की गई थी। इस मूर्ति के निचले भाग में स्वयं उस ईसाई सन्तुष्ट के आत्म्या और चेतावर्ताभरे शब्द खुदे हुए हैं—“प्रेम और विनय ही हमारी तलवार है, जिसके द्वारा ईसा के बाँटा के छत्र की छाया में हम लड़ सकते हैं।” इन शब्दों में उस उद्धरण की पूर्ति हुई जिसे कि उन वृद्ध मन ने वहाँ अंकित किया है। और वाहमे वह सन्त थे जिन्होंने ईश्वर-सत्ता के प्रति अपनी आस्था के अर्थ अनेक बिपदाएँ सह्य। उस आस्था को वे द्वारा मानव का उद्धार हो सकता है, यह घोषणा करने के अपराध में वह घर में निकाल दिये गये थे। यूरोपीय इतिहास, निश्चय ही, अन्य ऐंसे अनेक विनयो, प्रेमी और निर्भीक नर-नारियाँ की कथाओं से भरा है जिन्होंने कि उमों, पानी अहिंसा के, सन्देश का अपने जीवन में निभाया है और देश की सामाजिक और राष्ट्रीय प्रवृत्तियों में अधिकांश को अहिंसा के विपरीत जाते देखा है। लेनिन वाम्पव में बहुत ही कम उस बल, साहस और प्रेरणा का सचय कर पाये जिसने मौजूदा व्यवस्था के निर्वाण और समाज के पुनर्निर्माण के लिए वे अपने देशवासियों को विश्व-प्रेम का उपदेश प्रभु-सन्देश के रूप में खोलकर सुना सकते। अवनत परलोक-वाद के अतिरिक्तन की गरमारा होने के कारण, ऐसे आत्म ज्ञान-प्राप्त व्यक्ति लगभग हमेशा यह समझकर छा मोता हो जान रहे कि दुनिया और दुनिया की व्यवस्था का विनाश तो विधिद्वारा ही निश्चित है, और इसलिए वे दोनों सुधार के बस की बात नहीं है।

आखिर, अब जब कि यूरोप, जिसका कुछ भाग फिर भी ईसाई होने का दावा कर रहा है, अन्य समस्त “सभ्य” जातियों के साथ एकसाथ एक आत्मघातक युद्ध का जोर जो-जान से बड़ रहा है, साम्प्रदायिक और धार्मिक झगड़ों से बुरी तरह छिन्न-विच्छिन्न भारत में एक छटे-में पतले-दुबले हिन्दू का उदय हुआ है। वह पहले बकौल भो रह चुका है। अब वह हजारों स्त्री-पुरुषों को सत्य और न्याय के नाम पर एक बिलकुल नये किस्म की लड़ाई के लिए भर्ती होने को उत्-प्रेरित कर सकता है। यह एक ऐसी लड़ाई है, जिसके सैनिक विनाशकारी मशीनरी के गन्द स्पर्श से एकदम अलग बने रहने की कोशिश करते हैं, यह एक लड़ाई है जिसके लड़ने के लिए है निर्दोष, अल्प आत्म-शक्ति, और अनास निर्दय शत्रुओं के भी साथ बढ़ती गई सद्बुद्धि, और ईश्वर के समस्त निश्चय पूर्ण विनय। हाँ, वे नहीं भाग, यह लड़ाई है, जो छुनो-छुनो ईसा का बाटो का ताज और उमकी मूली का दंड़ अपनाकर इस दृढ़ आस्था से लड़ी जाती है कि यह वह मूली और बाटो का ताज है जिससे पांडित और पीडा देनेवाला दोनों

मुझ पर ईश्वरत्व पहुँच सकेगे। भारतीय पाठक मुझे क्षमा करेंगे कि मैं स्वभाव-वश ईसाईधर्म की भाषा पर उतर आता हूँ। लेकिन मैं हिन्दू-धर्म की हृदय से प्रसन्न करता हूँ कि जिसने अहिंसा के पैगम्बर को जन्म दिया है।

जहाँ आज इस दुनिया में चारों ओर भय और अन्धकार छाया हुआ है, वह एक स्वप्न है, इतना सुन्दर कि विश्वास नहीं होता कि वह सच हो आया होगा। पर यदि विश्वसनीय साक्ष्यों की बातों पर विश्वास करें, और विश्वास कर सकते हैं, तो आश्वासन की सूचना है कि एक जीवन और स्फूर्ति देनेवाले जन-आन्दोलन के प्रथम प्रयोग आरम्भ हो गये हैं। अवन्त उसमें असफलताएँ और भूल-चूक (नेता और उसके अनुयायियों द्वारा) हुई हैं, यह जुदा बात है। पिछले कुछ महीनों में महात्मा (आम तौर से इसी पद से भारत में उन्हें विभूषित किया जाता है और वह स्वयं इसे ग्रहण करने से इन्कार करते हैं) ने स्वयं एक बार फिर पिछली असफलता और निराशा की अनुभूति को निःसंकोच स्वीकार किया है, लेकिन फिर भी भविष्य में अपना अडिग विश्वास प्रगट किया है। “ईश्वर ने मुझे”, वह लिखते हैं, “इस कार्य के लिए चुना है कि मैं भारत को उसकी अपनी अनेक विकृतियों से निवृत्ति पाने के लिए अहिंसा का अस्त्र भेंट करूँ।” “अहिंसा में मेरी निष्ठा अब भी उतनी ही दृढ़ है जितनी कभी थी। मुझे पक्का विश्वास है कि इससे न सिर्फ हमारे अपने देश ही की सब समस्याएँ हल होगी, बल्कि इससे, यदि उपयोग ठीक हुआ, तो वह रक्तपात भी रुक जायगा जो कि भारत के बाहर हो रहा है और पश्चिमी देशों को उलट देना ही चाहता है।”

जरा खयाल तो कीजिए एक उस लोकव्यापी और देश-भक्ति से अत्यन्त ही पूर्ण आन्दोलन का उन लोगों में, जो कि आक्रान्ता विदेशी लोगों के शासनाधीन हैं और जहाँ मालूम होता है सहस्रो ने भय और विश्वस्त भाव से नीचे लिखे वचनों को अपने कर्म का आधार-सूत्र स्वीकार किया है। ये वचन उनके उस महान् नेता की लेखनी अथवा मुख से निकले लिये गये हैं।*

“अहिंसा का अर्थ अधिक-से-अधिक प्रेम है। वह ही सर्वोपरि नियम है, केवल उसी के बल पर मानव-जाति की रक्षा हो सकती है।”

“वह, जो अहिंसा में विश्वास रखता है, जीवन-रूप परमात्मा में विश्वास करता है।”

“अहिंसा शब्दों द्वारा नहीं सिखाई जा सकती। हृदय में प्रार्थना करने पर ही वह प्रभु की कृपा से अन्तःकरण में जगती है।”

“अहिंसा, जो सबसे धीर है और बलिष्ठ है, उनका शस्त्र है। ईश्वर के सच्चे

१. कुछेक स्थानों में मैंने गांधीजी के अलग-अलग वचनों को, जैसे कि वे गांधीजी द्वारा स्वयं अथवा निम्न लेखकों द्वारा प्राप्त हुए थे, संक्षिप्त कर दिया है या जोड़ दिया है।

जन में तलवार चलाने की शक्ति होनी है, लेकिन वह चलायेगा नहीं, क्योंकि वह जानता है कि हरेक आदमी ईश्वर का प्रतिरूप है।”

“यदि रक्त बहाया जाय, तो वह हमारा रक्त हो। बिना मारे चुपनाप मरने का साहस जुटाना है।”

“प्रेम दूसरों को नहीं जलाता, वह स्वयं जलता है, खुशी-खुशी कष्ट सहते मृत्यु तक का आलिंगन करता है। किसी एक अंग्रेज की भी दह को वह मग, वचन, या कर्म से, जान-बूझकर क्षति नहीं पहुँचायेगा।”

“भारत को उनपर, जिनके द्वारा कि वह विजित समझा जाता है, प्रेम में विजय पानी होगी। हमारे लिए देश-भक्ति और मानव-प्रेम एक ही चीज हैं। भारत को सेवा के प्रयोजन से मैं इंग्लैंड या जर्मनी को चोट में पहुँचाऊँगा।”

“अहिंसा और सत्य अभिन्न हैं और एक का ध्यान करो कि दूसरा पहल ही आ जाता है।”

“मृत्यु से ऊपर और कोई ईश्वर नहीं है। सत्य ही सर्वप्रथम साधन की वस्तु है।”

“श्वय ईश्वर द्वारा मर्चाहित हमारे पवित्र युद्ध में कोई ऐसी भेद नहीं है जिन्हें गुप्त रखने की चेष्टा की जाय, चालाकी की कोई गुजायश नहीं है, असत्य को कोई स्थान नहीं है। सब कुछ शत्रु के सामने खुलेआम किया जाता है।”

“सत्याग्रह के लिए आवश्यकता है कि युद्ध के लिए प्रार्थना करके ऐन्द्रिक और अहृणत समस्त वासनाओं पर बाध पाया जाय।”

“एक-एक पग पर सत्याग्रही अपने विरोधों की आवश्यकताओं का खयाल करने के लिए बाध्य है। वह उसके साथ सदा विनम्र और शिष्ट रहेगा, यद्यपि सत्य के विरुद्ध जानेवाली उसकी बात या हुक्म की वह नहीं मानेगा।

“सत्याग्रही न्याय के रान्ने से नहीं डिगेगा। पर वह सदैव शान्ति के लिए उत्सुक रहता है। दूसरों में उसकी अत्यन्त निष्ठा है, अन्तर्धर्म और अमिट आशा।”

“मानव प्रकृति तत्काल एक है और इसलिए अन्यायकारी (अन्त में) प्रेम के प्रभाव में अछूता रह नहीं सकता।”

“धरती पर कोई शक्ति ऐसी नहीं, जो शान्ति-प्रतिष्ठा, सत्त्व-वृद्ध और ईश्वर-भक्ति जनों को राह में ठहर सके। सत्तार के ममत्त्व शस्त्र-भंडारों के मुकाबिले भी अहिंसा अधिक शक्तिशाली है।”

“जो ईश्वर से डरता है उसे मृत्यु में कोई भय नहीं।”

“गृह-ध्वंस, व्यर्थी, पीड़ा, शोक, दुःख, क्षति, मृत्यु, चोट, वेदित, निर्मिच्छता, विच्छिन्नता, बहरी है। शरीर के चोट खाने का डर, रोष या मृत्यु का डर, धन-मपदा, परिवार अपराध-प्राप्ति में वचित हान का डर, सब डर छोड़ देना होगा। कोई वस्तु दुनिया में हमारा नहीं है।”

“अहिंसा के लिए सच्ची विनम्रता चाहिए, क्योंकि 'अह' पर नहीं, केवल ईश्वर पर निर्भर होने का नाम अहिंसा है।”

असल में जिस हृदयक हम दुनिया की सम्पदा का अनुचित हिस्सा बटोरकर आराम से बैठे हुए हैं, या अपने साथी जनों को शोषित करने या उनपर शासन चलाने में सन्तोष का अनुभव करते हैं, वहाँतक भले ही हमें ऊपर के जैसे सिद्धान्तों को अपने नित्य जीवन में लाने में डर लगता हो, लेकिन सद्भावना-भरे उन सब स्त्री-पुरुषों को, जो मानव और ईश्वर में और अत्मानन्द के जगत् की वास्तविकता में निष्ठा रखकर जीवन चित्ताने की चेष्टा करते हैं, अवश्य ही एक ऐसे आन्दोलन में आल्हाद मिलना चाहिए, जिसने, बावजूद अपनी सब भूल-भ्रूको के, मानव-इतिहास में पहले-पहल अपनी पताकाओं पर विशुद्ध जीवन-स्फूर्ति देनेवाले ऐसे उपदेश-पद अंकित किये हैं।

खासतौर से ध्यान देनेयोग्य बात यह है कि कम-से-कम दो ऐसे अवसरों पर, जहाँ कि सविनय-अवज्ञा के रूप में सत्याग्रह-आन्दोलन ने एक अपर्याप्त रूप से शिक्षित हुई जनता में भयावह उत्तेजना का ऐसा बातावरण पैदा कर दिया था, जिससे नीबट हिंसात्मक कार्यात्मक पहुँच गई थी, भारत के इस नेता में एक नितान्त असाधारण साहस का परिचय दिया। अपनी “हिमालय-जैसी भूल” को उसने कबूल किया और आन्दोलन को एकदम बन्द कर दिया। यद्यपि उसके बहुत-से अनुगामियों को बुरा तो लगा और उन्हें रोष भी हुआ। इसके अतिरिक्त, हिंसा और अत्याचार की बुराई का प्रतिरोध करने के लिए गांधीजी का जो कार्यक्रम है, उसीसे अभिन्न रूप में जुड़े हुए और विविध कार्य-क्रम हैं जिनसे प्रकट होता है कि “जो सबसे दीन है, नीचे गिरे हैं, खोये जा चुके हैं,” और खासतौर से जो भारत के ‘अछूत’ बने दर-दर मिलते हैं” उन सबसे सत्याग्रही किस बेचनी के साथ मिलकर एक होशाने को उत्सुक रहता है।

पिछली कुछ शताब्दियों में पश्चिम के तीर-तरीके और विचार-संस्कारों ने फैलकर पृथ्वी के अधिकांश भागों को समृद्ध बनाया है। पर उस समाज में ईसा के सुन्दर आदर्शों का बहुत-से-बहुत उपयोग है तो वह अश-भाज। यह सच है कि उस संस्कृति के प्रभाव से जीवन को स्फूर्ति मिली है, अमाने और पीड़ित जनों को न्याय, दया और सहायता का कुछ-कुछ भाग प्राप्त हुआ है, सच्चाई और ईमानदारी को बल भी मिला है, और एक बहुत बड़ी सत्या की ऐन्द्रिक जड़वाद को दलदलों से उबरने का सास भी मिल सका है। लेकिन इन क्षेत्रों में भी उस पद्धति की सफलता अत्यंत सीमित होकर रह गई है। उधर ईसाई आदर्शों तो, जैसा कि हम जानते हैं, बेकारी, व्यावसायिक प्रतियोगिता, और युद्ध की मुसीबतों का दूर करने में अशक्त कार्य हुआ ही है। वजह यह है कि लगभग सब ईसाई, अतिशय धार्मिक जन भी ‘सुरक्षितता’ के मोह में रहे हैं। उन्होंने अपना विश्वास अनात्म में और जड़ता में और सविन सम्पदा में अटका लिया है। शांति-रक्षा के निमित्त ध्वंसकारी शस्त्रों में उनका विश्वास

है, परमात्मा न और परमात्मा से प्राप्त आत्म-शक्ति में आस्था उन्हें नहीं है। हम ईश्वर और कलशर दोनों की साधना करना चाहते हैं। हम अपने को बेसुमार ऐसे तामान से घिरा रखते हैं जो प्रायः अज्ञान और अनिच्छुक मजूरों और आत्मा का इनत करनेवाली मशीनों द्वारा बना होता है। अपने नौजवानों को मार-काट और ज्वस की शिक्षा पाने की सीख देते हैं। और यह सब इसलिए कि अपराधी और भूखे में हम बचे रहें। पर हमारे लालच और स्वायं से भूखा और भूखा रहने का लाचार होकर उन में अपराधी हो उतरता है।

ईसा ने अपनी महान् उपदेश-वाणी में, और इससे भी अधिक स्वयं अपने जीवन और मृत्यु के दृष्टान्त द्वारा, हमेशा के लिए इस झूठी सभ्यता का प्रतिकार बता दिया है। वह स्त्री और पुरुषों का आवाहन करते कि वे सीखें कि किस प्रकार जीवन की सादगी और स्वस्थ-कर दीनता से (पतनकारी लाचार दीनता से नहीं) सतुष्ट रहना चाहिए, किस प्रकार ईश्वर की सहायता और सरसकता में पूर्ण विश्वास रखना चाहिए, और किस प्रकार अन्य सभी कुछ से ऊपर परमात्मा, आत्मानन्द, और जीवन-मोक्ष को महत्त्व देना चाहिए। वह कहते हैं कि सब भानव-प्राणियों से एकता प्राप्त करो और एक रूपित आत्मा का मुकाबिला अजेय धर्म और प्रेम से करो। विश्वास में विचलित न होओ कि अन्यायी के अदर भी न्याय है और निष्ठा प्राप्त करो कि बलपूर्वक किसीका प्रतिरोध करने के बजाय स्वयं कष्ट सहोगे और इसमें जान देने की तैयार रहोगे। दुरों को भलो में बदलने की यही रीति है और यही परमान्मा की है।

आदि से, ईसा के कुछ छोटे ही अनुयायियों ने रूपियों से बरतने का यह तरीका पूरे सौर पर समझा मालूम होता है। यह हमारा दुर्भाग्य है। और तो और, बाइबिल में भी, जहाँ इसकी व्याख्या है, वहाँ पुरानी दड-भावना का भी अवलेख चढ़ गया है। कम-से-कम कुछ लेखकों ने तो उस पवित्र पुस्तक में ऐसी धारणा प्रगट की है कि कोप और दण्ड हेतु तलवार चलाना ईश्वर का और राज्य का—क्या नास्तिक राज्य का—अधिकार-मिद्ध कर्म है, हाँ व्यक्ति-रूप से, अर्थात्, एक ईसाई को दुराई का जवाब दुराई से नहीं देना चाहिए। कुछ अस्वाभाविक नहीं था कि ईसाई-धर्म-शासन (चर्च) ने भी इस धारणा को अपनाया। और फिर उस जहर को ख्रीस्त लोक-शासन में भी प्रविष्ट कर दिया। खासतौर से यह भूल धारणा कि, ईश्वर के पुत्र मसीह ने एक निर्यवर्ती नरक की सत्ता का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है, ईसाई विचार पर क्लृप्त की तरह विद्यमान है। ऐसे विश्वास को लेकर 'क्रॉस' (यज्ञ) के अर्थ के पूरे महत्त्व को पाना अन्यतः कठिन होजाता है।

संपूर्ण मनुष्यता के रूप में मसीह के व्यक्तित्व के प्रति आत्मतत्त्व भक्ति (और भक्ति उचित है यदि, और में मानना है कि अवश्य, ईसा लोकोत्तर पुरुष थे) यहाँ

तक कि गूढ़ आराधना और प्रेमरूप ईश्वर के प्रति तन्मयता भी ईसाई मत के सन्तों को मानव-समाज के प्रति उस ईश्वर के ब्यार्थ आदेश को प्रगट करने में असफल रही। निस्सन्देह, उनमें अनेक ने सच्ची अहिंसा का आचरण किया। लेकिन ईसाइयत के किसी बड़े नेता ने मनुष्य जाति के उद्धार के लिए अकेले एक कारगर उपाय के रूप में अहिंसा को नहीं बताया। पीछे सतजन हुए जिन्होंने प्रयत्न किये कि ईसाइयत सामाजिक हिंसा के भाव से छूटे। पर जान पड़ता है कि ये भी ऐसे ईश्वर के रूप में श्रद्धा रखने रहे जिसमें क्रोध और दण्ड की भावना की स्थान है। उनका विश्वास ऐसे ईश्वर में मालूम होता है कि जो हमारे दुष्टों का पुरस्कर्ता है, जीवन-काल में प्रायश्चित्त न हो सकने-वाले पाप भोग के लिए जिसने अनन्त नरकयातना का विधान किया है। जहाँ-तहाँ विचारक और रहस्यशील लोग यदि हुए भी हैं तो उनकी आवाज अरण्य-रोदन की तरह अनसुनी रह गई है। उनपर ध्यान नहीं दिया गया और उन्हें गलत समझा गया है। आखिर मानवता की परम आवश्यकता की घड़ी में लियो टॉलस्टॉय का उदय हुआ। युवावस्था में उन्होंने मैने प्रकाश पाया है और उनकी कयाकार की धन्य-शक्ति का मैं कृतज्ञ हूँ। उनके लेखों से लोगों में अपने सम्बन्ध में प्रश्नालोचन पैदा होता है। वही फिर फल लाता है। टॉलस्टॉय के पश्चान् महात्मा गांधी हमारे समक्ष है। ईसा-मसीह के शिक्षा स्रोत से उन्हें प्रेरणा मिलती है। टॉलस्टॉय ने जो उन शिक्षाओं का स्पष्टीकरण किया गांधीजी की प्रतीति वैसी ही है। हिन्दू-साहजों में बड़ी वस्तु सारभूत है। उसी अहिंसा के सदेश को स्वीकार कर जीवन के हर विभाग में गांधीजी ने उसका उपयोग किया है और उसे ऐसे तर्क सिद्ध आकर्षक रूप में सामने रखता है कि हजारों विपानु आत्माओं को तृप्ति प्राप्त होती है। उस सन्देश में अनिवार्य अपील है और वह विज्ञानयुक्त भी है।

जैसे ईसाई रहस्य-दृष्टाओं को उसी भाव में गांधीजी को भी ईश्वर नीतिवान् और व्यक्तिवन् रूप में प्रतीत होता है। यह तो है ही कि ईश्वर अपौरुषेय है। यहाँ दोनों की मान्यताओं में मैं कोई भेद नहीं देखना। न तो पुनर्जन्म वा हिन्दू विश्वास

१ यहाँ स्मरण दिलाना अच्छा होगा कि दक्षिण अफ्रीका की अपनी पहली सार्वजनिक अहिंसक प्रवृत्ति के आरम्भ में गांधीजी अपने को टॉलस्टॉय का शिष्य मानते थे। अपनी सब प्रवृत्तियों का विवरण लिखकर गांधीजी ने टॉलस्टॉय को भेजा था। सन् १९०३ में [युद्ध से कोई सात वर्ष पहले] टॉलस्टॉय ने जवाब में एक लम्बा पत्र दिया। वह पत्र बड़े काम का है। अन्त में उसके जो वाक्य थे, वह भविष्य-वाणी जैसे लगते हैं। लिखा था 'दुनिया के इस दूसरे छोर पर रहनेवाले हमलावरों को मालूम होता है कि वहाँ ट्रान्सवाल में जो आप कर रहे हैं वह बहुत ही आवश्यक काम है। दुनिया में जितने काम किये जा रहे हैं, उन सबमें महत्वपूर्ण आपका काम है। उसमें ईसाई देश ही नहीं, बल्कि दुनिया के सब देश भाग लिये बिना यह नहीं सकेंगे।'

उनके व्यवहार-कर्म पर कोई ऐसा प्रभाव डालता दीखता है, जिसपर किसी भी तरह एक ईसाई को आपत्ति हो सके। और गांधीजी के लेखों में वही इस प्रकार का संकेत मुझे नहीं मिला कि ईश्वर में, पुष्ट-रूप में, वह दण्ड या क्रोध की किसी भावना की गुजाहरी देखते हों। यह तो मोह है, मनुष्य का अहंकार और स्वार्थ है, जिसका दण्ड मनुष्य स्वयं भोगता और नष्ट होता है। “ईश्वर” गांधीजी कहते हैं, “प्रेम है।” “वह तो सहिष्णुता का प्रतीक है।” “उसका तन्त्र ऐसा सम्पूर्ण प्रजातन्त्र है कि उसकी उपमा नहीं हो सकती।” पाप-फल और कर्म-सिद्धान्त की व्याख्या में गांधीजी ईश्वर की अपौरुषेयता और अलिप्तता के तत्त्व को मानते मालूम होते हैं। बोहेम और लॉया और कुछ अन्य विचारकों ने कर्म में ही फल-शक्ति मानी है। वह शायद सन्त पॉल की भी मान्यता थी। गांधीजी भी उसके बिल्कुल समीप हैं। गांधीजी के आदर्श में जो एक रहस्यमय निष्ठा है उससे पापीमात्र के निरन्तर और अनिवार्य उद्धार के तत्त्व का और ईश्वरपूर्वक मनुष्य जाति की वास्तविक एकात्मता के तत्त्व का भी प्रतिपादन होता है। “आत्मा सब की एक है.....” मैं इस तरह पापी-से-पापी के कर्म से अपने को अलग नहीं कर सकता..... मेरे परीक्षण (अर्थात् सत्याग्रह) में इसलिए तमाम मनुष्यजाति का स्वाल आ जाता है।”

पर इसमें अचरज की बात न होगी कि मेरे समान एक पश्चिम देश के ईसाई को गांधीजी के समूचे प्रोग्राम में सहमति न हो सके। उदाहरण के लिए, विवाह के सम्बन्ध में उनके विचार अहिंसा से सगत न मालूम होकर आत्यंतिक काया-दमन के लगते हैं। उनकी स्वदेशी की धारणा और शुद्ध हिन्दू राष्ट्रियता भी यथार्थ सनातनी अथवा ईसाई अहिंसा-सत्याग्रह की प्रकृति से अलग जान पड़ती है। पर दिन-पर-दिन यह हममें से अधिकाधिक पर प्रगट होता जाता है कि जैसे कि एक भारतीय मिशनरी ने कहा है “सत्याग्रह, जोकि गांधीजी बतलाते और आचरण में लाते हैं, अथवा उनके सच्चे अनुयायी जीवन में जिसे उत्तरते हैं, वह ईसाई धर्म की मूल शिक्षा से एकदम अभिन्न है। वह बुराई की प्रेम से जीतने और स्वेच्छा से स्वीकार की गई और प्रीति के साथ वरदान की गई वेदना के जोर से पाप की धर्म में परिवर्तित कर देनेवाले शास्त्र सिद्धान्त ‘क्रॉस’ यानी आत्म-आहुति और यज्ञ-धर्म का दुसरा रूप है।

ईसाइयों को इस बात का तो सामना करना ही होगा कि जाहिरा तौर पर उनके सम्प्रदाय का न होकर वह एक सनातनी (चट्टर) हिन्दू है, जिसने कि क्रॉस के आहुति-धर्म के सार को पाया है और समाज के लिए उसके परम महत्त्व को समझा है। वह है जो असलियत में ईसा-मसीह की जीवनदायिनी मृत्यु के रहस्य को धारण कर रहा है और वह है कि उस सन्देश के प्रति अपनी तत्पर लगन और निष्ठा से हजारों आदमियों में वैसी ही त्याग की स्फूर्ति भर सका है। वह तृष्णा को परास्त करता

१. सन् १९६४ में दिल्ली में उपवास के समय के गांधीजी के वचन।

आया है और काया के विकारों में कभी फँस नहीं गया। मुझे विश्वास है कि जन्म और स्वभावगत हिन्दू-संस्कारों की बाधा न होती, तो ईसा मसीह की शिक्षा का ऋण ही नहीं, बल्कि स्वयं ईसा मसीह के जीवन की प्रेरणा को आज गांधी अपने सत्याग्रह मूल में स्वीकार करते।

जब सोचता हूँ कि मनुष्य जाति के इतिहास पर सत्याग्रह का क्या प्रभाव पड़ेगा, क्या परिणाम इस सम्पर्क का होगा, तो कल्पना कुछ इस तरह की सम्भावनाएँ प्रस्तुत करती हैं। अधिनायकता वाले राष्ट्रों के इरादों और हिंसात्मक तरीकों के भी दारुण हो लेकिन धार्मिक बुद्धि को तो समस्या के तल में कुछ और ही दीखना है। परिस्थिति के दो पहलू विचारणीय हैं। एक तरफ प्रजातन्त्र बड़े जानेवाले पश्चिम के राष्ट्र हैं। सभ्यता, संस्कृति या धर्म के विषय में यही देश अगुआ है। पर ये दुनिया की जो बहुत जमीन, माल और साधन अपनाये बैठे हैं, उसमें और मुल्कों के साथ बराबरी का बँटवारा करने को वे तैयार नहीं हैं। उधर खुलकर जोर की आवाज के साथ यही देश ऐलान करते हैं कि जो उनके पास उपलब्ध साधन और धन है उन सब को लड़ाई में झोक देने को वे तैयार हैं। आधुनिक लड़ाई का रूप कल्पना में न लाया जाय तो ही अच्छा है। उसके ध्वंस की तुलना नहीं हो सकती। और यह युद्ध होगा किसलिए? इसलिए कि आसपास के जो भूखे देश लूट में अपना भी हिस्सा माँगते हैं उन्हें दूर ठिकाने ही रखा जाय। धन-दौलत और अधिकार के पीछे बेतहाशा आवाधापी और होडा-होड लगी है। तिसपर उस वृत्ति में आ मिली है बुद्धि की चतुरता। आदमी का दिमाग बेहद बड़ गया है। प्रकृति की शक्ति और मनुष्यों के सगठन को काबू में करके अब वह बहुत कुछ कर सकता है। नवीजा यह हुआ है कि भारी शक्ति बटोरकर लोग उन आसुरी वृत्तियों को पोस रहे हैं। ऐसे क्या होगा? होगा यही कि सारी दुनिया में डिक्टेटरशाहियों या कि अन्य तन्त्र-शाहियों के गट्टू लोह-तूष्णी और शक्ति-सन्धय की प्यास में आपस में घमासान मचायेगे और प्रजातन्त्र नामवाले देश भी उन अन्य तन्त्र-शाहियों की ताकत का मुकाबिला ताकत से करेंगे। इस तरह मुसीबत और बढ़ेगी ही। नास बड़ेगा, दैन्य बड़ेगा। तूष्णी और आतंक का दौर-दौरा होगा। क्याकि आज की सी लड़ाई की भीषणता के बीच का तो यह है कि प्रजातन्त्र राष्ट्र दुश्मनों की ज्यादा मजबूत हिंसा शक्ति के आगे हार कर नष्ट हों या फिर अपने ही अन्दर सैनिक वर्ग और वृत्ति-प्रधानता बढ़ने जाने के कारण, आवश्यकता के बोध से स्वयं अपने में ही डिक्टेटर-शाही उपजाकर उसके हाथों पड़कर नष्ट हो।

उमके बाद फिर तो पुराने रोम-शाही के खुले दौर का समय होगा ही। दया और धर्म की पूछ तब नहीं होगी। पर जैसा कि सशस्त्र विरोध के मिटने के बाद, रोम-राज्य भी धीरे-धीरे ज़रूर और निरपेक्ष होने लगा था, वैसे ही दुनिया की यह एकच्छिन्ना या मुट्ठी-छत्रना अपने अंदर जड़वाद और मनमानेपन की शक्त रखने पर

भी किसी कदर कम सन्त होने लगेंगी और उसका रुख एक तरह के बुजुर्ग अधिकार का होने लगेगा ।

पर फिर भी सहस्रो स्त्री-पुरुष होंगे जो निरकुशता के हाथों धिक्के नहीं, न उसके मूक साधन धनेंगे । उनका इन्कार दृढ़ रहकर बढ़ता और फैलता ही जायगा । कपटों में पवित्र, धर्म धर्म ऐसे बहुत सख्या में समुदाय होते जायेंगे । ईसाई उसमें होंगे, बौद्ध, हिन्दू, मुसलमान या अन्य धार्मिक वर्ग होंगे । ये समूह आपस में पास खिंचेंगे और डकड़ें बनें जायेंगे । वे सहिष्णु होंगे और रह-रहकर उनपर अत्याचार टूटेगा । (ईसाई होकर यह विश्वास मुझे है कि अन्त में जाकर ईसा के सच्चे विसर्जन-धर्म के ही किसी स्वरूप की विजय होगी, चाहे फिर उसमें सदिया ही क्या न लगजायें ।) ये सब समुदाय सरकारी अत्याचार या जनता के अनाचार के प्रतिकार का जो उपाय करेंगे, वह अहिंसा-सत्याग्रह ही होगा, अग्नेय अधिक संगठित होगा, अधिक व्यापक, अधिक अनुशासित, और तेजोमय और विमल । पर भविष्य या वह प्रौढ़ आन्दोलन होगा प्रतीति धिशु समर्थरूप में, जिसे हमारे इस युग में गांधीजी ने जन्म दिया है । और आगामी सन्नि के लौंग गांधीजी की तरफ और उससे भी पीछे टात्सदाय की तरफ उनके नवयुग के स्रष्टा के रूप में देखेंगे । कुछ काल तो अपरम गिरजुस विश्व के नियता अधिनायकजन, जाहिर में सामने शत्रु न देखकर, अपनेको अज्ञेय मान बैठेंगे और लोकमत को, खासतौर से नई पीढ़ी को, अपनी ही तरह की निष्ठा से छा देंगे । लेकिन आदमी के अन्दर की दिव्यात्मा को दफनाकर बंद रखना जा सका है कि तब रक्खा जा सकेगा ? सी शासक-वर्ग की शक्ति अन्दर से, धीमे पर निश्चित रूप में, सीन और सोखली होती जायगी । बुराई में अव्वल तो स्वयं ही नाश का बीज होता है । बिना छेड़े उसे छोड़ दे और सुधार-आदर्श के हलके नासमझ जोश में लोग उसके खिलाफ हिंसा में उतावले न ही बन, तो वह नाश और भी शीघ्र आजाय । यानी उस शासन-शक्ति के अन्दर में फूट पैदा होने लग जायगी । दल पड़ चलेंगे और घरेलू युद्ध-बलह मच फँकेगा । इन लड़ाइयों में, अमह्यगवाली सत्याग्रह-भावना के व्यापक प्रसार के कारण, लड़नेवालों को उनकी लड़ाई लड़ने के लिए कम-से-कम लोग हथियार बन-कर मरने को राजी भिन्गे । आखिर इस घरती पर लाखों-लाख की सख्या में ऐसे स्त्री-पुरुष तैयार होआयेंगे, जो सब कुछ सन्न लेते, पर अहिंसा, अन्याय और तृष्णा के हाथ हृदय-हीन अन्न बनने को राजी न होंगे ।

साथ ही, विश्वास और आशा करने के लिए मजबूत कारण है कि सद्भावना का प्रभाव सत्याग्रहियों के सघो में फूट फूटकर शासकी और उनके अनुयायियों की छावनियों में छाता जायगा । यह प्रभाव कोरी निषेधात्मक साधुता का नहीं होगा, बल्कि मक्षम प्रेम का बल उममें होगा । उस ईश्वर की निष्ठा का उसे बल होगा, जो ईसा में मूर्तिमान् हुआ, या नहीं, बुद्ध अथवा कृष्ण में मूर्तिमान् हुआ । वही ईश्वर

स्वयं उनका नेता और दाता होगा। वही सत्य, वही प्रेम। वह प्रेम का अधिष्ठाता प्रभु होगा और सबके हृदय में उसका अधिवास होगा। इस प्रकार शासक लोग भी इस विषय सघर्ष के परिणामस्वरूप अधिकाधिक मनुजोचित व्यवहार के योग्य बनेंगे और शासन-शान्ति के भले के लिए सत्याग्रहियों की उपयोगिता पहचानकर उन्हें स्वराज्य और स्वकर्म की अधिकाधिक स्वतन्त्रता देगे। अर्थ के क्षेत्र में इस स्वतन्त्रता का अभिप्राय होगा कि धर्म सध स्वावलम्बी होंगे और मशीन के विकारी प्रभाव से बचे रहेंगे। वही मशीन रखी जायेंगी और रह पायेंगी जो मनुष्य के सम्पूर्ण विकास और पशु अथवा जन्तु-जगत् के भी सौन्दर्य और सुख के विरुद्ध न होगी। सत्याग्रही-धर्म-संधी में अधिक-से-अधिक सख्या में लोग खिचकर आयेगे, यहाँतक कि बड़े-बड़े साम्राज्यों के अन्दर ऐसे सत्याग्रहियों का ही बहुमत होता चलेगा। वे सत्याग्रह की शक्ति में इतना पर्याप्त विश्वास रखेंगे कि कहे कि शासन सत्ता का मूलाधार वही सिद्धांत होसकता है। उसके बाद तो छुट-पुट सनकी या झक्की-से ही लोगों के दिल धोये रह जायेंगे। उनके हाथों अधिकार भी कुछ न होगा। पर वे भी फिर स्वयं ही ऐन्द्रिक विलास या तृष्णागत कर्म के चक्कर से ऊब चलेगे। क्योंकि सब ओर उन्हें ऐसे लोगों का समाज मिलेगा जो धर्म बिना छोड़े, न किसी प्रकार का आवेश लाये, सब सह लेगे और किसी तरह का बदला लेने से इन्कार कर देंगे। वह समझ होगा कि प्रभु के ये वचन पूरे होंगे, कि “धन्य है वे जो नम्र हैं (शान्त, अपवा अहिंसक हैं), क्योंकि वे हैं, जो धरती पर राज करने।” राज्य। —नरलोक, सुरलोक, दोनों का राज्य।

वस, यहाँ आकर कल्पना हार बैठती है। आप कह सकते हैं कि यह तो आदर्श की बात हुई। पास से चित्र व्यर्थ हो जाता है, दूर से ही मनोरम दीखता है। निकट से निराशा होती है, दूर रखकर ही आशा जी सकती है। पर बुरी-से-बुरी सभावना और भली-से भली आशा का सामना करने की आदत रखना उपयोगी होता है। हो सकता है कि विधाता की ओर से कोई अभूतपूर्व सकट आपट्टे जैसा जिसमें मानव-जाति ही का ध्वंस होजाय, कौन जानता है। पर यदि ऐसा नहीं है, और इस धरती पर यदि एक दिन शान्ति और न्याय का साम्राज्य स्थापित होना ही है, तब तो निश्चय ही रास्ते में कुछ विघ्न-बाधाओं के मिलने की हमें आशा रखनी ही चाहिए। ईश्वर का काम अच्छा है, पर वह जल्दी का नहीं होता। और मनुष्य के भीतर का विकार भी नष्ट होने में शीघ्रता नहीं करता दीखता। पर यदि, और जब, इस धरती पर राम-राज्य आयेगा, आदमी और आदमी के (गांधीजी तो कहेगे कि आदमी और पशु के भी) बीच द्वेष और कलह की, कम-से-कम बाहरी, सभावना तो मिट ही जायेंगी। उस समय, यह आशका कृपाकर कोई न करे कि, दुनिया यह धीरान और मूढसान जगल की तरह होजायगी, दिलचस्पी की बात कोई न रहेगी और सब ऊबने जैसा होजायगा। नहीं, हम विश्वास रख सकते हैं कि चेतन्य की असीम सृजन-

शक्ति चुप नहीं बैठा करती और उसकी गति और प्रवृत्ति के लिए सदा असीम अवकाश रहे ही चला जायगा। ईश्वर की रचना में तो अतोल भेद और अनन्त रहस्य भरा पड़ा है। आदमी की चेष्टा उसके अनुसन्धान में बढ़ती ही जा सकती है। और यही होगा। पर तब प्रेरणा प्रीति की होगी और कर्म यज्ञार्थ होगा। वही प्रेरणा और वैसा ही कर्म है, चाहे वह स्वल्प और अविकसित रूप में ही क्यों न हो, जो हिन्दुस्तान की जनता को इस समय उभार दे रहा है।

आनेवाले साल त्रास और अन्धकार से भरे हो सकते हैं। पर वे ही प्रकाश और आनन्द से भी भरे होंगे। इन पक्षियों का लेखक कृतज्ञता के साथ यहाँ स्मरण करना चाहता है कि कैसे चालीस बरस पहले लिये टात्मटाय के स्फूर्तिमय वचनों को पढ़कर उसने युद्ध-प्रतिकार और स्वेच्छा से वरण किये हुए दैन्य-दारिद्र्य के आदर्श में कुछ अपने साधारण-से निजी प्रयोग शुरू किये थे। फलस्वरूप काफी दिन जेल की कोठरी का भी उसे अनुभव हुआ। भला होता यदि उसके प्रयत्न बाद में भी उस दिशा में जारी रहे होते। आज तो वह इच्छा-ही-इच्छा है। तो भी उस भारतीय महापुरुष के प्रति, जिसे उस रूसी मूर्ख का आज का स्थानापन्न कहना चाहिए, अद्वाजलि भेंट करने के अवसर के लिए यह लेखक परमकृतज्ञ है।

कवि यीट्स ने कहा है कि "मेरी कवि-वाणी चिरनवीन है। यीट्स सच ही थे। पर यह और भी सच है कि शमभूर, आयु-जीर्ण, मोहनदास गांधी के जीवन से प्रस्फुटित हुआ आत्म-शक्ति का सन्देश सदा अजर-अमर है। वह नित-नवीन है—पैंतालीस वर्ष पहले जब वह अध्यात्म-पुरुष सत्य के साहसपूर्ण प्राथमिक प्रयोग कर रहा था, उस समय की नवीनता से भी आज वह नवीन है। क्योंकि क्या आयु के वर्षों के साथ-साथ वह पुरुष भी क्रम क्रम से अजर-योवन और दिव्य-नम्र उस सत् शक्ति के स्रोत ईश्वर से अभिन्न ही नहीं होता जा रहा है? उस चिदानन्द चैतन्य के साथ उत्तरोत्तर एकाकारता क्या उसे नहीं प्राप्त हो रही है, जहाँ मृत्यु द्वारा जीवन का वरण किया जाता है? हो सकता है कि ईसा को मानने के कारण या समाज दर्शन की ओर से वस्तु-विचार करने की आदत की वजह से हम पश्चिमी ईसाई उनकी दृष्टि की स्पष्टता पर मर्यादायें भी देख पाते हो। पर यह तो असंदिग्ध है कि गांधी हमारे युग का महान् आत्मा है। वह मुक्त मानवता का प्रतीक है, नवजागृत समाज का और विश्व के भविष्य का वह अग्रदूत है। और भावी विश्व का वह रूप अब और इस समय भी हमारे बीच जन्म-काल में है। बस, यदि हम ही अपना कर्तव्य निभाना जान लेते।

अस्तु, हम जो ईसा मसीह की छाया के नीचे खड़े हैं, भक्ति-भाव से उस पुरुष-धेष्ठ को प्रणाम करते हैं। उसके सत्याग्रह-सच के सच्चे सदस्यों को भी हमारा प्रणाम हो! ईश्वर की अमरपुरी के, अपनी स्वप्नपुरी के, उन्हीकी भाँति हम भी नम्र पय-यात्री हैं।

ब्रिटिश कामनवेल्थ को गांधीजी की देन

ए. बेरीडेल कीथ, एम. ए., डी. लिट्., एल-एल. डी., ई. बी. ए.

[एडिनबरा यूनिवर्सिटी]

हममें से कुछ के लिए महात्माजी के जीवन की विशेषता इसीमें है कि वह, ऐसे ससार में जो अपने व्यावहारिक कार्यों में आदर्श पर अमल करने का विरोधी है, आदर्शवाद के पथ पर चलते हुए अनिवार्यरूप से सामने असंख्य कठिनाइयों के होते हुए भी आदर्श की प्राप्ति के लिए किये गये दृढ़ तथा निरन्तर प्रयत्नों का द्योतक है। दक्षिण अफ्रीका में मानवी व्यक्तित्व का मूल्य मनवाने के लिए उन्होंने जो सेवाएँ की हैं उनको ब्रिटिश कामनवेल्थ के इतिहास में अवश्य ही प्रमुख स्थान मिलेगा। दक्षिण अफ्रीका के अफ्रीकन भाषा-भाषी लोगों का सिद्धान्त ही यह था कि क्या धर्म और क्या राजनीति, दोनों में गैर-यूरोपियनों के साथ समानता का बर्ताव नहीं किया जा सकता। वहाँ भी गांधीजी ने इस सिद्धान्त का समर्थन किया कि मनुष्य-मनुष्य समान हैं और जाति या वर्ण के आधार पर किया गया कृत्रिम भेद मुक्ति-विरुद्ध और अनैतिक है। उन्होंने वहाँ भारतीयों की स्थिति में भारी सुधार किया और दक्षिण अफ्रीका में उनकी स्थिति की समस्या की एक नई रोजनी में रखा। इस काम में जिन विरोधी शक्तियों का उन्हें सामना करना पड़ा, उनके बल की ठीक कल्पना होने पर ही हम समझ सकते हैं कि उनका उक्त काम उनकी सब सफलताओं में सर्वोपरि था। यह बड़े दुःख की बात है कि उनके वहाँसे चले आने के बाद वह सकीर्ण वर्ण भेद फिर वहाँ प्रबल होगया है। लेकिन जबसे महात्माजी ने भारतीयों में आत्मसम्मान की भावना भरी और इस विचार का निषेध किया कि अपने बहष्पन के लिए एक मनुष्य या मनुष्य-समाज द्वारा दूसरों का शोषण करने में बुराई नहीं, तबसे वहाँके भारतीयों की विरोध करने की शक्ति बढ बहुत गई है। कुछ समय के लिए यह आदर्श दबा रह सकता है, पर यह खयाल नहीं किया जा सकता कि वह बिलकुल ही भिंट जायेगा। केनिया और जजीवार में भी उनके सिद्धान्तों का अच्छा परिणाम हुआ और उनकी वजह से वहाँके अंग्रेजों ने इंग्लैण्ड में अपने प्रभाव से भारतीय हितों की परवा किये बिना इन स्थानों का शासन-प्रबन्ध एकदम अपने हाथ में लेने का जो प्रयत्न किया था उसका असर कम होगया। महात्माजी के प्रयत्न भारतीयों तक ही सीमित नहीं रहे। जिन सिद्धान्तों का उन्होंने प्रचार किया, वे अफ्रीकन लोगों के भविष्य पर भी

समान रूप से लागू होते हैं। उन्होंने कभी इस बात का समर्थन नहीं किया कि भारतीयों को अपनी ऐतिहासिक सस्कृति और सभ्यता के आधार पर केवल अपने समानाधिकार का दावा करके सन्तुष्ट होजाना चाहिए और अफ्रीका के मूल निवासियों को कमीना समझने और दासवृत्ति के योग्य मानने में यूरोपियनों का साथ देना चाहिए।

भारत में उन्होंने इसी सिद्धान्त की शिक्षा दी कि यूरोपियनों को ही नहीं, भारतीयों को भी मनुष्य-मनुष्य के समान समझना चाहिए। इस प्रकार उन्होंने अपने उन भारतीय साथियों के लिए कुछ मुश्किलें जन्म पंदा कर दी, जिनके धर्म-ग्रंथों में—अन्य सब देशों के पुराने धर्म-ग्रंथों के समान ही—मनुष्य-मनुष्य में असमानता पर ईश्वरीय स्वीकृति की छाप लगा दी गई है। परन्तु उन्होंने भारतीयों का आत्म-शासन का अधिकार स्वीकार करने में युक्तिवत् रूप से पेश की जानेवाली इस सबसे बड़ी अड़चन का अन्त कर दिया कि ऐतरेय ब्राह्मण में कुछ लोगों को शेष मनुष्य-समाज का भेदक होने और आवश्यकता होने पर घरों से बाहर कर दिये जाने और मार डाले जानेतक का विधान किया गया है।

महात्माजी ने अछूतों का जो पक्ष लिया और उससे हिन्दू-धर्म के सबसे अच्छे सिद्धान्तों को बड़ावा देने में जो सफलता मिली, वे सब बातें उनके चरित्र की विशेषताएँ हैं और कालान्तर में उनके चरित्र का सबसे प्रमुख अंग रहेंगी। ऐतिहासिक विकास के महत्वपूर्ण समयों का अध्ययन करनेवाले विद्यार्थी को इन बातों से पूर्ण सन्तोष मिलेगा।

सरकार के साथ अहिंसात्मक असहयोग के सिद्धान्त का इतिहास तो बड़ा विवाद-ग्रस्त है। साधारण मनुष्य की प्रकृति से जो आशा की जा सकती है, इस सिद्धान्त पर अमल के लिए उससे कुछ अधिक योग्यता की आवश्यकता है, क्योंकि मनुष्य तो स्वभाव से ही लड़ाका है, और जिन लोगों ने अहिंसा के सिद्धान्त के प्रचार का धीड़ा उठाया वे खुद अपनी आदि प्रवृत्तियों का शिकार हो गये। फिर भी इतिहास घटलाता है, और इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता, कि न जाने किस अगम्य मनोवैज्ञानिक कारण से ब्रिटिश सरकार जिन माँगों की केवल युक्ति-बल द्वारा पेश किये जाने पर उपेक्षा करती रही, उन्हींको उसने तब झट स्वीकार कर लिया जब उन्हें मनवाने के लिए उसके शासन में अड़चन उपस्थित कर दी गई। अतः यदि महात्माजी ने ऐसे साधन अपनाये, जिनमें हिंसात्मक कार्यों का खतरा था और जिनको अमल में लाने पर वास्तव में ऐसा हुआ भी, तो भी यह मानना पड़ेगा कि वे उन ध्येयों को केवल इसी प्रकार प्राप्त कर सकते थे जिन्हें वे भारत के लिए प्राणप्रद समझते थे। भारत के प्रान्तों में प्रान्तीय स्वराज्य पर जो अमल हो रहा है वह ब्रिटिश कामनवेल्थ के इतिहास की अत्यन्त विशिष्ट घटनाओं में से एक है। और यद्यपि जीवित और दिवंगत महापुरुषों में से अन्य अनेकों को भी इसका खेब है, पर महात्माजी के समान किसी

दूसरे को नहीं। यह वस्तुतः उनका एक स्थायी स्मारक है। संस्कृत-साहित्य की यह अद्वितीय विशेषता है कि वह ऐसे अर्थपूर्ण श्लोकों से भरा पड़ा है, जिन्हें इस पवित्र भाषा को पढ़नेवाला प्रत्येक विद्यार्थी वचन में ही याद कर लेता है। ऐसा मालूम होता है कि ऐसा ही एक श्लोक बालक गांधी के मन पर अंकित होगया था, क्योंकि यह श्लोक उस आदर्श को प्रकट करता है, जिसे पूरा करने के लिए उन्होंने अपना सारा जीवन निछावर कर दिया। वह श्लोक यह है

अयं निजं परोवेति गणना लघुचेतसाम् ।

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

“यह हमारा है और वह पराया, ऐसा खयाल तो छोड़े दिल के लोग किया करते हैं, उच्च चरित्रवान तो सारी दुनिया को ही अपना कुटुम्ब मानते हैं।”

: २६ :

जन्मोत्सव पर बधाई

जार्ज सेम्सवरी

[मेम्बर पार्लियामेंट, लन्दन]

ससार के प्रत्येक भाग के उन करोड़ों मनुष्यों का साथ देने में मुझे प्रसन्नता होती है, जो अक्तूबर १९३९ में महात्मा गांधी के जन्मदिन के शुभ पुनरागमन की बार-बार कामना कर रहे हैं।

उन्होंने एक बड़े आदर्श की सत्परता से सेवा के लिए अपना महान् जीवन लगा दिया है। और अपने ओर भारत तथा ससार में अपने करोड़ों समर्थकों और मित्रों के जीवन द्वारा दिखाया दिया है कि हरेक प्रकार की बुराई और पाप के विरुद्ध निष्पक्ष अहिंसात्मक प्रतिरोध में कितनी मजबूती शक्ति है। जिस काल में उनका जन्म हुआ है उसमें उनसे अधिक लगन और निरंतरता के साथ ‘सत्य’ का समर्थन करनेवाला दूसरा कोई नहीं हुआ। हमारी यही कामना है कि वह पूर्व के ही न रहें, बल्कि ससार के हरेक भाग के स्त्री-पुरुषों को विश्व-सान्ति, विश्व-प्रेम, सहयोग और सेवा का मार्ग दिखाने के लिए युग-युग जीने रहें।

गांधीजी की श्रद्धा और उनका प्रभाव

प्रोफेसर जान मैकमरे, एम ए.

[यूनिवर्सिटी कॉलेज, लन्दन]

पिछली सदी में एक अंग्रेजी कवि ने यह लिखना उचित समझा कि — 'पूर्व पूर्व है और पश्चिम पश्चिम, और दोनों कभी एक दूसरे से न मिलेंगे।'

जिस समय ये पंक्तियाँ लिखी गई थी उस समय ये एक ऐसा मन प्रकट करती थी, जिसपर सौम्य भाव से चर्चा भी की जा सकती थी। पर आज तो यह मत निश्चितरूप से इतना अर्थ और तर्क-हीन है कि यह पद एक खासा मजाक बन गया है। मानवजाति के एक और इक्दू हाते जाने में बहुत कुछ बज्रह तो यातायात का विकास है। इसके कारण सुगमता होगई है कि एक देश का पुरुष सब देशों के लिए सूचनीय होजाय। ऐसे ही सहज अंतर्राष्ट्रीय व्यापारियाँ बन जाती हैं और व्यक्ति देश का न रहकर विश्व का होजाता है। स्वभावतः प्रश्न और विस्मय होता है कि इन आधुनिक ख्यासियाँ में कितनी समय की कसीटी पर ठहरेगी और अंतर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त महापुरुषों में से कितने भावी पीढ़ी के मन और हृदय पर ऐतिहासिक महापुरुषों के रूप में अंकित रहेंगे? किसी भी व्यक्ति के सम्बन्ध में यह बात निश्चित तौर पर कहना कठिन है। पर एक व्यक्ति ऐसा है जिसके बारे में इस सम्बन्ध में जरा-सी भी शका करनी असम्भव है। वह व्यक्ति महात्मा गांधी हैं।

मनुष्य की वडाई की दिशाएँ और दशाएँ अनेक हैं। पर वडप्पन का स्थायित्व गहराई में है। इतिहास के महापुरुष वे व्यक्ति हैं जिनका ससार के लिए महत्व माननीय व्यक्तित्व की गहराई से निकलता है। ऐसे आदमी की एक खासियत यह होती है कि लग उसका भिन्न-भिन्न और आपस में एक-दूसरे से भेल न छानेवाला अर्थ लगाते हैं। ममलन मुकरात की महत्ता इस बात से प्रकट होती है कि उसके मरने के एक सदी बाद यूनान में बहुत-से दार्शनिक आम्नाय पैदा होगये, जिनमें आपस में एक-दूसरे से लग रहती थी और प्रत्येक मुकरात की सच्ची शिक्षाओं के प्रचार करने का दावा करता था। ये महापुरुष, ध्यान की बात हैं, न तो पुस्तकों के लेखक होते हैं और न शब्द के उस अर्थ में बडे कामकाजी और कर्मठ होत हैं। पर इन दोनों क्षेत्रों में दूसरों के द्वारा इनका व्यस्तिकरण हुआ करता है। दूसरी पर उनके व्यक्तित्व की जो प्रेरणा छूटती है वह स्वयं विधायक शक्ति होती है। उनके इस ससार में जमे जा वह है, वह हाना

भर ही इस ससार को ऐसा बदल देता है कि वह फिर कभी लौटकर वंसा ही वह हो नहीं सकता। गांधीजी इसी प्रकार के व्यक्ति हैं। उनका प्रभाव लगभग सब उनके अपने व्यक्तित्व की निजता व एकता पर कायम है। उसका प्रकाश दूसरो पर पड़नेवाले उनके असर में प्रकट होता है। वह प्रभाव दूसरे के दृष्टिकोण को बदल देता है और उसकी अंतरंग मानवता, उसकी समता और सभावना को गम्भीर करता है। एक रहस्यमय व्यक्ति, एक राजनीतिज्ञ, एक शान्तिवादी, एक प्रजातन्त्रवादी, एक सामाजिक क्रान्तिकारी, तथा एक बड़े प्रतिक्रियावादी और स्थितिपालक—चाहे जिस रूप में उसे देखा जा सकता है। उनके जीवन-कर्म के महत्व को अमुक पहलू से लेकर वही उन्हें कह देने में असमर्थी कुछ नहीं है। परन्तु इनमें कोई एक उनके प्रभाव के रहस्य को छूता हो सो नहीं। उनका एक-दूसरे से भिन्न होना ही यह सिद्ध करता है कि उनके प्रभाव की महत्ता उस धरातल से, जिसतक कि इस प्रकार का वर्गीकरण पहुँच सकता है, परे है।

महात्मा गांधी के लिए मेरे हृदय में जो आदर व सम्मान है वह उनके विचारों या नीति से सहमत या असहमत होने के कारण नहीं है। मेरे हृदय का आदर-सम्मान तो, बल्कि, इसलिए है कि वह ऐसे व्यक्ति हैं कि सिद्धान्त अथवा कार्यक्रम सम्बन्धी-सहमति या असहमति के प्रश्न ही उनके सामने होकर बिलकुल असंगत पड़ जाते हैं। ससार में वह एक पुरुष हैं जिन्होंने एक बार फिर साधुता और नीतिपरव सत्य-निष्ठा की शक्ति की विधायकता को, एक बड़े पमाने पर, ससार को खुली ओखी दिखा दिया है। उस युग में जब कि पश्चिमी सभ्यता भौतिक शक्ति में अपने विश्वास के कारण टुकड़े-टुकड़े हो रही है, उस युग में जिसमें कि मानवी एकता की भावना को लोग एक ऐसा आदर्श समझते हैं जो भौतिक शक्तियों के सामने शक्ति-हीन है, महात्माजी ने धन और शस्त्रों की मगठित शक्ति को हराने के लिए नैतिक शक्ति की टेक घाम ली है। अभी उनकी सफलता या असफलता का अनुमान लगाने का समय ही नहीं आया है। पर इस समय भी यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उन्होंने (नैतिक सिद्धान्तों में) अपने इसी विश्वास के बल पर छिन्न-भिन्न भारत को मगठित कर दिया, उस समय जबकि भारत के भाग्य का निर्णय करने का दावा करनेवाली सभ्यता के प्रतिनिधि उसके इसी विश्वास पर से अपनी श्रद्धा हट जाने के कारण छिन्न-भिन्न हो रहे थे। रूसों के आदर्श शासक के समान जो 'सत्तावान्' पर निरसत्त्व है। उन्होंने जन-सकल्प को जागृत किया और भारत को राष्ट्र बनाया है। अपनी नैतिक साहस-सहज प्रतिभा द्वारा अपने देशवासियों के जनसामान्य में आत्म-सम्मान का भाव भर दिया है। उनमें अरनी मनुष्यता में विश्वास जगाया है। यह करके उन्होंने इतिहास की धारा को ही बदल दिया है और मानव-जाति के एक बड़े भाग के भविष्य को सुरक्षित कर दिया है।

: २८ :

अहिंसा की शक्ति

कुमारी ईथेल मैनिन

[लन्दन]

महात्मा गांधी को मैं यह छोटी-सी थड़ा-ज्जलि बड़ी नग्नता से भेट कर रही हूँ। मुझे उनसे मिलने का सौभाग्य कभी प्राप्त नहीं हुआ, पर मैं शान्तिवादिनी हूँ। और मुझे विश्वास है कि उनका अहिंसात्मक प्रतिरोध का सिद्धान्त ही सत्सार की शान्ति और युद्ध की समस्या का एकमात्र क्रियात्मक हल और सामाजिक संघर्ष के समाधान का एकमात्र युक्ति-युक्त उपाय है। १९३० में सविनय-भंग आन्दोलन द्वारा उन्होंने सत्सार के सामने अहिंसा की शक्ति प्रत्यक्ष कर दिखायी। यह उस सत्सार के सामने एक महान् उदाहरण था, जो तलवार की शक्ति के सिवाय और किसी शक्ति को मानता ही नहीं, और प्रत्यक्षतः यह बात स्वीकार करने में असमर्थ है कि हिंसा से हिंसा की समाप्ति नहीं, बल्कि वृद्धि होती है।

मैं यह बखूबी जानती हूँ कि अहिंसा का सिद्धान्त महात्माजी ने नया नहीं निकाला। वह तो एक धार्मिक मतस्य के रूप में भारत में सदियों से मौजूद था। लेकिन जैसा कि श्री ब्रेस्फोर्ड ने कहा है, उन्होंने पश्चिमी शिक्षा-दीक्षा और आचरण की लहर के विरोध में उसकी पुनः स्थापना की और इस प्रकार अपने देशवासियों के नेता के रूप में उनकी नैतिक शक्ति अत्यन्त प्रभावशाली हो उठी। १९३० के राष्ट्रीय आन्दोलनों में उन्होंने अपने लाखों-करोड़ों अनुयायियों को एक राजनैतिक अस्त्र ही नहीं, बल्कि एक गहरी धार्मिक श्रद्धा भी दी, जैसी कि ईसा मसीह ने पहले के उन ईसाइयों को दी थी, जो 'सत्य' की अपनी ईश्वर-प्राप्त व्याख्या के लिए शहीद हो गये।

उन्होंने भारत की जनता को बन्दूकी और मशीनगनों की शक्ति नहीं दी जो कि उसके दमनकारी प्रयोग में लाते थे, बल्कि वह शक्ति दी जो जनता के व्यक्ति-व्यक्ति में अन्तर्निहित है, जो युद्धोप-पीडित इस सत्सार को अभी प्राप्त करनी है और जिसका यदि पूर्णता के साथ उपयोग किया जाय तो वह युद्धो को असम्भव बना सकती है। राजनीतिज्ञ और युद्ध-प्रेमी लोग, अपने उद्देश्यों की सिद्धि के लिए हिंसात्मक साधनों का प्रचार करते समय एक बात को भूल जाते हैं, और वह यह कि मनुष्य का स्वतन्त्रता में से विश्वास उठ नहीं सकता। संक्षेप में, बन्दूक और मशीनगन मनुष्य की आत्मा को नष्ट नहीं कर सकती, राष्ट्र की भी नहीं। किसी राष्ट्र को कुचला और मुलाम

बनाया जा सकता है, परन्तु 'शक्ति' के बूटो की ठोकरे स्वतंत्रता की जीवित भावना को निर्मूल नहीं कर सकती। वे कुछ समय के लिए उसे नजरो से ओझल कर सकती हैं, अमीन-तले छिराकर रख सकती हैं, पर वह अंधेरे में भी चुपचाप बढ़ती रहती और पुनः शक्ति प्राप्त कर लेती है। और एक दिन आता है जब वह प्रज्वलित हो उठती और मानव जाति के लिए पथ प्रदर्शक ज्योति का काम देती है।

जिस मनुष्य का अपनी आत्मा पर अधिकार है उसे गुलाम नहीं बनाया जा सकता। उसका शरीर नष्ट हो जाने से भी उसकी आत्मा अधिकाधिक शक्तिशाली होती जाती है। मूली पर चढ़ा हुआ ईसा मसीह उस ईसा मसीह की अपेक्षा कहीं अधिक शक्तिशाली था जिसके विजयोत्सवों के जलूसों के मार्ग में लोग ताड़ के पत्तें बिछा देते और आकाश मण्डल की जय जयकार के स्वर से गुंजा देते थे।

हिंसा का जवाब हिंसा से देना तो उस अत्याचारी के निम्न धरातल पर उतर आना है, जो शक्ति की नाप केवल मृत्यु और विनाश द्वारा करता है। अहिंसात्मक उपायों की शक्ति जीवन की उस आत्मा की शक्ति है जिसकी पिपासा कभी शान्त नहीं होती। हम कह सकते हैं कि अपनी शिक्षा से गांधीजी ने भारत की 'आत्मा' को मुक्त कर दिया है। नीच और अधम दासों से वे फिर मनुष्य हो गये हैं। वे अपना मस्तक ऊँचा उठाकर अपनी आँखों में आशा और विश्वास की ज्योति लिए हुए, अपने दमनकारियों द्वारा अपनाये हुए नीच साधनों की उपेक्षा करके अपनी अन्तिम मुक्ति की ओर कूच करने में समर्थ एक राष्ट्र बन गये हैं। महिलाओं ने अपनी दासता का प्रतीक परदा उतार फेंका और उन्होंने भी स्वतंत्रता के लिए इस रक्तहीन सशस्त्र में पुरुषों ने कंधे-से-कंधा भिड़ाकर काम किया। उनमें गर्व के साथ नम्रता थी, नम्रता के साथ गर्व था, आत्म-सम्मान की भावना उनमें फिर से भर गई थी और क्योंकि उनके हृदय में स्वतंत्रता की पवित्र ज्योति जगमगा रही थी, अतः वे मुक्त थीं। सभी अवस्थाओं के स्त्री पुरुषों ने अनुभव किया कि जीवन वस्तुतः एक 'पवित्र ज्योति' है, और अपने अन्तर्गत में स्थित एक अदृश्य सूर्य के प्रकाश से ही हम अपने जीवन-पथ पर चलते हैं और इस अनुभूति के प्रकाश में पराजय का नाम भी नहीं है।

सन् १९३० में अहिंसा की शक्ति को राष्ट्र ने एक व्यावहारिक राजनैतिक अस्त्र के रूप में प्रत्यक्ष कर दिखाया। और वह मनुष्य की आत्मा की महान् विजय का भी प्रदर्शन था। हजारों-लाखों आदमी जेलों में ठूस दिये गये, उनपर पारायिक अत्याचार किये गये, परन्तु यह सब भारतीय जनता की उस महान् नैतिक जागृति के ज्वार-भाटे को रोक न सका।

यह समझने के लिए कि अहिंसा का मूल्य एक राजनैतिक अस्त्र से बढ़कर है, यह जान लेना आवश्यक है कि महात्माजी तप और त्याग पर इतना जोर क्यों देते हैं। यह बात भी साफ तौरपर समझने की है कि 'अहिंसा' प्रेम और सत्य की सोज के

सिद्धान्त के साथ इस प्रकार जुड़ी हुई है कि उसे अलग नहीं किया जा सकता। वस्तुतः विश्व-प्रेम का नाम ही अहिंसा है। इन्द्रियों के दमन और आत्मा के विकास का सिद्धान्त कोई नया सिद्धान्त नहीं है। यह तो ईसा मसीह की शिक्षा का भी एक अंग था। पर महात्मा गांधी ने आज के जीवन में इसे घटाकर दिखा दिया है और इससे उनकी गणना सन्तों, महापुरुषों और प्रभावशाली नेताओं में हुई है।

महात्मा गांधी की शिक्षाओं का यह एक मुख्य भाग है कि मनुष्य किसी बुराई को मिटाने या किसी झगड़े को निपटाने के लिए जितना ही अधिक हिंसा से काम लेगा उतना ही वह सत्य से परे हटता जायगा। वह कहते हैं कि हम बाहरी शत्रु पर आक्रमण करके भीतर के शत्रु की उपेक्षा कर देते हैं। “हम चोरो को इसलिए दण्ड देते हैं, क्योंकि वे हमें तग करते हैं। कुछ समय के लिए वे हमें छोड़ देते हैं, पर वे अपना ध्यान हमारे ऊपर से हटाकर दूसरे शिकार पर केन्द्रित कर देते हैं। यह दूसरा शिकार दूसरे रूप में हम ही हैं। इस प्रकार हम एक चङ्गल-चक्र में फँस जाते हैं।” कुछ समय बाद हम यह अनुभव करने लगते हैं कि चोरो का सह लेना उगह दंड देने से अच्छा है। अगर हम उनकी दरगुजर करने जायेंगे तो आशा है कि उनकी बुद्धि आप ही ठिकाने आजायगी। जब हम उन्हें सहन करते हैं तब हम आप ही यह अनुभव करने लगते हैं कि चोर हमसे भिन्न नहीं, बल्कि हमारे ही सगे सम्बन्धी और भिन्न हैं और उन्हें दंड नहीं दिया जा सकता।”

धार्मिक दृष्टि से उनके अहिंसा के सिद्धान्त का यही सार है और इसी रूप में हम उसे युद्ध या स्वतंत्रता के लिए सामाजिक संग्राम में भी लागू कर सकते हैं। गांधीजी दैनिक जीवन की दृष्टा नसार की समस्याओं के हल के लिए अहिंसा के उपयोग में भेद नहीं करते। वह स्वीकार करते हैं कि अहिंसा के मार्ग में निरन्तर कष्ट-सहन और अनन्त धैर्य की आवश्यकता है। सख्ती है। लेकिन वह बतलाते हैं कि इसका फल मन की अधिकाधिक शान्ति और साहस की वृद्धि होता है। हम यह भेद करना सीख लेते हैं कि कौन वस्तु मूल्यवान और स्थायी है और कौन नहीं।

दैनिक जीवन को निमज्जित करनेवाला यह साधुओं का-सा तप, पश्चिमी सभ्यता के लिए उतना ही दुर्बोध है, जितनी कि ईसाइयत। ध्यान रहे, मैंने ईसाइयत का जिक्र किया है, “पॉलीएनिटी” का नहीं। तो भी पीड़ित मानव-जाति को शान्ति की प्राप्ति, पृष्ठा की जगह विश्व-प्रेम को अपनाते और हिंसा का सर्वथा परित्याग करने से ही हो सकती है। शान्ति का अर्थ केवल युद्ध का अभाव नहीं, बल्कि मानव-मुख के लिए आवश्यक आन्तरिक शान्ति है।

महात्मा गांधी का बीसवीं शताब्दि के उस सन्त के रूप में अभिवादन करना चाहिए जो अपनी शिक्षा और अपने उदाहरण द्वारा उस सभार में शान्ति का मार्ग १. सन्त पॉल द्वारा चलाया हुआ धर्म।

बतला रहा है, जिसने अगर उसकी शिक्षाओं पर ध्यान न दिया तो उसका सर्वनाश हो जायेगा। यद्यपि उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन द्वारा भारत की भारी सेवाये की हैं और उनके उपवासों का राजनीति पर बहुत प्रभाव पड़ा है, तो भी उन्हें एक राज-नैतिक नेता नहीं, बल्कि एक आध्यात्मिक नेता और शिक्षक मानना चाहिए। उनके तथाकथित राजनैतिक कार्य, उनके नीतिशास्त्र और दार्शनिक मन्त्रियों का एक स्वाभाविक परिणाम है। किसी सन्त का आदर और स्तवन करने के लिए यह आवश्यक नहीं कि हम उसके आचार-विषयक सिद्धान्तों का समर्थन ही करें। महात्माजी ने अहिंसा की जो व्याख्या की है उसमें अगर विरोधी भौतिकवाद के अनुयायियों को जीवनविहीनता की गन्ध आये, तो भी यह मानना पड़ेगा कि आध्यात्मिक धरातल पर, जिसपर कि महात्माजी का सारा जोर है, स्थिति इसमें ठीक विपरीत होती है। महात्माजी ने स्वयं कहा है कि प्रत्येक धर्म में महान् स्त्री-पुरुष होते हैं। आज के ससार में तो महात्मा गांधी हमारे बीच अहिंसा की शक्ति के जीवित उपासक के रूप में एक प्रखर ज्योति के समान जगमगा रहे हैं। "इसरे स-प्रश्न हैं, तू स्वतन्त्र है" तेरा ज्ञान सर्वोच्च है।'

गांधीजी का ज्ञान सब मनुष्यों, और सब काल के लिए है।

: २६ :

गांधीजी और बालक

डा० मेरिया मान्टीसरी एम. डी., डी लिट्

[लन्दन]

महात्मा गांधी के निकट रहनेवाले उन्हें जित्त रूप में देखते हैं, उससे बिल्कुल भिन्न रूप में हम यूरोपियन उन्हें देखते हैं। हम जब रात को एक तारा देखते हैं, तो वह हमें एक छोटी-सी चमकदार टिमटिमाती हुई-सी चीज मालूम देती है, लेकिन अगर किसी तरह हम उसके पास जा सके तो वह छोटी या ठोस चीज मालूम न होगी, बल्कि भौतिक पदार्थ से हीन एक रंग और ज्योति का एक पत्र दिखाई देगा।

हम यूरोपियनों को भी गांधी एक मनुष्य-सा ही—एक बहुत छोटा मनुष्य जो सिर्फ एक लगोटो लगाये रहता है—लगता है। यूरोप के कोने-कोने में एक-एक बच्चा उसे जानता है। जब भी कोई आदमी उसका चित्र देख लेता है, वह फौरन अपनी भाषा में चिन्ता उठाना है—'यह गांधी है।'

पर हम यूरोपियन, जो उससे बहुत दूर और उसमें बिल्कुल भिन्न एक सभ्यता में रहते हैं उसके बारे में क्या खयाल करते हैं। यूरोपियन उसे शान्ति का प्रचार करने

वाले एक मनुष्य के रूप में जानते हैं। परन्तु वह यूरोप के शान्तिवादियों से भिन्न है। हमारे यूरोपियन शान्तिवादी बहस करते और डधर-उधर हडबडाये हुए भागते फिरते हैं। उन्हें बहुत-सी सभाओं में भाष्य लेना होता है और पत्रों में लेख लिखने होते हैं। परन्तु गांधीजी कभी उतावले नहीं हो जाते। कभी-कभी वह जेल में रहते हैं, जहाँ कि वह बहुत कम बोलते और बहुत कम खाते हैं। लेकिन फिर भी भारत के लाखों-करोड़ों आदमी उनके पीछे-पीछे चलते हैं, क्योंकि वे उनके हृदय को पहचानते हैं।

उनकी आत्मा उस महान् शक्ति के समान है, जिसमें मनुष्यों को आपस में एक करने की शक्ति है, क्योंकि वह तो उनकी आन्तरिक अनुभूतियों पर अपना असर डालती है और उन्हें एक दूसरे के निकट खींचती है। यह रहस्यमय और चमत्कारक शक्ति 'प्रेम' कहलाती है। प्रेम ही वह शक्ति है, जो मनुष्यमात्र को वास्तव में एक कर सकती है।

बाहरी परिस्थितियों और भौतिक हितों से बाधित होकर मनुष्य परस्पर सगठित हो होते हैं, पर उनमें प्रेम नहीं होता और बिना प्रेम के सगठन स्थिर नहीं रहता और खनरे की ओर जाता है। मनुष्यों का वास्तविक सगठन होना चाहिए—एक तो आध्यात्मिक शक्ति से जो एक दूसरे की आत्मा को अपनी ओर खींचे और दूसरे भौतिक सगठन द्वारा।

कुछ साल पहले जब गांधीजी यूरोप गये थे तब घर लौटते समय कुछ दिनों के लिए रोम ठहरे थे। उस समय मुझे बड़ा हर्ष हुआ। मैंने देखा कि गांधीजी में से एक रहस्यमयी शक्ति प्रस्फुटित होनी थी। जब वह लन्दन में थे, मेरे स्कूल के बालकों ने उनके सम्मानार्थ उनका स्वागत किया। जब ब्रिज फर्श पर बैठे हुए तकली कात रहे थे, सब वच्चे उनके चारों ओर बड़ी धाति के साथ बैठे रहे। वयस्क पुरुष भी इस स्वागत के समय जिने हम कभी नहीं भूल सकते, चुपचाप और स्थिर बैठे हुए थे। हम सब एक साथ थे। यही हमारे लिए काफी था। नाचने, गाने या भाषण देने की ज़रूरत ही नहीं थी।

लेकिन मुझपर तो उस समय बहुत प्रभाव पड़ा। मैंने कुछ कुलीन महिलाओं को सड़के साड़े चार बजे महान्भाजी की प्रार्थना करते देखने और उनके साथ प्रार्थना करने के लिए जाने देखा। एक महत्वपूर्ण घटना यह हुई कि रोम-प्रवास के दिनों में वह एक देश के एक एकान्त मकान में ठहरे हुए थे। एक दिन सबेरे एक युवती पंखल चलती हुई वहाँ आई। वह गांधीजी से एवान्त में बातचीत करना चाहती थी। वह इटली के सफाई की सबसे छोटी पुत्री राजकुमारी मेरिया थी।

हमें इस आध्यात्मिक आकर्षण के विषय में अवश्य विचार करना चाहिए। यही शक्ति है, जो मानवता को बचा सकती है। केवल भौतिक हितों से बंध रहने के बजाय हमें परस्पर इस आकर्षण का अनुभव करना सीखना चाहिए। पर यह हम भीखें कैसे ?

जिस तरह सारे ससार में प्रकाश की 'कॉस्मिक' किरणें हैं, उसी तरह हमारे चारों ओर यह आत्मिक शक्तियाँ भी विद्यमान रहनी हैं। लेकिन ये कॉस्मिक किरणें खास-खास यंत्रों द्वारा ही, जिनके द्वारा कि हम उन्हें देख सकते हैं, केन्द्रित की जा सकती हैं। पर ये यंत्र इतने दुर्लभ नहीं हैं जैसा कि हम खयाल करते हैं। ये यंत्र बच्चे हैं। जिस प्रकार कि हम आकाश में गरमी और प्रकाश के पुंज एक तारे को एक छोटे-से चमकदार बिन्दु के रूप में ही देखते हैं, ठीक उसी प्रकार अगर हमारी आत्मा बच्चे से बहुत दूर है तो हम उसका छोटा-सा शरीरमात्र ही देख सकते हैं। अगर हम उसके चारों ओर घुमकर लगानेवाली रहस्यमयी शक्ति को अनुभव करना चाहते हैं तो हमें उसके अधिक नजदीक पहुँचना चाहिए।

बच्चों के, जिनसे कि हम वास्तव में बहुत दूर हैं, निकट आध्यात्मिक रूप से पहुँचने की कला एक ऐसा रहस्य है जो ससार में विद्व-भातृत्व पैदा कर सकता है। यह एक ईश्वरीय कला है, जो मानवजाति को शांति देगी। बच्चे तो बहुत-से हैं। वे असंख्य हैं। वे एक तारा नहीं हैं। वे तो आकाश-भगा के समान हैं—उस तारिका-पुंज के समान हैं, जो आकाश में एक ओर से दूसरी ओर को घूमते रहते हैं।

गांधीजी के जन्म-दिन पर मैं उनसे एक ही प्रार्थना कलेंगी कि वह भारत में और ससार में बच्चों का मान करे और अपने अनुयायियों को, जो उनकी शक्ति और उनकी शिक्षा में विश्वास रखते हैं, बच्चों में विश्वास करने के लिए प्रेरित करे।

: ३० :

गांधीजी का आध्यात्मिक प्रभुत्व

गिलवर्ट मरे, एम. ए., डी. सी. एल.

[एमरीटस अध्यापक, आक्सफोर्ड-यूनिवर्सिटी]

जिस ससार में राष्ट्रों के शासक शासक शक्ति पर अधिक-से-अधिक भरोसा किये हुए हैं और राष्ट्रों के निवासी अपने जीवन के अस्तित्व और आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए ऐसे तरीकों पर भरोसा रखते हुए हैं, जिनमें कानून, व्यवस्था, सहृदयता के लिए तनिक भी गुंजाइश नहीं रही है, उसमें महात्मा गांधी एकाकी खड़े दीख पड़ते हैं और उनका व्यक्तित्व अत्यंत आकर्षक है। वह ऐसे राजा या शासक हैं, जिनका बहना लाखों मानते हैं। इसलिए नहीं कि वे उनसे डरते हैं, बल्कि इसलिए कि वे उन्हें प्यार करने हैं और न इसलिए कि उनके पास विपुल सम्पत्ति, गुप्तचर, पुलिस और मशीनगने हैं, बल्कि इसलिए कि उनके पास ऐसा नैतिक प्रभाव है कि जब वह उसमें काम लेने लगते हैं तब ऐसा प्रतीत होता है कि वह भौतिक ससार के सारे महत्व को

धूल में मिला देंगे। मैं 'प्रतीत होता हूँ,' इसलिए कहता हूँ कि भौतिक शक्ति के विरुद्ध उसका प्रयोग सहृदयता, सहानुभूति अथवा दया के बिना निरर्थक है। हमें अपने मोर्चों में केवल इसलिए विजय प्राप्त होती है कि यह अपने दुश्मन की अन्तरात्मा में सोई हुई उस नैतिकता या मनुष्यता को जगाती है, जो ऐसा मानवीय तत्त्व है कि मनुष्य पशु बनने का कितना भी यत्न क्यों न करे उसका पूरी तरह अन्त नहीं कर सकता। बीस वर्ष पहले मैंने इसीसे गांधीजी के बारे में लिखा था कि, "वह एक ऐसे युद्ध में लगे हुए है, जिसमें असहाय और निष्शस्त्र आत्मिक शक्ति का भौतिक साधनों से अत्यधिक सम्पन्न लोगों के साथ मुकाबिला है। उस युद्ध का अन्त हमें इस भय में दोष पड़ता है कि भौतिक साधनों से सम्पन्न लोग धीरे-धीरे युद्ध का एक एक मोर्चा हारते जाते हैं और आत्मिक शक्ति की ओर झुकते चले जा रहे हैं।"

हम, निम्नन्देह, यह नहीं मान सकते कि आत्मिक प्रभुता रखनेवाले व्यक्ति का नेतृत्व सदा ही सही होता है। उसके दावों और बायों का समर्थन या प्रतिवाद सहसा प्रायः नहीं किया जा सकता। अतः मैं, उस प्रभुता का प्रयोग तो उन मानवों द्वारा ही होना है, जो साधारण मनुष्यों के समान भूलों से परे नहीं हैं और शक्ति-सम्पन्न होने पर जिनका स्वेच्छाधारियों के समान पतन होना संभव है। लेकिन नैतिकता के बल पर शासन करनेवालों, अथवा अन्य साधारण शासकों में भी गांधीजी का अद्वितीय स्थान है। पहली बात तो यह है कि वह कोई आदेश या हुक्म नहीं देते। केवल अपील करते हैं, हमारी अन्तरात्मा का संबोधन करते हैं। वह बताते हैं कि उनके पास सच्चाई क्या है, लेकिन उनकी उपेक्षा और निन्दा नहीं करते, जो उनसे भिन्न क्षेत्र में सच्चाई की खोज करते हैं।

दूसरी बात यह है कि उनका लड़ाई का तरीका अजीब और अनूठा है, जिसे कि उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में हिन्दुस्तानियों के अधिकारों के लिए लगातार पन्द्रह वर्ष तक लड़ी गई लड़ाई में खूब अच्छी तरह प्रकट कर दिया है। वह और उनके अनुयायी कई बार गिरफ्तार करके जेल भेजे गये, नैतिक अपराध करनेवालों के साथ रखे गये और उनके साथ अमानुषिक व्यवहार किया गया। लेकिन जब भी कभी उनका दमन करने-वाली सरकार कमजोर पड़ी या उसपर कोई सबूत आया, अपनी घात को मनवाने एवं लाभ उठाने के बजाय उन्होंने अपना रुख बदल दिया और उसकी सहायता की। जब वह भीषण युद्ध की भयानक दलदल में घँस गई, तब उसकी सहायता के लिए उन्होंने हिन्दुस्तानी स्वयमेवकों की सेवा खड़ी की। अपने अनुयायियों की अहिंसात्मक हड़ताल के जारी रहते हुए जब सरकार के लिए क्रान्तिकारी लोगों की रेलवे की सभाषित ट्रेन्नाल का भय उपस्थित हुआ, तब उन्होंने सहसा अपने लोगों को काम शुरू करनेकी आज्ञा दे दी, जिसने उनके विरोधी निरापद ही जाये। इसमें आश्चर्य ही क्या कि अन्त में उनकी विजय हुई। कोई भी सहृदय शत्रु दम तरीके की लड़ाई का सामना नहीं कर सकता।

तीसरी बात, जो कि सम्भवतः असंख्य लोगों के लिए आदर्श बने हुए उनके द्वारा पूजे जानेवालों के लिए सबसे अधिक कठोर है, वह यह है कि वह कभी भी निर्दोष या पवित्र होने का दावा नहीं करते। हमें पता है कि इस समय उन्होंने अपने असहयोग आन्दोलन को रोका हुआ है, जिससे कि वह और उनके विरोधी आत्म-निरीक्षण तथा परीक्षण कर सकें।

एक निःशस्त्र व्यक्ति का करोड़ों मनुष्यों पर नैतिक प्रभाव स्वतः ही आश्चर्य-जनक है। लेकिन जब वह न केवल अहिंसा के विरुद्ध शपथ लेता है, बल्कि अपने शत्रुओं तक की सकट में सहायता करता है और अपनी मानवीय कमजोरियों को भी स्वीकार करता है, तब वह निर्विवाद रूप से सारे ससार का श्रद्धा-भाजन बन जाता है। एक दूर देश में बैठे हुए, बिल्कुल भिन्न सभ्यता को मानते हुए, जीवन-सम्बन्धी अनेक समस्याओं के बारे में उनसे संबंधी विपरीत विचार रखते हुए, उस यूरोप के चिन्ताशील तथा सपर्यमय विचारों में निमग्न रहते हुए भी, जिसमें मनुष्य का दिल और विभाग पाश्चात्तिक शक्ति और अज्ञान की चोट खाकर अपने को कुछ समय के लिए असहाय-सा अनुभव कर रहा है, में बहुत खुशी के साथ इस महापुरुष को "महात्मा-गांधी" के उस शुभ नाम से पुकारता हूँ, जिसका कि उसके भक्त उसके लिए दावा करते हैं और बड़ी श्रद्धा के साथ उसका उच्चारण करते हैं।

: ३१ :

सुदूरपूर्व से एक भेंट

योन नागूची

[कियो विश्वविद्यालय, टोकियो, जापान]

दिसम्बर १९३५ के अन्त में नागपुर से बर्बई जाते हुए मैं बर्घा ठहरा था। बर्घा एक साधारण-सा शहर है। लेकिन गांधीजी के आन्दोलन का नैतिक दृष्टि से वह केन्द्र बना हुआ है। मुझे गांधीजी को आश्रम में देखकर बहुत खुशी हुई। वह आश्रम एक तपोभूमि या साधना-मन्दिर था, जहाँ पुराने ऋषि-मुनियों या साधकों से सर्वथा भिन्न रूप में इस युग के ऋषि पर अपने राष्ट्र के जीवन की आशा या पीड़ा की समस्त हलचलों की प्रतिक्रिया होती है। बीमारी के कारण वह उस समय दुमझिले मकान की पक्की छत पर लगाये गये एक चौकोर तम्बू में लेटे हुए थे। सन्त की जैसी एक मुखराहट उनके चेहरे पर थी, 'राजें, रेदीसी, खुशी, 'दर' सोहसाला, मी, 'मजबूत, 'साने, जैली' था। एक शिष्य मालिश कर रहा था। इस साधारण-से प्रभावहीन आदमी का उन ऐतिहासिक महान् उपवासों के साथ मेल मिलाना मेरे लिए कठिन हो गया, जिसने

इंग्लैंड की विनाश आत्मा को भी एक बार भय में धर्रा दिया था। जब मैंने उनको मुनी कपड़े में कुछ लपेटकर सिर पर रखते हुए देखा, तब मैंने पूछा कि वह क्या है। उन्होंने बताया कि वह गीली मिट्टी है, जो कि उनके डाक्टरों के आदेश के अनुसार उन सरीखे खून के दबाव के शिकार लोगों के लिए फायदेमन्द होनी है। और उपेक्षा और दार्शनिकता में मिश्रित हँसी हँसते हुए बोले, “मैं हिन्दुस्तान की इस मिट्टी से पैदा हुआ हूँ और यही मिट्टी मेरे सिर का आभूषण या ताज है।

थोड़ी-सी बात करने के बाद मैं उनसे विदा लेकर उनके तीन या चार शिष्यों में मिलने के लिए नीचे उतर आया, जो मुझे सारा आश्रम दिखााने के लिए नीचे खड़े मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। मधु-मक्खियाँ रहने के स्थान के पास से गुजरने के बाद मैं तेल की घाटी के पास पहुँचा। उसके बाद मैं वहाँ पहुँचा, जहाँ कागज बनाने का प्रयोग किया जा रहा था। मेरे साथी-बाला में मैं एक ने कहा कि “कागज बनाना किना मुश्किल है? यदि पूरक घरे के तौर पर इसका हमारे देश में चलन हो जाय तो हम अपना किना स्तर अपने ही देश में बचाकर रख सकेंगे?” यह कहने की जरूरत नहीं कि आश्रम में चरखे को प्रधान स्थान प्राप्त है। एक छोटे-म लकड़ी के डिब्बे में एक छोटा-सा चरखा रक्खा रहता है, जिसका गांधीजी ने जेल में खाली समय में स्वयं आविष्कार किया है। मुझे कहा गया, ‘आप इसे हूण्डबैग की तरह रख सकते हैं और रेलगाड़ी के सफर में भी साथ ले जा सकते हैं तथा खाली समय इसपर सूत कात सकते हैं।’

फिर मुझे बताया गया कि “गांधीजी एक विशेष वैज्ञानिक व्यक्ति हैं। उनका अद्भुत धर्म मंत्र उनके आविष्कारक मन का साथ देता है, जिससे उन्हें पूरी तरह मकलना मिलता है। अगर वे घड़ीसाज होते तो उन्होंने ससार में सर्वोत्तम घड़ी बनाने का यश-सम्पादन किया होता। सर्जन या वकील के रूप में भी उन्होंने सर्वोच्च प्रतिष्ठा प्राप्त की होती। लेकिन १९२२ के मुकदमे के समय अपने को पेशे में किसान और जुलाहा उन्होंने बताया और इस तरह हाथ की मजूरी की पवित्रता में निष्ठा प्रकट की। ऐसे कामों में वह कताई को सब से अधिक महत्व देते हैं, क्योंकि उनका खयाल है कि इसमें मनुष्य मितव्ययी बनने के साथ-साथ समय का भी ठीक-ठीक उपयोग करना मौख जाता है। वे किङ्गलखर्ची का मंत्रमे अधिक नफरत में देखते हैं। उनका यह विश्वास है कि हाथ की मिहनत से ही हिन्दुस्तान को नया जीवन मिल सकता है। इसलिए चरखे को अपना आदर्श मानकर वह जनता में स्वतन्त्र जीवन के अण्डे के नीचे आने के लिए प्रेरित कर रहे हैं।”

यह तो केवल आकस्मिक घटना है कि उनका आन्दोलन ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध एक विनाश प्रतीक होता है, क्योंकि वह आन्दोलन, जब कि भारत को मलिनता से उबारेगा तब शक्ति के रचनात्मक प्रयोग और निम्न ममत्वे जानेवाले स्तर पर जीवन-मंचारी

कामो की अत्यन्त उपयोगी शिक्षा की राह से, दुनिया के और देशों की भी रक्षा करेगा। दूर के आदर्शों को पकड़ने की अपेक्षा अपने चारों ओर के लोगों की सेवा करने का महत्त्व केवल हिन्दुस्तान तक ही सीमित नहीं रह सकता। स्वदेशी की आत्मनिर्भरता और स्वावलम्बन की भावना का आदर सभी समयों में और सारे ही सप्ताह में होना जरूरी है।

दीन-दुखियो और गरीबों की सेवा और उनके साथ अपने को तन्मय करने से अधिक पवित्र और ऊँचा मार्ग ईश्वरोपासना के लिए गांधीजी नहीं ढूँढ़ सकते थे। उदाहरण के लिए, जब रेल में सफर करते हैं, तो सदा ही तीसरे दर्जे का टिकट लेते हैं। इससे वह अपनेआपको यह याद दिलाते हैं कि वह उन निम्नतम मनुष्यों में से हैं, जिनमें मानवता और स्नेह सबसे बड़ी सम्पत्ति माने जाते हैं। आत्मनिर्भर और स्वावलम्बी जीवन की स्फूर्ति के लिए गांधीजी अपने मित्रों को चरखा भेंट करते हैं, मानो कि उन्होंने अपने जीवन का सर्वोत्तम भाग मजूरों के साथ बिताया हो और उनके सुख-दुख में समान भाग लिया हो।

बम्बई जाते हुए गांधी में अपने डिब्बे में अकेला लेटा हुआ मैं अपने मन से महात्मा गांधी की मूर्ति को थोड़े समय के लिए भी दूर नहीं कर सका। मुझे एक बार उनका एक छोटा-सा निबन्ध "स्वेच्छापूर्वक गरीबी" पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, जिसमें उन्होंने उन वस्तुओं के परिणाम से होनेवाले आनन्द का वर्णन किया है, जो कभी उनकी अपनी थीं। उनका यह विश्वास है कि हिन्दुस्तान सरीखे देश में जरूरतों से अधिक अपने पास कुछ रखकर जीवन-निर्वाह करना डाकेजनी करके गुजारा करने के समान है। जबतक कि तुम उसके तुल्य न हो जाओ, जो नगा और भूखा बाहर खुले में सोता है, जबतक तुम्हें यह कहने का अधिकार नहीं कि तुम हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तानियों की रक्षा कर सकते हो। मुझे बताया गया है कि जिस कपड़े से गांधीजी अपने-आपको ढाँपते हैं, वह भी कम-से-कम है। यह स्वाभाविक है कि गांधीजी इस गरीबी की ऐसी लगन से उस समय के आदर्श पर पहुँच जायें, जहाँ आत्मशुद्धि के अर्थ पचेद्विप-दमन किया जाता है।

वह योद्धा जो आरम्भ-दर्शन में जूझता हुआ विगुल बजाता विजय की निश्चित आशा से स्वर्ग के निबट पहुँच गया है, जिस विगुल की आवाज नरक के कोने-काने में गूँज उठी है। और जो अकेला ही वहाँ से भावी को ललकार रहा है।

दुर्बल, क्षीणवाय परन्तु जिसकी महान आत्मा ने सप्ताह को कपा दिया है। विस्मृत और निरस्मृत प्रेम ने, जीवन की कुचली और झसोड़ी हुई स्वतन्त्रता ने, अपुरस्कृत और अपमानित शारीरिक परिश्रम ने इस पुरुष की गर्जना में अत्याचार के विरुद्ध चुनौती की आवाज उठाई है, ईश्वरीय न्याय

के लिए प्रार्थना की है। जीवन-भय पढ़नेवाला जादूगर, जो धरती-माता के अत्यन्त निकट है, उस मनुष्य से बढ़कर कौन पुरुष है जिसके हृदय में देश-भक्ति की ज्वाला इतने जोर में धधक रही हो। सन् की खोज में वह एक-चित्त है। वह सब सासारिक सुखों को तिलाञ्जलि दे चुका है। इस मनुष्य की आत्मा से बढ़कर किसी आत्मा पूर्ण हो सकती है? वह दुःख के और कष्ट के अनन्त और दुर्गम पथ का पथिक है।

: ३२ :

गांधीजी के विवधरूप

डॉ० पट्टाभि सीतारामैया, बी. ए., एम. बी., सी. एम.

[मछलीपट्टम, भारत]

गांधीजी—अवतार

"जो व्यक्ति अपने इन्द्रिय-सुख की कुछ परवा नहीं करता, जो अपने आराम या प्रशंसा या पद-वृद्धि की कुछ चिन्ता नहीं करता, किन्तु जो केवल उसी बात के करने का दृढ़ निश्चय रखता है जिसे वह सत्य समझता है, उससे व्यवहार करने में मावधान रहो। वह एक भयंकर और कष्टदायक शत्रु है क्योंकि उसके शरीर पर,

१. मूल अंग्रेजी पद्य इस प्रकार है —

A warrior in combat near Heaven with a prospect of unseen
victory,

Blowing a bugle that rings to the vast gulf of Hell,

A lonely hero challenging the future for response

Withered and thin,

But with a mammoth soul shaking the world in fear—

Through this man love, profaned and ignored,

Through this man life's independence, shattered and fallen,

Through this man, body-labour bereft of honour and prize,

Cry rebel-call against tyranny, to God's justice be praise!

A Sad chanter of life close to the mother earth,

(Where is there a more burning patriot than this man?)

A lone seeker of truth denying the might and self pleasure,

(Where is there a more prophetic soul than this man's?)

A pilgrim along the endless road of hunger and sorrow.

जिसे तुम सरलता से जीत सकते हो, काबू पाने पर भी तुम उसकी आत्मा पर बिलकुल अधिकार नहीं कर सकते ।” —प्रो० गिलबर्ट मरे

ससार ने समय-समय पर महान् पुरुषों को जन्म दिया है । प्रत्येक राष्ट्र ने अपने सन्त, अपने शहीद, अपने वीर, अपने कवि, अपने योद्धा और अपने राजनीतिज्ञ उत्पन्न किये हैं । भारतवर्ष में हम अपने महापुरुषों को अवतार कहते हैं । वे ऐसे व्यक्ति होते हैं जो पुण्य की रक्षा और पाप का नाश करने के लिए ईश्वर के मूर्तरूप होकर पृथ्वी पर आते हैं । हमारे लिए गांधीजी एक अवतार हैं, जिन्होंने इस व्यावहारिक दुनिया में पूर्ण अहिंसा को कार्यान्वित करके बताया है ।

गांधीजी—स्थितप्रज्ञ

गांधीजी की सम्मति में स्वराज्य का अर्थ यह नहीं है कि गौरी नौकरसाही की जगह काली नौकरसाही कायम होजाय । स्वराज्य का अर्थ है जीवन के ढाँचे का बिलकुल बदल जाना, दूसरे शब्दों में, भारत का पुनर्विजय करना । उनके मस्तिष्क में तो समस्या यह है कि देश के भिन्न-भिन्न टुकड़ों की, जो प्रादेशिक दृष्टि से प्रान्तों और देशी राज्यों में, सम्प्रदायों की दृष्टि से हिन्दुओं, मुसलमानों और ईसाइयों में, व्यवसायों की दृष्टि से शहरी और देहाती समुदायों में बँटे हुए हैं, और जो वही ‘बहिर्गत प्रदेशों’ और कहीं ‘अन्तर्गत प्रदेशों’ में विभक्त हैं, किस प्रकार एक सूत्र में ग्रथित किया जाय । वह यह भी चाहते हैं कि राष्ट्र की संस्कृति को पुनर्जीवित किया जाय और उसमें आधुनिक जीवन में से नकल की जाने योग्य बातों को भी ग्रहण किया जाय । नई सम्भ्रता से उत्पन्न हुई स्वार्थपरायणता के स्थान पर दीन-दर्दिनों के प्रति दया की भावना बढ़ाई जाय, समाज में अत्यन्त धनिकों और अत्यन्त निर्धनों के समुदाय बनने देने के स्थान पर सभी लोगों के लिए अन्न-वस्त्र की व्यवस्था की जाय । कुछ लोगों के उत्कर्ष की खातिर रहन-सहन की कोटि ऊँची करने के बजाय यदि आवश्यक हो तो औसत जीवन-कोटि को ही कुछ नीचा कर दिया जाय । इस दृष्टि से उन्होंने अपने जीवन में ही एक नये साम्राज्य का विकास किया है, और हिन्दू धर्म के चार वर्णों और चार आश्रमों को उन्होंने अपने जीवन में सन्निविष्ट कर लिया है । वह ब्राह्मण का कार्य करते हैं, वह व्यवस्था देते हैं । वह क्षत्रिय हैं, वह भारत के मुख्य चौकीदार हैं । वैश्य के रूप में वह भारत को सम्पत्ति का विनियोग करते हैं, और शूद्र के रूप में उन्होंने अन्न और वस्त्र की उत्पत्ति की है । अपने ऊपर चलाये गये सुप्रसिद्ध अभियोग में उन्होंने कहा था कि मैं बुनकर और किसान हूँ । और गृहस्थ होते हुए भी वह ब्रह्मचारी की भाँति उपवास रहते हैं, जपमाला की भाँति अपनी-पत्नी के साथ मानव-जानि की सेवा करते हैं । और वह सच्चे संन्यासी भी हैं, क्योंकि उन्होंने अपना मक्खुठ मनुष्य-जानि के बल्लाण के लिए परित्याग कर दिया है । इनने पर भी गांधी-

जी प्रधानतः एक मनुष्य हैं। वह अतिमानुष होने का न दग रखते हैं न कोई ऐसा दावा ही करते हैं। वह पक्के कार्य-कुशल आदमी हैं, अच्छे स्वभाव के हैं, विनोद-प्रिय हैं, बुद्धिमान हैं, बच्चों के बीच बच्चे हैं, बड़ी उम्र के लोगों में खूब-मिजाज हैं, और मनुष्य-जाति के लिए एक साधु हैं, ऋषि हैं, पथ-प्रदर्शक हैं, दार्शनिक हैं और सबके मित्र हैं। उनका चेहरा तेजोमय है, उनकी दोनो आंखों में तेज है और उनकी हँसी में तो उनका सम्पूर्ण अन्तर्गत बाहर प्रकट होजाता है। वह एक अंश में स्पष्टवक्ता हैं, और उन्हें लोगों के पीठ-पीछे आक्षेप सुनने की आदत नहीं है, किन्तु वह आक्षेपकर्ताओं के समक्ष ही आक्षेपों के सामने उन्हें रख देते हैं। वह आपके स्पष्टीकरण को स्वीकार कर लेते हैं, और आपकी बात को सत्य मान लेते हैं। वह बातचीत बड़ी निश्चित और यथोचित करते हैं, और आशा करते हैं कि उनके वक्तव्यों को समझने में उनके 'अगर-नहीं-तुली' करते हैं, और आशा करते हैं कि उनके वक्तव्यों को समझने में उनके 'अगर-नहीं' को तथा मुख्य वाक्यांशों को ध्यान में रखा जायगा। अधिकांश लोगों ने उनके मुख्य वाक्यांशों को तो लेलिया और 'अगर-नहीं' को भुला दिया, और इस प्रकार अपने निज के उत्तरदायित्वों को उठाये बिना उन्होंने बाह्य परिणामों की आशा बांध ली। उनकी लेखन-शैली अपनी ही और विलक्षण है। उसमें छोटे-छोटे वाक्य होते हैं—छोटे, उतने ही प्रबल, सीधे, और उतने ही गतिमान, जैसे तौर। गांधीजी उप-निर्देशों में वर्णित पूर्णपुरुष हैं, जिनसे परिचित होना एक सौभाग्य है, और जिनके साथ काम करना एक बरदान है। वह भगवद्गीता के स्थितप्रज्ञ हैं, जिन्होंने अपने आत्ममयम और आत्मत्याग से अपनेआपपर और ससार पर विजय पाई है।

गांधीजी का विविध कार्यक्रम

मत्स्याप्रहरी के रूप में गांधीजी पराजय को जानते ही नहीं। जब राष्ट्र आक्रमक कार्यक्रम में एक जाता है तो उसे रचनात्मक कार्यक्रम में लगा दिया जाता है। जिस सरलता से कारखाने में मशीन का पट्टा फास्ट पुली से लूझ पुली पर आजाता है, उसी सरलता से गांधीजी के शक्ति-चक्र का पट्टा भी युद्ध के विनाश-श्रेष्ठ से रचनात्मक क्षेत्र पर उतर आता है। उतनी ही तेज़ी-कुर्ती से वह सविनय आज्ञाभंग के आक्रामक कार्यक्रम का बटन दबा देते हैं, और यह कार्यक्रम भी टारनेटो या बाइ को-मो तीव्रता और वेग के साथ बढ़ जाता है। उनके आक्रमण कितने प्रबल होते हैं, यह ससार अच्छी तरह से जानता है। उन्हें खूब मालूम था कि सामूहिक सविनय आज्ञाभंग कैसा होगा और अतिरिचित परिणाम पर सामूहिक रूप में कार्योन्वित किया जायगा। उनके पुरुषों में, जो कि देखने में तो नगण्य होते हैं किन्तु जिनका लक्ष्य एक और निश्चित तथा परिणाम भ्यायी और व्यापक होता है, कोई-न-कोई नैतिक प्रश्न उत्तर शामिल रहता है। कभी तो अमृतसर-हत्यानाण्ड का प्रश्न लेलिया जाता है। जिसके लिए क्षमा-वाचना की माँग की जाती है। कभी खिलाफत के अन्याय का प्रश्न होता है, जिसका सम्बन्ध तो दूर-

देशीय होता है, किन्तु परिणाम और पभाव निकटवर्ती होता है। और कभी-कभी नमक-कर का ही प्रश्न उठा लिया जाता है, जो यद्यपि छोटा-सा कर है किन्तु जिसका लगाया जाना ही पापमय है। जब ससार समझता है कि गांधीजी पराजित होगये, उस समय वह उस पराजय का एक वाक्य से विजय बना लेते हैं।

गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम की देश में स्तुति भी हुई है और निन्दा भी हुई है, और उसके प्रति आज भी अधिकांश जनता का आकर्षण कम है। उनका खट्टर दरिद्रों की रामदाण औषधि है, नया आर्थिक मन्त्र कवच है, विधवाओं और अनाथों का, अपाहिजों और अन्धों का आश्रयदाता है। खट्टर किसानों को, जो कि ऋण और कर के असह्य बोझ से दबे जा रहे हैं, सहारा देनेवाला एक सहायक धन्धा है। खट्टर स्वयं एक सम्पूर्ण नया तत्त्वज्ञान है, क्योंकि वह मानव-जाति पर यत्रवाद के, जो कि अच्छा नोकर किन्तु बुरा मालिक है, आघात का विरोध करता है। खट्टर भारत की उत्पादनशील प्रतिभा के पुनर्जीवन का एक चिह्न है। खट्टर कारीगर की अपनी स्वतन्त्रता और मिलिक्यत की भावना का, जो कि भारतीय कारीगर में सदा अनुप्राणित रही है, मूर्तस्वरूप है। खट्टर पवित्रता और परिवार की अक्षुण्णता के धातावरण का, जिसमें कि भारतीय शिल्पकला सदा फूँके-फूँके है, एक प्रतीक है। खादी भारतीय देशभक्त की वर्दी है और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का चिह्न है। गांधीजी की प्रधानता के प्रथम पाँच वर्ष खट्टर की जड़ मजबूत करने में लग गये, जिससे कि अन्य ग्रामीण उद्योगी और घरेलू धंधों का रास्ता साफ होजाय और जीवन में मर्यादा की, जो कि हिंसा का ही एक चलता-फिरता रूप है, मर्यादा सुनिश्चित होजाय।

गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम के तीन भाग हैं—खट्टर के रूप में आर्थिक, अस्पृश्यता-निवारण के रूप में सामाजिक और मद्य-निषेध के रूप में नैतिक। पहले भाग को पूर्ण करके वह दूसरे भाग में लग गये, और सितम्बर १९३२ में उनके आमरण अनशन करने की घटना तो अब विश्व इतिहास का एक अध्याय ही बन गई है। और तीसरे भाग मद्य-निषेध को प्रांतीय स्वतन्त्रता के अधीन मद्यियों के कार्यक्रम में सम्मिलित करके कार्यान्वित किया जा रहा है। अभी कुछ ही हफ्ते पहले गांधीजी ने शोक-पूर्ण निराशा प्रकट की थी कि उनके विश्वस्त सहयोगी इस मुद्धार की दिशा में बहुत धीरे-धीरे कदम बढ़ा रहे हैं, क्योंकि उन्होंने भारत में पूर्ण मद्य-निषेध के लिए जो मियाद रखी है वह साढ़े तीन वर्ष की ही है। रचनात्मक कार्यक्रम का चौथा भाग है राष्ट्रीय शिक्षा, जिसके लिए हरिपुरा में एक अखिल-भारतीय बोर्ड कायम कर दिया गया है, और उसके तत्वावधान में वर्षा-योजना नामक शिक्षा-मदति का प्रचार किया जा रहा है, जिसका लक्ष्य है बच्चों के शिक्षण को राष्ट्र के जीवन से सम्बन्धित करना। केवल एक बड़े मुद्धार पर अमल होना बाकी है—साम्प्रदायिक एकता पर, जो मुख्यतः हिन्दू मुस्लिम एकता ही है। इसका गुरुमय तैयार होने में कुछ देर नहीं

है, और इस एकता का जो तरीका सोचा गया है उसमें अनुपातो का सौदा नहीं होगा, किन्तु भारत के दो बड़े समुदायों की उदात्त भावनाओं और बुद्धिमत्ता को उत्तेजित करना होगा। इस प्रकार जब राष्ट्र की प्रवृत्तियाँ और ध्यान को एक बार सिपाही और शस्त्र-संग्रह करने में और दूसरी बार युद्ध करने में लगा दिया जाता है, या कभी कभी यह क्रम पलट भी दिया जाता है, तो जीत या हार की बात कोई नहीं कह सकता।

गांधीजी के विचारानुसार ब्रिटेन स लड़ाई मूलतः एक नैतिक लड़ाई है, क्योंकि अंग्रेजों ने जो सात किलेबन्दियाँ की हैं वे अपनी केन्द्रीय सत्ता के चारों ओर सात नैतिक (अथवा, अनैतिक) चहारदीवारी खड़ी की हैं। इनके नाम हैं—सिविल सविस (सरकारी नौकरियाँ), व्यवस्थापिका सभाय, अदालत, कालिज, स्थानीय स्वशासन-संस्थाएँ, व्यापार और उपाधिधारी वर्ग। गांधीजी के असहयोग के कार्यक्रम का उद्देश्य बारी-बारी से इनमें से हरेक को और अन्त में सभीको नष्ट कर देना ही है। कौंसिलों अदालतों और कालिजों का बहिष्कार इसी याजना का एक भाग है। एक बार सरकारी नौकरों और फौजवालों से भी अपनी गुलामी छोड़ देने की अपील की गई थी। इस प्रकार भारत के अंग्रेजी राज्य की मोहकता और अजेयता का नाश किया गया था।

गांधीजी और सत्याग्रह

हिंसा और युद्ध के गुण में सत्याग्रह उतना ही विचित्र हथियार है जितना कि पत्थर पग में लोहे की छुरी या ध्वंसादियों के बीच में पेट्रोल का एंजिन। लोग इसे समझ नहीं सकते, इसमें विश्वास नहीं करते, इसकी ओर देखना भी नहीं चाहते। जब द्रासवाल की सफलता का उदाहरण दिया जाता है, तो लोग कहते हैं कि वह घटना तो एक छोटे-से परिणाम में हुई थी। वह एक छोटी-सी लड़ाई थी। वह उदाहरण भारत-जैसे विशाल देश के लिए लागू नहीं हो सकता। सम्भारन खेड़ा और बोरसद को भी यह कहकर तुल्य नगण्य बना दिया जाता है कि वे भी छोटी छोटी-सी सफलताएँ थी, जिनकी राष्ट्रव्यापी रूप में पुनरावृत्ति नहीं हो सकती। किन्तु आज तो सारी शक्ति मिट चुकी है और सब कठिनाइयाँ हल हो गई हैं। समस्या यही है कि सत्याग्रह को सत्य और अहिंसा के आनुपमिक अंग—अहिंसा—की सीमा के भीतर रक्खा जाय। सत्य और अहिंसा जो इस नये हथियार के दो अंग हैं, निष्क्रिय नहीं हैं, निपेक्षात्मक तो हैं ही नहीं। वे विघा-नामक, आक्रामक शक्तियाँ हैं, जिनसे कि कार्यक्रम में बड़ी सब गुण आजाते हैं जो कि हिंसा के क्षेत्र में युद्ध में होते हैं। अपने अनुशासन को घबरा देने और भयभीत करने और अन्त में उनका हृदय-परिपन्न करके उन्हें जीत लेने, अपने अनुयायियों में एक सख्त अनुशासन-भावना पैदा करने, इस नये शस्त्र के समर्थकों के मस्तिष्क और भावना का प्रभावित करने, साहस, त्याग और धर्म को जगमग करने, अत्यल्प पूँजी से और

विधायक सत्त्वास्त्र की सहायता के बिना ही राष्ट्रव्यापी प्रतिरोध खड़ा करने के कारण, सत्याग्रह एक निश्चयात्मक और अदम्य शक्ति का काम देता है, और अनुभव भी इसकी उपयोगिता का काफी प्रमाण देता है ।

गांधीजी के सत्य और अहिंसा सम्बन्धी विचार बहुत कम लोग समझे हैं । उनके मतानुसार दोनों के दो-दो स्वरूप हैं—क्रियात्मक और निषेधात्मक । चम्पारन के कलकटर ने उन्हें एक कड़ा पत्र लिखा था, जिसे उसने बाद में वापस लेने का निश्चय किया और वापस मांगा । जब गांधीजी के नये अनुयायी उसकी नकल करने लगे तो उन्होंने उन्हें फटकारा और कहा कि अगर उसकी नकल रखली गई तो पत्र वापस लिया हुआ नहीं कहा जायगा । यह सत्य की एक नई परिभाषा थी, और इसीकी पुनरावृत्ति गांधी-अरविन समझौते के समय भी हुई, जबकि होम सेक्रेटरी श्री इमरसन का अपमानकारक पत्र पुनर्विचार के बाद वापस लिया गया । कांग्रेस के कांग्रेसी में उसकी नकल नहीं है । इसका कारण भी यही था कि वापस लिये हुए पत्र की नकल रखना अपनी फाइलो में और अपने हृदयों में उसे दनाये रखने के बराबर है । और ऐसा करना असत्य होगा और अहिंसा के विरुद्ध होगा ।

गांधीजी हिंसा के सूक्ष्मतम प्रोत्साहन को भी सहन नहीं करते । सन् १९२१ में जब गांधीजी की यह राय हुई कि अलीवन्धुओं के भाषणों में से ऐसा अर्थ निकाला जा सकता है तो उन्होंने उनसे एक वक्तव्य निकलवाया कि उनका ऐसा कोई इरादा नहीं था । किन्तु जब उन्हीं अलीवन्धुओं पर अक्टूबर १९२१ में कराची-भाषण के कारण मुकदमा चलाया गया तो उन्होंने उसी भाषण की निबन्धावली में दोहराया और सारे भारतवर्ष में उसीको हजारों सभाओं द्वारा दोहराया । उनके सामने एक ही कसीटी रहती है—क्या भाषण सम्पूर्णतया अहिंसात्मक है ? यदि अहिंसात्मक है, तो वह उनकी ही शीघ्रता से उसपर रण-ललकार देने को तत्पर रहते हैं, जितनी शीघ्रता से बिना यदि वह अहिंसात्मक नहीं है तो क्षमायाचना करने को भी तैयार हो जाते हैं । चूँकि उनका अहिंसा सम्बन्धी दृष्टिकोण ऐसा है, इसीलिए जब १९२१ के सविनय आज्ञाभंग आन्दोलन में, ब्रिटिश युवराज के आगमन के समय, ५३ आदमी मारे गये और ४०० घायल हुए तो उनके हृदय को बड़ा आघात पहुँचा । उन प्रारम्भिक दिनों में उन्होंने प्रायदिवस के रूप में जो पाँच दिन का उपवास किया था वह उनके बाद के उपवासों की अपेक्षा, जो २१ दिन और २८ दिन और अन्त में 'प्राण-पर्यन्त' विषे गये, बहुत छोटा-सा दिखाई देता है ।

गांधीजी का असहयोग सदा अन्त में सहयोग के इरादे से किया गया है, किन्तु उन्होंने अपने सत्य और अहिंसा के मूल तत्त्वों को कभी नहीं छोड़ा है, जैसा कि उन्हें १ फरवरी १९२२ के लार्ड रीडिंग की लिखे हुए पत्र से प्रकट होता है —

“किन्तु इससे पहले कि बारडोली के लोग सचमुच सविनय आज्ञाभंग प्रारम्भ

कर दें, मैं आपसे भारत-सरकार के प्रमुख के रूप में सादर अनुरोध कहूँगा कि आप अपनी नीति को बदल दें, और समस्त असहयोगी कँदियों को, जो देश में अहिंसान्मक कार्यों के कारण दण्डित हुए हों या अभियोगाधीन हों, छोड़ दें, चाहे वे खिलाफत का अन्याय दूर कराने के कारण हों या पंजाब के अन्यायकारों के कारण हों या स्वराज्य के या अन्य कारणों से हों, और चाहे वे ताजीरान हिन्दू को या जाटों को ज़ुबदारी की धाराओं के अन्तर्गत भी आते हों। शर्त केवल अहिंसा की है। मैं आपसे यह भी अनुरोध करता हूँ कि आप छापेखाने की कार्यकारिणी-विभाग के समस्त नियन्त्रणों में मुक्त कर दें, और हाल में लाने किये हुए ज़ुर्मानों और ज़ब्तियों को भी वापस कर दें। इस प्रकार के अनुरोध में मैं आपसे वही माँगता हूँ, जो कि आज प्रत्येक सभ्य गान्धीधीन देश में हो रहा है। यदि आप इस वक्तव्य के प्रकाशन की तारीख से सात दिन के अन्दर आवश्यक घोषणा निकाल देने में समर्थ होसकेगें, तो मैं तबतक के लिए आक्रामक दंग के सविनय आज़्ञाभंग को स्थगित करने की सलाह देने को तत्पर हो जाऊँगा अतः कि कौड़ी कार्यकर्ता जेलों में छूटकर सारी परिस्थिति पर नये मिर से पुनर्विचार न करले।”

गांधीजी की असंगतियाँ

गांधीजी पर नरम विचारों के लोग यह आरोप लगाने हैं कि उनका आदर्श अत्यन्त बर्तान है, उग्रविचार के लोग यह आरोप लगाने हैं कि उनका कार्यक्रम बहुत नरम है। और दोनों यह आरोप लगाने हैं कि उनके कार्य बहुत असंगत होते हैं। तथापि, अपने जीवन और कार्य सम्बन्धी इन परस्पर-विरोधी अनुमानों के बीच वह चट्टान की भाँति अविचल खड़े रहे हैं, निन्दा और स्तुति के प्रवाह का उनपर कोई प्रभाव नहीं हुआ है। उनके जीवन का एकमात्र पथ-प्रदर्शक सिद्धान्त भगवद्गीता के इस श्लोक में है —

सुखदुःखे समेकृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।

ततो मुद्राय युयुत्सव अथ पापमवाप्स्यसि ॥^१

१८९६ में गांधीजी पूना गये और तिलक और गोखले के चरणों में बैठकर उन्होंने राजनीति का प्रथम पाठ पढ़ा। उन्होंने कहा कि तिलक तो हिमालय के समान हैं—महान् और उच्च किन्तु अगम्य, और गोखले पवित्र गंगा के समान हैं, जिनमें वह निर्भक्ता-पूर्वक डुबकी लगा सकते हैं। १९३९ में तो गांधीजी स्वयं हिमालय-जैसे ऊँचे होगये हैं, किन्तु वह सबके लिए सुलभ हैं, उन्होंने गंगा की याह लेली है और सदा पावन करनेवाले हैं।

जब महाग्रह को स्थूलरूप में निष्क्रिय प्रतिरोध कहा करते थे उस समय बहुत कम लोग समझते थे कि सत्याग्रह क्या है। बालके ने (१९०९ में) इस प्रकार

१. गीता—२-३८

उसकी परिभाषा की थी —

“उसका स्वरूप मूलतः रक्षणात्मक है, और वह नैतिक और आध्यात्मिक हथियारों से युद्ध करता है। निष्क्रिय प्रतिरोधक अपने शरीर पर कष्ट-सहकर जुल्मों का प्रतिरोध करता है। वह पाशवी शक्ति का मुकाबिला आध्यात्मिक शक्ति से करता है, मनुष्य की पाशविक वृत्ति के सामने दैवी वृत्ति को खड़ा कर देता है, जुल्म के मुकाबिले में कष्ट-सहन को अपनाता है, पशु-बल का सामना आत्मबल से करता है, अन्याय के विरुद्ध धृष्टा का, और असत्य के विरुद्ध सत्य का सहारा लेता है।”

१९३९ में सत्याग्रह एक घरेलू शब्द बन गया है, और वह पीड़ित लोगों का चाहे वे ब्रिटिश भारत के हो चाहे देशी राज्यों के, एक सर्वमान्य साधन हो गया है। जर्मन-आक्रमणों के मुकाबिले में यहूदियों से और जापानी हमलों के मुकाबिले में चीनियों से भी सत्याग्रह की ही जोरदार सिफारिश की जाती है।

१९१३ में कराची में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने “भारत के आत्मसम्मान की रक्षा के लिए और भारतीयों के कष्ट दूर कराने के लिए दक्षिण अफ्रीका की लड़ाई में गांधीजी और उनके अनुयायियों ने जो वीरतापूर्ण प्रयत्न किये और जो अनुपम बलिदान किया”, उसकी प्रशंसा का प्रस्ताव पास किया। यह प्रस्ताव सर्व सन्मति से पास हुआ था। और १९३१ में कांग्रेस के ४५वें अधिवेशन में जो कि कराची में ही हुआ था, गांधीजी को अपने वीरतापूर्ण प्रयत्नों के लिए राष्ट्र की प्रशंसा फिर प्राप्त हुई। किन्तु दक्षिण अफ्रीका के मुट्ठीभर लोगों की ओर से नहीं, बल्कि ३५ करोड़ जनता के पूरे राष्ट्र की ओर से, जिनकी मुक्ति का श्रीगणेश सत्याग्रह के उन्हीं मुख्य और स्थायी सिद्धान्तों के आधार पर सफलतापूर्वक किया गया था।

१९१४ में गांधीजी ब्रिटिश साम्राज्य के एक राजभक्त नागरिक थे, और जैसे उन्होंने बीसवीं सदी के प्रारम्भ में जुलूम-विद्रोह और बोअर-युद्ध में रेडक्रास सोसाइटी का संगठन किया था, इसी तरह महायुद्ध के लिए भी सिपाहियों की भर्ती में सहायता दी थी। तथापि युद्ध सम्बन्धी उनका रुख कभी इस तरफ और कभी उस तरफ रहा है। यद्यपि १९१८ के अगस्त मास तक वह भर्ती के मामले में अंग्रेजों को बिना शर्त के सहायता देने के पक्ष में थे, तथापि १९३८ के सितम्बर में, जब कि यूरोप पर युद्ध के बादल झुके आ रहे थे, वह युद्ध की परिस्थिति से भारत के लिए लाभ उठाने के या आगामी युद्ध में किसी अंश में भी भाग लेने के सक्त खिलाफ थे। इन दोनों विचारों का कुछ अधिक विस्तृत अध्ययन करना ठीक होगा।

१९१९ में तिलक के नाम एक आर्डर निकाला गया कि वह जिला मजिस्ट्रेट की आज्ञा के बिना कोई भाषण न दें। हमने सुना है कि इसने एक सप्ताह पहले ही वह भर्ती कराने के पक्ष में जोरदार काम कर रहे थे, और अपनी सद्भावना की जमानत के तौर पर उन्होंने महात्मा गांधी ने पास पचास हजार रुपये का एक चेक

भेजा था कि यदि मैं शर्त को पूरा न कर दिखाऊँ तो यह रकम शर्त हारने के जुमनि के रूप में जप्त करली जाय। शर्त यह थी कि तिलक महाराष्ट्र से पचास हजार आदमियों की भर्ती करा देंगे, यदि गांधीजी सरकार से पहले यह प्रतिज्ञा प्राप्त करले कि भारतीयों को सेना में कमीशनड बोर्ड दिया जायगा। गांधीजी का कहना यह था कि सहायता किसी सोदे के रूप में न होनी चाहिए और इसलिए उन्होंने तिलक का चेक लौटा दिया।

सितम्बर १९३८ में यूरोप की युद्ध-सम्बन्धी परिस्थिति पर विचार करने के लिए दिन्ली में कांग्रेस वर्किंग कमेटी की बैठक प्रतिदिन ही रही थी। देश में दो तरह के विचारक थे—एक वे लोग जो ब्रिटेन से भारत के अधिकारों की वास्तविकता कोई समझौता करने के और उसके बाद सहायता देने के पक्ष में थे, और दूसरे वे लोग जो युद्ध में किसी परिस्थिति में भी सहायता करने को तैयार न थे। गांधीजी दूसरे दल में थे, और १९३८ में किसी भी परिस्थिति में युद्ध में भाग लेने के उतने ही दृढ़ विरोधी थे जितने कि १९१८ में ब्रिटेन को बिलासत सहायता देने के पक्षपाती थे।

१९१८ में गांधीजी अनेक कार्यों में पड़ गये, जिनमें सबसे प्रसिद्ध कार्य रोलट-बिलो का विरोध था। आज भी वह उसी प्रकार के उन अनेक कानूनों से लड़ने में लगे हुए हैं जो भारत के अनेक देशी राज्यों में—आवणकोर, जयपुर, राजकोट, लोम्बडी, घेनकानल आदि में—पूरे जोर-शोर से अमल में आ रहे हैं। उनकी योजना और उद्देश्य की वास्तविकता भारत-सरकार द्वारा प्रकाशित 'इण्डिया (१९१९)' के लेख के लेख से अच्छा और क्या प्रमाण दिया जा सकता है —

“गांधीजी सामान्यतया ऊँचे आदर्शों और पूर्ण निःस्वार्थता रखनेवाले टाल्सटाय-वादी समझे जाते हैं। जबसे उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में भारतवासियों का पक्ष लिया तबसे उनके देशवासी उन्हें उन्मी परम्परागत श्रद्धा-भक्ति से देखते हैं जो पूर्वीय देशों में सच्चे त्यागी धार्मिक नेता के प्रति हुश्रा करती है। उनमें एक विशेषता यह भी है कि उनके प्रशंसक केवल किसी एक ही मत के नहीं हैं। जबसे वह अहिंसावाद में रहने लगे हैं तबसे उनका कई प्रकार के सामाजिक कार्यों से क्रियात्मक सम्बन्ध हो गया है।

“जिस किसी व्यक्ति या वर्ग को वह पीड़ित समझने हैं उसके पक्ष में पड़कर लड़ने को वह शीघ्र तत्पर होजाते हैं, और इस कारण वह अपने देश के सामान्य लोगों में बड़े लोकप्रिय बन गये हैं। बम्बई प्रान्त के कई भाषा की शहरी और देहानी जनता में उनका प्रभाव अमरिग्य है, और उनके प्रति लोग इतनी श्रद्धा रखते हैं कि उनके लिए पूजन शब्द कहना अत्युक्ति न होया। चूँकि गांधीजी भौतिक शक्ति से आनित्र शक्ति का ऊँचा समझने हैं, इसलिए उनको यह विश्वास हासया कि रोलट-एक्ट के विरुद्ध निष्क्रिय प्रतिरोध का वही शस्त्र प्रयुक्त करना उनका कर्तव्य है जो

उन्होंने सफलतापूर्वक दक्षिण अफ्रीका में प्रयुक्त किया था। २४ फरवरी को यह घोषणा कर दी गई कि अगर बिल पार कर दिये गये तो वह निष्क्रिय प्रतिरोध या सत्याग्रह चलायेगे। सरकार ने और कई भारतीय राजनीतिज्ञों ने भी इस घोषणा को अत्यन्त गम्भीर समझा। भारतीय लेजिस्लेटिव कौंसिल के कुछ नरम विचार के मेंबरो ने सार्वजनिक रूप में ऐसे कार्य के भयकर परिणामों की वास्तव आशंका प्रकट की। श्रीमती बेसेण्ट, ने जिन्हें भारतवासियों के मनोविज्ञान का अच्छा ज्ञान था, अत्यन्त गम्भीर भाव से गांधीजी को चेता दिया कि जिस प्रकार का आन्दोलन वह चलाना चाहते हैं उससे भीषण परिणाम पैदा करनेवाली क्रियाशक्तियाँ उत्पन्न होगी। यह स्पष्ट कह देना होया कि गांधीजी के हथ या वक्तव्यों में ऐसी कोई बात नहीं जिससे सरकार के लिए उनके आन्दोलन शुरू करने से पहले उनके विरुद्ध कोई कार्य करना उचित होता। निष्क्रिय प्रतिरोध निश्चयात्मक नहीं बल्कि निपेधात्मक क्रिया है। गांधीजी ने प्रकट रूप से पाँचवें बल प्रयोग की निन्दा की। उन्हें विश्वास था कि कानूनों के निष्क्रिय भंग से वह सरकार को रोलट-कानून हटा देने की बाध्य कर सकेंगे। १८ मार्च को रोलट कानूनों की बाबत उन्होंने एक प्रतिज्ञापत्र प्रकाशित करवाया, जिसमें लिखा था—'चूँकि हमारी अन्तरात्मा को यह विश्वास है कि इण्डियन किमिनल लॉ एमेण्डमेण्ट बिल न० १, सन् १९१९, और क्रिमिनल लॉ एमजेंन्सी पावर्स बिल न० २, सन् १९२०, अन्यायपूर्ण हैं, स्वतन्त्रता और इन्साफ के उसूलों के विरुद्ध हैं, जिनपर कि सम्पूर्ण भारत की सुरक्षितता और स्वयं राज्यसंस्था का आधार है, इसलिए हम नम्भीरतापूर्वक प्रतिज्ञा करते हैं कि यदि ये बिल कानून बना दिये गये तो जबतक ये वापस न ले लिये जायेंगे तबतक हम इन कानूनों का और आगे मुकर्रिर होनेवाली कमेटी जिन जिन कानूनों को बनायगी उन-उनका पालन करने से बिनयपूर्वक इन्कार कर देंगे। और हम यह भी प्रतिज्ञा करते हैं कि इस लड़ाई में हम ईमानदारी से सत्य का अनुसरण करेंगे और जान-माल और जात के प्रति हिंसा न करेंगे।' "

१९१९ (२१ जुलाई) में गांधीजी ने सरकार की और मित्रों की सलाह मान ली और सविनय आज्ञाभंग स्थगित कर दिया और १९३४ (अप्रैल) में फिर उन्हें अपनेआपके सिवा सबके लिए सविनय आज्ञाभंग स्थगित करना पड़ा। १९१९ में उन्होंने कहा कि "मुझपर यह आरोप लगाया गया है कि मैंने एक जलती हुई दिया-सलाई छोड़ दी है। यदि मेरा आकस्मिक प्रतिरोध एक जलती हुई दियासलाई है तो रोलट-कानून का बनाना और उसको जारी रखने की जिद करना तो भारतवर्ष में हजारों जलती हुई दियासलाईयाँ बिखेर देने के समान है। सविनय आज्ञाभंग को बिलकुल रोकने का मार्ग है उस कानून की ही वापस लेलेना।" ७ अप्रैल १९३४ को 'अग्नेपट्टना' के वक्तव्य में फिर सविनय आज्ञाभंग स्थगित करते समय उन्होंने कहा —

"मुझे प्रतीत होता है कि सामान्य जनता को सत्याग्रह का पूरा संदेश प्राप्त नहीं

हुआ है, क्योंकि सदेस उस तक पहुँचते-पहुँचते अशुद्ध हो जाता है। मुझे यह स्पष्ट होगया है कि आध्यात्मिक साधनों का प्रयोग जब अनाध्यात्मिक माध्यमों द्वारा सिखाया जाता है तब उनकी शक्ति कम होजाती है। आध्यात्मिक सदेस तो स्वयं-प्रचारित होते हैं।

“मैं सब कांग्रेसवादियों को सलाह देता हूँ कि वे स्वराज्य की खातिर सविनय भग, जो विशेष कष्टों को दूर कराने की खातिर किये जानेवाले सविनय भग से भिन्न है, स्थगित कर दें। वे इसे केवल मेरे ऊपर छोड़ दें। मेरे जीवित रहने तक इस शास्त्र का प्रयोग दूसरे लोग केवल मेरे नियन्त्रण में रहकर करे, जबतक कि कोई और व्यक्ति ऐसा खड़ा न होजाय जो इस विज्ञान को मुझसे ज्यादा जानने का दावा करता हो और विश्वास उत्पन्न कर सके। मैं सत्याग्रह का जन्मदाता और प्रारम्भकर्ता होने के कारण यह सलाह देता हूँ। इसलिए जो लोग मेरी सलाह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षरूप से पाकर स्वराज्य-प्राप्ति के लिए सविनय आज्ञाभग में लग गये थे, वे कृपा सविनय आज्ञाभग करने से रुक जायें। मुझे पूर्ण विश्वास है कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति की भारत की लड़ाई के हित में ऐसा करना ही सर्वोत्तम मार्ग है।

“मानव जाति के इस सबसे बड़े शास्त्र के विषय में मैं बहुत ही गभीर हूँ।”

उसी पटना-वक्तव्य में १९३४ में उन्होंने शोक प्रदर्शित किया कि “बहुतसे लोगों के आधे हृदय से किये हुए सविनय आज्ञाभग के कारण, चाहे उसका परिणाम कितना भी भारी क्यों न हुआ हो, सामान्यतया न तो आतंकवादियों के हृदयों पर प्रभाव पड़ा और न शासकों के हृदयों पर।” किन्तु आज उन्हें यह सतोष मिला है कि २५०० से अधिक ऐसे मित्र नजरबन्दी से छूट गये हैं, और उन्होंने अहिंसा पर अपना विश्वास भी प्रकट कर दिया है। और हिंसा पर अहिंसा की विजय का सबसे बड़ा उदाहरण तो यह हुआ है कि सरदार पृथ्वीसिंह ने, जिसे मरा हुआ मान लिया गया था, किन्तु जो वास्तव में दूसरी जगह ले जाते समय हिरासत में से चली रेल से कूदकर भाग गया था और तबसे सत्रह वर्ष तक भारत और यूरोप के बीच सरलता से फिरता रहा था, गांधीजी के हाथों में अपनेआपको सौंप दिया, और उन्होंने भी उसे भारत की ब्रिटिश सरकार की जेल के सुपुर्द कर दिया, और वह अब फिर उसकी रिहाई के लिए बड़ा प्रयत्न कर रहे हैं।”

१९१९ में सविनय आज्ञाभग को स्थगित करने के बाद गांधीजी को पंजाब की घटनाओं के इस अप्रत्याशित ढंग से घटित होने की जानकारी मिलने पर निःसन्देह बड़ा आघात पहुँचा। उन्होंने स्वीकार किया कि उनसे ‘हिमालय-जैसी बड़ी भूल हुई’, जिसके कारण ऐसे अयोग्य लोग जो वास्तव में सविनय आज्ञाभगकारी न थे गड़बड़ पेश कर सके।”

१. सरदार पृथ्वीसिंह गत २२ सितम्बर को रिहा कर दिये गये हैं। —संपादक

जब १९१९ का शासन-सुधार-कानून बना तब गांधीजी का यह मत था कि यद्यपि सुधार असतोषजनक और अपर्याप्त हैं, तो भी कांग्रेस को सम्राट् की घोषणा की भावनाओं को मानकर प्रकट करना चाहिए कि उसे विश्वास है कि "सरकारी अधिकारी और जनता दोनों इस प्रकार सहयोग करेंगे कि जिससे उत्तरदायी सरकार कायम होजायगी।" अब इससे उनके उस रुख का मुकाबिला कीजिए, जबकि उन्होंने १९३७ में प्रांतीय शासन के दैनिक कार्यों में गवर्नरों द्वारा अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग न करने और दखल न देने का आश्वासन सरकार से मांगा और हिंसा-सम्बन्धी कैदियों के छोड़े जाने, उड़ीसा के गवर्नर के नियुक्त किये जाने, देश के जमींदारी और भूमि-सम्बन्धी कानूनों के आमूल सुधारने और बारडोली के किसानों को उनकी ख़लतुदा जमीन वापस दिलाने के मामलों में उन्होंने उस आश्वासन को कार्यान्वित करवाया।

अमृतसर-कांग्रेस में गांधीजी ने कहा था कि "सरकार के पागलपन का जवाब समझदारी से देना चाहिए, न कि पागलपन का जवाब पागलपन से।" आज वह देश को विश्वास दिला रहे हैं कि राजकोट में और दूसरी रियासतों में जहाँ जहाँ शासकवर्ग पागल हो रहा है वही अन्त में जनता की ही विजय होगी, यदि वे अहिंसा पर दृढ़ रहें और पागलपन का जवाब समझदारी से दें।"

गांधीजी का पूर्णतया मानव-सेवा के क्षेत्र से निकलकर विशुद्ध राजनैतिक क्षेत्र में पहुँच जाना धीरे-धीरे अज्ञात रूप से और इच्छा के बिना ही हुआ—यह नहीं कि वह इस क्षेत्र-परिवर्तन को जानते न थे, किन्तु वह इसको रोक न सकते थे। और जब यह आल इण्डिया होमरूल लीग में शामिल हुए और उसके अध्यक्ष बन गये तो उन्हें अपनी शक्तों के अनुसार कर्तव्य की पुकार सुनाई दी। उनकी शक्तें उन्हींके कथनानुसार ये थी—“जिन कार्यों में उन्हें विशेषज्ञता प्राप्त थी उनके, अर्थात् स्वदेशी, साम्प्रदायिक एकता, राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी, और प्रांतीय भाषा-आधार पर पुनर्विभाजन के कार्यों के प्रचार में सत्य और अहिंसा का कड़ाई से पालन किया जाय।” उनकी दृष्टि में सुधार तो गौण थे। इस प्रकार धर्म के मार्ग द्वारा सामाजिक सेवा से राजनीति में आजाना उनके लिए एक सरल परिवर्तन था। आज भी वह उसी मार्ग द्वारा राजनीति से फिर सामाजिक सेवा में चले आते हैं। वास्तव में उनको दृष्टि में दोनों चीज़ें एक ही हैं, जैसे कि किसी सिक्के की दो बाजूएँ होती हैं, और वह सिक्का स्वयं सत्य और अहिंसा की धातु से बना हुआ है, जिनके आधार पर कि सारे धर्म खड़े हुए हैं।

गांधीजी के लिए असहयोग स्वयं कोई उद्देश्य नहीं है, किन्तु किसी उद्देश्य का साधन है। उनका महत्त्वपूर्ण कार्य, उनके विरोध के सामने हमेशा खड़ा रहता है, वसति कि राष्ट्र के आत्म-सम्मान को उससे धक्का न लगता हो। १९२० में भी उनकी

यहो स्थिति थी और आज भी उनकी यही स्थिति है। १९२० में सरकार ने उसका निरस्तार किया, १९३९ में सरकार उसकी हादिक इच्छा करती है।

इसी प्रकार का परस्पर-विरोध गांधीजी के रुख में पूर्ण स्वाधीनता के विषय में १९२१ में और १९२९ में मिलता है। १९२१ में उन्होंने अहमदाबाद में कहा था—

“इस प्रश्न को आपमें मे कुछ लोग ने जैसा मामूली-सा समझ रक्खा है उसमें भुंने रज हुआ है। रज इसलिए हुआ है कि इसमें जिम्मेदारी की कमी मालूम होती है। यदि हम जिम्मेदार पुरुष या स्त्री हैं तो हम नागपुर और कलकत्ता के पिछले दिनों पर वापस पहुँच जाना चाहिए।”

१९२८ में जब स्वाधीनता का प्रश्न फिर आगे लाया गया, तब गांधीजी ने निम्नलिखित महत्वपूर्ण बात कही —

“आप स्वाधीनता का नाम अपने मुँह से जमी प्रकार लेते रहें जैसे मुसलमान अल्लाह का नाम लेते रहते हैं या धार्मिक हिन्दू राम व कृष्ण का नाम लेते रहते हैं। किन्तु केवल मंत्र रटने से कुछ न होगा, जब तक कि उसके साथ अपने आत्मगीर्ब का भाव न होगा। यदि आप अपने शब्दों पर टिके रहने के लिए तयार नहीं हैं तो स्वाधीनता कभी होगी? आखिरकार स्वाधीनता तो बहुत कष्ट-साध्य वस्तु है। वह जयानी जमाखर्च में नहीं आजायी।”

और १९२९ में २३ दिसम्बर को जब उन्होंने लाडो इराबिन से बातचीत समाप्त की तो प्रायः यह ललकार देदी कि जब वह देश को पूर्ण स्वाधीनता के लिए सगठित करेंगे।

१९२० में सरकार ने यह आगा और विस्वाम प्रकट किया है कि “ऊँचे वर्ग और सामान्य वर्ग के लोग इतने समझदार हैं कि वे असहयोग को एक काल्पनिक और अमम्भव योजना समझकर त्याग ही देंगे। यदि यह सफल होनाय तो परिणाम यही होगा कि सर्वत्र अन्यवस्था होजायगी, राजनैतिक अराजकता फैल जायगी, और देश में जिन जिनकी कोई माल-मिलकियत है उन-उनका सर्वनाश होजायगा।” सरकार ने कहा कि “जो देश और अज्ञानपूर्ण लोग हैं उन्हींको असहयोग अच्छा लगता है। उनके मिदाल में कोई रचनात्मक बीज नहीं है।” वही सरकार आज उस आन्दोलन के जन्मदाता में, उसके सर्वोत्तम भाग अर्थात् सविनय आजा-भंग के अघारपात्र में, मधि करने को उन्मुख है।

१९२१ में जब लाडो रीडिंग ने गांधीजी में बातचीत की—और वह बातचीत इसलिए अमकल होगई कि कलकत्ता में लाडो रीडिंग के नाम गांधीजी का तार कुछ देरी में पहुँचा—उस समय प्रत्येक व्यक्ति का अनुमान था कि गांधीजी एक अन्याव-हारिक धार्मिक अमम्भव आदमी हैं। किन्तु जब लाडो अराबिन ने १९३१ में दस साल बाद उनको और उनके छात्रों माधियों को जेल में छोड़ दिया, तो प्रत्येक व्यक्तिने उनके उचित बान मानने और मनवाने की तया उनके उचित दृष्टिकोण रखने के

गुणों की प्रशंसा की, और जून १९३७ में जब गांधीजी और लार्ड लिनलिथगो के बीच सौजन्यपूर्ण सन्धि-वार्ता हुई तो उसमें भी यही सद्गुण फिर उसी प्रकार सामने आये और उसी प्रकार परिणामकारी हुए, जिससे कि अन्त में कांग्रेस ने पदग्रहण करना स्वीकार कर लिया।

१९२२ में चोरीचोरा-काण्ड के कारण, जिसमें कि इक्कीस पुलिस के सिपाही और एक सब-इन्स्पेक्टर और बहू थाना जिसमें कि वे सब बन्द थे जला दिये गये, गांधीजी ने सविनय आज्ञा-भंग के सारे कार्यक्रम को स्थगित कर दिया और १९३९ में राणपुर (उड़ीसा) में बेजलगेटी की हत्या के कारण भी उन्होंने उड़ीसा की ईस्टर्न एजेन्सी के देशी राज्य के लोगों को वही सलाह दी। अहिंसा की सर्वप्रधानता के मार्ग में अपनी प्रतिज्ञा का खयाल कभी आड़े नहीं आया है। १९२४ में गांधीजी के जेल से छूटने के बाद उन्होंने एक वक्तव्य दिया, जिसमें उन्होंने कहा कि "मेरी राय अब भी यही है कि कौंसिल-प्रवेश असहयोग के साथ असंगत है।" परन्तु १९३४ में जब सविनय आज्ञा-भंग स्थगित कर दिया गया तो कौंसिल-प्रवेश का उन्होंने समर्थन किया, और उसको ऐसी शर्तों के साथ मन्त्रिपद ग्रहण कर लेने तक पूरी तरह कार्यान्वित कर दिया, जिनसे कि मन्त्रिगण रिफार्म्स एक्ट पर राष्ट्र की इच्छा व माग के अनुसार, न कि अंग्रेजों की मर्जी के अनुसार, अमल करने में समर्थ हुए।

१९३४ में ७ अप्रैल को अपने सिद्ध पटना-वक्तव्य में उन्होंने देशी राज्यों के विषय में लिखा कि "देशी राज्यों की दावत कुछ व्यक्तियों ने जिस नीति का समर्थन किया, वह मेरी नीति से बिल्कुल भिन्न थी। मैंने इस प्रश्नपर कई घण्टे गम्भीर विचार किया है, किन्तु मैं अपनी सम्मति बदल नहीं सबा हूँ।"

१९३९ में उन्होंने अपनी सम्मति पूरी तरह बदल ली और इसका कारण यही था कि देशी राज्यों की परिस्थितियाँ बिल्कुल बदल गईं। देशी राज्यों की नई जागृति ने उनकी सहानुभूति यहाँतक प्राप्त करली है कि आज वह देशी राज्यों की जनता के पक्ष को अधिक-से-अधिक समर्थन दे रहे हैं, यहाँतक कि श्रीमती गांधी आज राजकोट की जेल में बंद हैं और गांधीजी ने यह दिया है कि देशी नरेशों को या तो अपनी जनता को उत्तरदायी शासन दे देना पड़ेगा या मिट जाना पड़ेगा।

गांधीजी की आन्तरिक प्रेरणा

सत्य और अहिंसा मनुष्य के ऊँचे अनुभव को बाते हैं, जिनको समझने के लिए आदमी में उसी प्रकार की अभ्यासयुक्त अनुभव-शक्ति की आवश्यकता पड़ती है जैसी कि संगीत और गणित को या खदर-वस्त्र और साम्प्रदायिक एकता को समझने के लिए। अभ्यस्त अनुभव-शक्ति से अन्तरात्मा की अनुभूति बढ़ जाती है, और गांधीजी सदा अन्तरात्मा की अनुभूति से निर्णय करते हैं न कि बुद्धि-प्रयोग से। सद्गुणी लोग

सत्य को अन्तरात्मा की प्रेरणा से अनुभव कर लेते हैं। इसी प्रकार सद्गुणों की यह सत्कार मूर्ति भी सत्य का अनुभव अन्तरात्मा की प्रेरणा से किया करती है। और गांधीजी के चरणचिन्हों पर चलनेवाले अनुयायियों का यह कर्तव्य होजाता है कि पूज्यकी शिक्षाओं का अपने काम और अपने देश के नैतिक नियमों और सामाजिक व्यवहारों के अनुसार अर्थ लगायें और व्याख्या करें। अपनी आन्तरिक प्रेरणा से ही उन्होंने १९२२ में वारडोली में सविनय आज्ञाभंग की सहसा स्थगित करने का, १९३० में नमक-सत्याग्रह चालू करने का, १९३४ में सविनय आज्ञाभंग बन्द करने का, और १९३९ में देशी राज्यों सम्बन्धी नीति का निर्णय किया। उन्हें सहसा नये प्रकाश, नये ज्ञान, का अनुभव होता है। कई बार उन्होंने कहा है कि मुझे प्रकाश नहीं मिल रहा है, और उसको पाने के लिए मैं प्रार्थना करता रहता हूँ। और जब उन्हें प्रकाश मिल जाता है तो उनके अनुयायियों को वह विचित्र प्रतीत होता है, क्योंकि उनका उपाय भी अमूर्तपूर्व और भयोत्पादक होता है। यदि अखिल-भारतीय महासभा-समिति की किसी बैठक में एक विशिष्ट मनुष्य बाधा डालता है तो वह स्वयंसेवकों को उसे बाहर निकाल देने से रोक देने है और तीन सौ सदस्यों की उस सभा को ही स्थगित कर देने है। बाधा डालनेवाला लाचार, निष्प्रिय, होजाता है। यदि चिराला-मेराला की जनता पर जबरदस्ती और लोगों की मर्जी के विरुद्ध एक म्यूनिसिपल कमेटी लाद दी जाती है तो उनका उपाय यह है कि जनता को शहर खाली कर देना चाहिए। और वास्तव में जनता ने शहर उसी तरह खाली कर दिया जैसा कि प्राचीन काल में बरेल्ल औरषी के विरुद्ध विद्रोह करनेवाले तातारों ने किया था। वारडोली और छरमदा के करवन्दी आन्दोलनों में किसानों से कहा गया कि वे अपने घर-बार छोड़ दें और निकटवर्ती बड़ीया राज्य में जायें, और इस प्रकार बड़ी-बड़ी पलटने रखने-वागे शक्तिशाली ब्रिटिश सरकार को भी लड़ाई में बेवस होना पड़ा। जब उड़ीसा के नीलगिरी राज्य के लोगों पर राजा ने जुलम किये तो गलती करनेवाले राजा को मोरी राह पर लाने के लिए तैयार और पुराना नुस्खा देशत्याग बता दिया गया, और उसपर अमल भी हुआ। इन सब मामलों में सफलता जनता की सहनशक्ति और हृदय की पवित्रता पर निर्भर करती है। परन्तु गांधीजी के अनुयायी सदा उनसे सहमत नहीं होते। उन्होंने उनके निर्णयों का प्रायः विरोध किया है। उन्होंने फरवरी १९२२ में वारडोली के सविनय आज्ञाभंग के त्याग का बहुत विरोध किया, और अराजकता-वाण्ड में जी भावना रही थी उसकी प्रशंसा की। १९२४ में जब महासभा समिति की बैठक में अहमदाबाद में सिराजगढ़-प्रस्ताव पर फिर वोट लिया गया, तो गांधीजी खुली सभा में रो पड़े। उन्हें इसलिए रोना आया कि कुछ उनके ही परम अनुयायियों ने ही अपराध करनेवाले युवक की प्रशंसा में वोट दिया था।

गांधीजी की आदत आग से खेलने की है, किन्तु वह इस जोखिमदार खेल में से

सदा बेदाग निकल आते हैं। वह कई बार गिरफ्तार हो चुके हैं। प्रत्येक बार अग्नि-परीक्षा ने उनके ढांचे की ओर भी चमकदार बना दिया है। उन्होंने अपने लोगों के पागलपन की खातिर अगणित बार खेद प्रकाशन किया है, और कांग्रेस से भी ऐसा ही करने का आग्रह किया है। उन्होंने सामूहिक सविनय आज्ञाभंग की अपनी परमप्रिय योजनाओं की भी स्मृति करना बार-बार मजूर कर लिया है, केवल इसलिए कि कहीं-न कहीं कितनी ही दूर पर क्यों न हो, हिंसा होगई।

गांधीजी जब बात करने हैं उसकी अपेक्षा देश पर उनका प्रभाव तब अधिक पड़ता है जब वह मौन रहते हैं, और जब वह कांग्रेस के अन्दर रहते हैं उसकी अपेक्षा तब अधिक प्रभाव पड़ता है जब वे उसके बाहर रहते हैं। लोग शायद भूल गये होंगे कि उन्होंने १९२५ में कानपुर में राजनैतिक मौन रखने का प्रण किया था, जिसे उन्होंने दिसम्बर १९२६ में मोहाटी में समाप्त किया। लेकिन उनके लिए तो शारीरिक और राजनैतिक मौन की ऐसी अवधियाँ मानसिक मन्थन की ही अवधियाँ होती हैं, जब उनके मस्तिष्क में बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनती हैं और वे पूर्ण परिपक्व होकर सुनिश्चित कार्यक्रमों और सिद्धान्त सूत्रों के रूप में प्रकट कर दी जाती हैं। ऐसी एक लम्बी अवधि कानपुर-अधिवेशन (१९२५) और कलकत्ता-अधिवेशन (१९२९) के बीच में रही थी, जिसके बाद कि लाहौर (१९२९) में पूर्ण स्वाधीनता के आधार पर सरकार को चुनौती दे दी गई। गांधीजी अपने अनुयायियों की बात को नहीं मानते और उनको भी उसी प्रकार कसौटी पर नढ़ाते हैं जिस प्रकार कि अपने विरोधियों को। यदि उनकी कसौटी पर वे ठीक बैठते हैं तो वह उनके विचारों को प्रहृण कर लेते और अपने बना लेते हैं। यदि वे कसौटी पर नहीं बैठते तो छोड़ दिये जाते हैं। उन्होंने सविनय आज्ञाभंग के विषय में, पूर्ण स्वाधीनता के विषय में, और अन्त में देशी राज्यों के विषय में भी ऐसा ही किया। आजकल वह देशी राज्यों के मामले में बड़े उग्र हो रहे हैं, जिससे कि उनके साथियों को भी बड़ा आश्चर्य हो रहा है और उनके विरोधियों को बड़ा क्लेश हो रहा है। नवयुवक काँग्रेसवादी उनकी ईमानदारी में सन्देह करते हैं, और उन्होंने उनपर अंग्रेजों के फेडरेशन के मामले में समझौता करने की तैयारी का सार्वजनिक आरोप लगाया है। वे जोर-जोर से जिल्लाकर घोषित करते हैं कि फेडरेशन की इमारत की, जो कि दोमजिला है, नष्ट कर देने का उनका निश्चय है। नवयुवक अपनी तोपी का मुँह ऊपरी मजिल की ओर कर रहे हैं। गांधीजी पहले से ही पहली मजिल की ओर उसके खम्भों को गिरा रहे हैं। ये खम्भे हैं देशी राज्य, जिनके बिना फेडरेशन की इमारत नहीं बन सकती और नीचे की मजिल के प्रांतीय कमरे भी गिरते हुए से ही रहे हैं, क्योंकि ऊपरी मजिल को उठानेवाले खम्भे भी दीधता से टूटने जा रहे हैं। गांधीजी की रण कुशलता का आधार सत्य है। उनका शस्त्र अहिंसा है। वह जो शब्द कहते हैं सच्चे अर्थों में कहते हैं। और जो कहते हैं वह कर दिखाते हैं।

जब उन्होंने दूसरी गोल-मेख परिपद् में इंग्लैंड में कहा था कि यदि सरकार हरिजनो के लिए पूंथुक् चुनाव-क्षेत्र बनायगी तो अपने प्राण देकर भी मैं हिन्दू-समाज को टुकड़े किये जाने में बचाऊंगा, तो उन्होंने यह कथन सच्चे अर्थों में किया था। उन्होंने इंग्लैंड से लौट कर (२८ दिसम्बर १९३१ को) आजाद मैदान में फिर इस कथन की पुष्टि की। उन्होंने इस बात को मार्च १९३२ में सर सैमुअल होर के नाम एक पत्र में लिखित रूप में भी भेज दिया और २० सितम्बर १९३२ को उन्होंने इसी बात पर 'आमरण अनशन' प्रारम्भ कर दिया। आज वह देशी राज्यों के विषय में फिर एक महत्वपूर्ण प्रतिज्ञा कर रहे हैं और वह फ्रेडरेसन को तोड़ देंगे। "और हमसे अधिक, यदि ईश्वर की इच्छा हुई, तो मैं तो यह अनुभव करता हूँ कि मुझ में अभी पहली लड़ाई में भी जोरदार एक और लड़ाई लड़ने का बल और शक्ति मौजूद है।" गांधीजी के जीवन और व्यवहार में परस्पर विरोध मिलत हैं, किन्तु वह दिखावटी और धार्मिक नहीं हैं, क्योंकि जो व्यक्ति अत्यन्त धार्मिक और बहुत व्यावहारिक होता है उसमें ऐसी विरोधताएँ होना आवश्यक ही हैं। वास्तविक जीवन में आदर्श को मिलाना साधनाना से साहम की जोड़ना, प्राचीनता-प्रेम से नव-भावना को मूल्य करना, भूतकाल के आग्रह के साथ भविष्य की दौड़ को सम्मिलित करना, सार्व-भौमिक-मानवता-वाद की तैयारी के साथ राष्ट्रीयता-विकास का सामंजस्य करना—अर्थात्, संक्षेप में, बन्धुत्व-भावना के साथ स्वतन्त्रता का सामंजस्य करना और दोनों में से मानवता को विकसित करना ऐसा ही कार्य है जैसा कि एक अच्छी रेलगाड़ी के एन्जिन में ग्रेक लगाना, और उसे अपनी पटरियों पर उचित स्थानों पर ठहराने हुए और उचित समय पर चालू करते हुए आगे ले जाना। इस यात्रा में कहीं धीरे-धीरे चढ़ाई चढ़नी होगी, कहीं भीधना में उतरना होगा, कहीं मोड़ी समझौते पर चलना होगा और कहीं असमतापूर्ण और खतरा भरा मार्ग से जाना होगा। भारत को यह गौरव प्राप्त है कि उनका नेता एक ऐसा व्यक्ति है जो सामान्य जनता में से ही एक साधारण मनुष्य है, किन्तु आजकल की दुनिया उसे देख कर चकित है। वह चमत्कारी बन गया है। वह एक दुबला-पतला मनुष्य ही है, किन्तु आदर्शवादी है, म्पिउत्तम है, बल्लि अवतार ही है, जिसने राजनीति को धर्म की उच्चता पर पहुँचा दिया है, जिसने ममता के भीतर होनेवाले सपनों की उच्च नैतिकता और मानवता से प्रभावित कर दिया है, और जो उस दूरदर्शी दिव्य घटना—मनुष्यजाति की महा-प्राप्ति या विश्व-मित्र—के जाने की गति को तीव्र करने का यत्न कर रहा है।

महात्मा गांधी का विकास

आर्थर मूर

[सम्पादक, स्टैंड्समेन, दिल्ली]

सत्तर वर्ष की आयु में भी महात्माजी चालीस वर्ष की आयु के बहुत-से आदमियों से उत्साह में अधिक युवा हैं। वे अब भी एक विचार्यों और परीक्षार्थ प्रयोग करने वाले हैं। यह सच है कि उनके अपने कुछ सिद्धान्त हैं, परन्तु उनकी सीमायें सङ्कुचित नहीं हैं। और मुझे यह मानना चाहिए कि उन्होंने हमेशा सत्य की खोज को अपना मुख्य लक्ष्य रक्खा है। उस सत्य का उपदेश और दूसरों का नेतृत्व या सार्वजनिक कार्य उनका गौण कार्य है। जब-जब यह लम्बे समय के लिए सार्वजनिक नेतृत्व से अलग हो जाने है, तब-तब वे सत्य के उज्ज्वल प्रकाश की ही तलाश करते हैं।

मैं उन्हें पहली बार दिल्ली में सितम्बर १९२४ में मिला। उस समय वह हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए डक्कीस दिन का उपवास कर रहे थे। उनके मित्रों को उनके जीवन की भागी बिन्ता थी। मौलाना मुहम्मदअली प्रत्येक व्यक्ति को, जिसका नाम उन्हें याद आता जाता था, एकता सम्मेलन में भाग लेने को दिल्ली आने के लिए तार देते जाते थे, ताकि महात्माजी को यह जानकर कुछ सान्त्वना प्राप्त हो कि उनके उपवास का एकदम असर पड़ा है और आपस में लड़ती रहनेवाली दो जातियों में एकता बनाने के लिए फौरन ही असाधारण प्रयत्न आरम्भ हो गये हैं। उस साल गर्मियाँ में लगातार बहुत-से साम्प्रदायिक दंगे हुए थे। मैं भी उन व्यक्तियों में से था जो निमग्न पकर दिल्ली आये थे। जिस दिन मैं आया, बड़े सबरे ही मेरे होटल के सोने के कमरे में मौलाना मुहम्मदअली मुझे मिले और मुझसे कहा कि मैं आपको एकदम गांधीजी के पास ले जाना चाहता हूँ। महात्माजी रिज में स्व० ला० मुन्तानसिंह के मकान में श्री सी एफ एण्डरुज आदि परिचर्या करनेवालों के बीच बैठे थे। वह कमजोर थे, परन्तु युस्वर रहे थे। हम दोनों में कुछ देर बातचीत हुई, परन्तु महात्मा जी ज्यादा बोल नहीं सकते थे और अब तो मुझे याद भी नहीं कि उन्होंने क्या कहा था। पर उनकी भूति इस समय भी मेरे हृदय पर उतनी ही स्पष्टता से अंकित है। यह भेंट बहुत दोस्ताना और आनन्दप्रद थी। उसके बाद पिछले सालों में यद्यपि मुझे उनसे बातचीत करने का योजा छ था सात बार से ज्यादा न पड़ा होगा, परन्तु उस समय उन्होंने जो मित्रता की भावना प्रदर्शित की वह मेरे

मन पर सदा अकित रहेगी। एव पत्रकार की हैसियत से और केन्द्रीय असेम्बली में कांग्रेस-विरोधी दल के सदस्य की हैसियत से मुझे उनके कार्यों और खासकर १९३०-३२ के कार्यों व नीति की आलोचना करनी पड़ी और यथाशक्ति विरोध भी करना पड़ा। परन्तु इस सबका उम व्यक्तित्व सम्बन्ध पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। कभी-कभी हम दोनों में पत्र-व्यवहार भी हुआ है। मैं हमेशा साफ-साफ बात लिखता और वह सदा सहानुभूतिपूर्ण उत्तर देते। सन् १९२७ और १९२९ में उनकी आत्मकथा के दो भाग निकले और मुझे उसकी विस्तृत आलोचना लिखनी पड़ी। खादी की जिल्द चढ़ी हुई और अहमदाबाद में उनके अपने ग्रंथ में सुन्दर और स्पष्ट छपी हुई दो हरी जिल्दें (सत्य के प्रयोग या आत्मकथा) बड़ी रोचक, महान्, साहित्यिक वृत्ति हैं। उनको पढ़ने के बाद मैंने अनुभव किया कि इस रहस्यमय शक्ति के सम्बन्ध में मेरा ज्ञान बहुत बढ़ गया। उनके मन की गति सरल नहीं है और आसानी से समझ में नहीं आ सकती। परन्तु इन पुस्तका की भाषा बहुत स्पष्ट है। उनके कामों की सरलता, काम करने का सीधा ढंग और बकान्या की स्पष्टता उत्तनी ही असाधारण और अमूल्य हैं जिनकी कि कुछ मोको पर उनके विचारों और मुक्तिया की मूर्धमता और गूढ़ता।

महात्माजी के जीवन के दो तप हैं—एक राजनैतिक नेता का और दूसरा धार्मिक नेता का। अपने देशवासियों के राजनैतिक नन्ना के तप में उन्होंने अपना जीवन उनमें राष्ट्रीय भावना भरने, उनका नैतिक बल बढ़ाने, उन्हें आत्म-सम्मान की शिक्षा देने और स्वेच्छा से त्याग व वलिदान की उनमें भावना भरने में लगाया। इस सबके साथ उन्होंने अपने तप और अपरिग्रह के आधार पर जनता से अपील की। पूर्वी देशों में, खासकर भारत में, जहाँ धन और भौतिक इच्छाओं के क्रमशः परित्याग द्वारा आत्मदर्शन तक पहुँचने की शिक्षा दी जानी है, तप और अपरिग्रह बहुत महत्वपूर्ण समझे जाने हैं। अपनी पुस्तक में उन्होंने लिखा है कि मेरे राजनैतिक अनुभवों का मेरे लिए कोई विशेष मूल्य नहीं है, परन्तु आध्यात्मिक जगत् में 'सत्य के प्रयोगों ने ही मेरा वास्तविक जीवन बनाया है। १९२७ तक के अपने जीवन की धार्मिक कहानी में, एक दृष्टि से, वास्तव में, उन्होंने अपनी अमकलना को स्वीकार किया है। तीस वर्षों में वह 'आत्म-दर्शन' के लिए 'ईश्वर का साक्षात्कार करने और मोक्ष प्राप्त करने के लिए प्रयत्न व उद्योग कर रहे हैं। इसके लिए उन्होंने अहिंसा, ब्रह्मचर्य, निरामिष भोजन और अपरिग्रह का परीक्षण व प्रयोग किया और 'छुरे की घार के समान तंग व तेज रास्ते पर चले। लेकिन इतने वर्षों के बाद भी उनका कहना है कि मैं "ईश्वर की, पूर्ण सत्य की एक झलकमान" देख पाया। यद्यपि उन्हें यह पूर्ण विदवांस हो गया है कि ईश्वर है और वही चरम सत्य है, परन्तु उन्हें अभी पूर्ण सत्य या ईश्वर के दर्शन नहीं हुए।

महात्मा गांधी एक 'प्यूरिटन' हैं, जिन्हें जैसाकि उन्होंने हमसे कहा है, 'ओरिजिनल सिन' (मूल पाप) के सिद्धान्त की सत्यता में पूर्ण-पूरा विश्वास है। अन्य सब तपस्वियों के समान वह भी मनुष्य-जीवन को त्यागो की एक शृंखला मानते हैं, ईश्वर का यश प्रकट करने के लिए धन्यवादपूर्वक साप्ताहिक सुखी का उपयोग करने की वस्तु नहीं। उनके विचार से स्त्री-पुरुष सम्बन्धी काम-वासना ही सारी बुराइयों की जड़ है। महात्मा गांधी के एतद्विषयक विचार तथा ब्रह्मचर्य पर लिखे गये अध्यायों के विषय में यही कहा जा सकता है कि वे अनमान मनोविज्ञान और चिकित्सा-शास्त्र के सिद्धान्तों के इतने विरोधी हैं कि जिसकी आज के जमाने में कल्पना ही नहीं की जा सकती। मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियों को वह बिल्कुल शर्मनाक समझते हैं और इनका उनकी सम्मति में एक ही उपचार है। वह है उनका दमन और अत्यधिक दमन। उनका कहना है कि "अपरिग्रह की तो कोई सीमा ही नहीं है।" और वह स्वयं इस बात से बहुत दुखी हैं कि वह अमोक्तक दुग्ध-पान, जिसे वह ब्रह्मचर्यव्रत के पालन के लिए बहुत हानिकारक वस्तु समझते हैं, नहीं छोड़ सके। उनके सिद्धान्तानुसार ताजे फल और सूखी मेवा ही "ब्रह्मचारी का आदर्श भोजन" है। परन्तु जिनका अधिक से-अधिक सहन किया जा सके उतना उपवास इन सबसे अच्छा है।

यह कोई आश्चर्य की बात न होती यदि अन्तः की पहुँच से बहुत दूर के इन आदर्शों के कारण महात्माजी भी ईसाई सन्तों के समान असहिष्णु और कठोर बन जाते। लेकिन इस तरह की कोई बात नहीं हुई। समय के सभी कठिन अभ्यासों के बावजूद, जिसे उन्होंने जीवन को अपने ही लिए एक कठिन वस्तु बना लिया है, उनके होते हुए भी चरित्र में वह मृदुता और प्रेम है जिसने उन्हें इतनी भारी शक्ति दी है। सत्य के पवित्र दर्शन करने की पिपासा के होते हुए भी उनका सबसे उत्तम गुण—मानव-समाज के प्रति उनका सच्चा प्रेम है। एक ओर उन्हें निर्दयता और अत्याचार से घृणा है तो दूसरी ओर बीमारी और गंदगी से। तप की भावना से ही उन्होंने कभी किसी भाव-धर में पैर नहीं रक्खा। उनके जीवन के प्रारम्भिक दिनों की कहानी में हम उन्हें तरह-तरह के नये तज्जूरबों और मौज की जिन्दगी से पीछे हटता हुआ पाते हैं।

इंग्लैण्ड में विद्यार्थीजीवन में ही उनकी अपने सनातन धर्म में श्रद्धा और भक्ति बढ़ी और उन्होंने वहीं पहले-पहल सर एडविन आर्नेल्ड के अनुवाद द्वारा गीता का परिचय प्राप्त किया।

१. रानी एलिज़बेथ के समय का एक ब्रिटिश सम्प्रदाय, जो राजनीति में भी जीवन की शुद्धता तथा पामित्ता पर जोर देता था।

२. बाइबिल में आदम की मानव-जाति का आदिपितामह मानकर कहा गया है कि वह पापी था, और उसके पाप का अंश पितृ-परम्परा से मनुष्य-मात्र में आ गया है। इस कारण मनुष्य-प्रकृति स्वभाव से ही पतित है। इसीको 'ओरिजिनल सिन' कहते हैं।

अब भी जब मैं यह पंक्तियाँ लिख रहा हूँ एक बहुत महत्वपूर्ण घटना घटी है। महात्मा गांधी अब एक नये युग में प्रवेश कर रहे जान पड़ते हैं।

हाल ही में महात्मा गांधी ने लिखा है कि राजकाट के अनुभवों के परिणाम-स्वरूप उन्हें नया प्रकाश मिला है। वह नई रोजनी क्या है, इसका स्वरूप अब धनाया गया है और वह बहुत महत्वपूर्ण है। महात्मा गांधी का पिछले वर्षों में हिन्दू-जनता पर बहुत प्रभाव रहा है और भारत के वर्तमान इतिहास के निर्माण में उनका जो भाग है उसमें कोई सन्देह नहीं कर सकता। कुछ वर्षों के व्यवधान से उन्होंने दो सविनय आज़ादग आन्दोलन चलाये, जिन्होंने देश में उथल-पुथल मचा दी और अधिका-रियों के लिए भारी चिन्ता पैदा कर दी। इससे अलावा इन आन्दोलनों ने देश पर अपने प्रभाव की वह धारों छोड़ी जो उनके समाप्त हो जाने के बाद भी आज तक काम कर रही हैं। अब महात्मा गांधी के सिद्धान्त और उनकी शिक्षाओं में—इस बड़ी अवस्था में जबकि उनका कांग्रेस और जनता के मन पर एकच्छत्र अधिकार प्रत्यक्ष-गोचर हुआ है—मौलिक परिवर्तन होना वस्तुतः एक महत्वपूर्ण घटना है। इसका प्रभाव भारत पर ही नहीं, अन्यत्र भी पड़ेगा, क्योंकि महात्मा गांधी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त व्यक्ति हैं और उनके अनुयायी सारे ससार में हैं।

हमारे लोग के साथ मैंने भी अहिंसात्मक असहयोग के सिद्धान्त के आध्यात्मिक शक्ति की आलाचना की है, क्योंकि वह शारीरिक और मानसिक हिंसा के बीच एक आध्यात्मिक भेद मानता है। यह अहिंसात्मक असहयोग निश्चयन मनुष्यों की लड़ाई का ही एक तरीका है। बहिष्कार व हड़ताल से जो इस असहयोग के अंग भी हैं, इसकी तुलना की जा सकती है। इस उपाय की सफलता या असफलता दो बातों पर निर्भर है। एक तो अपने और विरोधी के संगठन का बल, दूसरे युद्ध के मुख्य उद्देश्य की महत्ता। लेकिन यह निश्चित है कि यह उपाय सशस्त्र-विद्रोह या युद्ध से अधिक आध्यात्मिक हथियार नहीं है। ईसाइयों के लिए तो यह बात साफ ही है। उनके अनुसार पाप तो मन के विचार और हृदय की भावनाओं ही में है। कार्य तो उसका व्यञ्जन-मात्र है। अहिंसात्मक आन्दोलन को बल व बढ़ावा देने के लिए स्वयं महात्मा गांधी ने हिंसात्मक विचार-धारा को उत्तेजित किया, अंग्रेजों की निन्दा की और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का प्रचार किया। उनके अनुयायियों ने जाति-धृष्णा की भावना पैदा करने के लिए सबकुछ किया और कहा। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत में “अहिंसात्मक” आन्दोलन के समय पशु और भाषणों में जितनी अधिक अन्याय तथा हिंसात्मक भाषा का प्रयोग किया गया, उतनी सम्भव ससार के किसी और देश में नहीं पाई जायगी। स्वभावतः इसके परिणामस्वरूप हिंसात्मक घटनाएँ भी हुईं। वयं, उन दिनों का यही नाम था। युद्ध ने जो रूप धारण किया, उनकी अंग्रेजों ने कभी गिनायत नहीं की, क्योंकि बाविर तो वह युद्ध का ही एक रूप था। पर उन्होंने भारतीयों का यह दावा नहीं माना

कि इस प्रकार के असहयोग का धरातल ऊँचा और नैतिक था, अथवा कि वह ईसाई-मत या उससे भी किसी ऊँची चीज़ का क्रियात्मकरूप था। सच्चे और खरे राष्ट्रों में लकाशायर के माल का बहिष्कार करने का उद्देश्य भारत में कुछ मनुष्यों को काम, रोज़ी और रोटी देना और इंग्लैण्ड में दूसरों का काम, रोज़ी और रोटी छीनना था। भूखा मारने और जान से मारने में कोई बड़ा नैतिक भेद नहीं है। कोई भी सच्चा अपेक्ष इस बात का दावा नहीं करेगा कि पीड़ित जर्मन नागरिकों तथा सिपाहियों पर युद्ध बन्द कराने का दबाव डालने के लिए की गई जर्मनी की सामुद्रिक नाकेबन्दी और रणक्षेत्र में की गई लड़ाई में कुछ भी नैतिक भेद है। और उन्होंने यदि कुछ भेद माना भी तो वह नाकेबन्दी को ज्यादा बुरा बतायेगे।

जिस समय वह हिंसा भड़क उठी, जो कि स्पष्टतः इस असहयोग आन्दोलन की ही उपज थी तो महात्माजी के पास उसका एक ही इलाज था। वह था उनका निजी उपवास। उनका विश्वास था कि आठ दिन के इस उपवास से घीरा-चोरी-भाड़ के पापों का थोड़ाबहुत प्रायश्चित्त अवश्य हो जायगा। बाद में उन्होंने अपने उपवासों के उद्देश्यों का दायरा बड़ा कर दिया। १९२४ में उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए इक्कीस दिन का उपवास किया। दूसरे असहयोग आन्दोलन में जब उन्हें जेल भेज दिया गया तब उन्होंने उपवास द्वारा ही अपनी रिहाई कराई। साम्प्रदायिक निर्णय में सशोषण कराने के लिए भी उन्होंने उपवास किया। परन्तु मालूम होता है कि उनके पिछले उपवासों में, जिनमें राजकोट का उपवास भी शामिल है, प्रायश्चित्त की भावना नष्ट हो गई थी। उनके बहुत-से साथियों ने ही उनकी दबाव डालने वाला कह कर आलोचना की।

असहयोग और उपवास में निद्रिष्ट अहिंसा के आध्यात्मिक मूल्य या गुण की जो आलोचनाएँ हुईं, उनपर महात्मा गांधी ने पहले कोई ध्यान नहीं दिया। उन्होंने जो कुछ कहा उससे ऐसा मालूम होता था मानो वह अपने आन्तरिक अनुभव से यह जानते हैं कि इनको आध्यात्मिक महत्व देने में वह गलती पर नहीं है। और जहाँ दुनिया में स्पष्टतः उनको असफलता बतलाया वहाँ भी गांधीजी ने उन्हें सफलता ही माना। परिणाम यह हुआ कि भारत में सर्वत्र जिस किसी भी बात पर उपवास या 'अहिंसात्मक' सत्याग्रह की तकल करनेवाले बहुत से लोग पैदा हो गये।

परन्तु अब यह सब बदल गया है। महात्मा गांधी की नई रोशनी मिली है। वह स्वयं अपनी नीयत में सन्देह करने लगे हैं। वह यह सोचने लगे हैं कि उस समय जब कि मैं यह समझता था कि मैं आध्यात्मिक उद्देश्यों के लिये कार्य कर रहा हूँ मैं वास्तव में राजनैतिक और भौतिक उद्देश्यों के लिए कार्य कर रहा होता था। उन्होंने हमें कहा है कि मेरे राजकोट के उपवास में "हिंसा का दोष" था। अब उन्होंने अपने सब अग्र नीचे डाल दिये हैं।

है जिसका हृदय अपने आक्रमणकारियों के प्रति नैतिक घृणा से परिपूर्ण है, और जो नम्रता को भूलकर यह समझने में भी असमर्थ हो गया है कि आक्रमणकारी और वह स्वयं दोनों मनुष्य ही तो हैं। दूसरे मनुष्य वे हैं जो नम्रता के नैतिक जोश की अधिकता के कारण अपने दैनिक जीवन में (दूसरों के द्वारा पहुँचाये गये) आघातों को प्रेम-पूर्वक स्वयं सह लेने का अभ्यास करने के बजाय, जिन लोगों तक उनकी पहुँच है उन्हें आक्रमणकारियों के सामने नम्रता से झुक जाने का उपदेश देने में ही अधिक समय व्यतीत करते हैं। इन दोनों प्रकार के व्यक्तियों में कोई विशेष भेद नहीं है। ये दोनों ही जीवन में असफल हैं, और स्वयं आचरण करने की अपेक्षा 'पर उपदेश कुशल' अधिक हैं। दोनों प्रकार के व्यक्ति जिस समय नैतिक घृणा या नैतिक शान्तिवाद के जोश में बह जाते हैं उस समय मानव-जाति के साथ अपनी एकता की भावना को भूल जाते हैं। यदि जोश में भरे आदमियों की बुराई का सम्मिलित प्रतिरोध करने का सिद्धान्त चल जाये तो बुराई को खुलकर खेलने का अवसर मिल जायगा और नैतिक जोश में भरे इन मनुष्यों की दो पीढ़ी पीछे की सन्तान ऋषि या सन्त नहीं, बल्कि गुलाम होगी। नम्रता के बजाय दासता फटे-फूलेगी। दास जाति की गिनी-चुनी आत्माये ही सत्सार के लिए पथ-प्रदर्शन का काम करती है। जनता को तो चाटुकारी, दुःख और छल-कपट की कला सीखनी पड़ती है।

मुझे तो यह मालूम होता है कि भगवद्गीता में अर्जुन को उपदेश देते समय भगवान् कृष्ण बहुत पहले ही 'शान्तिवाद' की युक्ति का पूर्णतया खण्डन कर चुके हैं। तीन वर्ष पूर्व मैंने महात्माजी से यह युक्ति मनवाने का प्रयत्न किया। पर उनका मन्तव्य, जहाँतक कि मैं उसे समझ पाया हूँ, यह था कि भगवद्गीता में युद्ध की कथा तो रूढ़ि मात्र है, वास्तविक नहीं, अतः यह युक्ति भौतिक युद्ध और वास्तविक जीव-हूतन पर लागू नहीं हो सकती।

पर राजकोट के बाद से तो मैं एक नये ही महात्मा को देख रहा हूँ। हम सबको उस व्यक्ति का आदर करना चाहिए, जिसने अपने सेवा-मय जीवन में निरन्तर कठोर आत्म-समय, कठोरतम तपस्या और आत्म-शुद्धि के लिए सतत प्रयत्न किया। यदि उन्हें एक नवीन-ज्योति प्राप्त हुई है तो वह उस दर्पण के द्वारा प्रतिक्षिप्त होकर और भी चमक उठेगी, जिसे बनाने में इतने वर्ष लगे और इतना परिश्रम करना पड़ा है। आज प्रत्येक देश यह बात मान रहा है कि सत्सार की आशा व्यक्ति की आत्मा के विकास में ही है। प्रत्येक को अपनेसे ही आरम्भ करना होगा। पर हमें एक ऐसी रास्ती की आवश्यकता है, जो वह नीरवता पैदा करदे जिसमें हम अपनी आत्मा की आवाज सुन सकें, अन्यथा हम अपने मार्ग से भटककर दूर जा पड़ेंगे। नैतिक जोश के प्रवाह में बहे हुए आदमी शान्ति के इन क्षणों के सम्बन्ध में बड़ा जोर मचाते हैं और अन्तरात्मा की आवाज सुनने के बजाय दूसरों को अपने मत में परिवर्तित करने

के लिए अधिक चिन्तित रहते हैं। कम-से-कम भारत में तो महात्माजी वह नीरवता उत्पन्न कर सकते हैं, जिसमें सच्ची शांति जन्म ले सके।

: ३४ :

गांधीजी का विश्व के लिए संदेश

कुमारी मॉड डी. पेट्री

[स्टारिंगटन, ससेक्स, लंदन]

मैं एक अंग्रेज महिला हूँ, फिर भी ऐसे व्यक्ति के जीवन पर कुछ कहना चाहती हूँ जिसने खुद मेरे देश के चारित्र्य और जीवन-व्यवहार पर दया नहीं दिखाई है और जिसने बहुत हद तक उसके विरोध में अपना जीवन लगाया है। जब उन्हें भेंट की जाने-वाली इस पुस्तक में मुझे कुछ लिखने के लिए कहा गया तो उसे मैंने बैठक के स्वीकार कर लिया क्योंकि मैं जानती हूँ कि यद्यपि महात्मा गांधी ने अपने देशवासियों की सेवा में ही सारा जीवन लगाया है तो भी उन्होंने उसमें बड़े और बहुत व्यापक उद्देश, अर्थात् मानव-जाति की सेवा के सिद्धांत का भी समर्थन और प्रतिपादन किया है। और इस कारण मैं मानती हूँ कि ऐसा करके उन्होंने आवश्यक रूप से उन तमाम देशों के आदर्शों की पूर्ति के लिए काम किया है, जो इस बात को जानते हैं कि हमें सत्कार के माध्यम निर्माण में क्या खेल खेलना है और खुद अपने देश के काम-काज में क्या हिस्सा लेना है। क्योंकि एक व्यक्ति की तरह एक राष्ट्र के मन में भी दो प्रकार की जीवन प्रेरणाएँ होती हैं। एक तो यह कि अपनी मरपरा और सत्कृति के अनुसार अपना जीवन ग्राम रक्वें और खुद अपने कल्याण की दृष्टि से उसे चलावे, और, दूसरी यह कि तमाम राष्ट्रों और मनुष्य-जाति के इस महान् समाज का एक अंग बनकर अपना जीवन योगदान करे।

महात्माजी प्रत्येक मनुष्य और मानव-समाज के हृदय में उठनेवाली इस दूसरी विशाल प्रेरणा के एक सदेगवाहक और नेता हैं, इसलिए उनके जीवन का अकेला राजनैतिक पहलू मुझे और बातों की अपेक्षा महत्वहीन मालूम होता है। और इसलिए मैं यहाँ उनको उन्हीं शिक्षाओं के बारे में कहने का साहस करूँगी, जो उन्होंने मानवी निष्कारण और विश्वजनीन उदारता के विषय में निरंतर हमें दी है। क्योंकि मैं मानती हूँ कि इन शिक्षाओं पर भावी पीढ़ी को भी अपना ध्यान केंद्रित करना होगा।

उन्होंने खुद भी तो ऐसा ही कहा है —

"आज अगर मैं राजनीति में भाग लेता हुआ दिखाई देता हूँ तो इसका कारण यही है कि आज राजनीति हमसे उसी तरह चारों ओर घिरती हुई है जैसे

कि सांप के उसको केचुल, जिससे कि हज़ारों प्रयत्न करने पर भी हम नहीं छूट सकते हैं। मैं उस सांप के साथ कुछती लड़ना चाहता हूँ... मैं राजनीति में घमं का पुट देने का प्रयत्न कर रहा हूँ।”

अब एक ऐसे व्यक्ति के जीवन से जिसकी मुख्य दिशा मारे मानव-समाज का नैतिक पुनरुज्जीवन अर्थात् स्वार्थभाव, प्रतिस्पर्धा और निर्दयता का परस्पर सहिष्णुता और भाई-चारे के सहयोग में स्थापन करना रही है, हम क्या अपेक्षा रख सकते हैं ? समझदार आदमी की अपेक्षा तो ऐसे मामलों में निराशा, जितलत और असफलता की ही हो सकती है, और मैं यह कहने की घुम्टता करती हूँ कि गांधीजी अपनी बहुत-सी सफलताओं के बावजूद वीरतापूर्ण असफलता के एक उदाहरण हैं। मुधारकों को तो हमेशा इस बात के लिए तैयार रहना पड़ता है कि वे एक किनारे खड़े देखने-देखते खत्म होजायें, क्योंकि हज़रत मूसा की तरह वे अपने आदर्श की झलक ही देख सकते हैं, उसका पा नहीं सकते।

क्योंकि खुद गांधीजी ने ही कहा है—“एक मुधारक का काम तो यह है कि जो हा तकनेवाला नहीं दीखता है उसे खुद अपने आचरण के द्वारा प्रत्यक्ष करके दिखा दे।” लेकिन जब वह अपने खुद को “अल्पना और मर्यादाओं” का खयाल करते हैं, तो “बकाबीष हो जाते हैं।”

क्योंकि जब एक बार महान् आध्यात्मिक उद्देश के अनुसार प्रत्यक्ष कार्य और उद्योग किया जाता है तब शरीर और आत्मा का शाश्वत युद्ध शुरू होजाना है, आध्यात्मिक साधना की शक्ति में मलिनता आजाती है, हमारा उद्देश मलान होकर छिपने लगता है और उसका प्रवर्तक मानवी राग-द्वेषों के अखाड़े में आखिचना है; उसकी अच्छी-से-अच्छी योजनाओं की पूरा करने का काम नाशान लोगों के हाथ में चला जाता है, उसके अन्तर्गत शूद्ध प्रयत्न मानवीय रागद्वेषों और स्वार्थ साधना से कलुषित होने लगने हैं।

हां, ऐसे सप्ताम में तो हार-ही-हार है। पर यही हार है जो, अन्त में, कारीगरो द्वारा निरम्बृत पत्थरो की तरह नये जेरूसलेम अर्थात् नवीन घमं की दीवारों की आधारशिला जैसी साबित होगी है। हज़रत मूसा को अपने आदर्शों की प्राप्ति तो नहीं हुई, पर उसके दर्शन अवश्य हुए, पर उसका आदर्श था सच्चा, इसलिए वहां तक उनके पहुँच पाने या न पहुँच पाने से इसराईल के भविष्य पर कोई असर नहीं पड़ा। त्रिनके किनारे उन्होंने अपना शरीर छोड़ा, उस सुरम्य स्थान में बैठकर दूसरे कद्यों ने शान्ति-लान किया।

और इसलिए, मुझे ऐसा प्रतीत होना है कि, जीवन के प्रधान प्रयत्नों की गिनती करते समय हम उनकी असफलताओं की गिनती करते हैं, क्योंकि असफलता अनिवार्य

१. रोम्पा रोला कृत ‘महात्मा गांधी’ से उद्धृत।

है, मगर असफलता ही फल भी लाती है ।

यहाँ में गाँधीजी की कुछ ऐसी लड़ाइयाँ का जिक्र करती हूँ, जिनमें उनकी हार तो हुई है, लेकिन जिनकी शिक्षाय सदा अमर रहेंगी ।

सबसे पहले मशीन के खिलाफ उनकी लड़ाई को ही लीजिए, जिसका मुकाबिला तलवार या बन्दूक के सहारे नहीं बल्कि चर्खे से करना उन्होंने चाहा । कितना दया-जनक उद्योग था यह—जैसा कि उनके कितने ही अनुयाइयाँ ने कहा भी । यह एक ऐसा प्रयत्न था जिसकी असफलता निश्चित थी, लेकिन फिर भी उसी चर्खे ने सत्य का—आत्म-शोधक सत्य का—मचुर गुजार किया है, जिसे हम बहुतों ने कभीने और बहुत दुःखित हृदयों से अनुभव कर लिया है ।

मशीन का परिणाम मनुष्य जीवन का मानवता-हीन बनाने में हुआ है । उसका हमारे जीवन पर इतना अधिकार हो चुका है कि हिन्दुस्तान के तमाम चर्खे उस पर विषय प्राप्त नहीं कर सकने । लेकिन फिर भी हिन्दुस्तान का चर्खा हमें अपनी दासता को महसूस करा सकता है और उसकी सादे और अधिक मानवीय जीवन की पुकार जल का मनुष्य से खुद अपनी प्रधानता का जोर जमाने में कामयाब होगी, इस भीम-काय राक्षस (मशीन) की काया को गड़ाकर उसे उचित सीमा में ला रखेगी । उसे मानवीय आत्मा का मालिक नहीं बल्कि सेवक बनावेगी और जब वह मनुष्य के शरीर और आत्मा के वास्तविक कल्याण के विरुद्ध जाने लगे तब वह उसकी लगाम खँककर रखेगी और उससे जो क्षणिक भौतिक लाभ होने हैं उनमें भी मुँह मोड़ लेने के लिए रहेगी ।

अब दूसरी लड़ाई लीजिए, जो उन्होंने मनुष्य और पशु के सम्बन्ध में की जाने-वाली निर्दयता का के विरुद्ध ठानी थी और इसमें उन्हें दूसरे देश के लोगों की तरह असल देश के लोगों से भी लड़ाई और विवाद में पड़ना पड़ा । उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया है कि "अपनी श्रेणी से बाहर के जीवा का भी ध्यान रखो और प्राणिमात्र के साथ अपनी एकात्मता का अनुभव करो ।"

और जहाँ कि उन्होंने प्राणिमात्र का पवित्र मानने के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है, तहाँ उन मूक प्राणियों के बच्चा को देखकर, जो वास्तव में बल्ल नहीं किये जा रहे थे बल्कि जिनकी अच्छी तरह से सम्हाल नहीं की जा रही थी उनके हृदय में आँसू बहाये हैं ।

उनकी तीसरी और सबसे बड़ी लड़ाई हुई है एक के दूसरे पर दबदबे और हिंसा की गिरिष्टि के खिलाफ । लेकिन इसमें वह मनुष्य के पारस्विक बल और राग-द्वेष तृपी रागम के सामने दाऊद से भी अधिक निरश्र होकर बागे बंद गये हैं । उनके पास एक ही हथियार है—अहिंसा ।

लेकिन वह अपने शत्रुओं द्वारा ही नहीं बल्कि, इसमें अधिक दुःख की बात क्या

होगी कि, अपने मित्रों द्वारा भी बारबार असफल बनाये गये हैं। अब उनके सामने जबर्दस्त समस्या यही है कि इस हिंसाग्रस्त जगत् में एक अहिंसाधर्मी कैसे जीवित रहे और इस हिंसा-प्रधान जगत् में खुद अहिंसा भी कैसे अपनी हस्ती रख सके ?

जी लोग यह अनुभव करना चाहें कि वे कौनसी समस्याएँ हैं जी महात्माजी को, निरंतर व्याकुल किये हुए हैं, तो उन्हें उनका 'यंग इंडिया' (हरिजन) पढ़ना चाहिए।

और वे देखेंगे कि यही वह विषय है जिसमें महात्माजी की असफलता की विजय अच्छी तरह दिखाई देती है, क्योंकि वह फिर-फिरकर कहते हैं कि "अहिंसा-सिद्धान्त का पूरा-पूरा अमल वास्तव में अबतक किया ही नहीं गया है।"

और इसलिए वह कहते हैं कि "इसकी आज्ञाओं। क्योंकि जबतक हम शरीर-बल के द्वारा अपनी रक्षा करना बंद न करेंगे तबतक हम आत्मबल का सच्चा अन्दाज कभी नहीं लगा सकेंगे।

"मे तो जालिम की तलवार की धार की ही बिल्कुल भोटा कर देना चाहता हूँ। उससे अधिक तेज धारवाले हथियार से नहीं, बल्कि इस आशा में उसे निराश करके कि मैं शरीर-बल से उसका मुकाबला करूँगा। इसके बदले मैं जिस आत्मबल से उसका प्रतिकार करूँगा उसे देखकर वह चकित रह जायगा। पहले तो वह सकाचोष होजायगा, पर अन्त में उसे उसका लोहा मानना ही पड़ेगा, जिसके फलस्वरूप उसका तेजीनाश नहीं होगा बल्कि वह ऊँचा उठेगा। इसपर यह कहा जा सकता है कि यह तो आदर्श अवस्था हुई। तो मैं कहूँगा, हा, यह आदर्श अवस्था ही है।"

इसमें हमें उनकी श्रद्धा का और अपनी असफलता की प्रत्यक्ष मान्यता का एवं अपनी अहिंसा-नीति के सम्बन्ध में उनके दृढ़ विश्वास का और उसके साथ ही इस बात के निश्चय का भी कि उसकी पूर्ति का समय अभी नहीं आया है—वह आ भले ही रहा हो—अच्छी तरह पता चलता है।

तब क्या हम इस बात का अफसोस करें, जैसा कि एक महान् कवि ने किया है, कि गांधीजी ने अपनी शिक्षा और अपने आदर्शों को मनुष्य-जीवन के राग-द्वेषादि के अज़ाडे में इस तरह उतारा है जिससे उनकी आज तो असफलता—भले ही वह आंशिक हो—प्रकट होती है ? इसका जवाब 'हाँ' भी है और 'नहीं' भी।

'हाँ', तो इसलिए कि मनुष्य को यह अच्छा नहीं लगता कि वह श्रेष्ठ मानवीय आदर्शों के दिवालिया होजाने पर विश्वास करे।

'हाँ', इसलिए भी कि किसीको यह देखना बुरा लगता है कि एक पैगम्बर की गिनती भीड़-भ्रमंड के लोगों में हो—वह उम भीड़ से ऊपर उठा हुआ न रहता हो, जैसे कि कुछ उदाहरण मिलते भी हैं।

'नहीं' इसलिए, कि इस सपने की पशुता ने ही मनुष्यों को जोखें खोलकर १ 'यंग इंडिया' अक्टूबर १९२५।

उन आदमियों को देखने के लिए मजबूर किया है, जो कुछ थोड़ेसे विचारशील लोगों के मस्तिष्क में ही शांति के साथ सोये पड़े होने। यहूदियों को हजरत ईसा पर प्रहार करने के पहले उनके चेहरे की ओर देखना पड़ा था और निश्चय ही मनुष्यों को उनकी नग्नता और उदारता के संदेश को सुनना होगा, पेशतर इसके कि वे उसे मानने में इन्कार करें।

हम जहमों के चिन्ह अपने शरीर पर लिये बिना लड़ाई कैसे लड़ सकते हैं, और न ही हम, जब हमारी बारी आये, बार किये बिना लड़ सकते हैं—भले ही हमपर पड़नेवाले प्रहार नगण्य ही क्यों न हो। यही कारण है जो महात्माजी के राजनैतिक सप्राप्त में हमें अच्छी और बुरी दोनों बातें देखने को मिलती हैं।

लेकिन इन गुजरती हुई प्रतिद्वन्द्विताओं और लड़ाई-अगडों के शोरगुल के अन्दर से ही एक मानवीय संदेश निकला है, जो कि सारी मनुष्य जाति के लिए है। वह पूर्व और पश्चिम दोनों के लिए है। वह है तो असल में एक हिन्दू-धर्म का संदेश, परन्तु दिया गया है बहुतायत में ईसाई धर्म की भाषा में।

और यही कारण है कि महात्मा गांधी की भारतीय और कोरी राष्ट्रीय नीति पर ध्यान न देकर मैं बड़ी नग्नता के साथ उनके व्यक्तित्व और जीवन-लक्ष्य को खुद अपने देश तथा दुनिया के तमाम देशों के नाम पर अपनाने का साहस कर रही हूँ।

: ३५ :

गांधीजी का उपदेश

हेनरी एस. एल. पोलक

[सदन]

डॉ० मॉड रायडन के मन्त्री-बाल में जब कुछ साल पहले गिल्ड हाउस में “आधुनिक विचार-धारा के निर्माता” विषय पर कुछ व्याख्यान हुए थे, तब उनमें गांधीजी का भी नाम शामिल था। मगर यह कोई दैवयोग की बात नहीं थी, क्योंकि आज के महापुरुषों की बीमन जाँचने का और सत्कार के विचार और आचार में किसने क्या देन दी है इसकी चर्चा करने का जब समय आवेगा तब, मैं समझता हूँ, हिन्दुस्तान के इस सबसे बड़े नेता से बढ़कर शायद ही किसी का नाम अधिक प्रमुखता से और विधापक रूप में लिया जा सके।

सत्कार में दूसरे नेता भी ऐसे हैं जिनके नाम और भी ज्यादा मनुष्यों की जवान पर आते हैं। वे नेता तो हैं मगर जीवन के नहीं, मौत के। वे नेता अवश्य हैं, मगर मार्ग की ओर लेजानेवाले, न कि निखर की ओर। वे नेता हैं ड्रेप और हिमा के, न

कि प्रेम और अहिंसा के। वे ऐसे नेता हैं जो कि पीछे बर्बरता की ओर ले जाते हैं, न कि आगे अधिक उत्तम सभ्यता की ओर। वे नेता हैं जाति की श्रेष्ठता के सिद्धान्त के, जो कि मिथ्या देवत्व की कोटि तक पहुँचा दिया गया है, न कि एक ईश्वर की गोद में खेलनेवाले बालकों के भातु-भाव के।

परन्तु क्या वह पुरुष जो भूतकालीन इतिहास के घुन्घले प्रकाश को देखता है, उसकी शिक्षाओं को हृदयगम करता है और उसके परिणामों को ध्यान से देखता है, यह सदेह कर सकता है कि अन्त में जाकर गांधीजी की अहिंसा की शिक्षा ही विजय के सिंहासन पर बैठने वाली है, न कि इन नये कैसरो के हिंसा के अवलम्बन ? गांधीजी की जो विजय हुई है वे आत्मिक जगत् में हुई है, जिन्होंने मानव-जाति के पुनरुज्जीवन के बीज बोये हैं, जब कि इन नेताओं की सफलताये पार्थिव जगत् की है और उनके पथ पर खून और आँसुओं की बूंदें बिखरी हुई हैं। गांधीजी अपने विरोधी को छुद कष्ट-सहन करके जीतेंगे, जब कि ये नेता जो कोई भी उनके रास्ते में खड़ा हो उसके निष्ठुर विनाश के द्वारा मानव-जाति के कष्टों और दुखों में उलटे वृद्धि करते हैं।

बई साल पहले गांधीजी ने मुझसे कहा था कि लोग कहते हैं कि "मैं सत हूँ मगर राजनीति में फँस गया हूँ, पर सच बात यह है कि मैं एक राजनीतिज्ञ हूँ और सन्त धनने का भीरुरूप प्रयत्न कर रहा हूँ।" यह मानवीय अपूर्णता का एक नमूनापूर्ण, घरेलू और आधुनिक ढंग का स्वीकार है, जो कि आत्मानुशासन के द्वारा निश्चित रूप से पूर्णता के शिखर की ओर उत्तरोत्तर बढ़ने का प्रयत्न कर रहा है। पिछले पचास वर्षों की सत्य-शोध की अपनी यात्रा में जो परिणाम उनके कार्यों के निबले हैं और जो निर्णय की भूले उनसे हुई है, जिन्हें कि बार-बार उन्होंने कबूल किया है, उनका स्पष्टीकरण उनके इस कथन से हो जाता है। उन्होंने अपने इस निरन्तर आग्रह में कि "सत्यानास्ति परो धर्म" कभी कसर नहीं की है और इस बात को जानने और मानने के लिए यह जरूरी नहीं है कि कोई उनके परिस्थिति-सम्बन्धी या उसके मुकाबला करने के सर्वोत्तम साधन सम्बन्धी विचारों से सहमत ही हो। और हम एक मनुष्य से और क्या माग सकते हैं, सिवा इसने कि वह अपने आदर्श की ओर बराबर ध्यान लगाये रहे और अपने विश्वास पर अटल रहे। अगर वह कहीं किसी समय लडखड़ाता है या अटकने लगता है, तो उसे ऐसी कठिन यात्रा के मनुष्यमात्र को होनेवाले अनुभवों के सिवा और क्या कह सकते हैं ? ऐसे समय गांधीजी हमसे यह विश्वास करने के लिए कहते हैं कि ये तो हमारे लिए चेतावनियाँ हैं, जिनसे कि हम अपनी गलतियों को सुधार सके और अपने निश्चित ध्येय की ओर ज्यादा सही तरीके से आगे बढ़ सके।

अपनी इस पवित्र यात्रा के दरमियान उन्होंने बहुत से पाठ सीखे हैं और बहुतैरे ध्यावहारिक अनुभव प्राप्त किये हैं, जो कि इस पथ के तमाम पथिकों की संपत्ति हैं। केवल मशौचचार की उनके नजदीक कोई कीमत नहीं है। उनकी राय में उनमें मानवीय

जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति और मामूली व्यवहार में उपयोगी बनने का भाव भी अवश्य होता चाहिए। फिर उनका कहना है कि वे ऐसे हो जो सब जगह लागू हो सके और यदि वे ऐसे नहीं हैं तो कहना होगा कि वे मूर्खताजन्य हैं। इसलिए अहिंसा का जो अर्थ जीवन के व्यवहार-नियम के तौर पर हमारे सामने उन्होंने रखा है उमर हमें आश्चर्य नहीं होता चाहिए। वह कहते हैं—“जो दूसरों के प्रति अपने व्यवहार में अहिंसा (जिसको दूसरी जगह गार्थीजो ने सत्य का ‘परिपक्व फल’ कहा है) का आचरण नहीं करते और फिर भी बड़ी बाना में उसका उपयोग करने को आशा रखते हैं, वे बड़ी मूर्खता पर हैं। दान की तरह अहिंसा की गृहआत भी घर से होनी चाहिए। और जिस तरह एक व्यक्ति को अहिंसा की तालीम लेने को जरूरत है उसमें भी अधिक एक राष्ट्र के लिए उसकी तालीम जरूरी है। यह नहीं होसकता कि हम अपने घर-आगन में तो अहिंसा का व्यवहार करें और बाहर हिंसा का। नहीं तो कहना होगा कि हम अपने घर-आगन में भी दरअसल अहिंसक नहीं हैं। हमारी अहिंसा अक्षर दिमाज होती है। आपकी अहिंसा की कमीटी तभी होती है जब आपकी किसीके प्रतिहार का सामना करना पड़े। भद्र पुरुषों में आप जो सम्मति और शिष्टता का व्यवहार करते हैं वह अहिंसा नहीं भी रही जासकती है। अहिंसा तो कहते हैं परस्पर शिष्टता को। अतएव जब आपका यह विश्वास होजाय कि अहिंसा हमारे जीवन का धर्म है, तो आपके लिए यह जरूरी है कि आप उनके प्रति भी अहिंसक रहें जो कि आपके साथ हिंसा का व्यवहार करते हैं। और यह नियम जैन व्यक्तिओं पर घटता है वैन ही एक-दूसरे राष्ट्रों पर भी लागू करना चाहिए। हाँ, यह ठीक है कि दोनों के लिए तालीम की जरूरत है और मुख्यतः तो पीछे में सभी जगह होनी है। पर अगर हमें मनुष्य विश्वास होगया है तो और जोड़ें अपनेआप ठीक होजावेगी।” इसका मार उनके एक पुराने कथन में समा आता है—“तुम अपना आदर्श और नियम ठीक रखो, किसी दिन अवश्य मफल होगे।”

इस विषय की शिक्षा—जो कि भारत और किंग्स्टोन में प्राचीन समय से रही है—उन तानाशाहों की महत्त्व पागलपन मालूम होयी जिनकी सत्ता-ओलुप राजनीति हमारे समार की उच्च और उदार बानों को नष्ट करती हुई समार के लिए महान् मुकट निड होरही है। और हिंसा तथा निर्दयता के कोप-माजिन वने मयथल लोगों का भी, तथा उन लोगों का भी जो आधुनिक विचारों की हृदयहोना और अयलिप्ता के हमरे को आगका में बाँध रहे हैं, महत्त्व पागलपन ही दिखाई देगा। मगर फिर भी क्या गार्थीजो की ओर उनके आध्यात्मिक पूर्वजों की, जिनोंने यह सिखाया कि द्वेष को प्रेम में ओतों, दूसरों की अपने ही समान समझो और प्रेम करो, और यह कि हम एक-दूसरे के भाई-भाई हैं, शिक्षा और उपदेश सही नहीं है? और क्या यह भी सही नहीं है कि इन आवागमन के परम्पराग्रथ के स्वीकार, और बढ़ने हुए परम्पर विचार-

मिश्रण की इस दुनिया में मनुष्य के और उच्च-उदात्त वस्तुओं के जीवित रहने का एक ही अवसर है, और वह यह कि इस नये पैगंबर ने आधुनिक भाषा में जो यह प्राचीन शिक्षा दी है उसपर अमल किया जाय ?

जब कि लोग औरों को 'नेता' कहते हैं और गांधीजी को 'महात्मा' (हालांकि गांधीजी को इसपर दुःख ही होता है) तो यह निरर्थक नहीं है। सचमुच ही वह महान् आत्मा थी, जिसने तीस साल पहले अपनी अन्तर्दृष्टि से लिखा था "आत्म-बल की दुनिया में कोई जोड़ नहीं। शस्त्रबल से वह कहाँ थोड़ा है। तब उसे महज कमजोर का शस्त्र कैसे कह सकते हैं ? सत्याग्रही के लिए जिस साहस की जरूरत होती है उसे वे लोग नहीं जानते जो शारीरिक बल से काम लेते हैं।" सच्चा योद्धा कौन है ? वह जो कि मृत्यु को हमेशा अपना आत्मीय मित्र समझता है सिर्फ मन पर अपना अधिकार होने की जरूरत है, और जब वहाँ तक पहुँच गये तो मनुष्य आजाद हो जाता है "फिर उसका एक दृष्टिपात ही शत्रु को म्लान कर देता है।" तब कोई आश्चर्य नहीं, यदि उन्होंने निश्चय और निश्चयात्मक रूप से कहा—“मेरा यह विश्वास अटल बना हुआ है कि अगर एक भी सत्याग्रही आखिरतक बंटा रहे तो विजय अवश्य ही निश्चित है।”

आजकल तलवार खडखडातेवाले लोग ध्वनि-बाहको (माइक्रोफोन) के द्वारा ससार को आदेश देते हैं और कम गोलें गिराकर तथा जहरीली गैस छोड़कर अपने आदेश को बिराम देते हैं। वे दूसरे राष्ट्रो पर हुई अपनी विजय की खेती बघारते फिरते हैं और आजादी के खडहरो में अकड़कर चलते हैं। और लोग एक ओर उनके अभिमान के साधन बनते हैं तो दूसरी ओर उनकी हिंसा के शिकार। कहाँ यह और कहाँ भारतीय गृह की धीमी हित-वाणी, उनका आत्मिक शक्तियों पर दिया हुआ और शांति, प्रेम तथा बन्धुता के प्राचीन सदेश का पुनः स्मरण। सदा की तरह अब भी नवयुग का यह सदेश हमको पूर्व से ही मिला है। क्या हममें उसे सुनने की अकल और उसे सीखने की समझदारी है ? गांधीजी यह बोल नहीं करते कि उनका सदेश मौलिक है। अपनी आत्म-कथा में वह कहते हैं—“जिस ऋषि ने सत्य का साक्षात्कार किया है उसने अपने चारों ओर व्याप्त हिंसा में से अहिंसा दूध निकाली है और गाया है—हिंसा असत है और अहिंसा सत है।”

नवयुवक लोगो में एक पीढ़ी या उससे कुछ पहले जैसी हवा वही थी वैसी अब भी वह चली है। वे धर्म का मजाक उड़ाते हैं और यह कहकर उससे इन्कार करते हैं कि यह, अधिक क्या कहे, मानवी अज्ञान और मूर्खता का अधविश्वास-युक्त अवशिष्ट मात्र है। निःसन्देह हिन्दुस्तान में भी एक ऐसा ही मिथ्या दर्शन फैल रहा है और बहुतसे नवयुवक और नवयुवकी भूमी के साथ गेहूँ को भी फेंक देने की कोशिश कर रहे हैं।

क्या ही अच्छा हो कि वे अपने महान् ऋषि-मुनियों के वचनों पर ध्यान दें और उस प्राचीन विद्या के वास्तविक अर्थ को नये सिरे से ढूँढ़ने का प्रयत्न करें ? परन्तु यदि वे अपने प्राचीन पूर्वजों के विद्या और ज्ञान से लाभ नहीं उठाना चाहते तो, कम-से-कम उन्हें, अपने ही समय के, महान् राष्ट्रीय नेता के ज्ञान और शिक्षा पर तो अवश्य ध्यान देना चाहिए, जबकि वह अधिकारयुक्त वाणी में कहते हैं —

“धर्म हम लोग के लिए कोई बेगाना चीज नहीं है। हमी में से उसका विकास होना है। हमेशा वह हमारे भीतर विद्यमान है। कुछ के अन्दर जागृत रहता है, कुछ के अंदर बिलकुल मुप्त मगर है हरेक में जरूर। और यह धार्मिक भाव जो कि हमारे अंदर है, उसे चाहे हम बाहरी साधनों की सहायता में चाहे आन्तरिक विकास किया द्वारा जागृत करें, एक ही बात है। पर हां, उसे जागृत किए बिना गति नहीं है—यदि हम किसी काम को सही तरीके से करना चाहते हैं या किसी स्थायी चीज को पाना चाहते हैं।” इसी तरह वह और कहते हैं—“अहिंसा सत्य की रूढ़ि है और अहिंसा ही परमपथ है।” आगे वह और भी कहते हैं—हम चाहे इसे मान सकें या न मान सकें—‘यदि तुम अपने प्रेम का, अहिंसा का, परिचय अपने शत्रु कहे जानेवाले को इस तरह से देने हो, जिसकी अमिट छाप उसपर बैठ जाय, तो वह अपने प्रेम का परिचय दिये बिना नहीं रहता।’

टॉल्मटोप के बाद ही इतनी जल्दी जिस जमाने ने एक दूसरा महान् मानव-ज्ञान का प्रेमी पैदा किया, उसमें रहना कितना अच्छा है ! अहा ! ये साधु-मन, ये पंथवर और भक्तगण—फिर वे छोटे हो या बड़े—किस प्रकार बानावरण का गुड़ करते हैं और आम्रपाम पीने हुए अक्कार में प्रकाश बमकाने हैं। इन आध्यात्मिक ‘परिष्कर्त्ताओं’ के बिना हमारा क्या हाल हो, जो कि युग-युग में और पुनः-पुनः हमारे अंग करण की गूँड़ में महायज्ञ बनने के लिए जन्म लेते हैं, जिसने कि हम अपनी देवी प्रकृति को नये सिरे में पहचान ले और हमें अपनी साधना शक्ति का फिर एक बार बढ़ाने का प्रोत्साहन मिले एवं अपने लक्ष्य के गेप निखर तक बढ़ने का दृढ़ निश्चय और साहस हममें पैदा हो ?

ओलिव शीनर ने (Olive Schreiner) अपने एक गद्यकाव्य में ‘संयक्ष्पी पक्षी’ की खोज में प्रयत्नशील साधक का एक चित्र खींचा है। उसे उस पक्षीकी झलक एक बार दिखाई दी। उसकी तलाश में वह पर्वत शिखर पर पहुँचता है, जहाँ जाकर उसका शरीर छूट जाता है। उसके हाथ में उस पक्षी का गिरा हुआ एक पक्ष है, जिसे वह छाती पर बिखाये हुए मोम है। पक्षीजी अपने इकहत्तरवें साल में जा मदेस हमारे लिए छोड़ रहे है वह हमारे लिए ऐसा ही एक पक्ष निद्र हो, और हम सबमूच बड़नागी होंगे अगर अपनी मृत्यु के समय उसे अपनी छाती में बिखाये और अनाये रहेंगे।

: ३६ :

आत्मा की विजय

लिवलिन पॉक्स

[गवेवेडेल, डेवोसप्लाज, स्वीडरलैण्ड]

एक पक्का बुद्धिवादी और भौतिक जीवन का प्रेमी होते हुए मेरे लिए महात्मा गांधी जैसे असाधारण व्यक्ति के द्वारा सुझाये गये विचारों को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करना सरल काम नहीं है। यह तो स्पष्ट है कि उनका हमारे बीच विद्यमान होना एक ऐसी कड़ी चुनौती है जिसकी अवहेलना नहीं हो सकती। आज की इस व्यवहार दुनिया में हम उस पुरुष के प्रति आकर्षित हुए बिना नहीं रह सकते। किसी भी दैनिक पत्र में ज्यों ही हमारी दृष्टि उनके चित्र पर पड़ती है, जिसमें वह मामूली व्यापारिक पृष्ठ पर से निर्मल ज्ञानगरिमा की निगाहों से आच्छादित हुए लगते हैं, त्योही हमारी स्वभाव-मूलक आत्मिक जड़ता में हलचल होने लगती है। कहते हैं, चीन के कुछ हिस्सों में सफेद चिमगादड़ होते हैं और इस दुर्लभ पुरुष के चित्र इस असाधारण जन्तु से शायद कुछ कम अजीब मालूम पड़ते हों, क्योंकि आँखें उनकी ऐसी हैं जो जीवन के गुप्त-से-गुप्त रहस्यों तक प्रविष्ट करती हुई जान पड़ती हैं, और कान उनके ऐसे हैं जो अपनी उदारतापूर्ण आदत से यह साबित करना चाहते हैं कि उनका स्वभाव ऐसा मधुर है जैसा पूर्व या पश्चिम में कहीं भी शायद ही पाया जावे। हमारे जमाने में उनसे ज्यादा सफलता के साथ किसी भी मनुष्य ने उस प्रेम की शक्ति का प्रभाव नहीं दिखाया है। प्रेम वह अगूर की बेलों या लहलहाते खेतों से छाई प्रकृति के सौन्दर्य का नहीं बल्कि आदर्श एवं रहस्य का प्रेम है। ईसाई सन्तों और हिन्दू ऋषियों की निधि वही प्रेम था। वह हमारी स्वभावगत पशुता के एकदम विरुद्ध चलता है। लोकोत्तर के विषय में जिनके चित्त शक्ति हैं उन्हें गांधीजी के विचार निरर्थक जान पड़ेंगे। उन्हें लगेगा कि मानो वे हवाई हैं। प्रतीत होगा कि उनकी जड़ में अक्सर वही घने-घनाये नीति-सून हैं जो उन पड़ितों के मुह में रहा करते हैं जिन्हें समाज में अधिक सुख-सुविधा के निमित्त हर बात के लिए दैवी समर्पण की जरूरत रहती है—उससे गहरी उनकी जड़ें नहीं हैं। यह निरर्थक न था कि साँप-छतूंदर से डरनेवाला यह व्यक्ति युवावस्था में इंग्लैण्ड, दक्षिण अफ्रीका और हिन्दुस्तान की उपासनाओं में और भजनों में शरीक होता था। लेकिन गांधीजी का भक्तिष्क जब कि अलौकिक प्रभावों से सहज प्रभावित हो-जाता दीखता है, तब हृदय की बात बँसी नहीं है। वह तो सदा स्वस्थ, उत्साहयुक्त,

दयालु और उदात्त ही रहता या और है।

गांधीजी की 'आत्मकथा' पढ़ने से सचमुच ही आत्मबल की शारीरिक बल पर विजय होने का सच्चा दिग्दर्शन हो जाता है। एक जगह पर वह कहते हैं कि उनका हमेशा प्रयत्न रहा है कि परमसूक्ष्म और शुद्ध आत्मा के निकट-स्पर्श में आ सकें। हमें कल्पना भी हो सकती है कि किन्ने बारीक धर्म-संकेत के बीच उनका आत्म-मग्न चलता रहता है? मुई की नोक से भी सूक्ष्म उन बारीकियों पर वह अपने-को कैसे साधते हैं, यही परमआश्चर्य का विषय है। उनके पवित्र मस्तिष्क में जो पहेलियाँ निरन्तर प्रवेश करती रहती हैं वे एक स्वतन्त्र मनबाल के लिए कितनी अजीब लगती हैं। गांधीजी गाय का दूध न पीने का व्रत लेते हैं, और जब वह थोड़ा-सा बकरी का दूध मुँह को लगाने हैं तो फौरन उनके मन में धर्मधर्म का मग्न सुरु हो जाता है कि वह यह दूध भी मेरे व्रत में शामिल तो नहीं है? वह एक बछड़े को असाध्य रोग में पीड़ित देखते हैं, क्या उनका उसे भरवा डालने की दया दिखलानी उचित है? और 'हमारे समस्तशर किन्तु शीतान भाई' बन्दर बिना हिंसा का आश्रय लिये किस प्रकार किसानों की फसलों से दूर हटाये जा सकते हैं? यहाँ इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि इन सुन्दर पहेलियों का हिन्दू धर्म की गी पूजा से घना सम्बन्ध है। इस सिद्धान्त का गांधीजी के लिए बड़ा व्यापक महत्व है और वास्तव में उस धार्मिक धृष्टि से किसी अर्थ में बन नहीं है कि मनुष्य जानि का यह नैतिक कर्त्तव्य है कि धरती पर रहनेवाले दूसरे प्राणियों को, चाहे वे कितन ही तुच्छ और नगण्य क्यों न हों, अपनी शरण में ल, उनकी हमेशा रक्षा करें और उनकी कभी हत्या न करें। गांधीजी का नीति-अनीति सम्बन्धी विवेक कुछ हीनता है, परन्तु यह उनका ही अक्ल भी होता है। और पश्चिम की धीर नीति-हीनता को भत्सना में कभी उनके इतना जोर नहीं आता है जब कि वह जन्तुओं को चोरा पाडी का जिक्र करते हैं तब उनकी बाणी में आजाता है। यह एक बाली घिनोनी प्रथा है जिसको, वे सरकारों स्वीकार लिये हुए हैं, जो एक तरफ भावुक और दूसरी तरफ हृदय-हीन हैं, जो नैतिकता में वैसी ही यथी हैं जैसी कि उदारता में हीन।

फिर भी इस "अवतार-स्वरूप व्यक्ति" के प्रति यूरोपियनों ने जैसा व्यवहार किया है वह उनके लिए भारी-भर-भारी धर्म की बात रहेगी। कभी अपमानित हुए, पकड़े-मुक्के दिये गये, कभी धमकिया दी गई, कभी पीटे गये और एकबार तो डबंग में गोरी के एक विरोध ने पत्थर मारते-मारते दम-सा निवाल दिया, परन्तु वह कभी नहीं गीते, बल्कि अपने अटल और दृढ़ बदनो से अपनी स्वर्गीय कल्पनाओं की ओर बढ़ते चले जा रहे हैं। इस नन्ही-भी देह में, त्रिमूर्ति टूटनेवाली दृष्टि है, जिनकी गतिशास्त्रिणी आत्मा निवास करती है। चाहे दुनिया उनका जयघोष करे चाहे उनके प्रति घृणा करे, उनपर कुछ भी अंगर नहीं होता। उनका व्यक्तिगत गौरव इतना

सर्वोच्च है कि वह प्राणधानक शारीरिक अपमानों को भी बिना अशान्त और शुब्ध हुए सह सकते हैं। कभी यहाँ तो कभी वहाँ सताये जाने में, कभी खचाखच भरी रेल-गाड़ी की खिड़की से खींचे जाने में तो कभी रीढ़ झुकाये हुए मजदूरों का पाखाना साफ करने में और कभी 'अछूतों' की सेवा करने में मोनो वे उनके निकट-से-निकट सम्बन्धी हो, उनकी पूर्ण सरलता और पूर्ण सज्जनता पर कतई कुछ भी बुरा असर नहीं पड़ा। उनमें आध्यात्मिकता का वह मिथ्याभिमान नहीं पाया जाता जो हमारे यहां के आदर्शवादियों में पाया जाता है, चाहे वे पारमार्थिक हो या धुनियवी। उनकी प्रतिभा बादल की भांति मुक्त है और वह एक रातभर में अपने विचार या प्रथा बदल देंगे, यदि उन्हें कहीं सचाई नजर आ जाय। वह ऐसे कार्तिकेय हैं जो कोई बन्धन स्वीकार नहीं करते, सिवाय उनके जो उनके स्वधर्म के मर्यादास्वरूप हैं। अपने ऊँचे-ऊँचे सिद्धान्तों और ऊँचे-ऊँचे विचारों के होते हुए गांधीजी के पास व्यावहारिक विवेक का विलक्षण खजाना है। जीवन के प्रत्येक अंग में यही चीज उनकी पूर्ण निरस्वार्थ-भावना से मिलकर उनकी अत्याचार और दमन के विरुद्ध अनेक प्रकार के संघर्षों में अजेय बना सकी है। जहाँ भी कहीं वह जाते हैं, सारा विरोध शान्त होजाता है, मानो अपने सावले रंग के कातनेवाले हाथ में अँगूठे और अंगुली के बीच में वह कोई जादूगर की छड़ी साधे हुए हो।

अगर कभी किसीने ईसा का सन्देश व्यवहार में ला दिलाया है तो वह इस हिन्दू ऋषि ने किया है। संभवतः यही कारण है कि ईसा के शब्द प्रायः इतने अधिक उनकी जवान पर रहते हैं, हालांकि वह इतने अधिक स्पष्ट विचारक हैं, इतने अधिक सच्चे और ईमानदार मनवाले हैं कि हमारे परिचय के नीति नियमों और ब्रह्मविद्या के आविष्कारों के कायल होने को तैयार नहीं हैं। "मेरी बुद्धि इस बात पर विश्वास नहीं करती कि ईसा ने अपनी मृत्यु और अपने रक्त से दुनिया के पापों का प्रायश्चित्त कर लिया है। रूपक में कहे तो इसमें कुछ सचाई हो सकती है।" वह ईसाई मत के आत्मबलिदान के आदर्श के प्रति बहुत आकर्षित हुए हैं और पर्वत पर से दिये गये ईसा के उपदेश और उसके अनगिनती निष्कर्षों ने उनपर गहरी छाप छोड़ी है। नीति की एक भ्रमबेधी विरोधाभास-मूलक उक्ति है—“दुनिया में केवल एक ही ईसाई पैदा हुआ है और वह तो क्रूस पर लटक दिया गया।” यदि यह सनकी दार्शनिक इस दूसरे गुरु के जीवन-काम्यों को देखने के लिए जीवित रहता तो संभवतः उसने अपने इस प्रत्यात व्यग्य में कुछ संशोधन कर दिया होता।

अत्यन्त सज्जनचित्त कोमलता और आसक्ति के साथ गांधी ने जुलूम-दल्ले के नाम से पुकारे जानेवाले उस अशुभ नरमेघ में घायल हुआ और बीमारों की सेवा-सुधूपा की थी और जब वह अफ्रीका के 'उन गंभीर निर्जन स्थानों' में चल रहे थे, उन्होंने ब्रह्मचर्य-पालन का व्रत लिया। क्या गांधीजी की तरह ईसामसीह भी

अपना घर-बार छोड़ कर इस विश्वास पर नहीं चले गये थे कि—“जो परमात्मा से मित्रता करना चाहता है उसे अकेला ही रहना चाहिए ?” एक साहसपूर्ण उद्गार और सुनिए “ईश्वर हमारी सभी मदद करता है जब हम अपने पैरों व नीचे दबी धूल से भी तुच्छ अपने-आपको समझने लगे । कमजोर और असहाय को ही ईश्वरीय सहायता की आशा करनी चाहिए ।”

इस पृथिवी पर कौन-कौनसे प्रभाव हमारे मानवीय भाग्य का निर्माण करगे, यह अभीसे कह देना कठिन है । “रूपक में कहे तो निष्पाप किन्तु पाप-भीरु इन दोनों प्रकाश-पुत्रों को दैव से ही मानो कुछ भेद प्राप्त हुआ, जिससे पाताल-लोक व अमुर कौलित हो रहे । अगर कही हम जान जायें कि उनकी जादूभरी वाणी और देवताओं जैसे स्वभाव से सतयुग फिर स आ सकता है तो जाने कबसे लाछित और भ्रम्य हमारी मानव-जाति के सीमाग्य का दिन खिल जाय । गांधीजी ने अपने पार हिन्दुस्तानी कार्यताओं से जब पूछा कि क्या वे मृत्यु के समान भीषण और काले प्लेग से पीड़ित आदिमियों की सेवा सुश्रूषा करने चलें, तो उन्होंने सीधा-सा जवाब दिया—“जहाँ आप जायेंगे, हम भी साथ चलेंगे ।”

जतरल डायर व द्वारा अमृतसर में जो नृसस और रोमाचकारी कृत्य—भीषण युद्ध का भीषण परिणाम—किया गया उस पर यदि गांधीजी का प्रेरक सौजन्य-मान हम अंग्रेजों के हृदयों को दुखी और टुकड़े-टुकड़े कर सकता है तो उन्होंने हमारे देश में पैदा होकर न जाने क्या-क्या अमूल्य सेवाएँ कीं होती । उन्होंने एक बार पुन यह भावित कर दिताया होता कि सत्तार पर ‘भय शासन नहीं कर सकता और सत्तार की खून से सनी हुई विजय से भी अधिक शक्ति दुनिया में मौजूद है ।

यह हमें कैसे सहन होसकता है कि हमारी अंग्रेज जाति का उज्ज्वल नाम ‘हिंसक मनुष्या की चरित्र और पारमार्थिक शक्ति के द्वारा’ ऊपर से गिराया जाकर धूल में मिला दिया जाय । शकर भगवान् के नेत्र से गांधीजी बार-बार देखते हैं । हमारी पश्चिमी सभ्यता का चापल्य, यत्रा पर उसका अबलम्बन, सोने का लालच, अधिकार का तुष्णा, जिन्दगी की बाहरी और हल्की बातों का मोह—गांधी उन आँखों से हम सबको भेद कर देखते हैं । जगली जानवरों को मारते-मारते प्रतिफल में जैन कि हमारी आदत भी सतनुकूल बन गई है, भाषों उसे देखते हैं । वे देखते हैं हमारी यह सत्कृति जो दो को एक करनेवाले प्रेम को नहीं जानती, जो चहुँओर व्याप्त जीवन की शक्ति को गिराकर धूल कर देती है और खेत की पास की मानिंद मृत्ता बना देती है ।

१९२२ ई० में हिन्दुस्तान में चोरीचोरा में जनता को एक सामूहिक हिंसा का शमे-नाक नमूना पेश होगया । गांधीजी ने उसी दम अपना गतिनय अवता आन्दोलन बन्द कर दिया और अनशन का एक भीष्म गन्ध लिया । यह आचरण महात्माजी की

उस महान् आत्मा के योग्य ही था । चौदहवीं शताब्दी की एक छोटी-सी किन्तु ठोस धार्मिक राजनैतिक पुस्तक 'पियर्स प्लोमैन' में एक वाक्य आया है जिसे मैं अक्सर अपने साहित्य का एक अनमोल रत्न मानता आया हूँ । अपने शिष्यकते जी की सराहना के इस लेख के अन्त में उसे रखना अनुचित न होगा —

“सामने दृक्ष के मृदुदल देखता हूँ । पर मास-भज्जा के मानव को वस मे करते समय जो तेरे प्रेम में लहलहाहट है, सुई की नोक से भी बारीकी और प्रभाव है, क्या उसकी कही भी तुलना मिलेगी ?”

: ३७ :

चीन से श्रद्धांजलि

एम क्युओ नै-शी

[चीनी राजदूत, लन्दन]

हमारे इस जमाने में सारे चीन में जो सामाजिक और राजनैतिक नवजागरण की प्रवृत्तियाँ हो रही हैं वे एशिया के और सब देशों में भी हैं और इनका संचालन और सपोषण करने के लिए कुछ नेताओं का समूह निश्चित रूप से तैयार हो गया है । हमारे महादेश की सबसे बड़ी आवश्यकता ऐसे दो नेताओं में मूर्तिमान हुई है । वह आवश्यकता यह है कि राष्ट्रीय नवनिर्माण की पद्धतियाँ चाहे जो और विविध हो । राजनैतिक बुद्धि-क्षमता के ऊपर प्रभाव नैतिकता का ही रहेगा । सन्यास सेन के परमअनुयायी भक्त होते हुए मुझे इसे अपना सौभाग्य समझना चाहिए कि मैं महात्मा गांधी की ७१वीं जन्म तिथि के अवसर पर उन्हें श्रद्धांजलि के रूप में कुछ कह रहा हूँ ।

१ मूल अंग्रेजी इस प्रकार है —

“Never lighted was a leaf upon a linden tree than thy love was when it took flesh and blood of man, fluttering, piercing as a needle-point”

: ३८ :

राजनेता : भिखारी के वेप में

सर अब्दुल क़ादिर

[भारत-मंत्री के सलाहकार]

कुछ वर्षों पहले मैं बीयना—आस्ट्रिया और जर्मनी के एक हो जाने के पूर्व के प्राचीन और सुन्दर बीयना को देखने जा रहा था। दोपहर को खाना खाने के लिए मैं एक बड़े भोजनालय में गया। वह कामकाज का बन्धन था और वहाँ काफी मीड थी, इसलिए अपने लिए खाली मेज तलाश करने में कठिनाई हुई। एक तीव्र मेरे पास आया और मुझसे यह तो नहीं पूछा कि मैं क्या लाऊँ, बल्कि वाला, “आप गांधीजी के देश से आये हैं ?”

“हाँ, मैं हिन्दुस्तान से आया हूँ। मैंने गांधीजी को देखा है और एक-दो बार उनसे बानचीन भी की है।”

यह सुनते ही उसे आनन्द हुआ और वह कहने लगा—“मुझे तो बड़ी खुशी हुई। अब मैं यह तो कह सकूँगा कि मैं ऐसे आदमी से मुलाकात कर चुका हूँ जिसने गांधीजी से मुलाकात की है।”

हालांकि मैं यह जानता था कि गांधीजी की कीर्ति दूर-दूर तक फैल चुकी है, मगर मुझे इस बात का पता नहीं था कि ऐसे मुल्कों के बाजार का सामान्य आदमी भी उन्हें जानने और इज्जत करने लगा है, जो हिन्दुस्तान से कोई ताल्लुक नहीं रखते, बल्कि स्थल और जल से उससे जुदा है।

इस बात से मेरा ध्यान मई १९३१ की ओर गया। तब मैं लन्दन में था और महात्मा गांधी दूसरी गोलमेज कॉन्फ्रेंस में शरीक होने वहाँ आये थे। हिन्दुस्तान के कुछ लोगों का खयाल था कि उनके इंग्लैंड जाने में उनकी शान को बढ़ा लगा और कॉन्फ्रेंस में शरीक होकर उन्होंने गलती की। मगर मैं इस राय में सहमत नहीं हूँ। मेरा तो खयाल है कि हालांकि लन्दन में जनता के सामने प्रकट किये हुये उद्गार में उन्होंने इस बात को छिपा नहीं रखा कि वह अपने देश के लिए पूरी-पूरी आजादी चाहते हैं, तो भी उन्होंने इंग्लैंड के राजनैतिक विचारशील लोगों पर बड़ा असर डाला और इस देश में आने लिए अनुकूल वातावरण बना लिया।

कुछ सप्ताहों में उनकी पोसाक पर कुछ हलकी आलोचना भी हुई, लेकिन ऐसी आलोचनाओं से गांधीजी को क्या? उनके व्यक्तित्व ने और कॉन्फ्रेंस में उनके भाग

लेने का जो महत्व था उसने उसपर विजय प्राप्त करला ।

गांधीजी के चरित्र की एक प्रभावक विशेषता यह है कि एकबार उनको बुद्धि को सतोष देनेवाले कारणों से जब वह अपने आचरण का कोई मार्ग निश्चित कर लेते हैं, तब फिर लोग उसके धारे में कुछ भी कहते रहे वह उनकी निन्तात अवहेलना करते हैं । इसलिए जो पोशाक वह थिल्ले सालो से पहनते आये थे अपनी इंग्लैंड की यात्रा में भी वह उसे ही पहनते रहे । कमर में एक लमोटी, टांगें खुली हुई और कपों के ऊपर खादी की चादर या कबल—जैसा मौसम हो, यही उनकी अब पोशाक है । ओर फ्रांस में सफर करते हुए, जहां कि उनका हार्दिक स्वागत हुआ, या लन्दन के बड़े-बड़े जलसों में शरीक होते हुए, यहाँतक कि खुद गोलमेज काफ़ेस की बैठको तक भैं, उन्होंने इस पोशाक को नहीं छोड़ा । काफ़ेस की बैठकें आम लोगों के लिए नहीं थी, क्योंकि सेट जेम्स के महल का वह हॉल जहाँ काफ़ेस हुई थी इतना बड़ा नहीं था कि दर्शक भी आते । मगर मुझे मालूम हुआ कि कभी-कभी किसी-किसीको थोड़ी देर के लिए खास तौर पर मन्त्री की जगह बैठने की इजाजत दी जाती थी, और मैं एक दिन वहाँ जा पहुँचा । लार्ड सेकी अध्यक्ष थे । उनके दाहिनी ओर भारत-मन्त्री सर सेन्टुअल होर और पार्लमेण्ट के प्रतिनिधिगण बैठे थे । उनके बाईं ओर सबसे पहली जगह गांधीजी की दी गई थी और उनके बाद दूसरे हिन्दुस्तान के प्रतिनिधियों को, जिनमें से कुछ अध्यक्ष की कुर्सी के सामने भी बैठे थे । लार्ड सेकी ने गांधीजी के प्रति जो आदर प्रदर्शन किया, वह उल्लेखनीय था ।

गांधीजी ने पोशाक के मामले में प्रचलित पद्धति से जो स्वतन्त्रता ली थी, उसकी सीमा तो तब देखने की मिली जब मैंने उन्हें चांग्रेस के प्रतिनिधियों और दूसरे अतिथियों के सम्मान में दिये गये शाही भोज के समय बादशाह और मल्का के अभिवादन के लिए अपने कंधों पर कम्बल ओढ़े हुए सर्किषम-नैलेस की उन बनावट से ढकी हुई सीड़ियों पर चढ़ते देखा । मैं नहीं समझता कि पहले कभी ऐसी पोशाक में कोई मेहमान उस महल में आया होगा और यह धारणा करना भी कठिन है कि किसी दूसरे आदमी को इतनी ही आजादी के साथ वहाँ जाने भी दिया जाता ।

इस सिलसिले में दो मजदूर सवाल उठते हैं । पहला यह कि गांधीजी ने यह पोशाक क्यों धारण की, और दूसरा यह कि वह चीज क्या है, जिसने उनको इतना बड़ा दिया है कि जिससे उनके द्वारा की गई प्रचलित प्रणालियों की उपेक्षा की दर-गुजर कर दिया जाना है ?

जिन्होंने गांधीजी की आत्मकथा को, जिसे उन्होंने 'सत्य के प्रयोग' नाम दिया है, पढ़ा है, वे जानते हैं कि जब वह बैरिस्टरी पढ़ने के लिए पहले-पहल इंग्लैंड आये तब वह फेंगनेबुल आदमी के जीवन से परिचित थे और ठंड पश्चिम के दर्जों के द्वारा मिले मूठ ही पहनते थे । बैरिस्टर होने और हिन्दुस्तान लौट आने के बाद वह एक

कानूनी मुकदमे के सिलसिले में दक्षिणअफ्रीका गये और वहीं रहने का उन्होंने निश्चय कर लिया। वहींपर उनके जीवन का महत्वपूर्ण उद्देश्य प्रकट हुआ। वहींपर उन्होंने अपने प्रवामों देशवासियों के हित के लिए त्याग और बलिदान करने का ध्येयगणेश किया। उनके दुःख और दर्द में सहानुभूति रखने से उनके जीवन में एक परिवर्तन हो गया। उन्होंने वहाँ जो उपयोगी कार्य कर दिखाये उनकी क्या इतनी अधिक प्रसिद्ध हो गई है कि उसकी यहाँ फिर से व्याख्या करने की जरूरत नहीं है। जब वह लौटकर हिन्दुस्तान आये और हिन्दुस्तान की आजादी की कशमकश में हिस्सा बँटाने लगे, तो उन्होंने बकालत करने के तमाम इरादे को छोड़ दिया और स्वयं को राजनैतिक तथा सामाजिक सुधारों के लिए समर्पित कर दिया। इसी समय से उन्होंने अपरिग्रह के रूप में लैगोटी पहनना शुरू किया और अपने रहन-सहन को कम-से-कम खर्चीला कर लिया। गरीब-से-गरीब लोगों के वेश में और गांधीजी के वेश में फर्क ही क्या है? उन्होंने अपनी 'आत्मकथा' में कहा है कि जबसे वह लंदन में विद्यार्थी-जीवन व्यतीत करते थे तभीसे धर्म के सर्वोच्च स्वल्प—त्याग की भावना उन्हें अत्यन्त प्रिय रही है। उनके मन में प्रविष्ट यह बीज आज एक वृक्ष बन चुका है और उसमें फल भी लग गये हैं।

गांधीजी की वेशभूषा के विषय में उठनेवाले पहले प्रश्न का उत्तर में दूसरे प्रश्न का भी उत्तर मिल ही जाता है। उनका बल अपने खुद के लिए निर्मा भी वस्तु की कामना न करने में ही है। अपने बहुमणी जीवन-विभाग में, जहाँ कठिनाइयों, नजर-बन्दी और कारावास के पश्चात् विजयोपलब्ध्य में निकलनेवाले जुलूस तथा सम्मान के लिए किये जानेवाले उत्साहपूर्ण जयघोषों का घम आता है, पददीर्घ, प्रतिष्ठा प्रभाव अथवा अर्थलाभ की कामना का कोई प्रश्न ही नहीं रहा है। यही उनके जीवन का एक अंग है, जिसने क्या मित्र और क्या विरोधी सब के हृदयों पर समान रूप से अमर छाला है।

गवर्नरों और वायसरॉयों ने हमारे देश (हिन्दुस्तान) के भविष्य पर प्रभाव डालनेवाले मतलों पर माफ-न्याय चर्चा करने के लिए उन्हें बुलाया है। राजाओं ने उनसे मनाविरे किये हैं और मंत्रियों ने उनसे परामर्श माया है। हमारे सुप्रसिद्ध हिन्दु-मान्य गायर स्वर्गीय मर मुहम्मद इब्नबाल की एक मशहूर श्राव उनके विषय में बहुत उक्ति रहता है—“दिल-ए-शाह सरजा मिरद-जे गरा-ए-बेनियाब” (अर्थात्—ऐसे निम्नो को देखकर कि जो भीय नहीं माँगता, मघाद् का मो हृदय बाँध उठता है)। यही है वह भीय न माँगता और पारोक्षिक आवश्यकताओं और कामनाओं में ऊपर उठता, जिसमें गांधीजी की प्रभावशाली और आपकचेजनक महत्त्व मिल मगा है।

जबकि महत्त्वा गांधी इंग्लैंड में रहे, वह लन्दन के पूर्वी गिरे में किंगले हाउस में ठहरे। गांधीमहोदय के काम में जो कुछ वक्त उनके पास बचता था उसे

वह गरीब लोगो में बिताते थे। जब वह उनसे मिलने हैं तो सर्वदा सुखी रहने हैं, जब उनकी ओर स्वयं की आत्मा में अभिन्नता के अनुभव का आनन्द उठाते हैं। वह चाहते तो लन्दन के किसी भी घाही होटल में टिक सकते थे। वह अपने किसी मित्र के सजे-सजाये आरामदेह घर में ठहर सकते थे, मगर उन्हें तो वो में किम्से हाल की कुमारी मूरियल लिस्टर का निमंत्रण कही अच्छा लगा। इस बस्ती में श्रम-जीवियों के लिए एक क्लब है। उनके लिए एक सामाजिक और बौद्धिक विकास का केन्द्र है और यहाँ उनका सम्मेलन हुआ करता है। कुछ रहने के लिए स्थान भी यहाँ है, जहाँ कोई भी रहने और खाने-पीने पर एक पौण्ड प्रति सप्ताह से भी कम खर्च पर सीधे-सादे ढंग से रह सकता है। जब गांधीजी गोलमेज परिषद् में हिन्दुस्तान का प्रतिनिधित्व कर रहे थे तब उन्होंने इसी घर में एक छोटा कमरा लिया था। मैंने वह कमरा देखा है। उस जगह के व्यवस्थापक गांधीजी से अपना सम्बन्ध स्थापित होजाने पर गर्व करते हैं और बड़ी खुशी जाहिर करते हुए दर्शकों को वह कमरा दिखाते हैं, जो अब गांधीजी के ही नाम पर पुकारा जाता है।

गांधीजी जहाँ भी रह वहीं प्रेम और स्नेह पैदा करने की शक्ति का उन्हें विलक्षण बरदान है। जब उन्होंने दक्षिण-अफ्रीका में हिन्दुस्तानियों के अधिकारों के लिए लड़ाई लड़ी थी तब उन्होंने अपने आस-पास भक्त पुरुष और स्त्री एकत्र कर लिये थे, जिनमें कुछ यूरोपियन भी थे। जब उन्होंने अपना वह कार्यक्षेत्र छोड़कर हिन्दुस्तान के विद्यालय कार्यक्षेत्र में परांपण किया तब और भी ज्यादा सत्या में उत्साही सहयोगी कार्यकर्ता उनकी ओर आकर्षित हुए और सन् १९३१ की अपनी अत्यन्तकालिण इंग्लैंड-यात्रा में तो उनकी इस मित्र तथा प्रशंसक मण्डली में और भी वृद्धि होगई। हिन्दुस्तान लौट आने के बाद जब उन्हें जेल जाना पड़ा तो जेलर उनकी ओर खिंचते हुए अनुभव करते थे और वह जब अस्पताल में बीमार रहे तो उनकी नर्स उनकी खुशमिजाजी पर इतनी मुग्ध होगई कि जब वह अच्छे होने पर जाड़े छोड़कर चले गये तो उन्हें दुःख हुआ। यह और भी ज्यादा उल्लेखनीय बात है, क्योंकि उनमें यह आकर्षण कबल उनकी आत्मिक सुन्दरता से आया है, शारीरिक रूपरंग और खूबमूरती से नहीं। गांधीजी के प्रेम का स्त्रोत है ईश्वर में बटल श्रद्धा और धर्म की गहरी भावना। उनकी 'आत्म-कथा' में ऐसे अनेक स्थल हैं जहाँ यह श्रद्धा प्रकट हुई है। उदाहरण के लिए, मानव-जाति के आग आदर्श प्रस्तुत करते हुए वह कहते हैं—“पूर्णता का और बढ़ने का असीम प्रयत्न करना हमारा मानवोचित अधिकार है। उसका फल तो स्वतः उसके साथ विद्यमान रहता है। शायद सब ईश्वर के हाथ में है।” उसी पुस्तक में वह कहते हैं—“दक्षिण अफ्रीका की अपनी जीवन धारा की प्रारम्भिक स्थिति में 'मेरे अन्तर में बसनेवाली धार्मिक भावना मेरे लिए एक जीती-जागती शक्ति बन गई थी।' तबसे उनके जीवन का जिन्होंने निरीक्षण किया है, वे जानते हैं कि यही

भावना है जो उनके भविष्य जीवन में भी काम करती चली आरही है और जिसके कारण वह देश-भक्त लगन की उस ऊँचाई पर पहुँच सके हैं और कायम हैं।

अपने ऐसे जीवन के ७० वर्ष पूरा करने पर कि जो भानुमूँमि और धर्म तथा मान-वृत्ता की सेवा में अर्पित रहा है, गांधीजी को अगणित धन्यजलियाँ समर्पित की जाएँगी। इनमें अधिकांश तो ऐसी होंगी जो उनके भाव्य कार्य करनेवालों या उन्हें भलीभाँति जाननेवालों की ओर से होंगी। मैंने तो केवल उनकी साँखियाँ प्राप्त की हैं और उनकी नीति तथा कार्यप्रणाली से भी मैं सर्वदा सहमत नहीं रहा हूँ, परन्तु जब मैं उनके ऊँचे ध्येयगन्त चारित्र्य और हिन्दुस्तान के प्रति की गई आजीवन सेवाओं की सराहना करता हूँ तो उनकी ही सचाई से करता हूँ जितनी सचाई से कि वे लोग करते जो उनके अधिक निकट और घनिष्ट सपर्क में हैं। हम हिन्दुस्तान की जनता में जो महान् जागृति दिखाई देती है उस सबका श्रेय किसी अन्य जीवन व्यक्ति से बढ़कर उन्हींके उद्योग और प्रभाव को है। आज की इस शकावली और भौतिक दुनिया में, जिसे वह 'आत्मबल' कहते हैं, उस आत्मा की ताकत को दिमाने में ही उनका महत्व है। और इसी आधार पर तो उनके देशवासियों ने उन्हें 'महात्मा' का पद दिया है।

: ३६ :

गांधीजी का भारत पर ऋण

डॉ० राजेन्द्रप्रसाद, एम. ए.

[सभापति, भारतीय राष्ट्रीय महासभा]

भारतीय राजनीति में गांधीजी की देन महान् है। जब वह दक्षिण अफ्रीका में १९१५ में अन्तिम रूप में स्वदेश लौट आये तब भारतीय राष्ट्रीय महासभा (काँग्रेस) का स्थापित हुए तीस वर्ष होचुके थे। काँग्रेस ने एक हद तक राष्ट्र में एक चेतना जागृत और संगठित करदी थी, लेकिन यह जागरण मोटे रूप में केवल अग्रद्वीप पट्टे-जिनमें मध्यमवर्गीय लोगों तक ही सीमित था, जनता में उसने प्रवेश अभी नहीं पाया था। जनता तक उसे महात्मा गांधी लेगये और उसे जन-आन्दोलन का स्वरूप दे दिया। महात्मा गांधी का आन्दोलन जहाँ व्यापक था वहाँ वह गहरा भी था। उन्होंने वे कार्य-योजनाएँ हाथ में लीं जो निराला राजनैतिक नहीं थी, बल्कि जनता के एक बड़े हिस्से के जीवन में घुँसी-मिनी थीं। एक घनाबुद्धि या इसमें अधिक काल में निरुद्धि पारो के सत्य के लिए चढ़ाए, गीत, पंथ, बरत, को, धन्यवादपूर्वक, प्रजापति, के, काट उठाते जा रहे। मोनितरो और मजदूरों की ओर से चम्पान्न में किये गये उनके सरल पत्राचार में काँग्रेस की हल्का-ए-हल जन-आन्दोलन की सीमा तक जा पहुँची।

अन्याय समझे जानेवाले लगानबन्दी के हुक्म की दुबारा जांच करने के लिए किये गये खेडा के उनके उतने ही सफल सत्याग्रह ने भी उस जिले की जनता पर वैसा ही असर डाला। अब कांग्रेस की राजनीति, देश की ऊँची-ऊँची पब्लिक सर्विसी में अधिक हिस्सा या गवर्नरो की शासन-समितियों में ज्यादा जगह दिये जाने की माँगो तक ही सीमित नहीं रह गई। अब वह थमजीवी जनता की तकलीफों से अमित्र होकर ही नहीं रही, बल्कि उनको दूर कराने में भी सफल हो सकी। इन सब प्रारम्भिक (१९१७ और १९१८ के) आन्दोलनों से लेकर अबतक अनेक आन्दोलन ऐसे चले हैं और उन सबमें ध्येय यही रहा है कि किसी एक श्रेणी या समूह को ही न पहुँचकर व्यापकरूप से समस्त जनता को उसका फायदा पहुँचे। कष्ट-निवारण के लिए सिर्फ ब्रिटिश हितों अथवा ब्रिटिश सत्तनत के ही खिलाफ लड़ाई नहीं छोड़ी गई, बल्कि उसने बिना हिच-किचाहट के हिन्दुस्तानी हितों और गलत धारणाओं को भी उतनी ही ताकत से धक्का पहुँचाया है। इस प्रकार उनकी जामृत आँखों से हिन्दुस्तान के कारखानों में काम करनेवाले मजदूरों की असन्तोषप्रद हालत छिपी नहीं रह सकी और सबसे पहले जो काम उन्होंने उठाये, उनमें से एक अपने लिए अच्छी स्थिति प्राप्त करने के वास्ते लड़ने में अहमदाबाद के मजदूरों की मदद करना भी था। दलित जातियों की दुख-भरी किस्मत ने अनिवार्य रूप से हिन्दुओं की अस्पृश्यता जैसी दूषित और दुष्टतापूर्ण प्रथा को निष्पूरतापूर्वक मिटा डालने के आन्दोलन को जन्म दिया और महात्मा गांधी ने अपने प्राण तक की बाजी लगा लगाकर उसका संचालन किया। कांग्रेस संगठन का विस्तार भी इतना हुआ कि इस विशाल देश के एक सिरे से लेकर दूसरे तक वह व्याप्त होगया और आज लाखों स्त्री-पुरुष उसके सदस्य हैं। लेकिन सख्या-मात्र जितना बता सकती है उससे कहीं अधिक व्यापक कांग्रेस का प्रभाव हुआ है। उस प्रभाव की गहराई की परीक्षा इसीसे हो चुकी है कि जनता उसके आमंत्रण पर त्याग और कष्ट-सहन को भीषण आच में से निवृत्त सकी है।

परन्तु महात्मा गांधी की सबसे बड़ी देन यह नहीं है कि उन्होंने हिन्दुस्तान की जनता में राजनैतिक चेतना उत्पन्न कर दी और उसे एक अभूतपूर्व पैमाने पर संगठित किया। मेरी समझ में तो, हिन्दुस्तान को राजनीति को और सभ्यत ससार की पीड़ित मानवजाति को, उन्होंने जो सबसे बड़ी चीज दी है वह है बुराईयों से लड़ने का वह वेजोड तरीका—जिसे उन्होंने प्रचलित और कार्यान्वित किया। उन्होंने हमें सिखाया है कि बिना हथियार के शान्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य से सफलता के साथ किस प्रकार लड़ा जा सकता है। उन्होंने हमें और ससार को युद्ध का नैतिक स्थान ग्रहण कर सकनेवाली वस्तु दी है। उन्होंने राजनीति को, जो बि घोलाघड़ी और असत्य से भरी हुई थी, जो गिरी-से-गिरी हालत में नीच पड्डयन्त्रों की स्थिति में पहुँच गई थी और ऊँची से-ऊँची स्थिति में कूटनीतिपूर्ण, भ्रामक भाषा-प्रबध और गुप्त चालों से ऊँची

न उठ सकती थी, ऊपर उड़ाकर एक ऐसे ऊँचे बादल पर पहुँचा दिया है जिसमें कि कितने भी ऊँचे उद्देश्य के लिए, किसी स्थिति में भी, दोषपूर्ण और अपवित्र साधनों का उपयोग नहीं किया जा सकता। उन्होंने राजनीति में भी सचाई को गौरव के उच्च मंच पर आमोन किया है, फिर चाहे उसका तात्कालिक परिणाम कितना ही हानिप्रद क्यों न लगता हो ? हमारी कमजोरियाँ और बुराईयाँ का भी स्पष्ट रूप में जानबूझकर त्यागपत्र ग्रन्थों के सामने खालकर रख देने की उनको आदत ने पक्षियों और विपक्षियों दोनों को हैरान कर दिया है। लेकिन उनके मन में हमारी शक्ति अपनी कमजोरियों को छिपाने में नहीं, बल्कि उन्हें समझकर उनसे लड़ने में निहित है। यह बात अनुभव से सिद्ध हो चुकी है कि जहाँ अहिंसा की थोड़ी-सी अवहलना या अपूर्णता भले ही अस्थायी लाभ लाने के, वहाँ भी अहिंसा का बख़तर पालन सबसे मोघा रास्ता ही नहीं है, बरन् सबसे अधिक अनुसूचित की नीति भी है। उनको शिक्षा का भी भोतर नैतिक और आध्यात्मिक स्फूर्ति थी, जिसने लोगों की कल्पना को प्रभावित किया। लोगों ने देखा और मनस लिया कि जब चारों ओर घना अन्धकार है, ऐसी स्थिति में हमारी गरीबी और गुलामी से से छुटकारे का रास्ता दिखानेवाले वही हैं। जब हम अपनी निपट बेदमती महसूस कर रहे थे तब उन्होंने सत्य और अहिंसा के द्वारा अपनी शक्ति को पहचानने की हमें प्रेरणा दी। मनुष्य आखिर असन्न और शस्त्र के साथ नहीं जन्मा। न उसके चीने के से पजे ही है और न जगली भ्रम के-से सोंग। वह तो आत्मा और भावना लेकर उत्पन्न हुआ है। फिर वह अपनी रक्षा और उत्थिति के लिए इन बाहरी बन्धुता पर क्यों अवलम्बित रहे ? महात्मा गांधी ने हमें सिखाया है कि अगर हम मौन और विनाश पर बरोस्ता रखेंगे तो वे हमारी बाट देखने रहेंगे। उन्होंने हमें सिखाया है कि अगर हम अपनी अन्तरात्मा को शान्त कर लें तो वह जीवन और सन्तुष्टता हमारे होकर रहेंगे। दुनिया में कोई ताकत ऐसी नहीं है कि एक बार उस अन्तरात्मा के जाग पड़ने पर, एक बार इन बाह्य वस्तुओं और परिस्थितियों का अवलम्ब छोड़ देने पर और एक बार आत्मविश्वास और आत्म निर्भरता प्राप्त करने पर वह हमें गुलामी में रख सके। हिन्दुस्थान घने सने किन्तु उसकी ही दृढ़ता और निश्चय के साथ उस आत्मिक बल को प्राप्त कर रहा है और उस आत्मिक बल के साथ अन्ध भी बनता जा रहा है। परमात्मा करे कि वह सत्य और अहिंसा के इस संकेत किन्तु मोटे मार्ग से विचलित न हो, जो उसने महात्मा गांधी के नेतृत्व में चुन लिया है। यही है महात्माजी का भारतीय राजनीति पर सबसे बड़ा दृष्टान्त, और यही होगी हिन्दुस्थान की दुनिया की मुक्ति में उनकी एक अमर देन।

पश्चिम के एक मनुष्य की श्रद्धाञ्जलि

रोम्यां रोलां

[बिला ओला, स्वीडरलैण्ड]

गांधीजी केवल हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय इतिहास के ही नायक नहीं हैं कि जिसकी पुण्यस्मृति कया के रूप में युगयुगांतर तक प्रतिष्ठित रहेगी। उन्होंने केवल क्रियात्मक जीवन का प्राण बनकर हिन्दुस्तानियों में उनकी एकता, उनकी शक्ति और उनकी स्वतन्त्रता की कामना की गौरवपूर्ण खेतना ही नहीं भर दी, बल्कि समस्त पश्चात्य जनता के हित के लिए उसके ईशामसीह के सन्देश को भी पुनर्जीवन दिया, जो अब तक उपेक्षित या प्रवञ्चित रहा। उन्होंने अपना नाम मानव-जाति के साधु-सन्तो में अंकित कर दिया है, उनकी मूर्ति का उज्ज्वल आलोक भूमण्डल के कोने-कोने में प्रविष्ट हो गया है।

यूरोप की दृष्टि में उनका उदय उस समय हुआ जब ऐसा उदाहरण लगभग एक आश्चर्य लगता था। यूरोप चार वर्षों के उस भीषण युद्ध से निकल ही पाया था, जिसके फलस्वरूप सर्वनाश, भग्नावशेष और पारस्परिक कटुता के चिह्न अभी विद्यमान थे और, और भी अधिक नृशंस नये-नये युद्धों के बीज बो रहे थे। साथ-ही-साथ कातियाँ हो रही थी और समाजगत पारस्परिक घृणा की शूलला राष्ट्रों के हृदयों को नोच-नोचकर खा रही थी। यूरोप एक ऐसी दुर्भर रात्रि के नीचे दबा कराह रहा था, जिसके गर्भ में थी निराशा और नि सहाय अवस्था और प्रकाश की एक भी रेखा दृष्टिगत नहीं हो रही थी। ऐसे मूहत्तं में इस दुर्बल, नग्न और नगहे-से गांधी का अवतरण हुआ, जिसने सर्वांगीण हिंसा की भर्त्सना की, न्याय और प्रेम ही जिसके हृदय-धार थे, और जिसके मग्न किन्तु अविचल सौजन्य ने अपनी प्रारम्भिक सफलताएँ अभी प्राप्त की ही थी। ऐसे गांधी का उद्भव पश्चिम की परम्परागत, चिर प्रतिष्ठित और सुनिर्धारित विचारधारा तथा राजनीति की छाती पर एक अद्भुत प्रहार के रूप में जान पड़ा। साथ ही साथ वह भाषा को एक विरण के रूप में भी लगा, जो निराशा के अन्धकार में कूद पड़ी थी। जनता को उस पर विश्वास होता ही नहीं था। और इसलिए ऐसे महानम अद्भुत व्यक्ति को वास्तविकता का विश्वास करने में कुछ समय लगा...। मुझे अधिक अच्छी तरह इस बात को और कौन जानता? क्योंकि मैं ही पश्चिम के उन व्यक्तियों में से था जिन्होंने पहले-पहल महात्माजी के सदेश को जाना

और उमे फटाया। परन्तु ज्यो-ज्यो भारत के इस आध्यात्मिक गुरु के कार्य के अस्तित्व और निरन्तर स्थिर प्रगति का विश्वास लोगो को होता गया त्यो-त्यो पश्चिम से प्रशंसा और श्रद्धा की बाढ़ उनकी ओर आने लगी। कुछ लोगो के मत में उनका उदय ईसा का पुनरागमन हुआ। दूसरे कुछ लोगो ने जो स्वतन्त्र विचारो के थे, जो पश्चिमी सभ्यता की अव्यवस्थित गति से घबरा रहे थे, क्योंकि उनकी पश्चिमी सभ्यता का आधार अब कोई नैतिक सिद्धांत नहीं रहा था और जिसकी आविष्कार और खोज-सम्बन्धी अद्भुत प्रतिभा अपने ही सर्वनाश की दिशा में जा रही थी, यह देखा कि गांधी सभ्यता के पाखंड और अपराधो की निन्दा कर रहे हैं, और मानव-जाति को प्रकृति की ओर, सरलता की ओर, स्वाभाविक स्वस्थ जीवन की ओर लौट जाने का प्रचार कर रहे हैं, तो उन्होंने समझा कि वह हसी और टॉलस्टॉय के ही दूसरे अवतार हैं। सरकारो ने उनकी उपेक्षा और तिरस्कार की निगाहो से देखने का ढोंग किया। किन्तु सर्वसाधारण ने अनुभव किया कि गांधी उनका घनिष्ठतम मित्र और बन्धु हैं। मैंने यहाँ स्वीट्जरलैंड में देखा कि उन्होंने गांधी और पहाड़ में बसे नम्र किसानो में कैसे पवित्र प्रेम की प्रेरणा की है।

लेकिन यद्यपि ईसा के पर्वत पर दिये उपदेश की भांति उनके न्याय और प्रेम के संदेश ने असह्य लोगो के हृदयो को स्पर्श किया है, तो भी स्वयं युद्ध और विनाश की ओर जाती हुई दुनिया की गति बदलने के लिए वह जिस प्रकार नैजरेत के मसीह के संदेश पर निर्भर नहीं थे, ठीक उसी प्रकार इस बात पर भी निर्भर नहीं रहे हैं। राजनीति में गांधीजी के अहिंसा-सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप देने के लिए आज यूरोप में जैसा विद्यमान है, उससे कहीं भिन्न नैतिक वातावरण होना चाहिए। उसके लिए जैसा होगी एक सर्वांगीण विपुल आत्म-बलिदान की। परन्तु आज भयंकर रूप से बढ़ते हुए तानाशाही राष्ट्रो के नये तरीको के आगे, जिन्होंने दुनिया में आधिपत्य जमा रखा है और जिन्होंने लाखो मानवो के शोषित के रूप में अपने निर्दय चिन्ह छोड़े हैं, हममें सफलता की आशा नहीं है। जबतक जनता बिरकाल तक परीक्षाओं में से न निकल ले तबतक ऐसे बलिदानो की ज्योति के अपना विजयमूलक प्रभाव डालने की न हो सम्भावना ही है, न आशा। और जनता में उस समय तक स्वयं को शक्तिशाली बनाने की बहादुरी नहीं आसकती जबतक उनकी पोषण देने और उदात्तता की ओर ले जाने के लिए गांधी-जैसी किसी निष्ठा की प्राप्ति न हो। पश्चिम के अधिकांश लोगो—क्या जनता और उनके नेताओ—में इस ईश्वर-निष्ठा का अभाव है तथा नई-नई निष्ठाएँ, चाहे वे राष्ट्रीयतावादी हो चाहे अन्तिवादी, सब हिंसा की जन्मदानी हैं। यूरोप-वासियो के लिए सबसे अधिक आवश्यक कार्य है अपनी स्वाधीनताओ स्वतन्त्रताओ और अपने प्राणो तक की रक्षा करना जो आज फासिस्ट और जात्यभिमानी राष्ट्रो के सर्वप्राप्ती साम्राज्यवाद से अतकित है। उनकी इस राजनैतिक उत्तरदायित्वहीनता

का अनिवार्य परिणाम होगा, मानवता की गुलामी—संभवतः युगयुगान्तर तक। ऐसी परिस्थितियों में हम गांधीजी के सिद्धान्त को, चाहे उसे हम कितने ही आदर और श्रद्धा की निगाह से देखें, (यूरोप में) व्यवहृत किये जाने का आग्रह नहीं कर सकते।

ऐसा जान पड़ता है कि गांधीजी का सिद्धान्त दुनिया में वह काम कर दिखाने के लिए आया है, जो उन महान् मध्ययुगीय ईसाई सघों ने किया था, जिनमें नैतिक सम्भ्रता, शांति और प्रेम की भावना तथा आत्मिक धीरता और निश्चलता की पवित्रतम सम्पत्ति उसी तरह सुरक्षित थी जैसे किसी उमड़ते हुए सागर में कोई टापू। कितना गौरवपूर्ण और पवित्र कार्य ! गांधी की यह 'स्प्रिट' उनके पूर्ववर्ती सत्त ब्रूनो, सत्त बर्नार्ड, सत्त फ्रांसिस जैसे ईसाई-भठों के महान् सत्यापकों की भाँति सक्तापन्न और परिवर्तनशील इस युग के प्रबल प्रवाह में भी, जिसमें से मानव-जाति गुजर रही है, शांति-तोष, मानव-प्रेम और ऐक्य को अजर-अमर रखे !

और हम, बुद्धिमान, विज्ञानवेत्ता, विद्वान, कलाकार हम जो अपनी नगण्य शक्तियों की सीमा के अन्दर अपने मन में वह 'मानव-समाज का नगर, जिसमें 'ईश्वरीय शान्ति का राज है', निर्माण करने का प्रयत्न करते हैं, हम जो (गिरजे की भाषा में) 'तीसरी कोर्ट के' हैं और जो मानवता पर आधारित विश्ववन्धुत्व को मानते हैं, अपने इस गुरु और बन्धु गांधी को, जो भावी मानवता के आदर्श को हृदय में प्रतिष्ठित किये हुए उसे आचरण में प्रत्यक्ष करके दिखा रहा है, अपने प्रेम और आदर का हादिक अर्घ्य अर्पण करते हैं !

: ४१ :

एक अंग्रेज़ महिला की श्रद्धा

मिस मांड रॉयडन, एम. ए., डी. डी.

[सेनीनोस्त, केंट, इंग्लैंड]

ईसाइयों का महसूस करना, जैसा हममें से बहुत-से करते हैं, कि आज की दुनिया में सबसे अच्छा ईसाई अगर कोई है तो वह एक हिन्दू है, यह एक अजीब बात है। मैं जितना ही ज्यादा गांधीजी के कार्यों पर नज़र डालती और उनके उपदेशों को पढ़ती हूँ उतनी ही अधिक मुझे इस कथन में सचाई लगती है। मैं यह जानती हूँ कि अगर मैं इतना और कहूँ कि मुझे तो नेंजरथ के मसीह पूर्णता में अद्वितीय लगते हैं, तो वे बुरा न मानेंगे। मेरे कहने का इतना ही अर्थ है और यह मुझे कहना पड़ना है कि मसीह के दिव्या में आज कोई भी उनके इतना निकट नहीं पहुँच सका है, जितने महात्मा गांधी।

प्रति सप्ताह जो 'हरिजन' के अंक मेरे पाम आते रहते हैं वे मानो गरम और प्यासे देश में पवित्र पानी की घूंट के समान हैं। शक्तिशाली राष्ट्रों की राजनीति ने अपनी झूठी अपीलें और थोपे दर्शन से आज यूरोप में शान्ति के लिए प्रयत्न करने वालों को भी पर-भ्रष्ट कर दिया है। बहुतों का ऐसा विद्वान्त है कि न्याय की जबरन प्रतिष्ठा करना संभव है और इसमें शान्ति स्थापित हो सकेगी। वे बरसा पुराने उस गणविचार को भूल गये मालूम होते हैं कि जिसमें पोलैण्ड का विच्छेद हो जाने के उपरान्त एक महिला का शरीर जकड़कर और मुँह बन्द करके जमीन पर लिटाया हुआ और सिर में चोटी तक हथियारबन्द पुरुष को उसका पहरा लगात हुए दिखाया गया था और कहा गया था कि "वारसा में शान्ति स्थापित हो गई। वे भूल गये जान पड़ते हैं कि महायुद्ध के पश्चात् रूस पर जो हमले हुए उनसे बोलशेविक सरकार और भी ज्यादा मजबूती से अपना आसन जमाती गई, और जर्मनी पर प्रहार किये जाने का परिणाम हिटलर का सिंहासन पर बैठना हुआ है एवं "युद्ध का अन्त करने के उद्देश्य में किये जानेवाले युद्ध" के (जिसे हमने सकलतापूर्वक लड़ा है) बीस बरस बाद भी आज अपनेआपको हम और भी अधिक युद्ध से आकर्षित पाते हैं।

'हरिजन' में गांधीजी के शब्दों की पठना इस निरर्थक शोरगुल और मोलमाल की दुनिया में उठकर अधिक पवित्र और अधिक शुद्ध वातावरण से जाना है—अधिक शुद्ध इसलिए कि वह हमें युद्ध की भूल से ऊपर देखने की सामर्थ्य देता है और अधिक पवित्र इसलिए की वह सत्य की परमनिष्ठा से प्रेरित होता है।

अंग्रेज लोगों ने कभी-कभी गांधीजी को चालाक होने का दोषी ठहराया है। 'दानी' इसलिए पहनी है कि यद्यपि चालाकी स्वतः कोई आवश्यक रूप में बुरी वस्तु नहीं है, परन्तु यहाँ उसका उपयोग तिरस्कार के रूप में—सत्यनिष्ठ न होने के अपराध के रूप में—किया गया है। मैं तो इतना ही कह सकती हूँ कि पहले तो मैं महात्माजी में किये गये प्रश्नों और उनके द्वारा दिये गये उनके उत्तरों को 'हरिजन' में कुछ चिन्ता और आश्चर्य से पढ़ा करती थी, परन्तु अब तो पढ़ते हुए मुझे आनन्द के साथ-साथ यह विश्वास रहता है कि वह किसी भी कठिनाई से बचने की या उसे टालने की कोशिश नहीं करेगी। चाहे वे प्रश्न डॉ० जे आर मोट के हों, चाहे वे कागवा के हों और चाहे वे पेरी सेरीसोल के हों, सबका उत्तर वह नितान्त सच्चाई के साथ देंगे।

इस मूल्य के राजनीतिक और धार्मिक जगत् के अनेक वर्षों के अनुभव के बाद ऐसी ईमानदारी (सत्यनिष्ठा) का पाया जाना ईश्वरीय इत्तफाक ही है।

गोलमेड काफ़े में वक्त जब गांधीजी इंग्लैंड में थे तो वह "अपरिग्रह" पर भाषण देने गिन्टहाउस में आये थे। हाल खन्नाख भरा था और सैकड़ों लोग बाहर खड़े थे। हम बड़े ध्यान से यह सुन रहे थे कि एक ऐसे व्यक्ति को, जो अपरिग्रह के बारे में बातें-ही-बातें नहीं करता था, बल्कि जिसे उसका यथार्थ अनुभव भी था,

कहना क्या है। अतः मैं बहुत से सवाल किये गये। कभी-कभी महात्मा को उत्तर देने से पहले रुकना पड़ता था। बाद में मुझे मालूम हुआ कि वह सिर्फ इसलिए रुकते थे कि वह मानवी भाषा में अधिक-से-अधिक जितना सही और पूर्णतया सच्चा जवाब हो सके, दें। उनका यह कथन मुझे याद है कि 'परिग्रह का त्याग पहलेपहल शरीर से वस्त्र उतार देना जैसा नहीं, बल्कि हड्डी से मांस ही अलग करने जैसा लगता है।' आगे उन्होंने कहा था—“अगर आप मुझसे कहे कि लेकिन भाई गांधी, तुम तो एक सूती कपड़े का टुकड़ा पहने हुए हो। फिर कैसे कह सकते हो कि तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है?” तो मेरा उत्तर यह होगा कि ‘जब तक मेरा शरीर है, मेरे खयाल से मुझे उस पर कुछ-न-कुछ लपेटना ही पड़ेगा। मगर’... अपनी मोहिनी मुस्कराहट के साथ उन्होंने आगे कहा—‘यहां कोई चाहे तो इसे भी मुझ से ले सकता है, मैं पुलिस को बुलाने नहीं जाऊंगा।’”

माँ-बाप ब्रिटिश सरकार ने महात्माजी के साथ पुलिस के सिपाहियों की एक टुकड़ी कर दी थी। वे सब-के-सब उस वक्त गिल्डहाउस में खड़े-खड़े उनकी बातें सुन रहे थे। और दूसरों का तो कहना ही क्या, वे भी इसपर खिलखिला कर हँसना नहीं रोक सके।

जिन-जिन बातों से बहुत-से अंग्रेजों को आल्हाद हुआ उनमें एक बात यह भी थी कि उन्हें यह पता लगा कि उस महान् आत्मा में भी उन सब बातों पर विनोद करने और हँसने की प्रवृत्ति है, जिन पर हम सब की। मुझे अपनी बार में थोड़ी दूर उन्हें ले जाने का सौभाग्य मिला था। मार्ग में मुझसे उन्होंने मुझे सम्मानार्थ मिली हुई उपाधि के विषय में प्रश्न किया यह तुम्हारे आगे डी० डी० क्या लगता है? मैंने कहा कि ग्लासगो यूनिवर्सिटी ने मुझे सम्मानार्थ ‘डॉक्टर ऑफ डिविनिटी’ (ब्रह्मविद्या की आचार्या) की उपाधि दी है। ‘अरे’, वह बोले, ‘तब तो तुम परमात्मा के सम्बन्ध में सब कुछ जानती हो।’

थोड़ी देर तक मोटर में बिठला कर ले जाने की धुरआत कैसे हुई, यह मुझे अच्छी तरह याद है। गांधीजी ने क्वचन दिया था कि वह मेरी मोटर में अपनी दूसरी मुलाकात की जगह जायेंगे। लेकिन जब हम गिल्डहाउस के बाहर आये तो देखा लोगों की भीड़ उमड़ती आ रही है और मैं अपनी गाड़ी फौरन नहीं खोज सकी। लन्दन की हर एक गाड़ी बगल में होकर धीरे-धीरे निकलती मालूम होती थी, इस आशा में कि उसके ड्राइवर को उन्हें ले जाने का सौभाग्य मिल जाय। मौसम ठंडा और नम था और महात्माजी के शरीर पर काफी कपड़े नहीं थे। दुःखपूर्वक मैंने निर्णय किया कि मुझे उन्हें नहीं रोकना चाहिए और मैं बोली, “अगली गाड़ी में बैठ जाइये, मेरी गाड़ी की प्रतीक्षा न करें।” पर उन्होंने उत्तर दिया—“तुम्हारी गाड़ी के लिए ठहरा रहेगा।” मुझे लगा कि मुझे राजमुकुट मिल गया है। एकदम ईसा के एक अनुयायी के शब्द

मुझे सूझे कि "पाम कुछ न होकर भी सब कुछ" उसका है। गांधीजी के पास मोटर-गाड़ी कहां थी? लेकिन बीसा गाड़ियाँ उन्हें घरे खड़ी थीं, इस उम्मीद में कि वह किसी एक को चुन ले।

आज के समार से महात्माजी का सबसे अधिक आग्रह अहिंसात्मक अविरोध पर है। यह ज्ञान है जो उन्होंने, और उन्होंने ही, जीवन के सत्तर बरसों के अनुभव के उपरान्त पाया है और उनका इसमें विश्वासमान ही नहीं है, बल्कि वह दिन-प्रति-दिन दृढ़ से दृढ़तर होता जा रहा है कि वह हिन्दुस्तानभर ही की नहीं, समस्त संसार की रक्षा कर सकता है। जब इस विषय पर उनसे प्रश्न किये जाते हैं तो वे यूरोप के घृणा और हिंसा के वातावरण से घबराकर उत्कट उत्कण्ठा के साथ उनके विचार पड़ती हैं।

इन सबसे बढ़कर, एक महिला के नाते मैं उस महात्मा से अधिक-से-अधिक माशा रखती हूँ।

"हरिजन" के हाल के जिन्दी अंक में वही महत्वपूर्ण प्रश्न, जो प्रायः यहाँ के स्त्री-पुरुषों से पूछा जाता है, गांधीजी से भी पूछा गया था कि अगर किसी महिला के सनीव पर हमला हो तो उसे क्या करना चाहिए? अब महात्मा का उत्तर क्या होगा? क्या वह प्रश्न को उड़ा जाएंगे? या कहेंगे कि मैं महिला पोंडे ही हूँ जो उनको इस प्रश्न का उत्तर दूँ? तो फिर क्या कहेंगे? क्या जवाब देंगे?

उनका उत्तर मिला कि महिला का इसका विरोध करना चाहिए, चाहे फिर उस विरोध में उसे मरना भी पड़े। किन्तु किसी और प्रकार से हिंसा का आश्रय नहीं लेना चाहिए। स्त्री-शक्ति के नाम पर मैं उन्हें प्रणाम करती हूँ। अपनी इज्जत और छद्मा की दृष्टि से महिला की स्थिति पुरुष से अनन्त भिन्न है, क्योंकि उसकी इच्छा के विपरीत उसकी गिरावट हो सकती है, यह भयकर धारणा जो आज दुनियाभर में आम तौर पर फैलाई जाती है, उनके इस उत्तर से स्पष्ट हो जाती है। वास्तव में यह सच नहीं है—अर्थात् किसी भी व्यक्ति, स्त्री या पुरुष, का दूसरे के द्वारा की गई किसी भी चीज से पतन नहीं हो सकता। हम स्वयं ही अपना पतन स्वतः कर सकते हैं। अवश्य ही ऐसी बात भी है जो 'मृत्यु से भी बुरी' है और पतन उनमें से एक है। किन्तु इसका अस्तित्व हमारे अपन कार्य या इच्छा को छोड़कर किसी भी दूसरे के कार्य या इच्छा में नहीं है। गांधी के सिवाय क्या किसी ने यह उत्तर देने का साहस किया है? उसके लिए हम सब महिलाओं के वह आदर के पात्र हैं।

क्या दुनिया को वह समझा सकते हैं? इस बात की कल्पना करते भय लगता है कि आज पश्चिम में जो शक्ति में इतनी श्रद्धा बढ़ती जा रही है, वह कदाचित् महात्माजी के अपने देशवासियों पर पड़े असर को दबा दे और उन्हें यह यकीन दिला सके कि शक्ति ही शक्ति का मुकाबिला कर सकती है। यह तो न केवल हिन्दुस्तान ही, बल्कि

ब्रिटिश साम्राज्य और तमाम दुनिया के लिए एक दुःखदायी घटना होगी। अकेले यूरोप में ही नहीं, पश्चिम के दोनो अमेरिका महाद्वीपों में ही नहीं, बल्कि पूर्व में भी आपान में, कनफ्यूशियस के शांतिवादी चीन तक में, हिंसा में विश्वास जड़ पकड़ता जा रहा है। क्या हिन्दुस्तान इस पर अटल रहेगा? सघर्षशील सत्तार में क्या एक हिन्दुस्तान ही सत्य पर डटा रहेगा और हमें प्रकाश दिखाता रहेगा? अगर हाँ, तो सत्तार सुरक्षित है। अगर नहीं, तो ?

ओ, हिन्दुस्तान, हमें निराश न करना।

: ४२ :

सच्चे नेतृत्व के परिणाम

राइट आनरेबुल, चाइकाउएट सेम्युअल, जी सी. बी., जी बी. ई., डी.सी. गल
[लन्दन]

समय समय पर गांधीजी ऐसे कार्य कर देते हैं और ऐसी बातें कह देते हैं जिनसे मेरा जी खीज उठता है। वे बातें मुझे अप्रकियुक्त और दुराग्रहपूर्ण मालूम होती हैं। मैं अपनेआपकी उनका समर्थन नहीं करना चाहता। ऐसे मोड़ों अक्सर कम नहीं आया करते। फिर भी, यह सब होते हुए भी, मुझे विश्वास है कि गांधीजी एक ऐसे पुरुष हैं जो नितान्त सच्चाई और सर्वांगीण आत्मवलिदान की लय के साथ, कभी इस मार्ग से, तो कभी उस मार्ग में, थोड़ा ध्येय की ओर प्रगतिशील हैं।

चाहिए कि दुनिया अपने महापुरुषों को पहचाने। सत्तार अपने महान् सेवकों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करे। यद्यपि यह व्यंग्य ही में कहा जाता है कि "मृत पर जब फूल चढ़ते हैं तो जीवन को काँटे ही मिलते हैं।" पर हमें कभी जीवन पर भी, यदि वह इसके योग्य है तो फूल चढ़ाने चाहिए।

अपने लम्बे जीवन में गांधीजी ने हिन्दुस्तान की, और हिन्दुस्तान के द्वारा समस्त मानव-जानि की, असंख्य सेवाएँ की हैं। उनमें से तीन मुख्य हैं।

उसका ऐसा जन-समाज मिला, जिसकी अपनी विशेषता थी 'पूर्वीय दबकूपन।' शत्रु से हारना, शासित होना, पिछड़े हुए, अशिक्षित, अन्धविश्वासी और दरिद्र बने रहना यही हो गया था हिन्दुस्तान के असंख्य लोगों के भाग्य का—अनीति के इतिहास में अनुशासित और वर्तमान की अनिवार्य परिस्थितियों से बाध्य—एकमात्र निपटारा। इस सबको बदल डालने के लिए गांधी उस आन्दोलन का नेता बनकर आगे आया, जो उस समय साधारण और डाँवाडोल हालत में था। अपने गुणों के बल से उसे शीघ्र ही प्रधानता मिल गई। उसके पास थी वह आत्मिक तेजस्विता और उसके साथ व्यवहार-

क्षम कठोर निर्धारण शक्ति, जो जब कभी संयोगवश प्रकट होती है तब जनता को आन्दोलित कर देती है और जिन्हें विजयघोष से प्रनिध्वनित सफलताय वरण करती है।

गांधी ने हिन्दुस्तान का अपनी कमर सीधी करना सिखाया, अपनी आँखें ऊपर उठाना सिखाया और मिलाया अविचल दृष्टि में परिस्थितियों का सामना करना। कहा गया है—“जीवन को समझने के लिए भूतकाल की ओर और उभे सफल बनाने के लिए भविष्य की ओर देखना चाहिए।” गांधी ने अपने दशवासियों को उसमें आत्मविस्मृत होने के लिए नहीं बरन उससे शिक्षा ग्रहण करने के लिए, अपने भूतकाल का अध्ययन करना सिखाया। गांधी ने उन्हें अपने वर्तमान को अपने खूबइस्त हाथों से पकड़ने की प्रेरणा दी, जिससे वे जागृत रहकर अपने भविष्य का निर्माण कर सकें। गांधी ने उन्हें “भविष्य की ओर देखना” सिखाया और इस गौरवपूर्ण जीवन की प्राप्ति की दिशा में किये जानेवाले भगीरथ प्रयत्न में उन्होंने इस दान की प्रधानता दी कि हिन्दुस्तान को महिलाओं को पुरुषों का हाथ बँटाना चाहिए।

अप्रेज जानि आत्मसम्मान-प्रिय होती है। इसी कारण हम दूसरों के आत्मसम्मान को भी इज्जत करते हैं। मुझे यह कहने हिचकिचाहट नहीं होती कि—पिछले वर्षों के तमाम पादविवाद और तमाम कशमकश के होने हुए—अप्रेज लगा में आज हिन्दुस्तानी लोगों के लिए इतना अधिक सच्चा आदर है जितना उन दानों के पारस्परिक सन्ध्या को सनाइियों में कभी नहीं हुआ।

हिन्दुस्तान में मनुष्य-जाति का छठा भाग बसा हुआ है। किसी भी एक व्यक्ति से नहीं बँडकर गांधी ने मानवजाति के इस बड़े हिस्से को अपने जीवन-स्तर को उठाने और आत्मा का उत्थान करने में योग दिया है। हिन्दुस्तान इसके लिए उनका इतना क्या न हो ? और ब्रिटेन को कृतज्ञ क्या न होना चाहिए ? और समस्त समार या भी कृतज्ञ क्या नहीं होना चाहिए, जो प्रकारान्तर से तथा अशत इस लाभ का उपयोग करता है ?

यद्यपि इस आन्दोलन में कुछ भीषण अपराध और अत्याचार के काले घब्वे बढे हैं परन्तु वे गांधी की प्रेरणा से बढे हुए ? वे तो उनके द्वारा किये गये हार्दिक बाधों के स्पष्ट उल्लेखन में ही घटित हुए थे।

हमारा महान् कार्य जिसने उनका नाम रोशन कर दिया यह है कि उन्होंने स्वतन्त्रता साध्य और अहिंसा साधना का सफल और अभूतपूर्व सामञ्जस्य कर दिखाया। राय प्रकाश, अनुनय-विनय, आवश्यकता पडे तो आज्ञाभंग किन्तु बल-प्रयोग नहीं, विरोध की हथ्या नहीं, चलात्कार नहीं, बलवा नहीं—यही उनका सवेस था और है।

हिन्दुस्तान में ऐसी नीति जनता के चारित्र्य के अनुकूल ही है। वह अधिक आत्म-वलिदान की अपेक्षा रखती है जिसके लिए वह सर्वदा सज्ज है। साथ ही इसका उनको विवेक-बुद्धि से अच्छा मेल बैठ जाता है। यह एक ऐसा आचरण है जो प्रमुख

रूप से उस प्रायः दुरुपयुक्त शब्द के अच्छे-से-अच्छे अर्थ में धार्मिक है। इसका परिणाम भी शुभ हुआ है। विशाल जन समुदाय के बलिष्ठ प्रयत्न और अहिंसा दोनों ने मिलकर अदूरदर्शी किन्तु स्वाभाविक रूप से होनेवाले विरोध पर किसी भी प्रतिगामी नीति से कहीं अधिक शीघ्रता और पूर्णता से विजय पा ली है।

गांधीजी का तीसरा महान् कार्य यह हुआ है कि उन्होंने शक्ति और लगन के साथ दलित वर्गों का प्रश्न हाथ में लिया और उसे भारतीय राजनीति में आगे लाकर सफलता के पथ पर बिठला दिया है।

जो हिन्दुस्तान के सच्चे हितापी हैं उन्हें यह साफ-साफ कहना चाहिए कि दलित जातियों के प्रति उनका यह व्यवहार भारत के सामाजिक और धार्मिक इतिहास पर एक काला घन्टा है। वह धर्म कैसा है, जो इतने बड़े जन समूह को बिना किसी अपने खुद के अपराध के तिरस्कृत करता है? जो पहले उन्हें गिराता है और फिर उन्हें पद-दलित करता है, केवल इसी कारण कि वे पतित हैं? सच्चा धर्म तो वह है जो मानवीय आत्मा को दमन करने का नहीं, बल्कि उद्धार करके उसे ऊँचा उठाने का आदेश देता हो।

गांधी ने अपनी सूक्ष्म और तीक्ष्ण अन्तर्दृष्टि से यह सब देख लिया और इसका उनपर मार्मिक आघात हुआ। निरन्तर विरोध होते हुए भी उन्होंने उन करोड़ों पीड़ित मानवों को ऊँचा उठाने का और इस कलक से देश को छुड़ाकर उसे सभ्यता के ऊँचे आसन की ओर ले जाने का अविराम और अथक प्रयत्न किया है। और अब वह देख सकते हैं कि वह आन्दोलन धीरे गति से जड़ पकड़ता जा रहा है, और अनुभव कर सकते हैं कि उसकी अंतिम सफलता अवश्यभावी है।

X

X

X

सत्तर वर्षों के अपने जीवन का सिंहावलोकन करते हुए क्या दूसरा कोई जीवित पुरुष इतने महान् कार्यों को देख सकेगा? उन्होंने एक विशाल राष्ट्र की आत्मा का उत्थान करने और गौरव को बढ़ाने में नेतृत्व किया, उन्होंने आज की तथा कल की दुनिया को यह दिखाने में नेतृत्व किया कि सार्वजनिक कार्य-क्षेत्र में केवल मानव आत्मा की शक्ति मात्र से ही, पाशाविक शक्ति का आश्रय लिये बिना बड़े-बड़े शुभ परिणाम निकाले जा सकते हैं, और उन्होंने करोड़ों अन्याय-पीड़ितों को सदियों से चली आ रही अपनी पतित-वस्था से उद्धार करने में नेतृत्व किया।

सिंहावलोकन के इस क्षण में गांधीजी अपने इस निरीक्षण से पूर्ण सन्तुष्ट हो सकते हैं। दूसरे लोग भी उनकी अपनी-अपनी थड़ाजलियाँ अर्पण करें। उन्हें अक्सर तीखे-तीखे काटे चुभाये गये हैं। आइए, अब हम उन्हें वृत्तज्ञता के फूल अर्पण करें।

गोलमेज़ कान्फ्रेंस के संस्मरण

लार्ड सैक्री, एम. ए., डी. सी. एल.

[सन्दर्भ]

इस लेख में, मैं गांधीजी के जीवन या उनके सामाजिक और राजनैतिक विचारों की आलोचना नहीं करना चाहता। उनके चरित्र की शक्ति इस बात से काफी सिद्ध है कि उनके अनुयायी उनकी अमर्यादित प्रशंसा करते हैं और उनके विरोधी तीव्र निंदा। प्रस्तुत लेख व्यक्तिगत है और एक प्रशंसक द्वारा लिखा गया है जो उनके सब विचारों से पूर्णतः सहमत नहीं है।

मैं गांधीजी से पहली बार १३ सितम्बर १९३१ को मिला। हम गोलमेज़-कान्फ्रेंस की सभ-योजना कमेटी में कुछ महीनों तक रोड घण्टी एक-दूसरे के बराबर बैठे रहे। उसके बाद वह भारत लौट गये और फिर मुझे उनसे मिलने का मौका नहीं मिला। अत्यन्त कठिन विवाद के समय और अनेक चिन्तायुक्त क्षणों में एक आदमी के नज़दीक बैठने के बाद या तो उसे आपको पसन्द करना होगा या नापसन्द, और मैं आशा करता हूँ कि मेरी गणना गांधीजी के मित्रों में की जा सकती है।

वह सभ-योजना कमेटी की बैठकी में उपस्थित होने के लिए इंग्लैण्ड आये थे, और मेरा परिषय उनसे लन्दन के डोरचेस्टर होटल में एक मुलाकात के समय हुआ। यह अफवाह फैल चुकी थी कि वह आनेवाले हैं, इसलिए बाहर बड़ी भीड़ जमा थी। उनका कद छोटा था, वह सफेद कपड़े पहने थे, किन्तु वह इस तरह चलते थे मानो उन्हें अपने गौरव और स्याति का भान हो। उनका दृष्ट्य रूप आकर्षक था, किन्तु मुझपर सबसे ज्यादा असर डाला उनकी बड़ी-बड़ी और चमकीली आँखों ने, जिनसे आप कभी उनके भीतरी विचारों और विश्वासों का पता लगा सकते हैं।

यह सभ-योजना कमेटी का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। इसलिए कहा गया कि उनके साथ कमरे में अलग एक तरफ एकान्त में स्थिति-वर्षा करले। वहाँ एकान्त में उन्होंने मेरे सामने विस्तार के साथ अपने विचार रखे। उन्होंने भारत को नीचा दर्जा मिलने की शिकायत की, किन्तु उनकी मुख्य चिन्ता का विषय सरकार का वह विशाल व्यय प्रतीत होता था जिसके कारण, उन्होंने कहा, गरीबों पर भारी कर लद गये हैं। सारी बातचीत के दौरान मैं गरीबों के लिए उनकी चिन्ता ही उनका प्रधान विषय था। वह भारत के देहाना में रहनेवालों के भाग्य के बारे में विशेष रूप से चिन्तित थे और

इस बात से सहमत थे कि अति उद्योगीकरण एक बुराई है। उन्होंने मुझे सत्याग्रह का अपना मर्म समझाया और जब भारत की रक्षा का सवाल उठा तो उन्होंने हिन्दुओं के अहिंसा-सिद्धांत पर खास तौर पर जोर दिया।

लम्बो मुलाकात के अन्त में उनके बारे में बहुत स्पष्ट विचार न बनाना असंभव था। शुरू में, अखीर में और हर घड़ी उनकी धार्मिक भाव-प्रवणता स्पष्ट थी।

मुझे अनुभव हुआ कि टॉलस्टॉय के विचारों का उनपर असर पड़ा है। उनके खयाल से सामाजिक बुराइयों का इलाज था सादे जीवन का लौट जाना। दूसरे वह महान् हिन्दू देशभक्त प्रतीत हुए। उनके हृदय में अपने देश का प्रेम प्रज्वलित था और थी उसकी प्रतिष्ठा और स्वाति को बढ़ाने की कामना एव गरीबों और पीड़ितों को सहायता पहुँचाने की लगन। अन्तिम बात यह है कि वह निर्विवाद रूप से महान् राजनैतिक नेता थे, क्योंकि यह स्पष्ट था कि न केवल अन्तिम ध्येय के खारे में, बल्कि उसकी सिद्ध करनेवाले साधनों के बारे में भी उनका विश्वास सच्चा और दृढ़ था।

कमेटी की पहली बैठक लन्दन के सेंट जेम्स पेलेस में १४ सितम्बर को हुई। वह गांधीजी का मौन-दिवस था। अतः उन्होंने एक शब्द भी न बोला। मंगलवार १५ ता० को उन्होंने अपना पहला भाषण दिया और उस समय लिया हुआ डायरी का यह नोट शायद मनोरंजक प्रतीत होगा—“गांधी बहुत धीमे और विचारपूर्वक बोले, एक मिनट में ५७ शब्द बिना किसी नोट के वह करीब एक घंटे तक बोले। उन्होंने अपने दोनों हाथ जोड़े और ऐसा मालूम पड़ा जैसे शुरू करने से पूर्व वह प्रार्थना कर रहे हैं। वह सेरी बगल में बैठे थे। पैरों में चप्पल और घुटनों के ऊपर तक की घोंती। और एक बड़ी सफेद शाल ओढ़े हुए थे।” उन्होंने भारत की आजादी और सेना तथा अर्थ पर भारतीयों को नियन्त्रण देने की मांग की। उस कान्फ्रेंस के शारीरिक और मानसिक बोझ को गांधीजी ने कैसे सहन किया, इसका मुझे सदा आश्चर्य रहा है। उस समय जो नोट लिया गया था, उससे पता चलता है कि कभी-कभी नित्य अस्सी हजार शब्द वहाँ बोले जाते थे।

किन्तु गांधीजी का असली काम तब शुरू हुआ जब कान्फ्रेंस स्थगित होगई। रात को बहुत देर तक और सबेरे बड़े तडके वह घण्टों विभिन्न हिन्दुओं के प्रतिनिधियों के साथ बातचीत और मुलाकाते करते और उन्हें अपने विचारों का बनाने का शक्ति-भर प्रयत्न करते। प्रधान मंत्रियों और डिप्टी के पास अपने लोगों पर अपने विचार मोपने के साधन और अवसर होते हैं, किन्तु यह सन्देहास्पद है कि गांधीजी के अतिरिक्त कभी कोई ऐसा आदमी हुआ हो, जिसने लाखों आदिमियों को अपने पक्ष में कर लिया हो और वह अपने जीवन और प्रयत्नों के उदाहरण से।

यह मेरा सीमावर्ष था कि कान्फ्रेंस के दौरान में मुझे भारतवर्ष के अनेक विशिष्ट पुरुषों, बूढ़ों और जवानों तथा सभी धर्मों और श्रेणियों के लोगों से मिलने का अवसर

मिला। वे सब गांधीजी में सहमन रहे हों या न रहे हा पर उनके असाधारण व्यक्ति में सभी प्रभावित थे।

समय-समय पर वह अन्तर को आवाज से प्रेरित हाते प्रतीत होते थे। ससार के इतिहास के विभिन्न समयों में अन्य महान् पुरुषों का भी ऐसा ही अनुभव हुआ है। उदाहरण के लिए मुकरात और सन पाल के नाम लिये जा सकते हैं। कौन जाने ऐसे व्यक्ति पागलों के स्वप्न देखते हैं अथवा अलौकिक बुद्धिमानी के अधिकारी होते हैं, किन्तु कम-से-कम वह उन लोगों पर, जो उनके सम्पर्क में आते हैं, आदेशात्मक प्रभाव रखने प्रवीत होते हैं। गांधीजी राजनैतिक योगी हैं, कभी असम्भव किन्तु हमेशा धार्मिक और इस बात के लिए सदा उत्सुक कि भारतवर्ष और गुरोवों के लिए क्या किया जा सकता है।

उनके राजनैतिक जीवन के बारे में कुछ कहना मरा काम नहीं है। राजनीतियों के साथ कभी-कभी कठोरता का व्यवहार किया जाना है। अपने 'Sesame and Lilies' नामक ग्रन्थ में एक प्रसिद्ध स्थल पर जॉन रस्किन कहते हैं "हम यदि किसी मंत्री से दस मिनट के लिए बात करें तो हमें ऐसे सन्धों में उत्तर मिलगा जो मौन से बदतर और भ्रामक होंगे।" यदि रस्किन स्वयं राजनैतिक नेता हुए होते तो उन्होंने भिन्न व्यवहार किया होता, यह सन्देहास्पद है। और जब पश्चिमी राजनीतिज्ञ गांधीजी के राजनैतिक जीवन की कुछ कटु आलोचना करते हैं तो उन्हें यह अनुभव करना चाहिए कि जो लोग काँच के मकानों में रहते हैं उनका दूसरों पर पत्थर फेंकना कहाँ तक ठीक हो सकता है ?

इसमें सन्देह नहीं कि गांधीजी के आदर्श उच्च हैं, किन्तु कभी-कभी मैं आश्चर्य करता हूँ कि यदि उनकी न केवल अपने लोगों में बल्कि भारतवर्ष की विशाल जन-धन्य पर जिसमें अनेक धर्म और जानियाँ हैं, सत्ता प्राप्त होती और उनकी जिम्मेदारी उनके सिर पर होती तो वह क्या करते ? ऐसी परिस्थिति में राजनीतिज्ञ को उपायों और साधनों का विचार करना पड़ता है। किन्तु उपाय और साधन ऋषियों के लिए नहीं होते और अन्त में आमनीर पर राजनीतिज्ञों पर ऋणित विजयी हो जाते हैं।

यदि मेरा विचार पूछा जाय तो जब गांधीजी का जीवन पूर्ण हो जायगा तो वह आमनीर पर माना जायगा कि अपने प्रयत्नों के फलस्वरूप वह दुनिया को उससे अच्छी अवस्था में छोड़ गये, जो कि उनके आगमन के समय उसकी अवस्था थी।

हिन्दुत्व का महान अवतार

डॉ. एस. शर्मा, एम. ए.

[पत्रियप्पा कालेज, मदरास]

एक अमेरिकन यात्री ने एक बार कहा कि वह हिन्दुस्तान में तीन चीजें देखने आया है—हिमालय, ताजमहल और महात्मा गांधी। हम इस देश में महात्मा गांधी के इनने निकट है कि उनके व्यक्तित्व को वास्तविक रूप में नहीं देख सकते। न ही यह समझ सकते कि जिन्हें वह अपने सत्य के प्रयोग कहते हैं उनका मानव इतिहास में क्या महत्व है। उन्होंने खुद कहा है कि उनका सन्देश सर्व-व्यापी है, हालांकि वह भारत में और भारतीय राजनीति के क्षेत्र में दिया गया है। किन्तु राजनीति मनुष्य का बहुत छोटा-सा भाग है। उसका अन्तिम उद्देश्य तो है मानव-जाति की उच्च नैतिक और आध्यात्मिक सतह पर ले जाना।

हमने इस यात्रा में आकाश-विजय को देखा है। हम उन साहसी स्त्री-पुरुषों की नित्य ही बाने सुनते हैं जो भयकर खतरों का जरा भी खयाल किये बिना थल और जल पर हजारों मील उड़कर एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप को जाते हैं। जैसा कि हम सब जानते हैं, वायुयान के आविष्कार ने और युद्ध तथा शांति के कामों के लिए राष्ट्रों द्वारा उसको तेजी के साथ अपनाने ने इतिहास का नया पृष्ठ खोल दिया है। किन्तु महात्मा गांधी का आविष्कार मनुष्य-जाति के लिए वायुयान से भी अधिक महत्वपूर्ण है और उसके भाग्य पर शताब्दियों तक असाधारण प्रभाव डालेगा। उनका सत्याग्रह आध्यात्मिक आकाश-विद्या के अलावा और कुछ नहीं है जब हम उसे ठीक रूप में समझेंगे और उसपर सही-सही आचरण करेंगे तो वह न केवल व्यक्ति या को, बल्कि राष्ट्रों को मनुष्यों में रहे हुए सिंह और बन्दर के स्वभाव में उड़कर उस रहस्यमयी आध्यात्मिक पूर्णता की ओर ले जायगा जिसे हम ईश्वर कहते हैं। कुछ लोग उनके अहिंसा के सिद्धान्त पर, जिसे वह आत्म-शक्ति कहते हैं, हँस सकते हैं, और पूछ सकते हैं कि जब उसे मशीनगन या विस्फोटक बम का सामना करना पड़ेगा तो उसका क्या होगा? स्पष्ट है कि उन्होंने ईसाइयत की गाथा को नहीं समझा है। व हमको पार्लमेंट के उस सदस्य की याद दिलाते हैं—वह गायद नरम दल का प्रतिनिधि था, जिसने नव-आविष्कृत रेलवे एंजिन के शोर में बहस करते हुए कहा था कि यदि प्रस्तावित सड़क पर किसी क्रुद्ध कीड़े ने उस पर हमला किया तो क्या

होगा ? किन्तु सी वषं वाद, अथवा सम्भवतः हजार वषं वाद, क्योंकि मनुष्य आध्यात्मिक जगत में अभी निरा शिशु हैं, जब यूरोप के तमाम वर्तमान सैनिक अधिनायक अपनी कत्तों में मिट्टी हो चुकेगे, और वह वरंर शस्त्रास्त्रा का ढेर जिसे वे बड़ाये जा रहे हैं, नष्ट हो चुका होगा तब इस दुर्बल हिन्दू द्वारा अविष्कृत आध्यात्मिक शस्त्र सर्व-व्यापी बन जायगा और दुनिया के राष्ट्र उसे आशीर्वाद देंगे कि उसने उन्हें श्रेष्ठतर मार्ग बताया—ऐसा मार्ग जो मानव-प्राणियों के लिए वस्तुतः उपयुक्त है। उस समय उसका सब लोग परमात्मा का सच्चा दूत मानेंगे, जिसका सन्देश बुद्ध, ईसा अथवा मुहम्मद की भाँति एक देश या जाति के लिए सीमित नहीं है।

हिन्दू-धर्म दुनिया का सबसे पुराना धर्म है। उसके पीछे चालीस शताब्दियों का अटूट इतिहास है। उसके दर्शन-शास्त्र अभी बन्द नहीं हुए हैं। वह सदा नवीन धर्मों की घोषणा, नये नियमों के प्रचार और नये ऋषियों और अवतारों के आगमन की कल्पना करता है। एक शब्द में वह सत्य की क्रमिक मिडि है, और आज वह पुनर्जीवन के युग में मे होकर गुजर रहा है और उसके इतिहास में स्मरणीय अध्याय जोड़ा जा रहा है। क्योंकि महात्मा गांधी, जो हिन्दू आध्यात्मिकता के सच्चे अवतार हैं और प्राचीन ऋषियों की श्रृंखला की प्रत्यक्ष कडी हैं, हिन्दू धर्म के शाश्वत सत्यों की पुनर्व्याख्या कर रहे हैं और उनको मौजूदा दुनिया की परिस्थितियों पर आश्चर्यजनक मौलिक रूप में लागू कर रहे हैं। उनका सत्याग्रह का सन्देश, जैसा कि वह कहते हैं, हिन्दूधर्म के अहिंसा सिद्धान्त का केवल विस्तार है और राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर लागू किया गया है। भारतवर्ष के अलावा आवश्यक धार्मिक भूमिका रखनेवाला कोई देश नहीं है, जहाँ कि इस महान् सिद्धान्त जिसका उद्देश्य मानव में देवत्व जगाना है, विस्तृत और परिपूर्ण बनाया जा सके। उनका स्वराज्य, जो अहिंसा द्वारा प्राप्त किया जायगा और जिसमें सब धर्मों के साथ समान व्यवहार किया जायगा और सब जातियों को समान अधिकार और सुविधायें प्राप्त होंगी 'एवम सद् विप्र बटुषा वदन्ति' इस हिन्दू-सिद्धान्त की राजनैतिक व्याख्या मात्र है। उन्होंने अस्पृश्यता-निवारण और आधुनिक जाति-भेद की असमानताओं को दूर करने के लिए जो महान् आन्दोलन सुरु किया है, उनका उद्देश्य वर्णाश्रमधर्म-भावना की मौलिक पवित्रता को पुनः स्थापित करना है, जो उनके विचार में पृथ्वी का सबसे महान् साम्यवाद है। उन्होंने भारत के देहानों में चर्म और कपड़े के पुनरुद्धार की हादिक अपील की है और इस देश में सम्पूर्ण मध्य-नियेय के लिए जो दलीलें दी हैं वे हमको भारतीय सभ्यता के उस स्वरूप की याद दिलाती हैं, जिसे हमको हर कीमत पर कायम रखना है। और सबसे अधिक, वे जिस प्रकार सब राजनैतिक और सामाजिक समस्याओं को धार्मिक दृष्टिकोण से देखते हैं, जीवन के हर क्षेत्र में सत्य और अहिंसा पर जोर देते हैं और दैनिक जीवन की हर प्रवृत्ति में मनुष्यमात्र की आध्यात्मिक एकता को स्वीकार करते हैं, ये सब हिन्दू-धर्म के

उत्कृष्ट पहलू हैं। इसके अनिश्चित उन्होंने सन्यास द्वारा, उपवास और प्रायश्चित्त द्वारा और त्यागमय जीवन द्वारा आधुनिक जगत में जहाँ हमारी इद्रियो को भ्रष्ट करने के अनेक साधन उपलब्ध हैं, हिन्दू-धर्म के ब्रह्मचर्य, तपस्या और वैराग्य के प्राचीन आदर्शों को प्रस्थापित किया है। इस प्रकार महात्मा गांधी, कथन और व्यवहार दोनों के द्वारा, हिन्दुत्व के उस भविष्य की ओर इंगित कर रहे हैं जो उसके भूतकाल के समान ही उज्ज्वल होगा। निस्सन्देह हिन्दू-धर्म के इतिहास में महात्मा गांधी महान् रचनाशील महापुरुषों में से एक हैं और उनके भाषण और लेख हिन्दुओं के पवित्र धर्म-ग्रन्थों के अग वनकर रहेगे।

: ४५ :

महात्मा : छोटा पर महान्

क्लेयर शेरीडन

[लन्दन]

कोई भी आदमी जो उस छोटे-से महान् महात्मा से नहीं मिला है, उसके लिए उनके असली व्यक्तित्व को समझना प्रायः असम्भव है।

इंग्लैण्ड में समाचारपत्र जान-बूझकर उनके विषय में गलत बातें लिखते हैं। यदि उनके साथ न्याय किया जाय तो उनका प्रकाशन उतना ही हो, जितना कि अधिनायकों का होता है। मैंने बहुधा खयाल किया है कि यदि अमुक दिन और अमुक घण्टे समुद्र पार से दिये जानेवाले आक्रामक और शोषीभरे भाषण सुनने के बजाय दुनिया महात्मा गांधी की आवाज और उनके कुछ विशुद्ध सत्यों को सुन सकती तो कितना आश्चर्य, कितना आनन्द उसे होता। वह वाणी कितनी प्रकाशदायक और कितनी शिक्षाप्रद होती—स्पष्ट स्पष्टीकरण, आदर्श सत्य विचार, घृणा का काम नहीं और न हिंसा की धमकी।

मुझे स्मरण है कि जब लार्ड लण्डनडैरी ने मुझसे पूछा था कि "क्या गांधी हमने बहुत घृणा करता है?" तो मुझे कितना आश्चर्य हुआ था।

गांधी व्यक्तिज्ञ या सामूहिक रूप में घृणा कर भी सकते हैं, यह कल्पना ही प्रकट करती है कि हमने उनकी प्रवृत्ति को समझने में गहरी भूल की है।

मुझे गोलमेज कान्फ्रेंस के दिनों उन्हें बहुत नजदीक में देखने का सुअवसर मिला है। मेरी मित्र सरोजनी नायडू ने द्वारा महात्माजी को इस बात के लिए राजी किया गया कि मैं उनकी प्रस्तर मूर्ति बना सकता हूँ।

यह काम आसान न था। वह मेरी इच्छानुसार बैठने को तैयार न थे। इसका

कारण या तो उनकी विनम्रता हो, या कायाधिक्य हो अथवा उनको कला में दिलचस्पी ही न हो। सम्भवतः तीनों ही कारण हो।

मुझे याद है कि लेनिन ने भी ऐसी ही शर्तें लगाई थीं, जब कि मुझे सन् १९२० में जेमेलिन में उनके काम करने के कमरे में प्रवृष्टि होने की आशा मिली थी। इन दोनों में एक विचित्र समानता है। दोनों ही भावुक आदर्शवादी हैं, हालांकि हिंसा के महत्व के सम्बन्ध में वे अलग-अलग मत रखते हैं।

जब पहली मनेवा में महात्मा के सामने पहुँचा तो उन्होंने ठीक वही कहा जो लेनिन ने कहा था—“मैं खबर नहीं बैठ सकता। आप मुझे अपना काम करते रहने दें और फिर जितना सम्भव हो उतना अपना काम कर ले।”

गांधीजी फर्श पर बैठकर कानने लगे। लेनिन अपने दफ्तर में कुर्सी पर बैठकर पढ़ते रहे थे।

दोनों अवसरों पर मुझे भीन अक्का का भान हुआ, किन्तु दोनों ही उदाहरणों में वह पारस्परिक घनिष्ट मित्रता में परिणत होगया। एक दिन गांधीजी ने लेनिन की ही भांति प्रायः उन्हीं शब्दों और उसी व्यंग्यपूर्ण मुस्कराहट के साथ कहा—

“हाँ, तो तुम मि० विन्स्टन चर्चिल के भतीजे हो।”

यह वही पुराना वितोद था—विन्स्टन का एक सम्बन्धी उसके कट्टर शत्रु से मित्रता (हाँ ?) कर रहा है। और गांधीजी ने बात आगे चलाई—

“तुम्हें नाकाम है न, वह मुझसे मिलना नहीं चाहते ? किन्तु तुम उनसे मेरी ओर न कहना, कहोगे न, कि मैं तुमसे मिलकर कितना प्रसन्न हुआ हूँ।”

लेनिन ने करीब-करीब इसी तरह कहा था—“तुम अपने बच्चा से कहना”

आदि।

जब मैं उन दोनों की छवि पूरी कर चुका तो मैंने दोनों से यही प्रश्न किया—आपका इस मूर्ति के बारे में क्या खयाल है ? और दोनों ने एक-सा उत्तर दिया—“मैं नहीं जानता। मैं अपने ही चेहरे के बारे में क्या कह सकता हूँ, और मैं तो कला के विषय में कुछ जानना भी नहीं, किन्तु तुमने काम अच्छा किया है।”

मैं कभी-कभी आश्चर्य करता हूँ कि इन दो व्यक्तियों में ये दुनिया पर कौन अधिक असर छोड़ जायगा।

जहाँ तक हम का सम्बन्ध है, प्रतीत होता है कि लेनिन का सिवाय इसके वहाँ कोई चिन्ह नहीं छूटा है, कि उसका शरीर बाच के सन्दूक में सुरक्षित रक्खा है। किन्तु अभी निर्णय करना बहुत जल्दी करना होगा। ईसाइयत को पैरो पर खड़े होने में दो नौ वर्ष लगे थे।

गांधीजी अभी क्रियाशील हैं। उनके काम का फल निकलना शुरू हुआ है।

मेरी मान्यता है कि दोनों व्यक्तियों ने मसार को कभी नष्ट न होने वाला मदेश

दिया है। यह ऐसा संदेश है जो तिरस्कृतों और पददलितों को माहस प्रदान करता है। यह वह संदेश है जिसने झुके हुएों की सिर ऊँचा करने की मामर्घ्य दी है और इस दुनिया में उन्हें अपने स्थान का परिचय कराया है।

गांधीजी के संदेश में आध्यात्मिकता की मात्रा है जो उसे दैवी सन्तुष्टि पर पहुँचा देती है।

जो लोग लेनिन के उद्देश्य के लिए मरे, उन्हें वीर समझा जा सकता है किन्तु जो गांधी के नाम पर मरे वे बहादुर और अहिंसक दोनों ही प्रतीत होते हैं।

मुझे अमेरिकन मूर्तिकार जो डेविडसन के साथ अपनी धारणाओं को मिलाने का अवसर मिला था। उन्होंने गांधीजी की प्रस्तर मूर्ति बनाई थी। वे इस युग के अनेक प्रमुख व्यक्तियों की मूर्तियाँ बना चुके हैं। और हम एकमत थे कि गांधीजी से मिलने पर निराश होकर लौटना पड़ता है। औरों में से तो शायद ही कोई यदि, उन्हें सन्तरिया की मुपरिचित सज्जज और छीने हुए राजमहलों की भूमिका की दृष्टि से न देखा जाय, अपना असर छोड़ता है। किन्तु गांधी इन सब में ऊपर उठे हुए हैं। यह छोटा-सा नगे पाखी वाला व्यक्ति, खदर लपेटे, अपनी महान् सादगी में गहरा असर डालता है। वह प्रभाव ऐसा है और इतनी आदर की भावना पैदा कर देता है कि मैंने विदा होने समय थड़ापूर्वक उनका हाथ चूम लिया। और उन्होंने मुझे विदवांस दिलाया कि वह मुझे प्रेम करने लगे हैं (ईसा के अर्थों में) और यह कि वह अपने मित्रों को कभी नहीं भूलते।

उनकी मूर्ति, उस अवस्था की जब कि पालथी लगाकर वह बानने बैठे थे, मेरी मेज पर रखी हुई एक बहुमूल्य धन्य है। वस्तुतः वह बानने में तल्लीन होकर नीचे की ओर दृष्टि जमाये हैं, किन्तु मुझे प्रतीत होता है मानो ध्यान-भग्न बुद्ध हो। उनकी अवलगात मुद्रा में से मुझे विश्वजनीन भावनाओं का प्रवाह फूटता हुआ अनुभव होता है।

लन्दन-निवास के उन दिनों में उन्हें एक छाटी-सी दुनिया ही घेरे रहती थी, जो कि यों छोटी होने पर भी विविधता की दृष्टि में बड़ी दुनिया जैसी बड़ी थी।

प्रति दिन प्रातःकाल दस से बारह बजे तक उनमें कोई भी मिल सकता था, जिसे चाहे उनकी सलाह लेनी हो या जो उनसे प्रति अपना आदर भाव ही प्रकट करना चाहता हो। वह हरेक का बन्धुभाव और सहिष्णुता के साथ स्वागत करते, किन्तु अपने बानने के कार्य में बाधा न पड़ने देने। केवल एक बार एक आग्रन्तुक का स्वागत करते के लिए वह उठकर खड़े हुए। मैं नहीं मानता कि वह किसी राजघराने के व्यक्ति के लिए नी उठने, किन्तु चर्च ओव् इंग्लैंड के पादरी के लिए उठे। वह एक किताब लेकर आये थे। गांधीजी ने उन्होंने अनुरोध किया कि इसमें यह लिख दीजिए, "हमको अच्छे ईमार्ड बनने के लिए बसा करना चाहिए।"

मुझपर इस बात का बड़ा असर पड़ा कि जो लोग बहुत देरतक ठहरे रहने अपना

जिनके प्रश्न असंगत प्रतीत होते, उनको विदा करने में गांधीजी किस दृढ़ता पर मृदुता में काम लेते थे।

एक सज्जन आये जो यह दावा करने थे कि वे उन्हें दक्षिण अफ्रीका में जानते हैं और उन्होंने गांधीजी को अपनी याद दिलाने की निष्फल कोशिश की —

“गांधीजी, क्या आपको हमारी दक्षिण अफ्रीका की बातें याद नहीं हैं ?”

“मुझे दक्षिण अफ्रीका याद है।”

“क्या आपको डरबन के होटल का बगीचा याद नहीं है ?”

“मुझे याद है कि मुझे होटल में इस शर्त पर दाखिल किया गया था कि मैं वीचिंग में न जाऊँ—होटलवाले एक हिन्दू को उसी दशा में ठिका सकते थे जबकि वह अपने कमरे में पड़ा रहे—किन्तु इस सबमें कोई सार नहीं। मि० ए० मुझे आपसे मिलकर प्रसन्नता हुई, किन्तु यदि आपको जल्दी हो तो मैं आपको रोके रखना पसन्द न करूँगा।....”

मुझे मि० ए की पराजय पर रज हुआ, किन्तु मैं नहीं मानता कि गांधीजी ने बात काटने के लिए प्रसन्नावधान से काम लिया। शायद उनको ‘दक्षिण अफ्रीका की कुछ बातें’ याद थी।

दूसरे आगन्तुक (ये एक के बाद एक आते रहते थे और गांधीजी का शिष्य-मन्त्री उनकी सूचना देता रहता था) ये सुवेपित एक नमूनेदार अंग्रेज, जिनका महात्मा गांधी ने बड़े भिन्नभाव से स्वागत किया। किन्तु बातचीत मौसम की हालत और इंग्लैंड की हरियाली के आगे न बढ़ी। यह आगन्तुक एक डाक्टर था, जिसने अतड्डियों के फोड़े के लिए ऑपरेशन करके गांधीजी की जान बचाई थी।

डाक्टर के बाद एक फ्रांसीसी वकील महिला आई। महात्माजी ने प्रश्न किया—
“क्या फ्रांस में अब भी युद्ध की भावना विद्यमान है ?” महिला त्रिगडते हुए बोली—
“गांधीजी, हमने युद्ध शुरू नहीं किया था। हमने तो केवल आत्मरक्षा की थी।”
इस पर गांधीजी सहिष्णुतापूर्वक हँस दिये।

इसके बाद एक वामपंथी साप्ताहिक के सम्पादक आये। जो प्रश्न मेरे भी मन में थे, उन सब पर चर्चा हुई। सम्पादक के पास बहुत निश्चित दलीले थी। गांधीजी के पास भी हर दलील का उत्तर था। उनके उत्तर सम्पूर्ण और सन्तोष-कारक थे।

सम्पादक महाशय की भेट पूरी होने के पश्चात् पॉल रोबसन की धर्मपत्नी गांधीजी के पैरों के पास फर्श पर आकर बैठ गई और अमरीका की हबसी समस्या के बारे में उनकी राय पूछी। स्पष्टतः यह ऐसी समस्या थी, जिसपर विचार करने का गांधीजी को मौका न मिला था। किन्तु श्रीमती रोबसन ने अक सामने रखे और पूछा—“क्या आप समझते हैं कि किसी दिन हब्सियों का प्राधान्य होजायगा ?”

गांधीजी का ऐसा सवाल न था। अतः वह आगे बढ़ी।

“क्या आप मनसबे हैं कि हम हज्म कर लिये जायेंगे ?”

“शापद”

“और तब ?”

“हाँ, तो उस समय हज्मी समस्या रह ही न जायगी।”

अचानक एक नौजवान जर्मन महिला बिना सूचना दिये ही आ घमकी। वह महात्माजी से इतनी भलीभाँति परिचित प्रतीत होती थी कि उन्होंने शिष्टाचार के पालन की आवश्यकता न समझी। गांधीजी वारंते हुए धक्के मारे और अपना सूत्रा किन्तु कोमल हाथ आगे बढ़ा दिया। उन्होंने अपने दोनों हाथों में उसे रोक लिया और इस तरह पकड़े रहीं मानो वह किसी पवित्र अवशेष को धारण कर रही हो।

गांधीजी ने पूछा—“क्या तुम जर्मनी जा रही हो ?”

उसने अपना सिर झुकाया, उसके ओठ काँपे, किन्तु उत्तर नहीं दे सकी। उनकी आँखों में आँसू छलछला आये।

“नमस्कार”

उसने एक कदम पीछे हटाया। उसके हाथ अब भी आगे बढ़े हुए थे, और आज्ञा गांधीजी पर अभी हुई एक प्रकार से आनन्द-मग्न थी। उसने एक सिमकी ली और शायद होगई।

आग्राखा के पान से पगड़ी बांधे हुए एक इन्त आया—“दृष्ट आबदपक, हिड-हाईनेम आशा करते हैं कि आप पचायन की बात श्वाँकार कर लेंगे.....”

इसके बाद एक हिन्दू विद्यार्थी अपनी अमरीकन धर्मपत्नी को मिलाने के लिए लाया। गांधीजी ने एक निगाह पत्नी की ओर देखा और मुस्कान में पूछा—

“क्या तुम अपनी धर्मपत्नी को भारत लेजाने का विचार रखते हो ?”

उसके स्वीकारात्मक उत्तर में मुझे कुछ घबराहट-सी प्रतीत हुई। दुल्हन निष्कपट, उल्लास और उमंग में भरी थी। “महात्माजी, आप अमरीका कब आ रहे हैं ?” उसने पूछा।

“अभी नहीं.....”

“वहाँ तो आपके लिए सब कोई पागल है।

महात्माजी ने आँख टिमकारते हुए कहा—“मेरे जानकार मित्रों का तो कहना है कि मुझे वहाँ चिड़ियाघर में रख देंगे।” (विरोध और हँसी)

उसके बाद महात्माजी के जीवन-लेखक भी एक एण्डरस जेम्सोन्स का कार्यभार स्वीकार करने के लिए आये।

“हाँ, हाँ।” गांधीजी ने कहा। वह टूटे हुए घाँगे की जोड़ने में लग्यो थे।

“और बापू, आज शाम को पन्द्रह अक्षर पादरियो के स्वागत को न भूलिएगा। लन्दन के प्रधान पादरी आज शाम को ठीक मान बजे आपसे मिलने आने वाले हैं।”

गांधीजी ने तीव्र दृष्टि से ऊपर देखा—“सात बजे की प्रार्थना का क्या होगा?”

श्री एण्डरूज ने कहा कि या तो उसे जल्दी कर लिया जाय या आगे बढ़ा दिया जाय। गांधीजी ने फैसला किया—‘मोटर में, रास्ते में ही कर लेगे।’

कोई भी समझ सकता है कि पश्चिम की अशान्ति में पूर्वी सन्यासी का जीवन कितना कठिन होया। सोमवार के मोन दिवस पर सनन् आक्रमण होता रहता था और अत्यन्त दृढ़ प्रयत्न के द्वारा उसकी रक्षा करनी पड़नी थी। भोजन भी सदा चिन्ता का विषय बना रहता था।

सायंकाल की सात बजे की प्रार्थना में सम्मिलित होने की अनुमति मिलने पर जब मैंने अपना आभार प्रदर्शित किया, तो महात्माजी ने कहा—“वह तो सबके लिए खुली है। किन्तु यदि तुम सुबह तीन बजे की प्रार्थना में उपस्थित रहना चाहो तो मैं अपने मित्रों को कहूँ कि किंग्सले हॉल में रात के लिए बन्दोबस्त करदें—पर अपना कम्बल साथ लैते आना, क्योंकि यह हम गरीबों की बस्ती है।

‘किंग्सले हॉल’ कारखाने के मजदूरों में कन्याण कार्य करनेवाली सरथा है। उसके लिए कुमारी लिस्टर ने अपना जीवन और सम्पदा उत्सर्ग करदी है। कुमारी लिस्टर और उनके कार्य के प्रति अपनी पसन्दगी प्रकट करने के लिए ही महात्माजी ने अपनी इंग्लैण्ड की राजकीय यात्रा के समय किंग्सले हॉल का आतिथ्य स्वीकार किया था।

मैं कुहराभरी कड़कड़ानी रात में वहाँ पहुँचा। मुझे एक कमरे में लेजाया गया। वह एक छोटा-सा सफेद सादा निकोना कमरा था। उसमें छत पर खुली बारदारी में से होकर जाना पड़ता था। शुक्ल-वस्त्रा मूर्ति थी मीराबाई। दीवार के सहारे झुकी खड़ी वह तो प्राचीन सत जैसी दीखती थी। उन्होंने मुझे ठीक तीन बजे में कुछ पहले जगा देने का वादा किया।

मैं उस रात्रि को कभी न भूलूँगा—अजीब रहस्यमयी सुन्दरता थी उसकी। अदंनिद्रा में और बालोवाला कोट पहने में मीराबाई के पीछे पीछे महात्माजी की फाठरी में गया। वह छोटी, घबल और ठण्डी थी। वह फर्श पर एक पतली चटाई पर बैठे हुए थे। सट्टर लपेटे हुए वह बहुत हलके दिखाई देते थे।

हमारे साथ महात्माजी के हिन्दू मन्त्री भी आ सम्मिलित हुए। दीपक बुझा दिया गया और खूले हुए दरवाजे में मैं घुबला, नीतल, कुहरा आरहा था। दो हिन्दू और एक अंग्रेज सन्त ने प्रार्थना के मन्त्र का उच्चार किया। मुझे लगा कि मैं स्वप्न देख रहा हूँ।

पाँच बजे में कुछ पहले मीराबाई ने मुझे फिर जगाया। यह महात्माजी के धूमने जाने का समय था और उनके साथ वान करने का सबसे उत्तम अवसर समझा जाता था।

यह विलकुल स्पष्ट था कि और किसी प्रदेश में तो यह जीवन सुन्दर लग

सकता है या कम गतिशील कार्यक्रम के अनुकूल तो वह हो सकता है। पर महात्माजी अपनी लन्दन की राजनैतिक और व्यावसायिक प्रवृत्तियों के साथ-साथ अपने धार्मिक सन्यस्त जीवन को किस भाँति निभा सके, मेरी कल्पना में तो इसका उत्तर उनका आध्यात्मिक अनुशासन ही है। किन्तु मैं, जिसने रस्तीभर अनुशासन का अभ्यास नहीं किया था, शीत, कुहरे और अनिद्रा के मारे मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक तीनों तरह से बिल्कुल शिथिल हो गया था। मैं महात्माजी के प्रातःकालीन भ्रमण में उनका पीछा न कर सका। मैंने 'पीछा करना' शब्द का जानबूझकर उपयोग किया है, क्योंकि खट्टर अपने चारों ओर लपेटकर महात्माजी इतनी तेजी के साथ खाना हुए कि वह कुहरे में कहीं गायब न होजायें इसके लिए हमें बारीब-बारीब दौड़ना पड़ता था। हमारे पीछे, हमने सुना कि, हाँफने-हाफने दो गुप्तचर चले आ रहे थे, जिनको कि महात्माजी की रक्षा करने के लिए नियुक्त किया गया था।

गांधीजी को अपना मार्ग ज्ञात था। वह नहर के किनारे-किनारे होकर जाता था। वह आँख बन्द करके उसरर से गुजर सकते थे। यद्यपि नहर दिखाई न पड़ती थी किन्तु पानी की आवाज सुनाई पड़ती थी, जो एक पनचक्की में जाकर गिरता था। इस रास्ते पर दो आदमी एकसाथ मुश्किल से चल पाते थे। मीराबाई ने मुझे आगे बढ़ाकर कहा—“बड़ो, अब तुम्हारे लिए मौका है।” मुझे अस्पष्ट याद पड़ता है कि हमने घर्म के बारे में बात की थी और उन्होंने बताया कि जो सरय और सचाई से प्रेम करते हैं, घृणा और कटुता को छोड़ चुके हैं, वे सब दुनियाभर में एक पय के पथिक हैं। किन्तु यह वस्तुन आवश्यक नहीं है कि गांधीजी किसीके साथ शब्दों द्वारा बात करें ही करें। उनके वातावरण में रहने मात्र से मनुष्य अपने-आपको उच्चतर सतह पर पहुँचा हुआ अनुभव करता है। उनके पास भोग रहकर चिन्तन करने से वाकी लाभ उठाया जा सकता है।

सात साल बाद, जबकि भावना शान्त हो चुकी है और स्मृति एक स्वप्न रह गई है, मैं यह बिल्कुल सही-मही कह सकता हूँ कि गांधीजी से परिचय होने के कारण मुझमें कुछ परिवर्तन हो गया है। जीवन में किसी कदर पहले से रस आ गया है—कुछ वह वस्तु, उसकी आभा, मिली है जिसे और उपयुक्त शब्द के अभाव में हम प्रेरणा कहते हैं।

गांधीजी की राजनीति पद्धति

जनरल जे सी स्मट्स, एम ए., एल एल. डी., डी. सी. एल.

[प्रधान मंत्री, केपटाउन]

यह उपयुक्त हो है कि मैं, जो एक पीढ़ी पहले गांधीजी का विरोधी था, आज साठ और दस वर्ष की शास्त्रीय आयु की सीमा पर पहुँचने पर उस यौद्धा को प्रणाम कर रहा हूँ। शास्त्रकार उस सीमा से आगे कृपा कम करते हैं, पर परमात्मा करे उनकी आयु लम्बी हो और आनेवाले उनके वर्ष ससार के लिए हितदायक और उनके लिए मानसिक शान्ति से परिपूर्ण हो। मैं इस पुस्तक के अन्य लेखकों के साथ उनकी महान् सार्वजनिक सेवाओं को स्वीकार करने और उनके उच्च व्यक्तिगत गुणों की प्रशंसा करने में हृदय से शामिल होता हूँ। उनके जैसे मनुष्य हम सबको सामान्य स्थिति और निर्दयता की भावना से ऊँचा उठाते हैं और हमें प्रेरणा देते हैं कि सत्कार्य करने में हमें कभी शिथिल न होना चाहिए।

दक्षिण अफ्रीका यूनियन के प्रारम्भिक दिना में हमारी जो लड़ाई हुई, उसका गांधीजी ने स्वयं वर्णन किया है और वह सर्वविदित है। ऐसे व्यक्ति का विरोधी होना मेरा भाग्य में लिखा था, जिसके प्रति उस समय भी मेरे दिल में अत्यधिक आदर-भाव था। दक्षिण अफ्रीका के लघु मंच पर जो संघर्ष हुआ, वह गांधीजी के चरित्र की उन विशेषताओं को प्रकाश में लाया, जो भारतवर्ष की बड़े पैमाने पर लड़ी गई लड़ाइयों में और भी प्रमुख रूप में प्रकट हो चुकी है और उनसे यह प्रकट होता है कि जिन उद्देश्यों के लिए वह लड़ते हैं, उनके लिए यद्यपि वह सर्वस्व उत्सर्ग करने का तैयार रहते हैं, किन्तु परिस्थिति की मानव भूमिका नहीं भुलाते, अपने मस्तिष्क का समुचित उपयोग नहीं करते, न घृणा के बशीभूत ही होते हैं और अत्यन्त कठिन प्रसंगों में भी अपना मूढ़ विनाश कायम रखते हैं। उस समय भी और उसके बाद भी उनका व्यवहार और उनकी भावना आज की निष्ठुर और नगी पानाधिकता से विलकुल भिन्न थी।

मुझे खूबे दिल से यह स्वीकार करना चाहिए कि उस समय की उनकी प्रवृत्तियों में लिए अत्यन्त परेशान करनेवाली थी। दक्षिण अफ्रीका के अन्य नेताओं के साथ उस समय में पुराने उपनिवेशों को एक संयुक्त राष्ट्र में समाविष्ट करने, नवीन राष्ट्रीय तंत्र का शासन जमाने और बोअर-मुद्द न बाद जा-कुछ शेष बचा था, उसमें से नये

राष्ट्र का निर्माण करने में व्यस्त था। यह पहाड़ के समान भारी कार्य था और उसके लिए मुझे अपना हर क्षण लगाना पड़ रहा था। यकायक इस गहरी कार्यव्यस्तता के बीच गांधीजी ने एक अत्यन्त आफतभरा प्रश्न खड़ा कर दिया।

हमारी जलमारी में एक ककाल पड़ा था। वह था दक्षिण अफ्रीका का भारतीय प्रश्न। ट्रान्सवाल ने भारतीयों के आगमन को भर्त्सित करने का प्रयत्न किया था। नेटाल में भारतीयों पर एक टैक्स लगता था, जिसका उद्देश्य यह था कि गन्ने के खेतों पर उनके काम की मियाद पूरी होने के बाद भारतीय अपने देश को वापस लौट जावे। गांधीजी ने इस प्रश्न को हाथ में लिया और ऐसा करते हुए नई पद्धति का उदय किया। इस पद्धति का उन्होंने आगे चलकर अपने भारतीय आन्दोलनों में ससार-प्रसिद्ध बना दिया है। उनका उपाय यह था कि ज्ञानबूझ कर कानून को ताड़ा जाय और अपने अनुयायियों का आपत्तिजनक कानून के विरुद्ध निष्क्रिय प्रतिरोध करने के लिए सामूहिक रूप से संगठित किया जाय। दोनों प्रान्ती में असयत और चिन्ताजनक अशान्ति पैदा हो गई, गैरकानूनी आचरण के लिए भारतीयों को बड़ी सजाद में कैद करना पड़ा और गांधीजी को भी जेल में थोड़े काल के लिए शान्ति और आराम मिल गया, जिसकी निर्विवाद रूप से उन्हें इच्छा थी। उनकी दृष्टि से सब बातें योजनानुसार हुईं। मेरे लिए, जिसे कानून और अमन की रक्षा करनी थी, परिस्थिति कठिनाईपूर्ण थी। मेरे सिर पर ऐसे कानून पर अमल करवाने का बोझ था, जिसकी पीठ पर बूढ़ लोकमत न था और अन्त में पराजय की सम्भावना थी, जब कि कानून को रद्द करना पड़ता। उनके लिए विजयी मोर्चा था। व्यक्तिगत स्पर्श की भी वमी न थी, क्योंकि गांधीजी के तरीके में ऐसी कोई बात नहीं है जिसमें एक विशेष व्यक्तिगत स्पर्श न हो। जेल में उन्होंने मेरे लिए चप्पलो का एक बहुत ही उपयोगी जोड़ा तैयार किया और छूटने पर मुझे भेंट किया। उनके पदचात मने कितनी ही गर्मियों में उन चप्पलो को पहना है। हालांकि आज भी मैं यह अनुभव कर सकता हूँ कि ऐसे महापुरुष के जूतों में खड़े होने के भी मैं योग्य नहीं हूँ। जो भी हो, यह थी वह भावना, जिसमें हमने दक्षिण अफ्रीका में अपनी लड़ाई लड़ी थी। उसमें घृणा या व्यक्तिगत दुर्भावना को कोई स्थान न था, मानवता की भावना हमेशा विद्यमान थी और जब लड़ाई खत्म हुई तो ऐसा वातावरण था कि जिसमें अच्छी सधि सम्भव थी। गांधीजी और मेरे बीच एक समझौता हुआ, जिसे पार्लमेण्ट ने मजूर किया और जिसके कारण दोनों जातियों में वर्षों शान्ति बनी रही। वह भारत का महान् कार्य हाथ में लेने और अपनी भावना और व्यक्तित्व को जिसका आधुनिक भारतीय इतिहास में दूसरा कोई उदाहरण नहीं है उस देशके जन-साधारण पर अंकित करने के लिए दक्षिण अफ्रीका से भारत के लिए रवाना होगये। और इस सारे अर्थ में वह अधिकतर उन्ही उपायों को काम में ला रहे हैं, जिनको कि उन्होंने भारतीय प्रश्न पर हमारे साथवाली लड़ाई में सीखा था। वस्तुतः दक्षिण अफ्रीका उनके

लिए एक बड़ा भारी शिक्षणस्थल सिद्ध हुआ, जैसा कि उन अन्य प्रमुख व्यक्तियों के लिए, जो कि समय-समय पर इस विचित्र आनर्पंक और उत्तेजक महाद्वीप में हमारे जीवन के भागीदार हुए हैं।

मैंने 'अधिकतर' कहा है, सम्पूर्णतः नहीं। निष्क्रिय प्रतिरोध के अपने पुराने तरीके के अलावा, जिसका नाम अब असहयोग रख दिया गया है, उन्होंने भारतवर्ष में एक नवीन विशिष्ट युक्ति विकसित की है, जो बड़ी परेशानी में डालनेवाली बिल्कुल प्रभावशाली है। मुघार की यह युक्ति अनशन द्वारा प्रतिपक्षी को सहमत करने का प्रयत्न करती है। सौभाग्यवश दक्षिण अफ्रीका में, जहाँ लोग अनावश्यक प्राण-हानि को भय की दृष्टि से देखते हैं, हमको इस युक्ति का सामना नहीं करना पड़ा। भारत-वर्ष में उसने आवश्यक जनक कार्य सम्पादित किये हैं और गांधीजी को ऐसी सफलताये प्रदान की हैं जो सम्भवतः अन्य उपायों द्वारा असम्भव थी।

इस अपूर्व युक्ति पर—खासकर राजनैतिक युद्ध में तो यह नई ही है—निश्चय से विचार करना दिलचस्प होगा। मैं कल्पना नहीं कर सकता कि ग्रेट ब्रिटेन में विरोधी दल का नेता अधिकारवादी सरकार को उसकी झुटि अनुभव कराने के लिए आमरण अनशन करेगा। हम यहाँ विचित्र प्रदेश में जनतन्त्र की पद्धति और पश्चिमी सम्मति से भी दूर रहते हैं। मेरे विचार से युद्ध के इस रूप पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाना चाहिए। मैं यहाँ इसपर केवल विहंगावलोकन ही कर सकता हूँ।

भारतीय विचार और आचार के लिए यह बिल्कुल नया नहीं है। भाष्य में यह स्वीकृत पद्धति मालूम होती है कि लेनदार अनिच्छुक देनदार पर दबाव डालने के लिए देनदार पर नहीं, बल्कि स्वयं अपनेपर कष्टों को निमग्नित करे। देनदार को जो कर्तव्य अदा न करना चाहता हो, हवालात में रखवाना पश्चिमी तरीका है या रहा है। बिल्कुल भारत में ऐसी बात नहीं होती। वहाँ लेनदार खुद जेलखाने चला जायगा या देनदार के दरवाजे पर अनशन करके बैठ जायगा, ताकि देनदार का हृदय पिघल जाय और उसकी या उसके मित्र की खेती का यह खल जाय। गांधीजी ने इस भारतीय पद्धति को अपना लिया है। उन्होंने केवल उसका प्रयोग और पैमाना बदल दिया है। वह सरकार के या किसी जाति के विरोधी समुदाय के दरवाजे पर अनशन करके, आवश्यक हो तो, मरणान्तक अनशन करके बैठ जावेगा ताकि वे उसको समझा सकें अथवा दूसरे शब्दों में, ठीक रास्ते पर आने के लिए उसपर दबाव डाल सकें। वे देनदार की भाँति सफल होते हैं, दलील देकर या समझाकर नहीं, बल्कि अन्तःस्थल में छिपे हुए भय, लज्जा, पश्चात्ताप, सहानुभूति और मानवता की भावनाओं को जगा कर—उन भावनाओं को भी जो जायत मानस के तट पर रहती हैं और जो सामूहिक रूप में दलील अथवा समझाहट से कहीं अधिक प्रभावशाली होती है। देनदार अर्थात् विरोधी

सरकार या जाति नैतिक दृष्टि से खोखली होजाती है और अन्त में इस भावनापूर्ण सामूहिक असर के आगे दब जाती है ।

कुछ दृष्टियों से यह युक्ति आधुनिक युग के विशाल प्रचार के तरीको से ज्यादा भिन्न नहीं है । वह लोकमत पर दलील के द्वारा नहीं, बल्कि भावनाओं के बल पर, जिनमें से कई बुद्धि-सगत नहीं भी होंगे, विजय प्राप्त करने में बंसी ही कारगर होती है । कोई भी यह भलीभाँति कह सकता है कि यह युक्ति भयावह है और इसका दुरुपयोग होसकता है, ठीक उसी तरह जिस तरह कि पश्चिमी दुनिया में लोकमत को भ्रष्ट और विषाक्त करने के लिए प्रचार को साधन बनाया जा रहा है । उद्देश्य चाहे योग्य हो अथवा घृणित, तरीका खतरनाक है, कारण कि वह तर्क और उत्तर दायित्व की जड़ को काटता है और व्यक्ति के भीतरी मन्दिर पर जो कि समस्त मानव-स्वभाव का अन्तिम गढ़ है, प्रहार करता है ।

किन्तु गांधीजी की अन्तर्ज्ञान की कला एक बहुत महत्वपूर्ण दिशा में पश्चिमी प्रचार से भिन्न है । इस कला का प्रदर्शन करनेवाला (यदि मैं इस शब्द का प्रयोग कर सकूँ तो) अपने कष्ट-सहन के विचार और दृश्य से जाति के अन्तःकरण को जागृत करने की काशिश करना है । इस युक्ति का आधार कष्ट-सहन का सिद्धान्त है । नि स्वार्थ कष्ट-सहन दूसरों की भावनाओं को शुद्ध बनाना है । उसका बैसा ही शुद्ध करनेवाला और ऊँचा उठानेवाला असर पड़ता है जैसाकि अरस्तूनी परिभाषा के अनुसार अति दुःखान्त घटना का पड़ता है ।

यहाँ हम केवल यूनानी दुःखान्त घटना की भावना को ही स्पर्श नहीं करन है, बल्कि अत्यन्त गहरे धार्मिक स्रोत को छूने हैं । विशेषकर ईसाई धर्म में कष्ट-सहन का उद्देश्य केन्द्रीय स्थान रखता है । कौन मानव इतिहास में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण दुःखमयी घटना का बिन्दु है । इसियाह का सतप्त सेवक और क्रूस पर बलिदान होनेवाला महा-सतप्त पुरुष अपने बन्धुओं के प्रति जब अपनी आत्मा को प्रवाहित करता है तो भावनायें इस त्रुटि जाग्रत होजाती हैं कि उनकी तीव्रता सारी दलीलो अथवा बुद्धिसगत युक्तियों को पीछे छोड़ जाती हैं । कष्ट-सहन की दलील सप्ताह में सबसे अधिक प्रभावशाली है और रहेगी । प्रारम्भिक रोमन साम्राज्य में धर्मों के व्यूह में ईसाई धर्म कष्ट-सहन और बलिदान द्वारा ही विजयी हुआ था, न कि उसके समर्थकों की दलीलो से । और न ही इस उत्तम युग के आधुनिक दर्शनशास्त्रों ने उसकी प्रगति को रोका है । इसी प्रकार आज यूरोप में निर्दय और नगी अमानवता अपने से भिन्न जाति, धर्म या विश्वास रखने-वालों पर बड़े पैमाने पर जा सितम बरसा रही है, होसकता है कि वह उन महान् प्रणालियाँ का ही विस्फोटित करद जिनका कि हमने अपने गर्व के साथ पोषण किया है ।

यह कष्ट-सहन का सन्निधानी सिद्धान्त है, जिसपर कि गांधीजी ने सुधार की अपनी नवीन युक्ति का आधार रक्खा है । वह खुद कष्ट-सहन बरत है, ताकि जो उद्देश्य

उनके हृदय को श्रिय है उसके प्रति दूसरों की सहानुभूति और समर्थन मिल सके। जहाँ दलील और अपील के सामान्य राजनैतिक अस्त्र विफल होजाते हैं, वहाँ वह इस नई युक्ति का आश्रय लेते हैं, जा कि भारत और पूर्व की परम्परा पर आधारित है जैसाकि मैं वह चुका हूँ, इस पद्धति पर राजनैतिक विचारको को ध्यान देना चाहिए। राजनैतिक उपायों में गांधीजी की यह विशिष्ट देन है।

एक विचार और कहकर मैं डम पूरा कर दूँगा। बहुत-से लोग और कुछ व भी जा सच्चे दिल से उनके प्रशंसक हैं, उनके कुछ विचारों से और उनकी कुछ कार्य-पद्धतियों से असहमत होंगे। उनका काम करने का ढंग उनका अपना मौलिक ढंग है और अन्य महापुरुषों की भाँति सामान्य मापदण्ड के अनुकूल नहीं है। किन्तु हम उनसे चाहें कितनी बार असहमत हों। हमका सदा उनकी सच्चाई, उनको निःस्वार्थता और सर्वोपरि उनकी मौलिक और सार्वत्रिक मानवता का भाव रहता है। वह हमेशा महा-पुरुषों की भाँति कार्य करते हैं। सभी वर्गों और जातियों के लिए और विशेषकर कुचल हुआ के लिए उनके हृदय में गहरी सहानुभूति रहती है, उनके दृष्टिकोण में एकान्तिकता तनिक भी नहीं है, बल्कि वह उस व्यापक और शाश्वत मानवी भाव से अलङ्कृत है जा कि धार्मिक आध्यात्मिक महानता का बसीटी-बिन्दू है।

यह एक विचित्र बात है कि यूरोपीय अस्तान्ति और हमस के दिनों में एशिया किस प्रकार धीरे-धीरे आगे आ रहा है। वर्तमान विश्व के सार्वजनिक रणमंच पर विद्यमान सबसे बड़े महापुरुषों में दो एशियावासी हैं—गांधी और चांगकाई शेक। दोनों ही विराट जटसमूह को उच्च मार्ग पर ऐसे लक्ष्य की ओर ले जा रहे हैं जो मूलतः उच्च ईसाई आदर्श से मिलता है और जिसे पश्चिम ने प्राप्त किया है, किन्तु जिसपर अब वह गम्भीरतापूर्वक आचरण नहीं कर रहा है।

: ४७ :

कवि का निर्णय

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

[शान्तिनिकेतन, बोलपुर, बंगाल]

समय-समय पर राजनीति के क्षेत्र में ऐसे इतिहास-निर्माता व्यक्ति भी जन्म लेते हैं जिनकी मानसिक ऊँचाई मानवता की सामान्य सतह से ऊँची होती है। उनके समय में अन्ध होना है, जिसको बसीकरण और प्रभावान्तक शक्ति लगभग शारीरिक होती है और निर्मम। वह मानव-स्वभाव की दुर्बलताओं—लाभ, भय और अहंकार से शम उठाना है। जब महात्मा गांधी ने पदार्पण किया और भारत की स्वतंत्रता का

पय उन्मुक्त किया तो उनके हाथ में सत्ता का कोई प्रकट साधन न था, दबाव डालने-वाली जबर्दस्ती सत्ता न थी। उनके व्यक्तित्व से जो प्रभाव उत्पन्न हुआ, वह सगीन और सौंदर्य की भाँति अवर्णनीय है। उसने दूसरों पर इसलिए सबसे ज्यादा प्रभाव डाला कि उसने स्वतः आत्म-दान की भावना का जाग्रत किया। यही कारण है कि हमारे देशवासियों ने विरोधी तत्त्वों को ठिकाने रखने में उनकी स्वाभाविक चतुराई की ओर वक्चित् ही ध्यान दिया है। उन्होंने तो उस सच्चाई पर ध्यान रक्खा है जो उनके चरित्र में सहज स्पष्टता के साथ चमकती है। यही कारण है कि यद्यपि उनकी प्रवृत्तियों का क्षेत्र व्यावहारिक राजनीति है पर लोगों ने उनके जीवन की तुलना उन महापुरुषों से की है जिनकी आध्यात्मिक प्रेरणा मानवता के समस्त विविधरूपों पर प्रभुत्व रखते हुए उनसे आगे बढ़ जाती है और सासारिकता का मुख उस प्रकाश की ओर फेर देती है, जिसका ज्ञान के शाश्वत स्रोत में उद्गम है।

: ४८ :

गांधी : चरित्र अध्ययन

एडवर्ड टॉमसन

[ऑक्सफोर्ड]

प्रारम्भ में ही मैं अपनी एक कमी स्वीकार करता हूँ। मैं गांधीजी से अच्छी तरह परिचित नहीं हूँ और उनके हाल के कार्यक्रमों और भारत से आनेवाले समाचारों ने मेरे हृदय में बेचैनी उत्पन्न कर दी है। सीमाव्यवस्था उनके अवतरण के कार्यों में ही उनको ऐतिहासिक व्यक्ति बना दिया है और 'आत्मकथा' के रूप में कई पुस्तकों में, जिनकी स्पष्टवादिता बहुधा आश्चर्य में डालनेवाली है, उन्होंने स्वयं ही अपने चरित्र और उद्देश्य की गवेषणा करने का मसाला प्रस्तुत कर दिया है।

वह गुजराती है, अर्थात् ऐसी जाति में उत्पन्न हुए है जो युद्धप्रिय नहीं रही है और जो, विशेषतया मराठों द्वारा बहूधा, पददलित की गई और लूटी गई है। पश्चिम में उनके विकास का बहुत ही कम जिक्र किया जाता है क्योंकि पश्चिम वाले इसके महत्व को मनझने ही नहीं, परन्तु भारत में इन बातों को बहुत कम भुलाया जाता है। उन्होंने अपनेआपको इस व्यंग का शिकार बना लिया है (यह उनके नैतिक साहस का एक अंग है कि वह इस बात को जानते हैं, लेकिन जानते हुए भी उससे विचलित नहीं होने) कि वह अहिंसा को जो इतना महत्त्व देते हैं वह उनके एक शान्तिप्रिय जाति में जन्म लेने का लक्षण है। मेरा विचार है कि मराठे कभी इस बात की नहीं भूलने कि वे मराठे हैं और गांधी गुजराती है, गांधी के प्रति इन लोगों की भावनाएँ उतरती-चढ़ती और

डावाडोल-सी रहती आई है। राजपूता के बारे में भी यही बात कही जा सकती है, क्योंकि वह भी एक युद्धप्रिय जाति है। मध्यभारत के एक राजा ने मुझसे कहा था “एक राजपूत की हैसियत में मैं अहिंसा के सिद्धान्त को तो विचार में ही नहीं ला सकता। मरना और युद्धप्रिय होना तो राजपूत का कर्तव्य है।” इतने पर भी अहिंसा गांधी के उपदेशों का तत्त्व है और हालांकि उन्हें इस कितने ही नये अनुयाइयों पर उनकी अनिच्छा रहते हुए भी लादना पड़ा है, परन्तु यही उनकी अनूठी विजयों का कारण है। मैं आगे चलकर फिर इसका वर्णन करूँगा और बतलाऊँगा कि यह बात सही है।

कोई भी व्यक्ति अपनी जाति और उत्पत्ति के प्रभावों से पूर्णरूपेण नहीं बच सकता और कभी-कभी यह बात उस मनुष्य के प्रतिकूल भी पड़ती है कि उसका जन्म ऐसे राष्ट्र में हुआ है जिसमें राष्ट्रीयता और सैनिकता की भावना नहीं, और फिर उस राष्ट्र की भी एक छोटी और महत्वहीन रिपासत में। यह आदर्श भारतवर्ष में सदा से बला आया है कि जब प्रजा पर अत्याचार है तब राजा स्वयं उसकी शिकायतों को सुने। लेकिन जबतक कि सत्तार की सरकारों में और उनकी सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक प्रणालियों में आमूल परिवर्तन न हो तबतक यह आदर्श व्यावहारिक रूप में एक लुप्त युग की वस्तु है। यह तो पेरिवलीज के एपेंस में सम्भव हो सकता था, जहाँ हरेक प्रमुख व्यक्ति को लोग शकल से पहचानने से और स्वतन्त्र जनसमुदाय बहुत कम था या गांधी के बचपन के पोरबन्दर (गुजरात की छोटी रिपासत) में। गांधीजी की राजनीति उन प्रश्नों का हल करने के लिए अपर्याप्त है, जो घरेलू या देशाती अर्थनीति से परे के हैं—जैसे एकसत्तात्मक शक्तियों से भरे सत्तार में भारत की रक्षा का प्रश्न। वह तो सिर्फ छोटी और आदिम इकाइयों का ही विचार करते हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि आधुनिक सत्तार की जटिलता को नहीं देखते (देखते हैं तो कुछ ऐसा मानकर उस सबसे बचे और डरते रहना चाहिए—वाश कि यह सम्भव होता है) वह सदा व्यक्ति का ही चिन्तन करने हैं। और यद्यपि, यदि आप चरमसीमा पर ही पहुँचना चाहें, यह उस प्रतिकूल प्रवृत्ति से कही अच्छा है जो मनुष्यों को एक समुदाय के रूप में या ऐसे पेड़ों के रूप में जिनसे वर (टंकस) झाड़े जा सकते हो, या तीपों के गिकार रूप में, या जनशक्ति के भंडार के रूप में (जिसमें से कुछ हजार या कुछ लाख “आर्थिक कारणों” के लिए गोली से उड़ा दिये जावें या मार डाले जावें) देखती है, या भी, अगर भारत की भलाई करना हो तो, इस खड़-खड़ व्यविनगत प्रक्रिया के स्थान पर बड़े पैमानेवाली तदबीरी और कार्यों का अपनाना होगा।

परमात्मा की भारत पर बड़ी कृपा है कि उसने गांधी के बाद नेहरू को भी जन्म दिया। इस युवक से यह आशा की जा सकती है कि वह अपने पूर्वगामी के कार्य की महानता और उसके प्रभावों को कायम भी रखे और यह भी साहस करे कि उन कार्य को उस जगत में भी ले जावे जिस पर उस वयोवृद्ध का विश्वास नहीं है।

कुछ-कुछ इसी परिमित दृष्टिकोण के कारण गोलमेज परिपद में गांधीजी कुछ पिछड़े हुए मालूम पड़े और अपने विरोधियों के तल तक कभी न पहुँच सके, जो मनुष्यों को दलो और समुदायों के रूप में देखते थे। आज की दुनिया में भी वह पिछड़े हुए हैं जहाँ कि एक के बाद एक मिलकर राष्ट्रों का ऐसा सहारक गूट बनता जा रहा है जो और देशों को मार कर गिरा दे। उनका अहिंसा का अस्त्र जो उनके हाथ में इतना तीक्ष्ण और बलशाली था, कुद हो चुका है। मेरे घर में एक बातचीत के दौरान मैं यह उपमा दी गई थी कि वह एक कैंची की तरह हैं जिसमें दो फल आवश्यक हैं, एक विरोधी का तो एक उनका। भारत में यह इस कारण सफल हुआ कि वह ऐसी सरकार के विरुद्ध प्रयुक्त हुआ जिसने—चाहे अपूर्णरूप से ही सही—इस बात को स्वीकार कर लिया कि विद्रोह और दमन के खेल में भी कुछ नियम होते हैं, अर्थात् उनके (गांधीजी के शत्रु के हृदय में मनुष्यता और उदारता का कुछ अंश था। इसलिए जब राष्ट्रीय सेवकों की कतार-कौ-कतारे पुलिस की लाठियाँ की मार खाने को निर्भयतापूर्वक खड़ी हो गईं तो सरकार अन्त में निरुपाय हो गई और अंग्रेज दर्शक तो लज्जा के मारे दब गये तथा अमेरिका के सचिवदाता अपनी घृणा और क्रोध के तार अपने देश को देने के लिए दौड़े। यह ऐसी परिस्थिति थी कि यदि आपमें अन्त तक सहन करने की शक्ति हो तो अवश्य अन्त में आप बचे भी रह सकते थे और आपका काम भी सिद्ध हो जा सकता था।

वह सब परिस्थिति निकल गई और यह विश्वास करना कठिन है कि वास्तव में हमने ऐसा होते देखा था। गांधीजी ने कहा है कि अगर अबीसीनिया निवासी शुद्ध अहिंसा का पालन करते तो उनकी विजय होती और जब (एक-सत्तात्मक युग के पूर्व जब उन दानव-स्वभाव व्यक्तियों का किसीकी स्वप्न में भी विचार न था जो आज हमारी आँखों के सामने रहे घूम हैं) उनको कैंचीवाली उपमा बतलाई गई तो उन्होंने उसे न माना। परन्तु निस्सन्देह पुराने धनुषों की तरह उनका अहिंसा का अस्त्र भी आज एक इतिहास की वस्तु बन गया है। यदि उनका मुकाबिला किसी फासिस्ट या नास्ती शक्ति से पड़ा होता, या हिन्दुस्तान पर ऐसी सेनाओं ने आक्रमण किया होता, जो वायुयानों के द्वारा निंद्यतापूर्वक नगर-नगर विध्वंस कर देती हैं और युद्ध के बदियों को गाली से उड़वा देती हैं, तो क्या हमको इसकी (अहिंसा की) मर्यादाओं का पता नहीं लग जाता? क्या यह आश्चर्य की बात है कि राष्ट्रीय सभा (कांग्रेस) में भी इसके सम्बन्ध में तीव्र मतभेद हैं तथा नवयुवकगण इसे प्राचीन काल के रेक्लोज और तलवारों की भाँति अजायबघर की वस्तु समझते हैं?

परन्तु इस सबका अर्थ तो इतना ही है कि गांधीजी एक दृढ़ शान्तिवादी हैं। जा कि मैं नहीं हूँ। मैं जानता हूँ कि आज से सौ वर्ष बाद भी लोग इनके व्यक्तित्व के बारे में शक्यों करने रहेंगे, हालाँकि पुस्तक-समितियाँ “मो० व० गांधी की पहली”,

“गांधीजी का रहस्य” “साम्राज्य से युद्ध करनेवाला मनुष्य”, इत्यादि, पुस्तकों की सिफारिश करती रहेगी और समालोचकगण घोषणा करते रहेंगे कि अमुक चरित्रलेखक ने अन्त में इसके जीवन के “रहस्य” का “उद्घाटन” कर दिया है।

दस वर्ष पूर्व, जबकि वह अपनी स्थापित के उच्च शिखर पर थे, तब उनके दर्शनीय व्यक्तित्व के लिहाज से लोगों का ध्यान उनकी ओर बहुत अधिक आकर्षित हुआ था। इससे उनके कार्यों पर से तो लोगों की दृष्टि हट गई, परन्तु उनकी प्रीतिभाजनता और उनका सहज स्वभाव सामने आने में बहुत सहायता मिली। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन सब बातों में उन्होंने खूब मजा उठाया, परन्तु वह कभी भी स्वयं अपनी गायामो से प्रभावित नहीं हुए। एक बार जॉन विल्क्स ने तृतीय जार्ज से कहा था, मैं स्वयं कभी भी विल्कसाइट (विल्क्स का अनुयायी) नहीं रहा। गांधी भी कभी गांधी-आइट (गांधी के अनुयायी) नहीं हुए। वह तो अपने भोले अनुयायियों के प्रति एक शान्त और कुछ-कुछ उपेक्षापूर्ण स्वर बनाये रहे हैं, और वह जानते हैं कि उनके बहुत से भक्तों ने उनके उद्देश्य की सहायता पहुँचाई है। बलबुलापन उनमें एक आकृष्ट करने वाला गुण है, और हास्य-रस की भावना के कारण वह सदा प्रसन्न रहते हैं। यदि आप स्वाभिमान बनाये रखें तो वह आपसे अच्छी तरह बातें करते रहेंगे और अगर आप गंदाग करते रहे तो दुरा भी नहीं मानते। वह कभी बडप्पन नहीं जताने (हालांकि उनमें बडप्पन बहुत है)। वह आप पर कटाक्ष करेंगे और यदि आप बदले में उनपर कटाक्ष करें तो रस लेंगे।

कान्पनिक और “साहित्यिक” व्यक्तियों को वह जरा शुष्क सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। कोई सम्मति उनको नापसन्द हो तो वह मुस्कराते हुए इन शब्दों के साथ उसे निपटा देंगे, “अच्छा, लेकिन आप जानते हैं आप कवि हैं।” उनके कहने के दंग से यह स्पष्ट मलकता है कि वह कहना तो यह चाहते हैं, “अच्छा लेकिन आप जानते हैं, आप खूबी हैं।” परन्तु शिष्टाचार उनको स्पष्ट कहने से रोकता है। उनके और रवीन्द्रनाथ ठाकुर के बीच जो सम्बन्ध है उसे देखने में बड़ा आनन्द आता है। इन दोनों व्यक्तियों की पारस्परिक श्रद्धा गभीर और अटूट है, यद्यपि वे दोनों एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न प्रकृति के हैं। भारत इसकी बर्षों से देखना आरह है और यह दृश्य इस देश की सम्पन्न सार्वजनिक शिक्षा का बड़ा भारी अंग है। इसने इस गौरव की भावना को प्रोत्साहित किया है कि उनके देश में दो इतने महान् व्यक्ति हैं, यद्यपि वे दोनों एक-दूसरे में इनने भिन्न हैं और दोनों इस बात को इतनी अच्छी तरह जानते हैं कि राष्ट्र-निर्माण का जो कार्य दोनों को हृदय से प्रिय है उसके लिए हरएक किनारा आवश्यक है।

“वह मित्रा भी सकते हैं।” हममें से जिसका भी कभी उनमें मावका पडा है उसने कभी-कभी यह बात कही है, और कही भी है तो बड़े प्रेम के साथ। वह तार में जैसे किमने हजार मील दूर किमी मित्र या साथी को नवाचित किमी महत्वपूर्ण कार्य के

लिए आना पड़े, और बातचीत करते-करते वह एकदम सिलसिला तोड़कर जो कुछ समय बचा हो उसीमें बातचीत समाप्त कर देगे, क्योंकि उनके रोगियों की दस्त की पिचकारी देने का ठीक समय आ पहुँचा है, जो बात मैं कहना चाहता हूँ उसका यह एक मध्यम उदाहरण है, क्योंकि उद्देश्य हमेशा यही होना चाहिए कि बात को बढाकर नही, बल्कि घटाकर कहा जावे। मैंने एक बार उनको देखा (उस बाद विवाद के समय जिसका जिक्र मैं पहले कर चुका हूँ) जब कि बैलियोल के मास्टर, गिल्बर्ट मेरे, सर माइकेल सैंडलर, पी सी लिपन, इत्यादि के दल ने, लगातार तीन घंटे तक उनसे प्रश्नोत्तर और जिरह की। यह एक अच्छी-खासी थका देनेवाली परीक्षा थी, परन्तु एक क्षण के लिए भी वह न तो झल्लामे और न निहत्तर हुए। मेरे हृदय में यह दृढ़ विश्वास उत्पन्न हुआ कि सुकरात के समय से आज तक ससार में इनके सदृश पूर्ण आत्म समी और शान्त-चित्त दूसरा देखने में नहीं आया। और एक-दो बार जब मैंने अपनेआपको उन लोगों की स्थिति में रखकर देखा जिनको इस अजित गमीरता और धीरता का सामना करना पड़ रहा था, तो मैंने विचार किया कि मैं समझ गया कि एथैन्स निवासियों ने उस 'मसीह मिथ्या तर्कवादी' को जहर क्यों पिलाया था। सुकरात की तरह इनके पास भी कोई 'प्रेत' है। और जब प्रेत की पुकार अन्दर मिल जाती है तो वह न तो तर्क से विचलित होते हैं और न भय से। लिडसे ने जिस हताशावाणी से प्रैसविटीरियन पादरियों के सम्मुख कॉमवेल की इस अपील को दुहराया था, "ईसा मसीह की दुहाई देकर मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप इस बात को समझें कि यह सम्भव है कि आप गलती पर हो। ये शब्द अब तक मेरे कानों में गूँज रहे हैं। लिडसे ने यह भी कहा था, "गांधीजी, सोचिए कि यह सम्भव है कि आप गलती कर रहे हो।" परन्तु गांधीजी ने इसे सम्भव नहीं माना, क्योंकि सुकरात की तरह उनके पास भी एक 'प्रेत' है और जब वह 'प्रेत' बोल चकता है, तो भले ही मृत्यु महात्माजी के चेहरे में अग्ने पजे धुसेड दे या एक पूरा विश्वविद्यालय अपना तर्क सामने लाकर रखदे, परन्तु गांधी विचलित नहीं हो सक्ता।

अंग्रेजी मुहावरे पर उनका अद्वितीय अधिकार कुछ कुछ इस कारण है कि उनको अपने मस्तिष्क पर पूरा काबू है। विदेशियों के लिए हमारी भाषा में सबसे कठिन वस्तु अवयवों का प्रयोग है। मुझे आज तक ऐसा कोई भारतवासी नहीं मिला जिसने गांधी के बराबर इतको पूर्णरूपेण समझ लिया हो। यह बात मुझे गोलमेज परिषद् के समय मालूम हुई जब उन्होंने तीन बार मुझसे अपने किसी वक्तव्य का मसविदा तैयार करने के लिए कहा। यदि आप पेशेवर लेखक हैं तो आप अवयवों के विषय में सावधान रहने का प्रयत्न करते हैं। और मैं स्वीकार करता हूँ कि इन मसविदों के बनाने में मैंने बहुत परिश्रम किया। गांधीजी मेरे वाक्यों को देखते जाते थे और कभी-कभी अवयव का केवल एक सूक्ष्म परिवर्तन कर देते थे—(यदि आपका अंग्रेजी का ज्ञान खूब गहरा

न हो तो) आप शायद यह विचार करे कि वह परिवर्तन बहुत साधारण था। परन्तु वह अपना काम कर दिखाता था। कदाचित् उससे कहीं कोई मौका निकल आता था, (क्योंकि राजनीतिज्ञ शायद मौके पसन्द करते हैं)। कुछ भी हो, उस परिवर्तन से मेरा अर्थ बदलकर गांधीजी का अर्थ बन जाता था। और जब हमारी निगाहें मिलती थीं तथा हम एक दूसरे को देखकर मुस्कराते थे तो यह जाहिर होता था कि हम दोनों इस बात को जान गये हैं।

हां, वह वकील है, और वकील लोग खूब खिन्ना सकते हैं। जैसाकि—जब उस इंग्लैंड का प्रतिनिधित्व वकीलों ने किया, अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् (लीग-ऑव-नेशन) को पता लग गया। जब किसी देश में क्रान्ति होती है और वहाँका अधिकार अन्त में जनता के हाथ में आता है, तो सबसे पहला सुधार सदा यह होता कि वकीलों को यमघाट पहुँचा दिया जाता है। बहुधा यह ही ऐसा एक सुधार है जिसके लिए आगामी सन्तति को कभी पछताना नहीं पड़ता।

और भारत में ब्रिटिश सरकार करती क्या जब उसका पाला एक ऐसे वकील के साथ पड़ा जिसने उससे लड़ते-लड़ते धीरे-धीरे अंग्रेजी शब्दों के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म अर्थों का ज्ञान प्राप्त कर लिया था, जिसे न केवल अपने लिए कोई भय या चिन्ता थी, बल्कि जो वाद-विवाद की धारा में बिलकुल आशास्त्रीय परिवर्तन हो जाने पर भी पराजित नहीं किया जा सकता था? और बुरी बात यह थी कि इस व्यक्ति की हास्परस की भावना इस प्रकार की थी कि वह स्वयं ही आपके सामने इच्छापूर्वक अपनी क्षुद्रता स्वीकार कर लेता था और आपको यह मौका नहीं देता था कि आप उसीके अस्त्र से उसपर आक्रमण कर सके। और सबसे मुसीबत यह कि वह तो एक दूसरा एन्टीयस ही था जिसकी शक्ति पृथ्वीमाता को छूते ही अजेय होजाती थी। गांधी को सदा सहारा प्राप्त था पूर्व के अमिन धैर्य और वैराग्य और प्रतिरोध के परीक्षित उपायों का।

वास्तव में उन दिनों भारत का निस्तार अहिंसा अर्थात् "अहिंसात्मक निष्क्रिय-प्रतिरोध" के कठोर पालन में ही था, और जब गांधी ने दूसरों से पहले इसे अनुभव किया तो यह आन्तरिक प्रेरणा का ही प्रकाश था। "इस लक्षण से तैरी जीत होगी।" वेशक। जब आपको ऐसा प्रतिद्वन्द्वी मिल गया जो इस तरह के आक्रमण के लिए तैयार न था, जो इससे घबरा गया हो, जो अस्पष्ट रूप से यह महसूस करे कि वह ऐसे शत्रु पर आघात नहीं कर सकता जो बदले में आघात करने से इन्कार करे, तो वास्तव में आपने एक अस्त्र या लिया और दुर्बल और निरस्त्र भारत के पास दूसरा कोई अस्त्र था ही नहीं। अगर आपके पास केवल नीर-वमान है तो इनको लेकर मशीन-गनों का मुकाबिला करना मूर्खता है। आप केवल शत्रु को "आत्म-रक्षा के निमित्त" मशीन-गने प्रयोग करने का मौका देते हैं, जब कि दूसरी ओर वह उनको प्रयोग करने में लज्जा अनुभव करे। आज "अहिंसा" चाहे जितनी अक्रिय हो गई

हो, उस समय इसने अपना काम कर दिखाया ।

और लाचारी तथा निराशा के कारण उत्पन्न हुई इस आन्तरिक प्रेरणा के साथ एक दूसरी प्रेरणा और आई । भारत की आत्मा ने चुपके से कहा, "घरना दो ।" मेरे विचार से शायद सबसे पहले रसब्रुक विलियम्स ने यह पता लगाया था कि गांधीजी की राजनैतिक चाल का सम्बन्ध 'घरना देने' की पुरानी प्रथा से है । यह प्रथा, जो जॉन कम्पनी के समय में एक आपत हो गई थी, ऐसी थी कि कर्जलेवा किसी नादि-हन्द कर्जदार के द्वार पर, सताया हुआ व्यक्ति किसी अत्याचारी या शत्रु के द्वार पर, अनशन करके बैठ जाता था, जबतक मृत्यु या प्रतिवार उसे छुटकारा न दिला देवे । यदि मृत्यु हो जाती तो सदा के लिए उसका भूत एक निर्दयी छाया की तरह बैठ रहा जो अब अवील और पश्चात्ताप दोनों के दायरे से बाहर थी । यह थी गांधीजी की क्रिया, जो ठेठ देशी क्रिया थी । वह लगभग चालीस वर्षों से, रह-रहकर, ब्रिटिश साम्राज्य की देहलीज पर घरना देते आये हैं । दो-एक बार तो उनका भूत हमारे सिर पर आता-आता रह गया है । "अहिंसात्मक असहयोग ।" जब आयर्लैण्ड के नवयुवक झाडियो के पीछे से बम्ब और रिवाल्वर चलाते थे और रेलगाडियाँ उलट देते थे । तब भारत के नवयुवक बड़े चाव से इन बातों को देखते थे । परन्तु इससे भी अधिक पीडायुक्त दिलचस्पी के साथ सारे भारत ने तब देखा जब कार्क के लार्डमेयर मैक्स्वनी ने भूख हड़ताल करके जान दे दी । १९२९ में राजनैतिक हत्या के अभियुक्त एक भारतीय विद्यार्थी ने भी ऐसा ही किया था और पञ्जाब में उसके घर कलकत्ता तक उसका शव जिस समारोह के साथ ले जाया गया वह भुलाया नहीं जायगा । विदेशी सरकार के साथ, भारतीय हथियारों से, आमरण युद्ध किया जा रहा था । ये हथियार पश्चिम में भी पहुँच चुके थे और वहाँ सफल भी हुए थे । पहले नॉन कॉम्पैसिट—निष्क्रिय प्रतिरोधी, फिर स्त्री मताधिकार के पक्षपाती (जो भूख-हड़ताल की सोचवार एक कदम और भी आगे बढ़ गये थे—परन्तु शायद वे पूर्णतया "अहिंसात्मक" नहीं थे) और इनके बाद आयर्लैण्ड, देखने में आये । यह थी आमरण "अहिंसा ।"

गांधीजी के विषय में एक महान् भारतीय ने एकबार मुझसे कहा था, "वह नीति-वान् है, परन्तु आध्यात्मिक नहीं है ।" दूसरे भारतीय ने कहा— 'वह पक्क में नहीं आते, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे सबसे ऊँचे दर्जे के सत्य का पालन कर सकते हैं ।' और मेरे देश में यह हुआ । गोलमेज परिषद् के दिनों जो कुछ लोग उनसे मिले, उन्हें निराशा हुई । उन्होंने आश्चर्य के साथ कहा— "यह तो सन्त नहीं है ।" मैं भी उनको सन्त नहीं समझता और स्पष्ट बात तो यह है कि मुझे इसकी चिन्ता भी नहीं कि वह सन्त है या नहीं । मैं समझता हूँ कि वह इससे भी कठोर कोई वस्तु है, और ऐसी वस्तु है जिसकी सन्तो से अधिक इस निराशा के युग को, जिसमें हम रह चुके हैं, आवश्यकता है । "वह सबसे ऊँचे दर्जे के सत्य का पालन करने में समर्थ है ।" वह वास्तव में समर्थ

ह वह उदात्त चरित्रता की अपूर्व ऊँचाई तक पहुँच सकते हैं। दक्षिण अफ्रीका का वह सारा सपना, जिनके वह केन्द्र और आक्रमणकारी थे (और सब कुछ थे) एक ऐसी घटना है जो मेरी प्रशंसा करने की शक्ति से बाहर है। और केवल उनका साहस ही असार न था, बल्कि उनकी उदारता भी अपार थी। भारतवासियों की विमल हृदयता मुझे जीवन के प्रत्येक पल में आश्चर्य में भर देती है। उन्होंने व्यक्तिगत और जातिगत दोनों पहलुओं से यह बनला दिया है कि वह शोध से ऊपर उठ सकते हैं, जैसा कि मैं, एक अंग्रेज, महसूस करता हूँ कि यदि उनकी जगह पर हाता तो कभी न कर सकता। गांधीजी को चाहिए था कि वह हरेक सफेद चेहरे को जीवन-भर घृणा की दृष्टि से देखने, परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। वास्तव में जैसा कि बहुत दिन हुए एडमण्ड कैंडलर ने देखा था, वह अंग्रेजों से काफी प्रेम करते हैं। इसके बाद नेटाल में जूलुओं का कथित विद्रोह हुआ जिसका प्रारम्भ बारह जूलुआ की फामी से हुआ और जिनमें गोलियों से उड़ा देने का और चाबुको की मार का हृदय विदारक दौर-दौरा रहा। गांधीजी ने यह दिखलाने के लिए कि वह ब्रिटिश-विरोधी न थे और घोर सक्क के समय वह तथा उनके साथी अपने हिस्से का कर्तव्य पूरा करने के लिए प्रस्तुत थे, आहों के उपचार के लिए अपनी सेवाएँ अर्पित कर दीं। मुमूहृत मूल्यता (में इसको इसी नाम से पुकारेंगे) के फलस्वरूप उनको उन जूलुआ के उपचार का कार्य सौंपा गया जिनके शरीर फौजी कानून के मातहत दी गई कौड़ा की मार से क्षत-विक्षत हो गये थे। यह अच्छी शिक्षा थी, यदि इसका अर्थ यह हो कि भारतवासी पहले से ही इस बात पर कडे हो जावे कि जब सरकारें उर जाती हैं तो वे क्या कर सकती हैं। वह वास्तव में इस विषय में कडे हो गये, परन्तु और बानों में नहीं। गांधीजी ने अपना यह विश्वास कायम रक्खा कि यदि अंग्रेज को समझाया जावे और उसकी निष्पक्ष भावना को जागृत किया जावे तो उसका हृदय पसीज सकता है। अप्रैल १९१९ में जनरल डायर ने अमृतसर में, जलियावाला के उस नीचे बाग के मोन के पिजरे में, दो हजार आदमियों को गोली से उड़ा दिया और घायलों को रानभर बही तडपने और कराहने के लिए छोड़ दिया। इसके बाद पार्लमेन्ट के दोनों हाउसों में निन्दनीय वाद विवाद भड़काये गये और एक नीचतापूर्ण आन्दोलन हुआ जिसने "डायर टस्टी-मोनियल फण्ड" के लिए २६,००० पौड का चन्दा खड़ा कर दिया। राष्ट्रीय महासभा ने पञ्चाय की गडबड पर अपनी रिपोर्ट तय्यार करने के लिए गांधी और जयकर को नियुक्त किया। इन पर सिलसिलेवार और ध्योरेवार साक्षी (जिस पर उस दुख और मानहानिपूर्ण समय में सहज ही विश्वास कर लिया गया) यह प्रमाणित करने के लिए सार्दा गई कि जनरल डायर ने जान-बूझकर भीड को उस नीचे बाग में 'छल-से जमा' (lure) किया था कि उनकी हत्या करे। इस साक्षी के पीछे अनियंत्रित क्रोध और पीडा की उक्साहट थी। गांधीजी ने इसका तिरस्कार किया, उन्होंने अपने ही जाति-

भाइयो के दबाव का तिरस्कार किया। उन्होंने कहा—“मैं इस पर विश्वास नहीं करता, और यह बात रिपोर्ट में नहीं लिखी जायगी।” उनकी आत्म-निर्भरता की इसमें बड़ी विजय दूसरी नहीं हुई और ऐसी परिस्थिति में आत्म-निर्भरता बड़ी ऊँची नैतिक विजय होती है। यदि आपको गत महायुद्ध का अनुभव हो तो आप जानते हैं कि क्रोध और देशभक्ति से विचलित हो जाना और फिर भी न्याय का पक्ष लेना कितना कठिन है। गांधीजी ने इसमें सफलता प्राप्त की, और ऐसी मानहानिपूर्ण परिस्थिति में प्राप्त की जिसका किसी अंग्रेज को आज तक अनुभव नहीं हुआ है, अर्थात् एक पददलित जाति में उत्पन्न होना। यह है “सबसे ऊँचे दर्जे का सत्य”—यह क्रियात्मक सत्य है, केवल शब्दों का सत्य नहीं।

मेरा अन्तिम उदाहरण है १९२२ में उनका मुकदमा। यह घटना उनके और उनके विरोधियों दोनों के लिए गौरवपूर्ण थी—जिस उच्च श्रेणी की मानवी “सभ्यता” का इसमें दिग्दर्शन हुआ उसके कारण यह असाधारण और कदाचित् अपूर्व थी और इसी बात ने इसे दोनों तरफ की ईमानदारी और निष्पक्षता का एक दैवी प्रकाश बना दिया था, हालांकि उस समय आग भड़का देने का इतना मसाला था। इस मुकदमे ने भारत में रहनेवाली अंग्रेज जाति के (हृदय में तो नहीं कहूँगा, बल्कि) रख में वास्तविक परिवर्तन का अकुर उत्पन्न कर दिया। गांधीजी उनको चाहे जितना खिगावे, उन्होंने इनका आदर करना पहले ही सीख लिया था, और अब इस मुकदमे के अभिनय में (आगे सजा की बात तक गये बिना उससे बड़ा-बड़ा विवेकपूर्ण विरोध देना तो शायद ठीक न होगा) उन्होंने देखी इस मनुष्य की विचित्र, ध्यगपूर्ण, पूर्णतया गौरवमय और उच्चकोटि की निर्लिप्त तथा वीरतापूर्ण आत्मशक्ति। इससे अधिक हमने क्या-क्या देखा सो मैं नहीं कह सकता। मैं जो जॉनबुल का नमूना ही हूँ तो अपनी कह सकता हूँ। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि उन्होंने ब्रिटिश राज्य को, जो ऐसी वस्तु थी जिसको हममें से बहुत से चुनौती देने का साहस करने की इच्छा रखते थे, उतनी चुनौती नहीं दी जितनी कि सम्पूर्ण आधुनिक ससार को चुनौती दी जिसने मनुष्य-जीवन को मशीनमय बनाकर उसकी गति-वृद्धि को रोक दिया है। उनका हमारे साथ झगडा उससे अधिक गम्भीर और व्यापक वस्तु थी जितना हम उसे समझने थे।

अपैन्डिसाइटिस के आपरेशन के कारण उनको जल्दी मुक्त कर दिया गया (१२ जनवरी १९२४)। जेल के गवर्नर ने उनको छुट्टी दे दी कि वह चाहे तो अपने वैद्य का इलाज करा सकते हैं या अपनी पसन्द का कोई सर्जन बुला सकते हैं। शिष्टाचार में पीछे न रहने की इच्छा से गांधी ने अपने आपको गवर्नर के हाथों में सौंप दिया और कोई विशेष अधिकार नहीं मांगा। सर्जन ने एक बिजली की टांच का प्रयोग

१ यह बात मुझे एम आर जमकर से मालूम हुई।

किया जिसका बल्व ऑपरेशन के मध्य में ही जल गया, नर्म ऑपरेशन के अन्त तक एक हरीकेन लालटन लिये खड़ी रही। यदि रोमी की मृत्यु हो जाती तो हम जानते हैं कि भारत और सत्तार क्या कहता। मिन मेयो ने इस घटना का बड़ा अवज्ञापूर्ण वर्णन किया है, परन्तु गांधीजी ने इसको "पवित्र अनुभव बतलाया है जो उनके जेलर के लिए "और युद्धे विश्वास है मेरे लिए प्रशंसा की बात थी। वास्तव में यह प्रशंसा की बात थी और इस सत्तार से जहाँ इतनी अभियन्तुय है, यह एक दूसरी ही तरह की वस्तु थी।

मुझे समय नहीं है कि मैं चर्च के सिद्धान्त के विषय में कुछ कहूँ। मैं अनुभव करने लगा हूँ कि यह विवेकपूर्ण और न्यायोचित था, यद्यपि इसे अभी-अभी निरर्थक चरम सीमा तक पहुँचा दिया गया। उदाहरणार्थ जब उन्होंने रवीन्द्र ठाकुर से प्रतिदिन बातने के लिए कहा। उनमें हानिरहित आत्मपीडन की जो झलक है, उसके विषय में भी मैं कुछ नहीं कहूँगा। इसके पश्चात् यह अपने देशवासियों द्वारा अच्छी तरह दूषार गांधी के प्रति किये गये अत्याचारों के पश्चात्प्राप्तिरूप जानबूझ कर गन्दे-से-गन्दा भगी का काम जो उन्हें अपने बाहरी रोगिया के अस्पताल में मिले, करते हैं, और ('फूका' की निर्दय क्रिया के द्वारा गांधी में से जिनका दूध वे दे सकती हैं उससे अधिक निरालने के विरोधमध्य) केवल वक्तव्यों का दूध पीने हैं।

वह दूसरे लोगों को बड़ी खूबी के साथ जाच सकते हैं। उनकी मनुष्यता से अधिक गम्भीर वस्तु का उदाहरण इतिहास में नहीं है। उनके हृदय में प्रत्येक जाति के लिए और सब में अधिक डीनों तथा दलिता के लिए दया और प्रेम है। वह वास्तव में निष्काम हैं। सारा भारत जानता है कि उनकी दृष्टि में सब पुरुष और स्त्रिया समान हैं। स्वयं उनका पुत्र भी उनके लिए एक भगी के पुत्र से अधिक नहीं है। उनकी अपने लिए न कोई भय है न कोई चिन्ता। वह विनोदी दयालय, हठी, साहसी ह। भरितवर्ष इतना फटा हुआ, विभाजित—दरारों से पूर्ण, टुकड़े-टुकड़े हुआ, बिपिया लगा हुआ—था, जितना इस पृथ्वी पर और कोई राष्ट्र न था। युद्ध के बाद पहली बार उसे ऐसी हलचल का ज्ञान हुआ जो उसके कोने-कोने में फैल गई, ऐसे श्वास और ध्वनि का पता चला जिसको सब जगह अनुभव किया गया और सुना गया, यद्यपि उसके शब्द हरवार ममझ में नहीं आये। राष्ट्रीय आन्दोलन में अधिक सुन्दर वक्ता तथा अधिक विद्वान लोग हैं, परन्तु ऐसा एक ही व्यक्ति है जिसने भारत के नर-नारियों के हृदय में यह बात जमा दी है कि उसरा तथा उनका रक्त-मांस एक ही है। उन्होंने अच्छी से आशा का मचार किया है, डोम और पासी इस बात का स्वप्न देखने लगे हैं कि वे भी मनुष्यो की श्रेणी में गिने जाते हैं। उन्होंने ऐसी भावनाओं तथा आशाओं को जागृत किया है जो किसी भी राजनैतिक दलबन्दी से अधिक व्यापक है। उन्होंने भविष्य के लिए भारत-वासियों के मार्ग की दिशा ही निश्चयात्मक रूप से बदल दी है।

उन्होंने इससे भी अधिक करके दिखाया है। मैंने उनको राजनीतिज्ञ कहकर उनकी आलोचना की है। परन्तु जैसा कि मैंने एक दूसरी पुस्तक में लिखा है, “वह उन गिने-चुने व्यक्तियों में गिने जावेगे जिन्होंने एक युग पर ‘आदर्श’ की छाप लगा दी है। यह आदर्श है ‘अहिंसा’ जिसने दूसरे देशों की सहानुभूति को बलपूर्वक अकपित कर लिया है।” इसने “ब्रिटिश सरकार के ‘दमन’ पर भी एक पारस्परिकता की लचक की छाप दे दी है”—और यह बात मालूम होता है किसीके ध्यान में नहीं आई है। भारतीय आन्दोलन के साथ रक्तपात और नृशंसा हुई है। परन्तु फिर भी दोनों ओर के गम पक्षवालों की तमाम बातों पर विचार करते हुए भी इस आन्दोलन का व्यवहार इस मध्यवर्ती विश्वास को दृढ़ करता है कि इसके परिणामस्वरूप दोनों देशों में एक विवेकपूर्ण तथा सभ्यतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित होने की संभावना है।” यदि ऐसा हो, और ससार में आज जो अविवेक फैल रहा है वह दूर हो जावे, तो मेरा देश तथा भारतवर्ष, दोनों इस पुरुष को अपने सबसे महान् और प्रभावशाली सेवकों तथा पुत्रों की श्रेणी का समझेगे। इन्होंने भारत तथा इंग्लैंड के पारस्परिक झगड़े को एक कौटुम्बिक झगड़े तक ही सीमित रखा है, जैसा कि वह सब प्रकार से है भी। कुटुम्बों में बहुधा बड़े बुरे व्यवहार होते रहते हैं, परन्तु ये झगड़े बहुत कम ऐसे होते हैं जिनका निपटारा न हो सके।

: ४६ :

सत्याग्रह का मार्ग

श्रीमती सोक्रिया चाडिया

[इंडियन पी० ई० एन, बम्बई की सत्यापिका व सम्पादिका]

गांधीजी एक व्यावहारिक रहस्यवादी हैं जिनके जीवन का दर्शन तथा जिनका राजनैतिक कार्यक्रम एक साथ सहस्रों के लिए प्रेरणारूप तथा करोड़ों के लिए पहेली है। जहाँ एक ओर उनके आत्मिक जीवन के दर्शन का सिद्धान्त कोई भी बुद्धिमान मनुष्य समझ सकता है, तथा उसके नियमों का हर एक उत्साही तथा दृढ़-निश्चयी व्यक्ति पालन कर सकता है, वहाँ उनका राजनैतिक कार्यक्रम तबतक पहेली बना रहेगा, जबतक कि उनको भारत के अत्यन्त अतीत काल के स्वाभाविक विकास के रूप में और सच्चे अर्थों में भारत के वर्तमान इतिहास का निर्माण करने वाली शक्तियों के मूर्त करनेवाले पुरुष के रूप में न देखा जावे।

आजकल का भारत, ईरान या मिस्र की तरह, प्राचीन भूमि में उपजी हुई कोई नई सम्पत्ति नहीं है। बीसवीं शताब्दी की भारतीय चेतना की जीवन-धारा में शम-

विकास है, यह वही धारा है जो करोड़ों वर्षों से निरंतर स्थिरता के साथ बहनी चली आ रही है। यहाँ तक कि भारत में पुरातत्व की खुदाई के परिणाम भी एक नया अर्थ लेने हैं तथा एक नया महत्व रखने हैं, जैसा कि कदाचिन् मिवाय चीन के और किसी जगह प्राप्त हुई वस्तुएँ नहीं रखती। उदाहरणार्थ मिश्र के स्तूप उस दश के लुप्त प्राचीन गौरव की याद दिलाने हैं, परन्तु मोहिन्जोदारो में हम कह सकते हैं कि यह बात नहीं है, क्योंकि यह कोई प्राचीन निशानी नहीं है, बल्कि भारत की जीवन-संस्कृति परंपरा का एक नवोदय केन्द्र है।

वास्तव में जिस अर्थ में हम अर्वाचीन ईरान या मिश्र की बात कहते हैं वह अर्थ अर्वाचीन भारत पर लागू नहीं है, भारत तो उस अर्थ में भी अर्वाचीन नहीं है जिस अर्थ में जापान माना जाता है, अर्थात् पुरानी वही जानि बिलकुल आधुनिकता में ढल चुकी है। नये सांचे में ढला हुआ भारत केवल बड़े-बड़े शहरों में ही पाया जाता है और वहाँ भी घाटे में ही अंत में। अंग्रेजी जानने वाले बहुत न भारतीयों में 'नवीन बनने' की प्रवृत्ति है। दुर्भाग्यवश यह प्रवृत्ति जार भी पकड़नी जारही है, यद्यपि गांधीजी के लेखों तथा कार्यों से इसकी गति रुक रही है। नई रोशनी का भारत अभी वजूद में आवेगा जब गांधीजी के प्रभाव का जग न मानेगा तथा उनके राजनैतिक तरीके निकम्मे हो जावेंगे। यह भारत के लिए तथा सत्कार के लिए उसमें भी महान् आपदा की घटना होगी जो भारत के बुद्ध के सिद्धान्तों को त्याग देने के कारण हुई थी। वह त्यागना बुरा और हानिकारक था, परन्तु उसने भारतीय संस्कृति का नाश नहीं किया, यद्यपि उसने इसकी बड़नी हुई लहर के वेग को रोक दिया तथा भारत का सत्कार की मेधा उनमें बड़े पैमाने पर करने का मौका छीन लिया जिनको वह कर सकता था।

गांधीजी के जीवन के कार्यकलापों को भारतीय इतिहास के एक असमाप्त तथा विकासशील अध्याय के रूप में देखना आवश्यक है। हमारे देश का इतिहास मुख्यतः आध्यात्मिक व्यक्तियों द्वारा बनाया गया है। स्मरणीय कला तथा साहित्य-समृद्ध विशाल राजतन्त्र स्वभावतः उस आध्यात्मिक संस्कृति के मूल से उत्पन्न हुए और बड़े जिनको इन व्यक्तियों ने मूर्तिमान किया तथा सिखाया। उदाहरणार्थ, अशोक का साम्राज्य तथा अजन्ता की कला एक विशाल वृक्ष की एक ही शाखा के फल हैं, वह शाखा है गौतम बुद्ध। इस वृक्ष की अनगिनती शाखाएँ हैं और उसका मेरुदण्ड वह अक्षर्य संस्कृति है जिसमें पहले के सब बुद्धों, वैदिक ऋषि तथा कवियों का दान सम्मिलित है, उसकी जड़ें पौराणिक गाथाओं में वर्णित दक्षद्वीप तथा श्वेतद्वीप की प्राचीन मिट्टी में दबी हुई हैं। यह आवश्यक है कि गांधीजी का भारतीय इतिहास के बीसवीं शताब्दी के उस चित्रपट पर एक जीवित केन्द्र-पुरुष के रूप में देखा जावे जिसकी पृष्ठभूमि में करोड़ों वर्षों की घटनाओं का सार है।

जिन चरित्रशाली आध्यात्मिक व्यक्तित्वों ने हमारे इतिहास में मुख्य भाग लिया

हैं वे सदा योग-युक्त पुरुष रहे हैं। उन्होंने अपनी दुष्प्रवृत्त इन्द्रियो को अनुशासन में लाकर अपनेमें योग साधा है। हाथों की, मस्तिष्क की तथा हृदय की क्रियाओं का जितना ही अधिक समरूप एकीकरण होगा, उतना ही महान् व्यक्तित्व होगा। उन्होंने बाह्यरी ऐश्वर्य से नहीं, वरन् आन्तरिक सम्पन्नता से अपनी प्रिय मानूभूमि की सेवा की है। आवश्यकता पड़ने पर उन्होंने राम की तरह राजसी वस्त्र भी धारण किये हैं। दूसरे युग में राजकुमार सिद्धार्थ ने अपने राजदण्ड के बदले बूढ़ का भिक्षा-पात्र ले लिया। ये दोनों इन्द्रियजित व्यक्तित्व थे। इनके अतिरिक्त और भी कवि, ऋषि, महर्षि हुए हैं, जो सब-के-सब बाह्य रूप में एक-दूसरे से भिन्न तथा विभिन्न परिस्थितियों में काम करनेवाले रहे हैं, परन्तु आन्तरिक ज्ञान में सब एकसमान थे—इनके मानस में आत्मा का प्रकाश था तथा हृदय में तत्वागत की ज्योति थी। इनके विषय में कहा जा सकता है कि वे इतने भारतीय इतिहास के बनानेवाले नहीं थे जितना कि ससार के इतिहास ने, अर्थात् भारतवर्ष कहलानेवाले तथा कर्मभूमि के नाम से विख्यात भूखण्ड की आत्मा की शक्ति ने, उनको बनाया। इन सबने भारत की वास्तविक प्रकृति, इसका आन्तरिक गुण, इसके आध्यात्मिक ग्याय तथा नोति, जो धर्म की परिभाषा के अन्तर्गत हैं, इनकी रक्षा करके मनुष्य-जानि की सेवा की। यह तर्क कदाचित् कल्पनात्मक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से युक्तिहीन प्रतीत हो। पश्चात्य विद्वान् भारत के प्राचीन निवासियों में ऐतिहासिक दृष्टिकोण के अभाव की शिकायत करते हैं। इसमें वे भूल करते हैं, क्योंकि वे उसी तरह का ऐतिहासिक दृष्टिकोण तलाश करते हैं जिससे वे सबसे अधिक परिचित हैं। पश्चात्य संस्कृति इतिहास को जैसा समझती है तथा उसका जो अर्थ लगाती है उसका वर्णन स्वयं गांधीजी ने इस प्रकार किया है—

“इतिहास वास्तव में प्रेम अथवा आत्मा के बल की एकरस क्रिया में होनेवाली प्रत्येक रूपावृत्ति का आलेख्य है”। चूँकि आत्मिक बल एक प्राकृतिक वस्तु है, अतः उसका वर्णन इतिहास में नहीं किया जाता।”

इस उलटे अर्थ में हमारे प्राचीन आलेख्य बिल्कुल अनेतिहासिक हैं, उनमें अधिकतर आत्मा के कर्मों का वर्णन है और नैतिक शक्तियों तथा आदर्शों पर सासारिक बातों की अपेक्षा अधिक जोर दिया गया है। इस अर्थ में पुराण इतिहास है।

पश्चात्य इतिहासकार की कठिनाई कुछ परिवर्तित ढंग से आधुनिक राजनीतिज्ञों में—चाहे फिर वे ब्रिटिश हो या और पश्चिमी मनोवृत्ति के लोग हो—द्वारा प्रकट हो रही है, जिनका कहना है कि गांधीजी में राजनैतिक भावना का अभाव है, क्योंकि आधुनिक राजनीतिज्ञ के लिए राजनैतिक भावना की अभिव्यक्ति केवल एक ही प्रकार से हो सकती है, दूसरे प्रकार से नहीं। अयोध्या में दशरथ के परामर्शदाता वशिष्ठ की भाँति राजाओं तथा सम्राटों के दरबार के महर्षि उच्चथेनी के राजनीतिज्ञ होने थे। परन्तु आज उनके उत्तराधिकारी इतने भी बोट एक्कन करने में सफल नहीं होंगे

कि वे किसी पश्चिमी पार्लमेण्ट के सदस्य बन सकें।

गांधीजी को कथित अस्थिरतायें तथा अव्यावहारिकतायें तभी समझ में आ सकती हैं जब हम उनको एक आत्मा के रूप में देखें और जब हम इस तथ्य को विचार में लावें कि वह उन व्यक्तियों में से है जो अपने मस्तिष्क तथा हृदय में समझौता करने से इनकार कर देते हैं, जो अपनी अन्तरात्मा के विरुद्ध आचरण करने के लिए तैयार नहीं होते, जो सब घटनाओं का सासारिक दृष्टिकोण से नहीं दखन, बल्कि उनको अपने लिए आत्मज्ञान का तथा दूसरों के लिए आत्मिक सेवा का मार्ग समझते हैं। वह अपनी क्रियाशक्ति का पालन करते हैं, अपने सिद्धान्तों के अनुसार आचरण करते हैं, और इसी-लिए वह उन सभी के लिए थोड़ी-बहुत अविगत पहलें बने रहते हैं जो समझौता करते रहते हैं तथा इस कारण मानसी गड़बड़ और इन्द्रियों की तथा इन्द्रियों के जगन् की नैतिक विचलितता की अस्वस्थ अवस्था में पड़े रहते हैं।

यदि हम इन दो बातों को समझ जावें कि गांधीजी (१) न तो राजनीतिज्ञ हैं, न वार्शनिक, न धर्मशास्त्रवेत्ता, बल्कि आध्यात्मिक सुधारक हैं तथा, (२) वह भारत की आत्मा अथवा आर्य धर्म के अवतार हैं और इस प्रकार भारत के वर्तमान-कालीन इतिहास का अध्यापक लिख रहे हैं, तो हम उनके बहुमुखी कार्यकलापों का चित्र ठीक रूप से प्राप्त कर सकते हैं।

ससार में गांधीजी भारत के राजनैतिक नेता के ही नाम से सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। निस्सन्देह लाभ उन्हें एक रहस्यवादी तथा धार्मिक मनुष्य कहते हैं, परन्तु बहुतों उनका धर्म एक गौण महत्व की बात समझा जाता है, तथा अग्रेज लोग और स्वयं उनके बहुत-से देशवासी भी उनके वक्तव्यों को समझने में भूल करते हैं, क्योंकि वे उन वक्तव्यों को इस प्रकार सुनते हैं और प्रयोग करते हैं मानो वे किसी देशभक्त राजनीतिज्ञ के दिये हुए हों। वे उनके इस महत्वपूर्ण सिद्धान्त को भूल जाते हैं कि "नैतिकतारहित राजनीति ऐसी वस्तु है जिससे बचना चाहिए।" जब वह यह घोषित करते हैं कि "मेरी देशभक्ति सदा मेरे धर्म की चेरी है" तो वह उस देशभक्ति तथा एष्टीयता को एक नया महत्व देते हैं जो आज ससार की गोलमाल और अशान्ति का मूल कारण बनी हुई है। यह भारत के शत्रु को कोई हानि नहीं पहुँचावेगी, क्योंकि किसीको हानि पहुँचाना अधर्म है।

अब यह आवश्यक है कि हम गांधीजी के अन्तरिक धर्म के सम्बन्ध में जाच-पड़ताल करें। वह अपने आपको हिन्दू कहते हैं, परन्तु वह हिन्दू केवल इसी अर्थ में है कि हिन्दू धर्म से अप्रति अप्रसन्न जगत् के सबसे अधिक तथा सबसे प्रभाव-शाली रूप में अच्छे मालूम होने हैं। वह लिखते हैं —

"धर्म की सबसे उच्च परिभाषा के अन्तर्गत हिन्दू धर्म, इस्लाम, ईसाई धर्म आदि सब आजाते हैं, परन्तु वह इन सबसे श्रेष्ठ है। आप उसे सत्य के नाम से भी

पहचान सकते हैं, जो प्रत्येक वस्तु में व्याप्त है तथा जो सब प्रकार के विनाशों और परिवर्तनों के बाद भी जीवित रहता है।

“धर्म मुझे प्रिय है, और मेरी सबसे प्रथम शिकायत यह है कि भारत धर्महीन होता जा रहा है। यहां मैं हिन्दू या मुसलमान या पारसी धर्म का विचार नहीं कर रहा हूँ बल्कि उस धर्म का विचार कर रहा हूँ जो सब धर्मों के मूल में है। हम परमात्मा से विमुख होते जा रहे हैं।”

गांधीजी परमात्मा की परिभाषा में कहते हैं कि वह “एक अवर्णनीय मूढ़ शक्ति है जो प्रत्येक वस्तु में व्यापक है।” वह वर्णन करते हैं —

मैं यह निश्चयपूर्वक अनुभव करता हूँ कि जहाँ मेरे चारों ओर की प्रत्येक वस्तु सदा परिवर्तनशील तथा सदा नाशवान है, वहाँ इस समस्त परिवर्तन के मूल में एक सजीव शक्ति है, जो विविध है, जो सबको धारण किये हुए है, जो सृष्टि की रचना करती है प्रलय करती है तथा पुन रचना करती है। यह ज्ञानदाता शक्ति अथवा आत्मा ही परमात्मा है।”

यह परमात्मा त्रिगुणात्मक—सत्, चित्, आनन्द—है।

“‘सत्य’ शब्द ‘सत्’ से निकलता है, जिसका अर्थ है होना। वास्तव में सत्य के अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं है, अर्थात् किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं है...’। तथा जहाँ सत्य है वहाँ ज्ञान, विशुद्ध ज्ञान भी है। और जहाँ विशुद्ध ज्ञान है वहाँ सदा आनन्द है।’

परमात्मा “सबके अन्दर है” तथा “प्रत्येक मनुष्य परमात्मा की प्रतिमूर्ति है?” अतः हमने से प्रत्येक के भीतर सत्-चित्-आनन्द का अस्तित्व है—परन्तु उसका केवल कुछ ही अंश आवरणरहित है, क्योंकि वह अज्ञान तथा अविद्या के आवरण से ढका हुआ है। मनुष्यों को उचित है कि इस आन्तरिक देवता की शक्ति से जीवित रहने का प्रयत्न करे। जब गांधीजी शिकायत करते हैं कि भारतवासी परमात्मा से विमुख होने जा रहे हैं तो उनका तात्पर्य यह है कि वे लोग अपने भीतर की परमात्मा की शक्ति के द्वारा जीवित रहने का प्रयत्न नहीं कर रहे। “मनुष्य पशु से ऊपर है” और “उसे एक दैवी कर्तव्य पूरा करना है”। “हम पृथ्वी को जानते हैं, परन्तु हम अपनी अन्तरात्मा के स्वर्ग से अपरिचित हैं।”

मनुष्य का श्रेष्ठतम कर्तव्य क्या है? सच्चे ज्ञान से सत्य की खोज और केवल इसी के द्वारा नित्य आनन्द प्राप्त हो सकता है। “सत्य को पूर्णतया ज्ञान लेना अपने आपको तथा अपने भविष्य को पहचान लेना है, अर्थात् पूर्णता प्राप्त कर लेना है।”

परन्तु मनुष्य में तीन पाशविक प्रवृत्ति हैं। अतः जिस मिट्टी में मनुष्य की देह बनी है उस पर अपूर्णता की छाप लगी हुई है। सबसे प्रथम आवश्यक बर्ण है अपने में निहित पूर्णता के अस्तित्व को तथा अपने बहुओर की अविद्या से प्रवर्णन और

प्रभाव का स्वीकार करना। जब हम अपनी दा भुम्मी—देवी तथा दानवी—प्रकृति से मुकाबिला करत हैं ना उनमें जा क्रिया अनर्हित है उसका गाधीजी प्रभावशाली दम से बर्णन करत हैं—

“मुझे अपनी अप्रयत्नाया का दुःखमय ज्ञान है तथा इसीमें मेरा समस्त बल है क्योंकि मनुष्य के लिए स्वयं अपनी मयादाया का ज्ञान जना एक दुःखाप्य वस्तु है।

चूँकि हम निश्चयमय में स्वयं अपनी मयादाया का नहा ज नत, अतः हमका भा दिव्याभा दिव्यलार्दे नहा पडती। हमारी दुःखलताय उनमें लडने तथा उनका परास्त करन का प्रयत्न उडानी है और यह प्रयत्न स्वभावतः हा हमकी आत्मा तथा अन्तरात्मा का शक्ति तक न जाना है। इन दुःखलताया का जीत ज्ञान में ही जीवन मृत्यु के ऊपर गादवन विजय प्राप्त कर लता है।

अपनी अपूर्णता पर विजय प्राप्त करन की तरकीब जिसमें हमारी गुप्त पूणता प्रकट हो जावे, गाधीजी के इस उद्देश में दी हुई है—‘जा अभिज्ञ अहिमा हममें से प्रत्येक के अन्दर निहित है उसका विकास करो। इसका गूढाय ध्यान दन योग्य है— जा गुण है उस प्रयत्न के द्वारा प्रकट करन की आवश्यकता है। यह प्रयत्न किस प्रकार किया जाय ?

“यदि मनुष्य का कोई कर्तव्य पूरा करना है, ऐसा कर्तव्य जो उसके योग्य हो वा वह अहिमा है। हिमा के मध्य में सदा दृष्टा भी वह अपन हृदय की ठठ आन्तरिक गहराई में आकर बस सकता है और अपन चारों ओर के ससार को यह घोषित कर सकता है कि इस हिमा के अगम में उसका कर्तव्य अहिमा है और जिस अशा तक वह उस पालन कर सकता है उसी अशा तक वह मनुष्य-जाति का भूषण है। अतः मनुष्य की प्रकृति हिमा की नहीं, बल्कि अहिमा की है क्योंकि वह अनुभव के द्वारा कह सकता है कि उसका आन्तरिक विश्वास है कि वह दह नहा बल्कि आत्मा है और वह देह का उपयोग इसी उद्देश्य से कर सकता है कि आत्मज्ञान प्राप्त कर।

परन्तु इस निश्चय पर दृढ़ रहना चाहिए। जब मनुष्य अपन अन्तरात्मा में निवास करता है तो उन पुण्य और पाप दाना मिलन हो जायते हैं। जरबुस्त धर्म में वर्णित वाद-मनो तथा अकेल-मनो दोनों मानस उसमें कार्य करते रहत हैं। मनुष्य का अपना अन्न करण इसके लिए पर्याप्त नहीं है क्योंकि वह भी आन्तरिक आत्मा का रूप है। गाधीजी ठीक ही कहत हैं—“अन्न करण सबके लिए एक-सी वस्तु नहीं है। तो मनुष्य के अन्न करण की सहायता करनेवाली कौनसी ज्योति होनी चाहिए ? एक निर्माल पाप ? कोई श्रुति ? अपनी रचनाया के एक मूल अंग में गाधीजी कहते हैं —

“मेरे इस वात का दावा नही करता कि मेरी मार्ग प्रदर्शकता तथा आन्तरिक प्रेरणा निर्धारित है। जहाँ तक मेरा अनुभव है, किसी भी मनुष्य का यह दावा करना कि वह निर्धारित है, मानने के योग्य नहीं है क्योंकि आन्तरिक प्रेरणा भी उसीको ही

सकती है जो दुविधा से मुक्त होने का दावा करे और किसी अवसर पर यह निश्चय करना कठिन है कि दुविधा से मुक्ति का दावा न्यायाचित है या नहीं। अतः निर्भांति का दावा सदा एक भयकर दावा रहेगा। परन्तु यह बात नहीं है कि इससे हमारे लिए कोई मार्ग ही न रहा हो। ससार के ऋषि-महर्षियों के अनुभवों की समष्टि हमका प्राप्त है तथा भविष्य में सदा प्राप्त होती रहेगी। इसके सिवा मौलिक सत्य बहुत से नहीं हैं, केवल एक ही मौलिक सत्य है, जो स्वयं सत्य ही है। जिसका दूसरा नाम अहिंसा है। परिमित ज्ञानवाली मनुष्य-जाति सत्य और प्रेम का पार पूर्णरूप से कभी नहीं पासकेगी, क्योंकि ये स्वयं अपरम्पार हैं। परन्तु हम अपने मार्गप्रदर्शन के लिए काफी जानते हैं। हम अपने बलों में भूल करेंगे और कभी-कभी भयकर भूल करेंगे। परन्तु मनुष्य एक स्वाधीन प्राणी है और स्वाधीनता में आवश्यक रूप से भूल करने का अधिकार भी उतना ही शामिल है जितना, उन भूलों को जितनी बार वे हो, सुधार का।

क्या गांधीजी न भूल की है? भूलें सबसे होती हैं। परन्तु भयकर भूलों के किये जाने का मुख्य कारण क्या है? सब मनुष्य भूल करते हैं, परन्तु इन भूलों को पहचानने की शक्ति कितनी में है? और कितनी में इतनी साहसपूर्ण मन शक्ति है जो भूलों को स्वीकार करले? गांधीजी के स्वात्म-याग-युक्त होने का एक लक्षण यह है कि उनका स्वभाव है कि वह निष्कपट रूप से अपनी भूलों को स्वीकार कर लेते हैं। दूसरा लक्षण यह है कि वह अपने अनुयायियों के दोषों को अथवा अपने कुटुम्बियों के अपराधों को अथवा अपने राजनैतिक दल की कमजोरियों को निर्भयतापूर्वक जाहिर कर देते हैं। वह अपने स्वधर्माविलम्बियों की धार्मिकहीनता को प्रकट करने से नहीं डरते। कोई मनुष्य एक शक्तिशाली साम्राज्यशाही सरकार को 'शैतानी' कहने से क्यों डरे जब वह स्वयं अपने ही शरीर की शैतानी शक्तियों के विषय में लिखकर अपना ही असलीरूप जनता के सामने रखने में नहीं सकुचता जैसाकि उसने 'मेरे सत्य के प्रयोग अथवा आत्म-कथा' में किया है?

उसी मौलिक लेखाद्य में हमका उनके स्वाधीनता के आदर्श की शांति मिलती है। जो मनुष्य स्वयं अपने ऊपर शासन कर सकता है वह सबसे उच्च श्रेणी का सुधारक है। यह आदर्श गांधीजी की फिलासफी का आधार है। आर्थिक सुधार राजनैतिक सुधार, सामाजिक सुधार, धार्मिक सुधार, ये सब व्यक्तिगत सुधार के व्यापक रूप हैं। उदाहरणार्थ सबसे वास्तविक सुधार—जहाँ आर्थिक सुधार—के विषय में वह कहने हैं—

“भारत की आर्थिक स्वतन्त्रता का अर्थ में यह लेता हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, स्वयं अपने ऐच्छिक प्रयत्न से, अपनी आर्थिक उन्नति करे।”

इस ऐच्छिक प्रयत्न का सम्बन्ध उस समाज से होता है जिसमें वह रहता है। इस

आर्थिक समस्या का राष्ट्रीय पहलू बड़े अच्छे ढंग में समझाया गया है वह फिर कहते हैं—

“वास्तविक समाजवाद हमका अपने पूर्वजों से विरासत में मिला है जिनका उपदेश है, ‘सारी भूमि गोपाल की है। फिर इसकी सीमान्त रेखा कहा है ? यह रेखा मनुष्य की ही बनाई हुई है, अब वह ही इन मित्र भी सकता है। गोपाल का शाब्दिक अर्थ है खाला। इसका अर्थ परमेश्वर भी है। आधुनिक भाषा में इसका अर्थ है राज्य, बयान् जनता। आज भूमि जनता की नहीं है यह बात, खेद है कि, ठीक है। परन्तु ग़लती इस उपदेश में नहीं है। ग़लती उनमें है जिन्होंने इस उपदेश का पालन नहीं किया है।”

जिम समाज में मनुष्य रहता है और उसपर अपना प्रभाव डालता है उसके गया उस मनुष्य के बीच का सम्बन्ध कौटुम्बिक सम्बन्ध है। ‘यह विश्वास करने का कोई कारण नहीं है कि कुटुम्ब के लिए एक न्याय है तथा राष्ट्रा के लिए दूसरा न्याय है।” अब सार्वजनिक कर्म का एक अत्यन्त व्यावहारिक तथा महत्वपूर्ण नियम इस प्रकार बनलाया गया है—

“सार्वजनिक सत्त्याग्रह के प्रत्येक मामले की जीव उसी भाँति के एक कौटुम्बिक मामले की कल्पना के द्वारा जानी चाहिए।”

अर्थात् सार्वजनिक मामलों का निपटते समय प्रत्येक व्यक्ति को समस्त मानव-माध्याज्य की अपने कुटुम्ब के रूप में देखना चाहिए। तब एक आदर्श सद्गृहस्थ या परम दया-वर्म का पालन करना चाहता है, चारर, बड़माया, हरामखोरी इत्यादि के साथ कैसा बर्ताव करे ? श्रेष्ठ आर्ष जानियाँ डिस्टेंटरा तथा धूना करनेवालों का क्या करे ? उत्तर यह है। शक्तिशाली परन्तु ‘उसमें हिंसा का अंश न हो।’ क्या कोई मनुष्य या जानि जानवायी को अपने ऊपर आ जाने दे ? इस प्रश्न का उत्तर देने में गाँधीजी ने समस्त मनुष्य-जाति की सेवा की है और कह रहे हैं।

उत्पन्न होनेवाली परिस्थितियाँ इनने प्रकार की हो सकती हैं कि उनकी गिनती नहीं की जा सकती। कौटुम्बिक सम्बन्धों में भी अहिंसा का पालन करने के लिए ज्ञान की आवश्यकता है। सत्त्याग्रह के व्यावहारिक विज्ञान के अनुसार किसी विशेष परिस्थिति को किस प्रकार समझा जाये ? यह कोई आगमन बात नहीं है, जिन्होंने थोड़े समय के लिए भी इसका प्रयत्न किया है वे इस बात की सार्सी दे सकते हैं। परन्तु उम जाति का काम और भी अधिक पेचीदा है जो अहिंसा अपना सत्त्याग्रह के आधार पर जीव तथा पुष्ट होने का आयाजन करती है। दक्षिण अफ्रीका में जो परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई, और भारत में वे जिस प्रकार उत्पन्न होती रही हैं, उनका मूलाविला करने में

‘यह उक्ति निम्नलिखित शोहे से ली गई है—

सभी भूमि गोपाल की, या मैं अटक कहा

जाके मन में अटक है, सोई अटक रहा।

—सपादक

गांधीजी बंदी का प्रतिरोध नेकी से, शस्त्र का मुकाबिला शान्तिपूर्ण हृदय से, करने की तरकीब निकाल रहे हैं। केवल जाने हुए सार्वजनिक मामलों में ही नहीं, बल्कि खानगी तथा व्यक्तिगत जीवन में भी, प्रति सप्ताह, वास्तविक कार्य-व्यवहार में, गांधीजी यह बतलाते रहे हैं कि सत्याग्रह के चक्र का किस प्रकार चलाया जावे। उनका प्रिय चर्चा इसी चक्र की एक वास्तविक अभिव्यक्ति है।

हमारे इस आधुनिक युग की सभ्यता की सहानुभूति अहिंसा अथवा सत्याग्रह के साथ नहीं है, न हो सकती है। परन्तु आधुनिक सभ्यता की असफलता तो स्पष्ट दिखलाई दे रही है और विचारवान् सुधारक इस बात को स्वीकार करते हैं कि यदि इस सभ्यता को डूबने से बचाना है तो इसके काम करने के कितने ही प्राचीन मार्गों को, जीवन के किनारे ही डगो तथा तरीकों को, छोड़ देना पड़ेगा।

ऐसे लोग क्या करे ?

सत्याग्रह विज्ञान के सिद्धांतों का अध्ययन प्रारम्भ करें और जब भस्तिष्क में इसका स्पष्ट चित्र बन जावे तब अपने को अनुशासन में लावे। बुराई की तीन शक्तियाँ हैं—सत्कार में ही नहीं, बल्कि मुरझात व्यक्ति में। काम, क्रोध, लोभ, ये सत्कार में फैलते हैं, क्योंकि सत्कार राष्ट्रों में बँटा है और राष्ट्रों द्वारा इन्हें पोषण मिलता है। प्रत्येक जाति में ये वर्ग-युद्ध तथा वर्ण-युद्ध की तवाही उत्पन्न कर देते हैं, परन्तु इनकी असली जड़ व्यक्ति में होती है। जब किसी मनुष्य के अन्दर ये शक्तियाँ क्रियाशील होकर उसकी शान्ति का नष्ट करें, उसके भस्तिष्क में गड़बड़ उत्पन्न करें, उसके हृदय का समस्त मानव-मण्डल के विरुद्ध नहीं तो उसके बहुत से व्यक्तियों के विरुद्ध कठोर बना दे, तो वह मनुष्य सत्कार में शान्तिपूर्वक नहीं रह सकता।

वह केन्द्रीय गुण, जो प्रत्येक सच्चे सत्याग्रही के आवरण का सिद्धान्त है, साहस है। इस साहस का उपयोग केवल अपनी ही नीच प्रवृत्ति का मुकाबिला करने में नहीं, बल्कि उन लुभावनी वस्तुओं के विरुद्ध भी करना चाहिए जो ऐसे सत्कार में उत्पन्न होती हैं, जहाँ प्रेम की गर्मी से कामुकता मान लिया जाता है, तथा लोभ जीवन की प्रतियोगिता का एक आवश्यक बल बनकर फलता-फूलता है, जहाँ ये ही सफल प्रतिस्पर्धी जीवित रहने के योग्य होते हैं जो अपने प्रतिद्वन्द्वियों के विरुद्ध भ्रष्ट के बल का प्रयोग करते हैं—उसका वेप चाहे जितनी खूबी के साथ बदल दिया गया हो। हमको पग-पग पर आत्मा के उस साहस की आवश्यकता होती है जो हमारे तथा हमारी अन्तरात्मा के एकीकरण से उत्पन्न होती है, और हमारी अन्तरात्मा विश्वात्मा से अभिन्न है।

सत्याग्रही का मार्ग भीरुता का मार्ग नहीं है। इस बात पर गांधीजी ने इतना जोर दिया है तथा इसने सितने ही यूरोपियनों को असमजस में डाल दिया है, अतः इस सम्बन्ध में गांधीजी के ही शब्दों को उद्धृत करना श्रेयस्कर है—

"मैं यह पसंद करूँगा कि भारतवर्ष अपने गौरव की रक्षा के लिए शस्त्र का

महारा ले, बजाय इसके कि वह कायरता के साथ स्वयं अपने ही गौरव को असहाय की भाँति मिट्टी में मिलता देखे ।

“यदि हम कष्ट-सहिष्णुता के बल से, बर्षात् अहिंसा से, अपनी, अपनी स्त्री-जानि की तथा अपने धर्म-स्थानों की रक्षा नहीं कर सकते तो, यदि हम मनुष्य हैं तो, हममें लड़कर कम-से-कम इनकी रक्षा करने की योग्यता होनी चाहिए ।”

कुछ दिन हुए, कुछ चीनी अतिथियों के प्रश्नों के उत्तर में गांधीजी ने बतलाया था कि एक राष्ट्र की तरह अब चीन के लिए समय नहीं रहा कि अहिंसा का संगठन करे और जापान चीन में जो खराबी फैला रहा है उसका मुकाबिला करे । शान्ति की मेधा एक दिन में तैयार नहीं की जा सकती और उसके सिपाही जिनकी शीघ्रता से बन्दूक चलाने के बिनाप रौशनी को सीख सकते हैं उतनी शीघ्रता से बुराई का मुकाबिला करने की उत्कृष्ट कला को नहीं सीख सकते । चीन में केवल व्यक्ति अहिंसा का पालन कर सकते हैं और यदि ‘स्वर्गीय साम्राज्य’ के लोग पर्याप्त सख्या में सत्याग्रह के सच्चे स्वर्गीय विज्ञान को सीखना तथा पालन करना सीख लें तो समय आने पर—और समय कभी भी आ सकता है—वे चीन की आत्मा को बचा सकेंगे । गांधीजी ने समझाया कि “जिन्नी राष्ट्र की सृष्टि उसकी जनता के हृदय तथा आत्मा में निवास करती है” । जापान तलवार के छोर से दबा न पीने वालों के गले में जबरदस्ती दबा नहीं डाल सकता ।”

उन्होंने अतिथियों से कहा कि वे अपने देशवासियों से कहें—“जापान के लोग हमारी आत्मा को नहीं बिगाड़ सकते । यदि चीन की आत्मा की हानि पहुँची तो वह जापान के द्वारा नहीं पहुँचेगी ।” यह सत्य सब जातियों पर लागू होता है, परन्तु ऐसी भी जातियाँ हैं, जैसे अंग्रेज, जो जल्दी से शान्ति की पीढ़ खड़ी करके अपने घर का बन्दोबस्त कर सकती हैं, और इस प्रकार दूसरी जातियों को बचाने में सहायक हो सकती हैं । यदि इंग्लैण्ड का सस्त्र-निर्माण का कार्यक्रम दूसरी जातियों को नबल करने के लिए प्रेरित कर सकता है, तो सत्याग्रह के पालन में उसका संगठित प्रयत्न दूसरों को भी ऐसा ही करने की स्फूर्ति क्यों नहीं दे सकता ? उसे उचित है कि वह “सीधे-सादे तथा दिव्य जीवन से उत्पन्न होनेवाले शान्ति के मार्ग” पर चलने का संगठित आयोजन करे ।

१ चीनवाले अपने देश को स्वर्गीय-साम्राज्य कहते हैं—संपादन

हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए गांधोजी का अनशन

रेवेरेण्ड फॉस वेस्टकॉट, एम. ए., एल-एल. डी.

[भारत के साठ पादरी और साई बिशप, कलकत्ता]

मुझसे श्री मोहनदास करमचन्द गांधी के जीवन और उनके कार्य के पहलू की महत्ता पर संक्षेप में कुछ लिखने को कहा गया है। मैं समझता हूँ उसके उत्तर में मैं सितम्बर १९२४ में उन्हें जिन कारणों से इक्कीस दिन का उपवास करना पड़ा और उसके जा परिणाम हुए, उनका वर्णन करने से बटकर और कोई कार्य नहीं कर सकता।

उस वर्ष के वसन्त और शीष्मकाल में हिन्दू मुस्लिम तनाव भयावह स्थिति तक पहुँच गया था। इसका आशिक कारण था वह शुद्धि आन्दोलन, जा स्वामी थडानन्द ने दिल्ली के आस पास के नव-मुस्लिमों में आरम्भ किया था। महात्मा गांधी के लिए, जिनके लिए जैसाकि उन्होंने कहा है, गत तीस वर्षों से हिन्दू-मुस्लिम एकता एक प्रमुख विषय रहा है, यह साम्प्रदायिक संघर्ष अत्यन्त क्लेश का कारण था। ज्यों ज्यों एक के बाद दूसरा दगा होता जाता था, उनका कष्ट बढ़ता जाता था। यहाँ तक कि अन्त में १७ सितम्बर को उन्हें यह प्रतीत हुआ कि उन्हें इक्कीस दिन का उपवास करना चाहिए। इस पर लिखते हुए उन्होंने कहा था—'मेरा प्रायश्चित्त अनिच्छापूर्वक किये गये अपराधों की धमा के लिए की गई एक दुःखित हृदय की प्रार्थना है। इस तरह उन्होंने, जिन अपराधों के लिए हिन्दू दोषी थे उनसे अपने को सम्बन्धित किया और उनकी जिम्मेदारी अपने पर ली। उन्होंने कहा—'एक-दूसरे के धर्म की निन्दा करना, अन्धाधुन्ध अथवा गैर जिम्मेदाराना वक्तव्य देना, असत्य कहना, निर्दोष व्यक्तियों के सिर फोड़ना और मन्दिरों अथवा मस्जिदों का अपवित्र किया जाना, ईश्वर के अस्तित्व से इन्कार करना है।' जब उन्होंने अपने मित्रों पर अपना विचार प्रकट किया तो उनसे उपवास छुड़ाने की हर तरह की निन्दा की गई, लेकिन यह चाहे उसका परिणाम कुछ भी हो, अपने निश्चय के पथ से विचलित होने से इन्कार करने का राम का उदाहरण देकर अपनी बात पर अड़े रहे। १८ सितम्बर को उनका उपवास शुरू हुआ और उसी दिन हकीम अजमलखा, स्वामी थडानन्द और मो० मोहम्मदअली ने सब प्रकार के राजनैतिक विचारों के प्रमुख हिन्दू और मुसलमान और दूसरी जानियों, यूरोपियन और हिन्दुस्तानी दोनों के नाम एक पत्र लिखा, जिसमें उन्हें बहुत जल्दी दिल्ली में होनेवाली शान्ति-परिषद् में भाग लेने के लिए निमन्त्रित किया गया था। करीब तीसरी व्यक्तियों ने

जिनमें दोनों जातियों के अधिकांश नेता शामिल थे, निमन्त्रण स्वीकार किया, क्योंकि भारत के सब वर्गों के लोगों में गांधीजी के प्रति अगाध और स्नेहपूर्ण आदर-भाव था। राष्ट्रीय सम्पत्ति के रूप में गांधीजी का जो अमूल्य मूल्य था, उपवास में उनके जीवन के खतरे में पड़ने की आशंका थी ही। सो उसके कारण को दूर करने में जो भी प्रयत्न सम्भव हो करने के लिए सब इकट्ठा हुए। गांधीजी ने खुद अपने मित्रों से कहा था, 'मेने यह उपवास भरने के लिए नहीं, बल्कि देश और ईश्वर की सेवा में उच्चतर और पवित्रतर जीवन व्यतीत करने के लिए किया है। इसलिए अगर मैं ऐसे सक्टा-का-के निकट पहुँचा (जिसकी कि एक मनुष्य की हैसियत से बोलते हुए मैं किसी प्रकार की कोई सम्भावना नहीं देखता) जबकि मृत्यु और भोजन दो में से किसी एक को चुनना होगा, तब निश्चय ही मैं उपवास भंग कर दूंगा।' अन्त में २६ सितम्बर को मगम थियेटर में शान्ति-परिषद् का अधिवेशन आरम्भ हुआ। विस्तृत जन-समूह मंच के सामने खुली जमोन पर बैठा था। मंच पर सीतु के मूली पर लटकते हुए दशक का परिधायक एक धुधला-सा पर्दा लटका हुआ था, और मंच की एक ओर गादी पर गांधीजी का मड़ा हुआ एक बड़ा चित्र रक्खा था। स्वागताध्यक्ष श्री० मोहम्मदअली ने उपस्थित सज्जनों का स्वागत किया और संक्षेप में परिषद् का उद्देश्य बतलाया। इसका क्षेत्र समिति था और वह था जातिगत सगडों के धार्मिक कारणों पर विचार करना। वह तो ज्ञान ही था कि इन सगडों की तरह राजनैतिक और आर्थिक कारण भी हैं, पर उनपर बाद की विचार किया जाने को था। श्री० मोतीलाल नेहरू सर्वसम्मति से परिषद् के सभापति चुने गये। कुछ प्रारम्भिक भाषणों के बाद इस परिषद् का पहला काम था करीब अस्सी सदस्यों की एक "विषय निर्वाचनी समिति" नियुक्त करना ताकि वह फिर एक छोटी समिति के द्वारा बनाये गये मतविदे की प्रस्तावों के रूप में तैयार करने की मुख्य जिम्मेदारी ले ले।

परिषद् की अपनी कार्रवाई शुरू होने के पहले गांधीजी ने एक सन्देश भेज कर इस बात पर जोर दिया था कि जिस चीज की जरूरत है वह है हृदय की एकता। प्रत्येक व्यक्ति ने सत्य का जैसा देखा-समझा हो वही कहना चाहिए। वैसा ही यहाँतक कि अगर इसमें दूसरों के उपामन्त्रा-स्थानों को अपवित्र करना शामिल हो तो वह भी उन्हें वैसा ही कहना चाहिए। वह उनकी इस ईमानदारी की कद्र करेंगे, हालांकि वह यह जान जायेंगे कि उस हालत में उनकी अपनी इस अभागी भूमि के लिए शान्ति नहीं है।

सभापति की ओर से रक्खा गया वह प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुआ जिसमें गांधीजी के धर्म में आत्मा की पूर्ण स्वतंत्रता के सिद्धान्तों को स्वीकार और उपासना-स्थानों के अपवित्र किये जाने, विवेकपूर्वक और ईमानदारी के साथ अपना धर्म-परिचय करने के कारण किसी भी व्यक्ति के सताये जाने और अवदस्ती धर्मान्तरित किये जाने की निन्दा की गई थी।

परिपद् के आरम्भ होने से पहले चारों तरफ से इस बात की तरफ हमारा ध्यान दिलाया जा रहा था कि हिन्दू-मुस्लिम एकता प्रस्ताव पास कर लेने से नहीं, बल्कि एकमात्र हृदय-परिवर्तन से ही हो सकती है। और शुरू के दिनों के बाद-विवाद पर दृष्टि डालने से मुझे मालूम हुआ कि धीरे धीरे वही हृदय-परिवर्तन हो रहा है। उस जिस समय हमने विषय निर्वाचनी समिति में छोटी कमेटी द्वारा तैयार किये गये प्रस्तावों पर विचार करना शुरू किया भावों की कटुता और तीव्रता एकदम स्पष्ट दिखाई देने लगी, जिसके साथ-ही-साथ गहरे सन्देश की भावना लगी हुई थी। सद्भावना प्रदर्शित करनेवालों की अविश्वास की दृष्टि से देखा जाता था और उदारतापूर्वक बढ़ाये गये हाथ को बदले में अधिक लाभ उठाने की चाल समझा जाता था। लेकिन पाँचवें दिन भावों में एक निश्चित परिवर्तन दिखाई दिया और जब मौलाना अबुलकलाम आजाद के अपना भाषण समाप्त कर चुकने के बाद, जिसकी कि उत्कृष्ट वाग्मिता और भावों की उदारता के कारण मुकामफ़्त से प्रशंसा हुई, एक प्रश्नकर्ता ने उनसे पूछा कि बदले में उन्हें क्या-क्या रिआयत मिलने की आशा है, तो सभा में चारों तरफ से उसके प्रति तिरस्कारपूर्ण आवाज़ें उठने लगी। यह स्पष्ट दिखाई देने लगा कि बदले की पुरानी भावना का स्थान सहिष्णुता की भावना लेती जा रही है और धार्मिक विद्वेष और रीति-रिवाजों के मतभेद उचित और सम्मान के योग्य समझे जाने लगे हैं। बहस के शुरू में बक्ता मुस्तप अपने अधिकारों पर जोर देते थे, लेकिन अब उनमें अपनी जिम्मेदारियों और अपने आवश्यक कर्तव्यों की भावना दिखाई देने लगी।

उपवास के ग्यारहवें दिन गांधीजी की हालत कुछ चिन्ताजनक मालूम हुई और बैठक के बीच ही मुझे श्री सी एफ एण्डरूज का उत्तरी पैगाम मिला कि मैं फोरन आजाऊँ। मैंने डॉ० अब्दुलरहमान को अपने साथ लेने का मुनासिब समझा और उन्होंने उस शाम और जाँव करने को कहा। इस तरह परिपद् काफी देर तक रुकी रही। इस बीच गांधीजी ने श्री एण्डरूज और मुझे शाम की प्रार्थना के समय हम ईसाइयों का एक अंग्रेजी भजन, जो इधर अँस से उनका एक प्रिय भजन था, गाने को कहा। वह है —

लिये चलो ज्योतिर्मय, मुझको सघन तिमिर से लिये चलो ।

रात अबेरी, गेह दूर है, मुझे सहारा दिये चलो ।।

पापों से मेरे उग्रमग्न पग,

दूर दुःख चाहें न लखें दुःग—

मुझे अल है देव, एक डग !

कभी न मने निस्सहाय हो माँगा—‘मुझको लिये चलो ।’

निज पय आप खोजता-लखता ! पर तुम अब तो लिये चलो !

लिये चलो, ज्योतिर्मय, मुझको सघन तिमिर से लिये चलो ।

प्यारा या मुझको जगमग दिन
 हेय मुझे थे मे भय अनगिन
 झटकार से गया सभी छिन
 मेरे पिछले जीवन को प्रिय, मन में रखकर अब न छोड़ो !
 लिये चलो, ज्योतिर्मय, मुझको सघन तिमिर से लिये चलो !
 जबतक है तेरा बल शिर पर,
 हूंगा मैं गतिशील निरन्तर,
 बौद्ध-दलदल, शैल-प्रलय पर,
 तबतक, जबतक निमति सुन्दरी रात्रि उषा में आ बदलो,
 चिरप्रिय मेरे देवदूत थे,—इस क्षण खोये—फिर निकलो !
 लिये चलो, ज्योतिर्मय, मुझको सघन तिमिर से लिये चलो !^१

कमरे का मन्द प्रकाश, पलंग पर सहारे स अधोलेटी वह दुर्बल मूर्ति ।—एक
 विलक्षण हिला देनेवाला अनुभव था ।

डाक्टर की रिपोर्ट मिलने पर खैर निश्चिन्तता हुई । कष्टदायक लक्षण निश्चित
 रूप में कम होगये थे, और भय का कोई कारण नहीं रह गया था ।

परिपद के परिणामों का चारों तरफ हार्दिक समर्थन के साथ स्वागत हुआ,

१ मूल अंग्रेजी पद्य इस प्रकार है —

Lead, Kindly light, amid the encircling gloom

Lead Thou me on,

The night is dark and I am far from home,

Lead Thou me on

Keep Thou my feet, I do not ask to see

The distant scene, one step enough for me

I was not ever thus, nor prayed that Thou

Shouldst lead me on

I loved to choose and see my path, but now

Lead Thou me on

I loved the garish day, and spite of fears,

Pride ruled my will remember not past years,

So long Thy power hath blest me, sure it still

Will lead me on,

O'er moor and fen, o'er crag and torrent, till

The night is gone,

And with the morn, those angel faces smile,

Which I have loved long since and lost awhile,

यद्यपि यह आम स्वीकृति थी कि हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित होने का काम समय का काम है। ८ अक्टूबर को मनाये गये 'एकता-दिवस' पर कलकत्ते के 'स्टेट्समैन' में जिन बहुतसे प्रसिद्ध लेखकों के सन्देश प्रकाशित हुए थे, उनमें एक लेखक ने बड़ी अच्छी तरह इस बात को व्यक्त किया था। लिखा था—“जहाँ सुस्पष्ट और प्रबल राजनैतिक युक्तियाँ सर्वथा असफल हुईं, वहाँ गांधीजी के उपवास से उत्पन्न धार्मिक भावनायें सफल होगईं। लेकिन लाखों आदमियों में सहिष्णुता से काम लेने की आदत डालने का कहीं अधिक कठिनतर कार्य अभी बाकी पड़ा है।” बाद की राजनैतिक घटनाओं के कारण, जिन्होंने राजनैतिक और आर्थिक तनावों को और अधिक बढ़ा दिया है, यह कार्य सरल नहीं होसका। अगर शान्ति का राज्य स्थापित करना है तो गांधीजी ने जिस, सब मनुष्यों के हृदयों में ईश्वर की प्रस्थापित करने के, उद्देश्य से उपवास आरम्भ किया था, वह अवश्य पूरा किया जाना चाहिए, क्योंकि एकमात्र इसी तरीके से मनुष्य की परस्परविरोधी इच्छाओं को ईश्वर की सर्वोपरि इच्छा के नियन्त्रण में लाया जा सकता है।

: ५१ :

महात्मा गांधी और कर्मण्य शान्तिवाद

रेवरेण्ड जेक सी. विंसलो,

[पुना और लन्दन]

महात्मा गांधी के चरित्र और शिक्षा से खुद मुझको जो प्रेरणा मिली है, उसके सम्बन्ध में मैं बहुत कुछ लिख सकता था। उनके साथ परिचय मेरे जीवन का एक परम सौभाग्य है। लेकिन इस संक्षिप्त लेख में मैं सिर्फ एक विषय पर जोर देना चाहता हूँ, और वह यह कि उन्होंने ससार को इस तरह का शान्तिवाद बतलाया है, जो सचमुच युद्ध का स्थान ले सकता है।

वह शान्तिवाद जैसाकि पश्चिम में बरतार प्रकट हुआ है, सफलता-पूर्वक युद्ध प्रणाली का स्थान नहीं लेसकता। अवश्य ही युद्ध का अस्वीकार करने में और अपने इस विश्वास में वह सही है कि युद्ध विजयी और विजित दोनों ही के लिए समानरूप से केवल और अधिक तबाही ही लाता है, उसका यह प्रतिपादन भी सही है कि अहिंसा का मार्ग उच्चतर मार्ग है। लेकिन पश्चिम शान्तिवाद में एक दोष यह है कि उसमें दुराई के मुकाबिले में मुद्द और सफल आक्रमण करने की शक्ति नहीं है। वह बड़ी आसानी से निष्क्रियता में डूब जाता है। जिन लोगों का खून किये गये अत्याचारों के खिलाफ गुस्से से उबल रहा है और जो ज्यादाती को रोकने का कोई उपाय करने के लिए

उठावले हो रहे हैं, वे शान्तिवादी को ऐसी ज्यादाती के सामने आत्म-नुष्ट और निक्म्मा बना बैठा मानते हैं (और उनका ऐसा मानना सर्वथा अनुचित भी नहीं है) । उनकी दृष्टि में शान्तिवादियों का तरीका ऐसे कामों का मुकाबिला करने की आशा नहीं दिलाता जैसे कि इटली का अबीमोनिया पर आक्रमण अथवा जर्मनी में बूढ़ादियों के खिलाफ अमल में गये लाये तरीके । यही कारण है कि अपने पीछे उच्च नैतिक बल होने का दावा करने पर भी वस्तुतः पश्चिम शान्तिवाद को सच्चे ईसाइयों तक का पूर्ण या व्यापक समर्थन प्राप्त नहीं है । शान्तिवादी आमतौर पर यह धारणा बना लेता है कि बहुमस्मक ईसाई उसके मार्ग का परित्याग इसलिए करते हैं कि वह जो नैतिक मार्ग करता है, वे उनके लिए बहुत ऊँची है । जबकि वास्तव में बहुत से उसका परित्याग इसलिए करते हैं, क्योंकि उनकी नज़रों में वे मांगें बहुत नीची दिखाई देती हैं । कई ईसाइयों की दृष्टि में शान्तिवादी नैतिक अपराधों के प्रति उदासीनता रखने के अपराध के अपराधी हैं, जो कि व्यापनिष्पत्ता और प्रेम के उच्चतम आदर्श से गिरी हुई हैं । मंगल-मय ईश्वर अमंगल और अनैतिक के साथ कभी समझौता नहीं करता है और उन ईसाइयों की शान्तिवादियों से मांग है कि उनमें भी बुराई के प्रति ऐसे ही प्रबल विरोध के भाव की झलक मिलनी चाहिए ।

यही वह पहलू है जिसमें कि महात्मा गांधी की आक्रामक शान्तिवादिता पश्चिम के साधारण शान्तिवाद से उच्चतर सिद्ध होती है । अवश्य ही गांधीजी के सत्याग्रह में शान्तिवादी का चाहा हुआ अहिंसा का सारतत्त्व मौजूद है, और वह तत्त्व सर्वोच्च और सर्वाधिक सक्रियत्व में है । गांधीजी लिखते हैं “अंग्रेज़ी में अहिंसा शब्द का वास्तविक अनुवाद ‘प्रेम या उदारता’ है ।” “अपने सक्रिय मन में अहिंसा का अर्थ है विशाल-मे-विशाल प्रेम, बड़ी-से-बड़ी उदारता ।” “मेरे लिए ईश्वर की जानने का एकमात्र उपाय है—अहिंसा, प्रेम ।” विरोधी के प्रति केवल सब प्रकार की हिंसा से ही नहीं, बल्कि सब प्रकार की दुर्भावनाओं और बटु विचारों से दूर रहना तथा प्रेम और स्वयं कष्ट-सहन के द्वारा उसे जीतने की लगातार कोशिश करना सत्याग्रह का सार है । इतने पर भी सत्याग्रह अपने में उग्र आक्रामक गुण भी रखता है । वह गुण है बुराई के विरोध में अपने पास की आत्म-शक्ति का अधिक-से-अधिक प्रयोग और वह शक्ति जबतक उस बुराई पर विजय प्राप्त नहीं कर लेती चैन नहीं लेगी, चाहे उसकी शक्ति के लिए ख़तरत हो तो मौत भी मिले ।

भारत पर अंग्रेज़ों के आधिपत्य को एक अभिशाप, उसे अपने देश और खुद अंग्रेज़ों के लिए हानिकर मानकर गांधीजी ने अपने-आपको अपनी आत्म शक्ति की पूरी ताकत के साथ अंग्रेज़ी राज के सारथी के लिए लगा दिया । विदेशी के प्रति घृणा न रखने हुए, उसके प्रति एकमात्र प्रेम और सहानुभूति रखते हुए भी अपने इसी विश्वास के कारण वे विदेशी जुए को उखाड़ फेंकने के लिए उठकर सड़े हो गये ।

उन्होंने अपने देश-भाइयों को पश्चिमी आधिपत्य की नैतिक बुराइयों के मुकाबिले में बिना विरोध किये निष्क्रिय होकर बैठ जाने की सलाह नहीं दी। इसके विपरीत उन्होंने अपनेको इस 'गुलाम-मनोवृत्ति' को जिसे वह नैतिक दृष्टि से बलात् विरोध से भी गिरा हुआ समझने थे, तोड़ने में लगा दिया, और अपने अहिंसात्मक असहयोग के द्वारा उन्होंने भारत को स्वतन्त्रता-प्राप्ति का एक ऐसा उपाय बतलाना जिसमें एक ही साथ बंदी को ललकार दो और घृणा का लेश न था। इसमें विदेशी शासन पर हिंसात्मक युद्ध के समान निश्चित दृढ़ता के साथ प्रचण्ड आक्रमण की आवश्यकता होती है, और इतने पर भी वह चाहता है कि इसमें भाग लेने वालों में उच्चतम आत्म-शासन स्वयं कष्ट-सहन और प्रेम भाव हो।

यह ध्यान रखना चाहिए कि सत्याग्रह का यह तरीका ईसा के तरीके के बहुत-कुछ समान है। महात्मा गांधी ने ईसा मसीह को 'सत्याग्रहियों' का शिरोमणि माना है। यह सच है कि ईसा ने अपने को रोमन जुआ तोड़ने के काम में कभी नहीं लगाया। उन्हें विदेशी आधिपत्य की बुराइयों के मुकाबिले अपने ही लोगों और नेताओं के पाप एवं अपराधों का अधिक खयाल रहा। लेकिन इन अपराधों के खिलाफ उन्होंने कड़े-से-कड़ा विरोध प्रदर्शित किया, जिसके परिणाम में अन्त में उन्हें अपनी जान तक देनी पड़ी। इतने पर भी इन अपराधों के अपराधियों के प्रति उन्होंने जो प्रेम प्रदर्शित किया उसमें कभी भी धिथिलता नहीं आई, बल्कि वह अधिक बड़ा ही, और उनके और सब मनुष्यों के हृदय को जीतने और उनका उद्धार करने के लिए उनके हाथों प्रसन्नता-पूर्वक धरम सीमा तक कष्ट सहन कर कठोरतम दण्ड सहा। मेरा विश्वास है कि यूरोप को और दुनिया को आज जिस चीज की जरूरत है वह है ईसा का यह सत्याग्रह, जिसे महात्मा गांधी ने उनसे 'पर्वत पर के उपदेश और टालस्टाय के उचित' (साथ ही स्वयं अपने हिन्दू धर्मशास्त्र में) सीखा है — उन बुराइयों के मुकाबिले में, जिनसे मानव-समाज के लिए अकथनीय आपदाओं का खतरा है, निष्क्रिय नहीं बल्कि आक्रामक शान्तिवाद की जरूरत है।

यूरोप की आज की हालत में इस सिद्धान्त का अमल में लाया जा सकना आसान नहीं है। उदाहरण के लिए, जर्मन और आस्ट्रियावासी यहांदियों के खिलाफ जिन दमनकारी उपायों को काम में लाया गया, उनके नेताओं के लिए उन्हें उन उपायों का अहिंसात्मक मुकाबिला करने के लिए समझित करना कुछ हल्का या आसान काम नहीं होता। यह सर्वथा निश्चित था। इसका मतलब होता उनमें से कुछ का बलिदान। लेकिन ससार में इस प्रकार के बलिदान का जो नैतिक और आध्यात्मिक असर होता उसका परिणाम अपार महत्व का होता, जैसा कि अभी भी जेलों में पड़े हुए जर्मन पादरियों के मूक बलिदान का हो रहा है। फिर भी, अगर सत्याग्रह के तात्कालिक प्रयोग का समय में या व्यवहार में आसक्ना आसान न हो तो भी स्वयं उसका

सिद्धान्त तो निश्चय ही सब सन्देशों से परे हैं, और मेरे विचार में भावी सफ़ट से अधिकाधिक सजग दुनिया के लिए वही अपनेमें एकमात्र कुञ्जी या चाबी रखना है, जो पागलखाने में मुक्त होकर विवेक और शान्ति के प्रकाश में आने के द्वार को खोल सकती है।

बहुत दिनों से मेरे दिमाग में यह विचार चक्कर काट रहा है कि क्या महात्मा गांधी के लिए, इस आयु में जब कि वह अपनी सब प्रवृत्तियाँ छाड़कर अपनी अन्तिम मुक्ति के लिए सन्यासी की-सी शान्ति की साधना के अधिकारी हैं, अपने समस्त जीवन के कार्य को सफ़ल बनाने के लिए, अब भी, यहाँ पश्चिम में, यूरोप के सब राष्ट्रों के नेतृत्वहीन उन लाखों लोगों का, जो बिना युद्ध और वर के प्राप्त की गई न्यायमुक्त और स्थायी मुलह और शान्ति चाहते हैं, नेतृत्व कर यह बनाने का काम वाकी नहीं है कि हमें कौन-कौन-सा काम और क्या-क्या कष्ट-सहन या बलिदान करना चाहिए जिससे कि उपर्युक्त शान्ति प्राप्त होसके ?

: ५२ :

गांधीजी का नेतृत्व

एच. जी. वुड, एम. ए., डी. डी.

[वुडबुक, सेली ओक, बर्मिंघम]

फूल-मालाये गूयना एक भारतीय कला है और एक कोरा अप्रेझ अगर किसी महान् नेता की प्रशंसा में श्रद्धा की एक अञ्जलि समर्पित करने का प्रयत्न करे तो उसमें उसके अयफल होने की सम्भावना रहती है। अगर वह किसी खास अहतिपात और सजीदगी के साथ लिखता है तो उसमें वास्तविक गुणग्राहकता का अभाव दिखाई देता है। अगर वह अपनेको अघायुन्ध प्रशंसा के लिए खुला छाड़ देता है तो उसमें वास्तविक सच्चाई का अभाव प्रतीत होगा। फिर भी, मेरी भेंट कितनी ही तुच्छ और नगण्य म्यो न हो, गांधीजी के इक्कहतरवे जन्म-दिवस पर पहुँचने पर, मैं उन्हें बधाई देने के निमन्त्रण की अस्वीकार नहीं कर सकता। इससे कम-से-कम मुझे उनके भारतीय जनता को दिये गये नेतृत्व का मुझपर जो असर पड़ा उसके सम्बन्ध में कुछ कहने का मौका मिल जाता है।

इतिहास में मनुष्य की महत्ता आमतौर पर उसके चरित्र और गुण की अपेक्षा उसके प्रभाव के विस्तार और पाबंदारी से नापी जाती है। यह एक माप है जिसे इतिहासकार भुला नहीं सकता और जिससे कि साधारण वृद्धि सन्तुष्ट होजाती है। इस तरह के माप से नापे जाने पर—हिटलर, स्टैलिन, मुसोलिनी आदि डिक्टेटर आज

दुनिया के महापुरुष ह। खासकर हिटलर कोलोसस की तरह हमारी छाटी-सी दुनिया पर सवारी गांठे हुए हैं।

आदमियों के मन और जीवन पर उसका ऐसा दबदबा है कि अगर भीषणता का खयाल न करे तो वह तमाशा ही लग सकता है। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि उस व्यक्ति में कुछ स्वाभाविक महानता है, जिसके कार्यों का इतने सारे लोगों के भाव्यों पर असर पड़ता है। फिर भी ईसाई के लिए इस तरह की महानता न तो परमसाध्य है न प्रशंसनीय। ईसा के समय में दुनियाभर में सिकन्दर महान् समझा जाता था। कुशल सेनानी और शाही शासक के रूप में उसके उत्का के समान चमकीले एवं द्रुत जीवन ने मनुष्य की कल्पनाओं को प्रभावित और उनकी महत्वाकांक्षाओं को प्रज्वलित कर दिया था। जूलियस सीज़र, जब तैंतीस वर्ष की अवस्था में स्पेन में सरकारी खजानची था, इस खयाल के अनुताप से अभिभूत होगया कि यद्यपि वह उस उम्र तक पहुँच गया है जिसमें कि सिकन्दर मर गया था, फिर भी उसने कोई महान् कार्य नहीं किया। ईसा के समय के राष्ट्रों में जिनकी गिनती महान् राष्ट्रों में की जानी थी, वे वे राष्ट्र थे जिन्होंने विस्तृत भूभागों को हडप लिया था और बहुसंख्यक लोगों पर शासन करते थे। किन्तु ईसा ने हमारे सामने दूसरे ही आदर्श रखे—जो बड़ा या उच्च होना चाहता हो वह सेवक बने। मनुष्यों के हृदयों में से अभी प्राचीन मूर्ति-पूजा का उन्मूलन नहीं हुआ, लेकिन जिस तरह सिकन्दर ने यूनान और रोम की दुनिया की कल्पनाशक्ति को मोह लिया था उस तरह नेपोलियन उन्नीसवीं सदी के यूरोप पर अपना जादू नहीं चला सका। ईसा ने विजेता की शान को मन्दा और सेवक के दर्जे का ऊँचा चढ़ा दिया। ईसा के सब अनुयायियों की दृष्टि में महानता प्रभुता-धारियों में नहीं बल्कि उन लोगों में है जो अपने को दरिद्र और पीड़ितों की सेवा में लगा देते हैं। कोदियों के बीच रहनेवाले पादरी डेमीन और अफ्रीका में अफ्रीका के लिए अपना जीवन समाप्त कर देनेवाले डेविड लिविंगस्टन जैसे व्यक्ति वास्तविक महानता की प्रतिमूर्ति समझे जाते हैं। अपने समकालीन व्यक्तियों में लेबराडोर के श्री डब्लू० टी० ग्रीनफेल में, जापान के टी० नागावा में और पश्चिमी अफ्रीका के प्राचीन जंगलों में बसे अलबर्ट स्विटजर में सच्ची और स्थायी महानता दिखाई देगी।

गांधीजी की यह विशेषता है कि दोनों ही सूचियों में उनका स्थान है। जो लोग राजनैतिक दृष्टि से महान् हैं उनकी सूची में भी और जो आध्यात्मिक दृष्टि से महान् हैं उनकी सूची में भी उनका एक-सा स्थान है। प्रायः दोनों तरह की महानताएँ एक समय में नहीं आती और वास्तव में एक दूसरे के साथ शायद आसानी में मेल नहीं खाती। गांधीजी ने सार्वजनिक विषयों पर और भारत और ब्रिटेन के सम्बन्धों पर ऐसा प्रभाव डाला है, उसके कारण वर्तमान युग के राजनैतिक इतिहास

१. रोड्स होपस एपौलीदेय की विशाल मूर्ति

में उनका एक अनुपम स्थान बन गया है, भारतीय जनता के लिए यह बात बड़ी प्रशंसा की है। उसने एक सच्चे नेता को पहचाना और उसका अनुगमन किया है। गांधीजी के नेतृत्व ने भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को वर्तमान युग की भयावह राष्ट्रीयता की सतह से ऊँचा उठा दिया है। यह राजनैतिक अनीतिवादा की जो पश्चिमी सम्प्रदाय को स्वीकारने का तुली है, चिरवाञ्छित और प्रभावोत्पादक प्रतिक्रिया है।

हिटलर और मुसालिनी 'अवाधिन राष्ट्रवादी अहभाव' के लिए और नग्न और निर्लज्ज पाशाविक राजनैतिक सत्ता के लिए खड़े हैं। जिसे वे अपनी स्वजाति के अधिकार समझते हैं, उनकी प्राप्ति के प्रयत्न में उन्हें किसी बात की हिचकिचाहट नहीं हानी और उसके लिए वे किसी तरह के नैतिक कानूनों का बन्धन स्वीकार नहीं करते। प्रत्येक राष्ट्रीय आन्दोलन का झुकाव इस चरमसीमा तक पहुँच जाने की ओर होता है और अधिकांश राष्ट्रों के स्वतन्त्रता-प्राप्ति के आन्दोलनों पर सगठित भीषण अत्याचारों और राजनैतिक हत्या के अपराधों की छाप लगी हुई है। आयरलैंड की स्वतन्त्रता के कार्य में आयरिश बन्धूकधारियों की हलचल। स बड़ी क्षति पहुँची, और आतंकवादी, प्रत्येक कार्य को, जिसे वे सहायता पहुँचाना चाहते हैं, नीचे गिरा देते हैं। इतने पर भी जिस समय राष्ट्रीय भावनाय उभार पर हाती है, यह याद रखना आसान नहीं रहता कि कुछ बाने ऐसी हैं जिन्हें कि एक व्यक्ति को अपने देश के लिए नहीं करनी चाहिए और जब नेता ही भूल जाते हैं तब जनसाधारण से कठोर नियमों के पालन को धाशा नहीं की जा सकती। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन भी अत्याचारों और ज्यादतियों से मुक्त नहीं रहा है, लेकिन कम-से-कम उसके पास एक ऐसा नेता है, जिसने अपनी आवाज इन चीजों के खिलाफ उठाई है। इस समय जर्मन और इटालियन जनता का नेतृत्व ऐसे लोगों के हाथ में है, जिनका कोई भी सदस्य दर्शक आदर नहीं कर सकता। और न उनके शब्दों पर कोई भी व्यक्ति भरोसा ही कर सकता है। भारतीय राष्ट्रीयता का प्रतिनिधित्व अब भी एक ऐसे व्यक्ति के हाथों में है जिसके उद्देश्य की कदर की जाती है और उसकी सच्चाई पर वे लोग भी सन्देह नहीं करने, जिनके लिए कभी-कभी उनके विचारों की दिशा को समझ सकना कठिन हो जाता है, या जो उनके वास्तविक निर्णयों को गलत मानते हैं। परिणाम यह हुआ है कि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन ने उन लोगों तक से बहुत हद तक सम्मान प्राप्त किया है जो उसे नापसन्द करते हैं और उसका विरोध करते हैं।

अहिंसात्मक असहयोग का उपाय अहिंसा के विद्वान्त के आधार पर है, जिसका भारत की धार्मिक और नैतिक परम्पराओं पर इतना गहन प्रभाव है। इस प्रकार इस उपाय को अमल में लाने की गांधीजी की कोशिशों से भारत की भावना की विशेषता पर प्रकाश पड़ता है। भारतीय विचार और जीवन में अहिंसा का जो पूर्णरूप दिया गया है, पश्चिम ने उसे ज्यों-का-त्यों कभी भी स्वीकार नहीं किया है। इसकी सभावना

हैं कि उसे कभी निरपेक्ष रूप में माना जायगा, क्योंकि वह आमतौर पर व्यक्तित्व के मूल्य की अपेक्षा अवैयक्तिक जीवन के मूल्य को ऊँचा चढ़ाती प्रतीत होता है। लेकिन राजनीति में अहिंसा के प्रयोग के सिद्धान्त ने पश्चिम के बहुत-से लोगों में एक नयी अन्तर्दृष्टि और भारत के हृदय के द्वारे में एक नयी उच्च धारणा पैदा की है।

लेकिन गांधीजी के अहिंसात्मक असहयोग में किये गये इन परीक्षणों में एक महान् भारतीय परम्परा की महत्ता के प्रकाश में आने के सिवा कुछ और भी चीज मौजूद है। उन्होंने अन्याय के विरोध और न्याय की प्राप्ति के लिए नया ही तरीका बतलाया है। अवश्य ही हमें अहिंसा के द्वारे में अतिरिक्त दावा नहीं करना चाहिए। कल्पना यह है कि जो लोग इस उपाय को ग्रहण करते हैं वे स्वयं कष्ट झेलना और दूसरे को कष्ट पहुँचाने से बचाना स्वीकार करते हैं। व्यवहार में पिछली शर्त को पूरा करना बड़ा कठिन है। अहिंसात्मक असहयोग का सबसे अधिक प्रवृत्त रूप है आर्थिक बहिष्कार, और इसमें हमेशा किसी हृदयक दूसरे को कष्ट पहुँचाना शामिल रहता है। न इसी आधार पर हम अहिंसा का तरीका दे सकते हैं कि उसके हिंसा की बनिस्बत ज्यादा कारगर होने की संभावना है। ऐसी दुनिया में, जहाँ कि कुछ आदमियों ने परपीडन को धर्म और बर्बरता को एक तरीका बना लिया है, अहिंसात्मक असहयोग का, कम-से-कम तात्कालिक परिणाम तो प्रत्यक्षतः निरर्थक बलिदान होगा। लेकिन सबकुछ कहे जाने के बाद, अहिंसात्मक असहयोग के तरीके युद्ध की एकत्रभ्रष्टता की अपेक्षा अपरिमितरूप से स्वच्छतर और उच्चतर है। और हमारी दुनिया की गांधीजी की यही चुनौती है,—‘क्या बुराईयों का मुकाबिला करने और अन्यायों को ठीक करने के लिए पाशविक शक्ति के प्रयोग और युद्ध के वर्तमान भयकर शस्त्रों के सिवा और कोई मार्ग नहीं है? और अगर कोई है तो क्या वे लोग जो मानवता की रक्षा के लिए चिन्ता करते हैं उसकी तलाश करने और उसपर चलने के लिए बाध्य नहीं हैं? सबके सिवा, क्या उन लोगों को, जो ईसा के बलिदान में विश्वास रखते हैं, अपनेको उससे बेधा हुआ नहीं समझना चाहिए? गांधीजी का नेतृत्व युद्ध के भय और उसके लिए होनेवाली तैयारियों से परेशान दुनिया के लिए एक चुनौती और आशा की एक किरण के समान सामने आता है।

अगर गांधीजी डिक्टेटरो जैसे राष्ट्रीय नेताओं की अपेक्षा अधिक ऊँचे चढ़े हुए माने जाते हैं, तो इसका एकमात्र कारण यह है कि उन्होंने राजनैतिक आन्दोलन के क्षेत्र में नैतिक सिद्धान्तों का प्रवेश किया है, बल्कि उनकी दरिद्र और पीड़ितों के उन सेवकों में गिनती किया जाना भी है जो ईसा के माप में नापे जानेवाले महान् ठहरते हैं। कुछ भी हो, गांधीजी की स्वराज्य की मांग भारत की पतनकारी दरिद्रता के साथ ज़बर्दस्त मुकाबिले की आशा से प्रभावित रही है। उनकी ब्रिटिशराज्य की मुख्य आलाचना यह नहीं है कि वह ब्रिटिश या विदेशी राज्य है, जितनी यह कि उसने गरीबों को अवहेलना की है। जिन बातों की उन्हें निश्चित चिन्ता रहती है, वह है दरिद्रों की मनुष्यता

को ऊँचा उठाना, गाँव के सध-जीवन का पुनरुद्धार और बहिष्कृतों के समाज के अंग के रूप में पुनः प्रतिष्ठा। इन सबमें गांधीजी, कगावा और स्वीट्जर के समक्ष हैं, और वह खुद इस बात को स्वीकार करेंगे कि कम-से-कम कुछ हद तक उनकी प्रेरणा का स्रोत वहाँ है जोकि इनका है। यहाँ उनका जीवन और कार्य स्पष्टतः ईसा की, जोकि अपराधियों और पापियों का मित्र कहा जाता है, भावना से मिलता हुआ है। शोषित और पीडित वर्ग के प्रति उनकी आत्मोत्सर्गमयी सेवा-निष्ठा भी प्रकट है। उनको वास्तविक महत्ता पर ही उनकी चिरस्थायी कीर्ति कायम रहेगी।

अहिंसा (जीवन को बाधान न पहुँचाना) और सत्याग्रह (आत्म-शक्ति पर निर्भर रहना) उच्च सिद्धान्त हैं और राजनीतिव्यवहार के एक नये रूप में उन्होंने कुछ गानदार कौशिकों की प्रेरणा की है। लेकिन दोनों में से कोई भी सिद्धान्त तबतक अपनी वास्तविक चरित्रायता और पूर्णता को नहीं पहुँचता जबतक कि वह पाप के प्रति अगाध क्षमा में लौन नहीं होजाता। अपने दोषों को स्वीकार करने की तत्परता और अपने प्रति किये गये अपराधों को क्षमा करने की सदिच्छा के वास्तविक आधार पर ही राजनीति, स्वास्थ्य, राष्ट्रीय जीवन और विमुक्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की नींव बनी जानी चाहिए। गांधीजी का सत्याग्रह क्षमादान की इस व्यवस्था के बिल्कुल निकट आता है। लेकिन फिर भी वह उसका पूर्ण रूप नहीं है। किसी मुनिचित पात्रना की अपेक्षा घटना-चक्र के कारण प्रायः दो घनाब्दियाँ स भारत और ग्रेटब्रिटेन का माध्य आश्चर्यजनक रूप से एक-दूसरे के साथ गुया हुआ है। ब्रिटिश कारनामों में ऐसी बहुत बानें हैं, जो क्षमा करनी जानी चाहिए। साम्राज्यवादिता के कारण भारतीय और ब्रिटिश जनता के सम्बन्ध विपाक होगये हैं और कदाचित् पूर्ण सम्बन्ध-विच्छेद ही उक्त विषय को दूर कर सकता है। और स्पष्ट ही वह समय आगया है जब कि भारत को अपनी पसन्द के नेताओं की अधीनता में अपने माध्य का निर्णय कर लेना चाहिए। अवश्य ही अगर हमें जुदा होना हो, तो क्या हम क्षमा और सहिष्णुता की भावना के साथ जुदा नहीं हो सकते? और अगर हम भारतीय और ब्रिटिश दोनों ही मच्चाई के साथ और व्यवहारतः अपराधों की क्षमा के सिद्धान्त में विश्वास रखते हो, तो क्या हमें जुदा होने की कोई आवश्यकता भी है? राष्ट्रीय अहंभाव से पीडित और शक्ति दुनिया का कितना प्रोत्साहन मिले, अगर ब्रिटिश साम्राज्यवाद और अहिंसात्मक असहयोग दोनों ही लुप्त होसके और भारत और ब्रिटेन के बीच, पूर्व और पश्चिम के बीच, हादिक सांसेदारी उनका स्थान लेसके। गांधीजी की इच्छातरी अन्तिमिधि मनाने अथवा अपने देशवासियों और मानव-समाज के प्रति की गई उनकी सेवा के लिए ईश्वर को धन्यवाद देने के लिए मे इससे बड़कर और कोई काम नहीं कर सकता कि उक्त दोनों ही देशों की जनता के हृदयों में क्षमादान की वह भावना उत्पन्न होने की कल्पना करें, जो सम्भव है सच्ची मुलह और मुदृढ़ संजों के रूप में पलीभूत हो।

गांधीजी—सैंतालीस वर्ष बाद

सर फ्रांसिस यमहसवैल्ड, के. सी. एस. आई.

[लन्दन]

महात्मा गांधी अब ससारभर में प्रसिद्ध होचुके हैं। उनकी यह प्रतिद्धि इसलिए नहीं है कि उन्होंने भय और आतंकवादी का ऐसा वातावरण पैदा किया जो राष्ट्रों को सत्त्वात्मकता की होड़ में सबसे आगे रहने के भीषण द्वन्द्व की ओर खींचता है, बल्कि इसलिए हुई है कि उन्होंने स्वयं अपने देशवासियों में साहस उत्पन्न कर उन्हें नैतिकता के पथ पर अग्रसर किया। लेकिन पहलेपहल जब मुझे उनका परिचय हुआ, वह एक सर्वथा मामूली चित्त और अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त नवयुवक थे यूरोप। आनेवाले हजारों दूसरे भारतीयों और उनमें एक रती भी अन्तर नहीं मालूम होता था। उनकी आयु तीस वर्ष के भीतर थी, और दूसरे लोगों की तरह अंग्रेजी पोशाक पहने हुए थे। उनमें कोई खास बात दिखाई नही देती थी।

पर उस समय भी वह अपनेमें वह साहस, अपने उद्देश्य पर जटोरता से खड़े रहने की दृढ़ता और सबसे अधिक पीड़ितों के प्रति वह अद्भुत अनुकम्पा दिखाने लग गये थे, जो हमारे दक्षिण अफ्रीका में डरबन में पहली बार मिलने के बाद से इन सैंतालीस वर्षों में और अधिक वृद्धिगत और घनीभूत ही हुई हैं। भारतीयों के नेटाल के प्रवास का प्रश्न उस समय का गर्म सवाल था। नेटाल अपनेको एक समृद्ध उपनिवेश बना रहा था। वह भारतीयों की एक छोटी-सी सख्या का आने देने के लिए तैयार था, अपरिमित सरया को नहीं। दक्षिणअफ्रीकावासियों ने उसे बसाया था और वे उसपर प्रधानतः अपना ही प्रभुत्व रखना चाहते थे। इसलिए जब भारतवासियों ने इस तेजी से आना शुरू किया कि जल्दी ही वहाँ उनकी सख्या अत्यधिक बढ़ जाती, तो नेटाल-वासियों ने उनपर रोक लगाने का निश्चय किया। यह मामला समझौते से निपट सकता था। लेकिन भारतीयों को उस दुर्व्यवहार से, जो उनके साथ किया गया, गहरा असन्तोष हुआ। अमीर और गरीब, शिक्षित और अशिक्षित, सबको एकसमान 'कुली' की श्रेणी में रखा गया। गांधीजी एक 'कुली' थे, मालदार व्यापारी 'कुली' थे। जिस तरह चीन में सब यूरोपियन 'विदेशी शैतान' बहे जाते थे, वही सब भारतीय 'कुली' थे।

यद्यपि गांधीजी उस समय नवयुवक ही थे, फिर भी भारतीयों के अधिकारों की हिमायत करने में वह भारतीय जनता के नेता बन गये थे। वह डरबन की एक अच्छी आरास्ता अंग्रेजी कोठी में रहते थे, और एक भोज के समय, जब कि उन्होंने मुझे

‘टाइम्स’ के सवाददाता के रूप में नियुक्त किया था, मैंने उन्हें “एक खास तौर पर बुद्धिमान और मुशिक्षित व्यक्ति” पाया। लेकिन बाद में उन्होंने जो कुछ किया, उसके लिए महत्त्व बुद्धिमत्ता और शिक्षा के अलावा और भी बहुत कुछ चाहिए था। दक्षिण अफ्रीका में फैला हुआ जाति-विद्वेष उस समय भीषण रूप धारण किये हुए था। बोअर और अंग्रेजों के बीच, दक्षिणअफ्रीकावासियों और नीग्रो जातियों के बीच, और अंग्रेज और भारतीयों के बीच विरोध फैला हुआ था। एक नौजवान भारतीय वकील का उसके मुक़ाबिले के लिए खड़ा होना एक ऐसे साहस और चरित्रबल का परिचायक था, जो कितनी ही बौद्धिक शिक्षा के मुक़ाबिले में वहाँ अधिक सार्थक सिद्ध हुआ।

अपने लाभकारी पैसे का बलिदान करने और भारतीय हितों की हिमायत में जेल जाना और बदनामी सहने की अपनी तैयारी के कारण वह अपने भारतीय बन्धुजों की प्रशंसा के और अन्त में उनकी श्रद्धा के भाजन बन गये।

लेकिन उनका सबसे बड़ा काम तो उनके अपने ही देश में किया जाने को था। दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने भारतीयों के लिए जो कुछ भी किया उससे यह जाहिर हो गया था कि वह एक नेता और अगुआ है। जब वह दक्षिण अफ्रीका छोड़कर हिन्दुस्तान में लौटे, तो वहाँ उन्होंने अपने काम के लिए और भी अधिक विस्तृत क्षेत्र पाया। उनका देश एक विदेशी जाति द्वारा शासित था। वह चाहते थे कि हिन्दुस्तान में हिन्दुस्तानी ही शासन करे। हिन्दुस्तानी स्वयं दो बड़ी जातियों हिन्दू और मुसलमान में बँटे हुए थे। वह उनको एक ही भारतीय सून में बाँध देना चाहते थे। उनकी अपनी हिन्दू जाति में ही अस्पृश्य जातियों की दुर्दशा, स्त्री-समाज की स्थिति, गाँवों की दरिद्रता आदि अनेक प्रकार की सामाजिक बुराइयाँ थीं। वह इन सबको सुधारना चाहते थे, मगरुपि सुधारना चाहते थे अन्दर से।

उन्होंने स्वयं सरकार का चुनौती दी और उसके बानून तोड़ने के अपराध में जेल भुगनी, मरणासन्न स्थिति पर पहुँच जाने तक उपवास किया, और सारे देश का दौरा किया। उन्होंने जन-साधारण का-सा जीवन व्यतीत किया और अछूतों के बीच में और बिल्कुल उनके-से ही बनकर रहे। आत्मबलिदानपूर्ण उनके जीवन ने अवतक अपने देशवासियों पर विजयी प्रभाव छोड़ा है। उनके व्यक्तित्व, उनकी देशभक्ति, उनकी भावना का असर सब जगह देखने में आता है। भारतीय एक महात्मा के रूप में उनकी पूजा करते हैं। दल-प्रयोग की अपेक्षा नैतिक प्रबोधन का उनका सिद्धान्त सफल सिद्ध हो रहा है। उन्होंने अपने देश को सम्मानित बना दिया है।

हम अंग्रेज सदा यह आशा रखेंगे कि भारत साम्राज्य के अन्दर बना रहे। लेकिन कम-से-कम मैं यह आशा करता हूँ कि यह उसकी अपनी इच्छा से ही हो। अपने अपने लिए जो सम्मान प्राप्ति कर लिया है, उसी सम्मान के साथ उससे व्यवहार किया जाय।

देशभक्ति और लोकभावना

सर एल्फ्रेड जिमेन, एम. ए.

[अध्यापक, अन्तर्राष्ट्रीय सच, आइसफोर्ड यूनिवर्सिटी]

भारत पर यूरोप के राजनैतिक विचारों का बहुत असर पड़ा है। फिर भी अफ्रीका के सम्भावित अपवाद के सिवा, यूरोप—१९३९ का यूरोप—राजनैतिक दृष्टि से क्या बाकी पाँचा महाद्वीपों में सबसे पिछड़ा हुआ नहीं है ? राजनीति के दो माप, दो मूल्य हैं। राजनैतिक स्वास्थ्य उन्हींसे मापा जाता है। वे हैं, न्याय और स्वातन्त्र्य। क्या यूरोप में ये दोनों मूल आवश्यकतायें, नैतिकतायें, पैरो लगे नहीं रौंदी जा रही हैं ? यूरोप के अधिकांश, बड़े और छोटे दोनों, राज्य उन्हीं जिस तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं, क्या वह, असत पर उल्टर बड़े अंश में, यूरोप के राजनैतिक विचारकों के सिद्धान्तों और शिक्षा का प्रतिबिम्ब ही नहीं है ? क्या यह सब यह सूचित नहीं करता कि भारत को उन राजनैतिक विचारों पर सतर्क दृष्टि रखनी चाहिए जो कि यूरोपीय प्रायद्वीप से बहनेवाली पश्चिमी हवा के साथ बहकर इस देश में आते हैं ?

एक या दो वर्ष पहले प्रेसिडेण्ट रूजवेल्ट ने कहा था—“नव्वे फी सदी मानव-समाज शान्ति चाहता है।” सम्भवतः यह सत्या असंलियत से कम है। तब, सत्तर में यह बोलाहुल क्यों है ? शांतिप्रिय नव्वे फी सदी लोग, जिनका कि उपद्रवकारी लोगों की तरह उनकी उपद्रवकारी योजनाओं से कोई निकट या हार्दिक सहयोग होने की सम्भावना नहीं है, उपद्रवकारी दस फी सदी लोगों पर अपनी इच्छा क्यों नहीं लागू करते ?

उत्तर है, ‘ग्रलत विचार-सरणी।’ अवश्य ही नव्वे फीसदी में बहुतसी बुराइयाँ हैं। उनमें से कुछ आलसी हैं, दूसरे कायर हैं और अधिकांश स्वार्थी हैं। लेकिन, अगर इन सबके पीछे एक तरह की ‘बौद्धिक’ विभ्रूलता न होती तो इन बुराइयों का, जिनमें कि कुछ तो खुद अपनेआप मिट जातों, इतना अनर्चकारी परिणाम न होता जितना कि हम देख रहे हैं। यह बौद्धिक विभ्रूलता ही है जो तयाकभिन शांति-प्रेमियों में एकता स्थापित करने के प्रयत्नों को बिकम्पा कर देती है। यही मुट्ठीभर उपद्रवकारियों की नेतृत्व पर बलपूर्वक अधिकार करने और उने अपन बच्चे में रखने का मौका देती है और नव्वे फीसदी के लिए ऐसी दोन स्थिति में बने रहने का कारण बनती है।

अगर हम वर्तमान राजनैतिक समस्या को घटाकर एक अकेले शहर—मान

नीडिए लन्दन या दिल्ली—की परिधि में सीमित कर दें, तो हम यह वासानी से देख सकेंगे कि इस तरह के आन्दोलों के माध्य, जो कि यूरोप को एक भूसीमन्त में फँसाये हुए है, व्यवहार करने का सही तरीका क्या है। सब नागरिक ऐसे व्यक्ति को अन्तर्गत नम्बर का सार्वजनिक शत्रु मानेंगे और उनमें बहुतेरे हट्टे-कट्टे लोग अपने-आपको सार्वजनिक शान्ति के लिए जिम्मेदार अधिकारी को अपनी स्वयं सेवाएँ देने को तैयार होजायेंगे। जनप्रिय दस फीमर्श लोगों की दुष्ट योजनाओं को समाज के बचे हुए लोगों की सार्वजनिक भावना विफल कर देगी।

वही पद्धति यूरोपीय महाद्वीप के विस्तृत क्षेत्र पर कारगर क्यों नहीं होगी? क्यों हम छोटे राज्यों का भयवस्तु स्थिति में और कुछ को बेरहमी के साथ मानचित्र पर से मिट जाने हुए देखते हैं?

उत्तर है, क्योंकि आज की दुनिया में और सातकर यूरोप में पर्याप्त लोक-भावना नहीं है।

लेकिन क्या यूरोप-निवासी, प्रायः बिना किसी अपवाद के, अत्यन्त देशभक्त नहीं हैं? क्या वे एकसाथ अपने-अपने देश के लिए मर-मिटने का तैयार नहीं हैं? क्या एक पीढ़ी पहले उन्होंने बहुत भारी मर्यादा में ऐसा नहीं किया था?

अवश्य किया था, लेकिन लोक-भावना और देश-भावना एक ही तरह की वस्तु नहीं हैं। लन्दन या दिल्ली में होनेवाली डकैती को वहाँ की जनता अपनी सार्वजनिक भावना से रोक देती है। क्या ऐसी सार्वजनिक भावना सारी दुनिया में या यूरोप में मौजूद है? इन्हीं ही अगर दूसरे शब्दों में रक्खा जाय तो, क्या वास्तव में कोई विदेश-जाति या यूरोपीय जाति है?

एकबारगी इस रूप में प्रश्न किया जाने पर यह स्पष्ट है कि उसका उत्तर नकारात्मक होगा। हाँ, अपनी डकैतियाँ इसीलिए जारी रख पाते हैं क्योंकि हर गृहस्थ एक-एक कर देश-भावी तो है,—अपने निज के घर, परिवार और सम्पत्ति की रक्षा के लिए मर-मिटने के लिए तैयार है,—लेकिन नगर में सामूहिक रूप में लोक-भावना का बनाव है। इस प्रकार लूटेरे आराम के साथ तबतक एक घर से दूसरे घर पर घावा बोलते रहते हैं जबतक लूट के माल से उनका जी नहीं मर जाता। तब उन्हें भी यह मान्य होने लग सकता है कि उनकी सामूहिक याजनाओं की सफलता के बावजूद, उनको व्यापक योजना में कुछ-न-कुछ गलती है, क्योंकि बीसवीं सदी की दुनिया में शासन लोग लूट के माल पर अपना गुजारा नहीं कर सकते। समाज-विरोधी उपायों से वे अनिश्चित समय तक शासन नहीं कर सकते। विद्रोह, साध और पारस्परिक निर्ममता के तत्वों की वे अवहेलना नहीं कर सकते।

लेकिन हमें हाँकुओं की ग्लान राजनैतिक विचार-सरणी के सम्बन्ध में परेशान होने की जरूरत नहीं है। घटनाचक्र के निष्ठुर प्रवाह से वह जल्दी ही काफ़ी स्पष्ट

होजायगी। हमें तो उन्हीं लोगों की राजनैतिक विचारसरणी में मतलब है जो उनके शिकार होते हैं।

अलग-अलग गृहस्थ आपस में मिलकर नागरिकों की तरह विचार और कार्य क्यों नहीं कर सकते, इसके दो कारण हैं। एक प्रथा से उत्पन्न हुआ है और दूसरा सजग विचार में। बेलजियमवासी यह सोचने के आदी नहीं हैं कि वे ऐसे ही शहर में रह रहे हैं जैसे मैं कि हार्लैंडवासी। हार्लैंड और बेलजियम दो स्वतन्त्र देश हैं। प्रत्येक हार्लैंडवासी हार्लैंड के रूप में और बेलजियमवासी बेलजियम के रूप में सोचने का आदी है।

इस मामले में प्रथा बहुत चिरस्थायी नहीं है, क्योंकि बेलजियम का राज्य मुश्किल से एक सदी पुराना है। लेकिन स्वतः यह बात कि उन्नीसवीं सदी में, यानी ठीक उस समय जबकि औद्योगिक क्रांति पररपर निर्भरता की एक विश्व-व्यापी प्रथा स्थापित करती हुई जान पड़ती थी, उस राज्य की स्थापना हुई। यही लोगों की छोटी छोटी इकाइयों से चिपटे रहने यानी अपने स्वतः के घरों में रहने की इच्छा की प्रबलता का कारण है।

मैंने 'इच्छा' शब्द का प्रयोग किया है। इसके बजाय मैं 'प्रवृत्ति' शब्द का प्रयोग कर सकता था। अवश्य ही मनुष्य स्वभाव में—मानव-समुदाय के ब्यक्ति अप-वादों के सिवाय सबके स्वभाव में—एक वृत्ति गहराई से जड़ पकड़े हुए होती है, जो एक तरह के लागू का छोटी छोटी जातियों के रूप में एकत्र करती और अजनबी या, जैसा कि हम कहते हैं 'विदेशी' के विरुद्ध रुकावट खड़ी करती है। बड़ी दुनिया में लोक भावना की उत्पत्ति में यही बड़ी मनोवैज्ञानिक अडचन है। सतति-क्रम से खून में ही चलते जाने के कारण वह अडचन प्राणि प्रश्न सबधी (Biological) भी है। अगर इकाई काफी छोटी हो तो मनोविकास और प्राण-विकास की दृष्टि से देश-भावी होना आसान है। देश-भावना मुगम है। लोक भावना कठिन है। विश्व बन्धुत्व की भावना दुप्तर व्यवहार है।

यह तो हुआ प्रथा की कठिनाई के सम्बन्ध में। अब दूसरी को ले। अधिक व्यापक सार्वजनिक भावना के मार्ग की दूसरी रुकावट शुद्ध बौद्धिक है।

इस दायरे की कठिनाई का मूल यह है कि वर्तमान यूरोप के राजनैतिक सिद्धान्त—वे सिद्धान्त जिनमें कि यूरोप के राजनीतिक और नागरिक पले हैं—पुराने पड़ गये हैं। वे इस युग की स्थिति के अनुकूल नहीं हैं। कोई भी राजनैतिक सिद्धान्त पूर्ण या अटल नहीं कहा जा सकता। राजनैतिक सिद्धान्त की सब रचनाओं का आधार इसके सिवाय और कुछ नहीं है कि उसके दो महान् आधारभूत तत्त्व न्याय और स्वाधीनता किस स्थिति में किस प्रकार प्रयुक्त होते हैं। वर्तमान यूरोप का यह दुर्भाग्य है कि उसकी जनता के मस्तिष्क और हृदय पर आज जिन सिद्धान्तों का साम्राज्य है वे

के, जो अक्सर एक-दूसरे में अलग या एक-दूसरे के विरोधी समझे जाते हैं, संयुक्त रूप में सजीव प्रतीक हैं। वे दो विचार हैं एक तो सार्वजनिक कर्तव्य की भावना, जो अखिल भारतीय शब्द से प्रकट होती है, दूसरी मानव-बन्धुत्व की भावना, जो पददलित और अधिकारविहीन समाज की सेवा के लिए किये गये उनके कार्यों से व्यक्त होती है। और यह उदाहरण है कि किस प्रकार एक दुर्बलकाय प्राणी को निर्भीक एवं अजेय आत्मा स्वातन्त्र्य और न्याय के नित्य-प्रति काम आनेवाले मूल शब्दों में नया अर्थ डाल सकती है।

: ५५ :

गांधीजी के प्रति कृतज्ञता-प्रकाश

थारनाल्ड ज्वीग

[हैफा, माउण्ट कारमेल, फिलस्तीन]

जब हम महासमर से निवृत्त हुए तो दुनिया में आकाशाओं की सीमा नहीं थी। रक्तपात के पागलपन का, उससे होनेवाले मद्योन्माद का और पशुबल की पौराणिकता का अन्त होने को था। ऐसा जान पड़ता था कि भावना की सार्वजनिक कार्यों में व्यवहृत होने का इससे बढकर सुयोग कभी नहीं मिला था। सत्तार अधिक न्यायशील, अधिक सहिष्णु, अधिक अच्छा और अधिक दयालु होने को था। मध्ययूरोप के उच्च कोटि के सम्म देशों—विशेषतया जर्मनी, चेकोस्लोवेकिया, आस्ट्रिया और पोलैण्ड में तो उन बेहद मुसीबतों का नतीजा कम-से कम यही होना था। अगर इतने विपुल रक्त का अर्घ्य देने पर भी समाज का कार्यालय नहीं किया जा सका—जैसा कि रूस के बारे में कहा जा सकता है—तो कम-से-कम हमें यह तो जान लेना ही था कि बल-प्रयोग के युग का अन्त होगया है और सद्भावना के युग का सूत्रपात।

तब गांधी-शंखे नक्षत्र का उदय हुआ। उन्होंने दिखावा दिया कि अहिंसा का सिद्धान्त सम्भाव्य है। ऐसा जान पड़ता था कि मानो वह अपने सिद्धान्तों के अनुकूल, किन्तु वस्तुतः उस नींव पर ही जो ईसाईमत के पुरातन सिद्धान्तों से टात्सटाप और प्रिस क्रोपाटकिन जार के रूस में रख चुके थे, मानव-समाज का नवनिर्माण करने आये है। जर्मनी में भी इस विश्वास में निष्ठा रखनेवाले लोग विद्यमान थे। कुर्टआइज़नर गुस्टाफ लाण्डापर, कार्ल फॉन ओस्तिट्ज़की, एरिक मूहसाम और थ्योडोर लेस्सिंग जैसे व्यक्ति कुछ और नहीं चाहते थे। अब गांधीजी हिन्दुस्तान में सफल होगये तो वह जर्मनी में असफल होसकते थे ?

पर हम इस प्रयास का परिणाम जानते तो हैं। ये सबके सब बल-प्रयोग के विरोधी—

जिनके नाम आदरपूर्वक ऊपर लिये गये हैं—बृद्धमतापूर्वक मार डाले जाकर एक ही कब्र में दबे पड़े हैं। हाँ, ओम्सिड्जकी के मामले में तो हत्याकारी की गोली की जगह क्षय ने ले ली थी। परन्तु ये सब हत्याकारी—उदाहरण के लिए राटेनाउ के हत्याकारी या माट्टेजोट्टि की हत्या को उत्तेजित देनेवाले—आदर और शान का उपभोग करते हैं। वहाँ एक समय असमय में ही आध्यात्मिकता का राज्य होगया था वहाँ अब विह्वलन पर पशुबल का सम्मान हो रहा है, उसकी पूजा हो रही है और उसे अन्त तक निभाया जा रहा है।

प्रकृति और प्राकृतिक वस्तुओं के झूठे आशय बताये गये। जीवन-संघर्ष के नाम से चलनेवाले सिद्धान्त की इकतरफी व्याख्या हुई और दुहाई दी गई कि उससे छँटाव होगा और ऐंसे ही मनुष्य उत्तम होगा। और इस प्रकार का समर्थन लेकर स्तूप की भाँति चण्डालों के नरें-नरें सुस्वरण उठ रहे हैं। जाये साल नरों के नाम पर उन वाद-प्रवादों से पड़ाई की जिनाबों में जहर भरा जाता है जो मैसोपोटामिया के हम्मूरब्बी के नीति-संग्रह के दक्त हो झूठे और जीर्ण पड़ चुके थे।

हमें यहाँ यह दिशाओं के लिए आधुनिक जीव-विज्ञान का आश्रम केने की आद-रक्षता नहीं कि पशुबल के पुजारी के सिद्धान्त मिथ्या हैं और प्रकृति के बारे में उनके लगाने हुए अर्थ भी त्रुटिपूर्ण हैं। आज हम गापी का इसीतर पचाई देंगे कि वह हिन्दुस्तान में जन्मे और रह रहे हैं और अंग्रेजों से उनका व्यवहार पडा है, मध्य-यूरोपियनों से नहीं, क्योंकि उन पशुओं से उनकी पनवता के प्रति कुछ भी आदर की आशा नहीं की जा सकती, जो आज वहाँ राज्य कर रहे हैं। मगर हम यहाँ उनकी और दुख और इनजना से देखते हैं। इतना है, पर क्या स्पृहणीय है? बीस वर्ष पहले उस नन त्रिम्ब को जो उनके चारा आर था, हमने नवयुग का उदय समझा था। आज हम असमय में हैं कि कहीं वह उस युग का सध्यालोक तो नहीं था, जो विश्वयुद्ध के साथ ही वीन गया और जिसके पीछे ऐसी नृशंस बर्बरता का युग आया जिसकी हमने कल्पना तक नहीं की थी। उन स्थानों में जहाँ गहूरी पैगम्बर और ईसाई-मन के भव्य नस्थापक रहने थे और विवरण करते थे आज 'नास' का राज्य है वहाँ शस्त्रहीन निर्बलों का रक्तपात मचा हुआ है और पाशाविकता राजनैतिक अरब समझो जा रही है। कदाचिन् भूमध्यसागर के देश के भाग्य में शांतिपूर्ण जगत् की हत्या का युग ही लिखा है, जिस आज स्पेन और चीन में शक्तिशाली राष्ट्र भुगत रहे हैं। सम्भवतः जिस निरे उल्लास से उत्पन्न होकर इटली के हवाई जहाजों ने अदीसी-निया में बम-वर्षा की, उस मद ने हमारी समूची सभ्यता को ग्रस लिया है। हमारे और की अठारहवीं और उन्नीसवीं सताब्दियों ने कैसे प्रयत्नों से उसे सिरजा और यूरोप में विजयोन्मर्ष तक पहुँचाया था, यह हम नहीं जानते। परन्तु हम, जिनकी शक्ति शब्द है और जिनकी जिन्दगी बिना पशुबल का आशय लिये बीत रही है, अपने उच्च स्वर

से समुद्रवार के वासी उस महात्मा का अभिनन्दन करते हैं और धन्यवाद अर्पण करते हैं कि उन्होंने हमपर हमारी गलतियाँ स्थापित की हैं और अपने व्यक्तित्व तथा जीवन के द्वारा हमारे युग को पूर्णता की दिशा में बढ़ाया है ।

गलतियाँ ! कौन जानता है ? जैसे कि बीसवीं सदी के यूरोप में सामर्थ्य था कि वह उन पवित्र सिद्धान्तों की नकल कर सकता और ब्रिटिश साम्राज्य की भूमि भारत देश को, जिसने गौतम बुद्ध और उनका काल देखा है, ऐसे व्यक्ति प्रदान कर सकता, क्योंकि विश्व इतिहास को देखते हुए तानाशाहों उनके अनुचरों और उनके तलपुत्र चाटनेवाले गुलामों की फौजों के संदेश पालन करने की बलिस्वत सम्यता को भूले कर जाना कभी अच्छा है ।

परन्तु गांधीजी को अपने ७१वें वर्ष में बल प्राप्त है उस सब शक्ति का जो मान-वार्जित शक्तियों में श्रेष्ठ और उत्कृष्ट है । जीवनारम्भ में जिसे लिया उसीकी परिपूर्णता में वह अथक भाव से लगे है । निश्चय ही हम उनके अनुगामी हैं ।

: ५६ :

सत्य की हिन्दू धारणा

जे. पच. म्यूरहेड, एफ. यी. ए., एल-एल. डी.

[अध्यापक, दर्शन-शास्त्र, बर्मिंघम यूनिवर्सिटी]

इस अभिनन्दन-ग्रन्थ में कुछ पवित्र भी लिखकर योग देने का अवसर पाना मेरे लिए बड़े गौरव की बात है । यह उस पुरुष का अभिनन्दन है जिसने सामयिक इतिहास को अपने विलक्षण प्रकार में ऐसी प्रभा दी है जैसी कि कोई और नहीं देसका । रोम्याँ रोलों के शब्दों में उसने तीस करोड़ से ऊपर अपने देशबन्धुओं में एक जाम जगा दी है, ब्रिटिश-साम्राज्य को हिला दिया है और मानव-राजनीति में उस जबर्दस्त आन्दोलन का सूत्रपात किया है कि इधर दो हजार वर्षों से विश्व ने उसके तुल्य और कुछ नहीं देखा । दूसरे देश-विदेश के नेता लोग तो मानव-न्याय जैसी किसी चीज को नहीं पहचानते थे । विश्व-राज्य की नीति नियामकता की कल्पना को भी चुनौती देते थे । या फिर समाज के एक वर्ग के हित-साधन के लिए दूसरे वर्ग की हित-हत्या को ही न्याय का उपाय देखते थे । इधर जब अवस्था यह थी सभी उधर गांधी विदेशी शासन के बन्धन से मुक्ति और उद्धार के निमित्त एक धर्म-युद्ध लेकर उठा । उसमें एक वर्ग के दूसरे वर्ग पर शासन करने की अनीति के अन्त की निष्ठा थी । उसमें समूची मानवता के ऐज की ओर धरती पर राम-राज्य की कल्पना थी । इसके अलावा, और अगली शताब्दियों में, 'वालकल्पनानीत देश' भारत देश ही नहीं, बल्कि दुनिया

विज्ञा अधिक महत्त्व मानेगी वह तो बात यह है कि इस पुरुष ने, जो अति गूढ़ था, उसे अपने जीवन से प्रत्यक्ष कर दिया है। सब धर्मों के परमधेय परमेश्वर के सम्बन्ध में, और मानवात्मा में प्राप्त उस पुकार और प्रनिष्पत्ति के सम्बन्ध में जो सतन् रूप से जे उम परिपूर्णता तक उठने का आवाहन देती रहती है—इन दोनों के सम्बन्ध में दुनिया को समस्त दर्शन का जो उत्कृष्ट है, यह पुरुष गांधी उसकी सत्यता का जीवन गांधी है।

मे भला इन पक्तियों में ऐसा क्या कह सकता हूँ जो इसी ग्रन्थ में अन्यत्र अधिक सुन्दरता से न कह दिया गया होगा। पर हिन्दू-शास्त्र की सारभूत शिक्षा में, और गीतना से गांधीजी की उस सम्बन्ध की व्याख्या में, एक शब्द है, जिसपर विवेचन-रूप में कुछ कहने में इस अवसर का उपयोग मैं करना चाहूँगा। उस शब्द पर कुछ धन है और जो लोग पश्चिम की व्यावहारिक बुद्धि और वैज्ञानिक भावना रखकर पूरा बारीकी के साथ चलना चाहते हैं, गांधीजी के मन्तव्य के स्वीकार के उनके रास्ते में वह बाधा-रूप बन सकता है।

ब्रिटिश इन्स्टिट्यूट ऑफ फिलासफी की सभा में हाल में सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने एक व्याख्यान दिया था। वह सुब्रह्मण्य अय्यर की उस व्याख्यान-माला के सिलसिले में पहला व्याख्यान था, जिसका उद्देश्य है आदि सत्य सत्रधी शोध और अध्ययन को प्रोत्साहन देना। उस व्याख्यान के अवसर पर मुझको वह बात सूझी थी। वक्ता का परिवर्तन कराने हुए समाध्यक्ष ने कुछ लोगों की इस कठिनाई की तरफ ध्यान दिलाया था, जो उन धर्मोपदेष्टा के 'सत्य' के साथ सामान्य दर्शन शास्त्र के 'सत्य' का मेल बैठाने में ठूँसा करती है। दर्शनशास्त्र ने 'सत्य' शब्द में भाव है, 'घटना के साथ मत का ऐक्य'। उनके विरोध में ऐसा प्रतीत होता था कि धर्म का 'सत्य' शब्द किसी कदर अस्पष्ट-भाव में इस्तेमाल किया गया है। उसमें सामाजिक नीति-न्याय और सदाचार का ही समावेश नहीं होता था, जो विलकुल भिन्न मतह को धारणार्थ है, बल्कि यह भी उसमें समझ बनता था कि सर्वथा समाधानकारक और अन्तिम सत्य का व्यक्तरूप कोई हो सकता और पाया जा सकता है। इसके जवाब में वक्ता को यह दिखाने में दिक्कत नहीं हुई कि सत्य की धारणा की दार्शनिक परिभाषा और मर्यादा के पक्ष में जो कुछ भी कहा जाय, पर खुद पश्चिमी साहित्य उस शब्द के दूसरे व्यापक भाव को स्वीकार करता है। सत्य पुरुषों की वाणिज्य और व्यापारशास्त्रों में बैसे प्रयोग बार-बार दोहराये हुए मिलते हैं। उदाहरण के लिए यह वचन लीजिए, "सत्य को जानो और सत्य तुम्हें मुक्ति देगा।" वक्ता के हिन्दू-धारणा के प्रभावपूर्ण स्पष्टीकरण से सुननेवाले लोग प्रभावित हुए, यह तो साफ़ ही था। फिर भी ऐसा भी लगता था कि कुछ है जो महसूस करते हैं कि एक शब्द के इन दोनों अर्थों में अन्तर और तात्तम्य पड़ने के कारण पर कुछ

१ Ye shall know the Truth and the Truth shall make you free.

और भी कहे जाने की आवश्यकता है। मैंने अपने मन में सोचा कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि अपनी चेतना और सत्ता (Knowing and Being) के जिस भेद की पहचान हमें ग्रीक दर्शन से विरासत ही में प्राप्त होगई है, भारतीय दर्शन अपनी गूढ़ विचार-गहनता के बावजूद उस पहचान को भूल ही गया हो। चेतना, यानी वास्तविकता का हमारे ज्ञान पर प्रतिबिम्बित हुआ रूप। और सत्ता, यानी वास्तविकता का वह स्वरूप जो ईश्वर-ज्ञान में प्रतिभासित है। मैं नहीं मानता कि ऐसा मूल-भेद भारत के उद्भूत विचारकों की पहचान से छूट गया होगा। बल्कि सोचता हूँ कि सम्भव है प्रचलित सूत्र-वाक्यों के बीच, और उनके अन्तर, वैसे भाष्य की आवश्यकता की ओर उनका ध्यान न गया हो।

मसलन, गांधीजी के ये वाक्य लीजिए, “सत्य है सत् का भाव, और पाप वह है जो नहीं है।” “हिन्दू-धर्म सत्य का धर्म है और सत्य है परमेश्वर।” “सत्य के सिवा कोई और ईश्वर नहीं है।”

जो हो, मुझे उस समय प्रतीत हुआ कि ऐसे सब वाक्यों में ‘सत्य’ के स्थान पर ‘वास्तव’ रखा जाय और देख जाय कि कहां तक इससे बात स्पष्ट होने में आती है।

इस परिवर्तन पर पहली बात तो यह कि सभावादा को अवकाश मिलता है कि सत्य को कुछ सँकरा करके यह परिभाषा दे सके कि वह आदमी के मस्तिष्क के दर्पण पर पड़ी वास्तविकता की छवि और झलक है। धार्मिक भाषा में उसी बात को कहे तो सत्य ‘ईश्वर का शब्द’ होता है। (केपलर की बानी है “ओ ईश्वर, मैं तेरे पीछे तेरे ही विचार विचारता हूँ।”) पर दूसरी बात उस परिवर्तन से यह होती है कि विचारणा के अतिरिक्त अन्य दूसरे प्रकार की अनुभूतियों में भी हम वास्तविकता पाते और उसके उन स्वरूपों के प्रति खुल जाते हैं। जो हम सोचते हैं उसके साथ, और अतिरिक्त, जो हम करते हैं उसमें भी, वास्तव की झलक क्यों न हो? क्यों न सदविचार के साथ सत्कर्म भी उसीकी व्याख्या हो? इच्छापूर्वक किये गये हमारे कर्म में सार्थकता का बोध इससे ज्यादा और हमें कब होता है जब कि हमें लगता हो कि दुनिया जो हमसे माँगती थी वही हमने किया है? धार्मिक भाषा में उसीको कहे तो ईश्वर की इच्छा के साथ संयुक्त होजाने से बढ़कर मानवेच्छा की और सार्थकता क्या है? हम जानते तो हैं कि सही काम अपनेआप में काफी नहीं है, बल्कि उसके किये जाने की प्रेरणा भी सही भावना में से आनी जरूरी है। इसी तरह क्या यह नहीं होसकता कि औरों को प्रेम करने में अपनी और पराई दोनों की वास्तविकता अनायास और घनिष्ट भाव से हमें उपलब्ध होआनी है? इससे पर का आत्म-भाव से प्रेम ही सत्य-ज्ञान ठहरता है। वन्दु-भाव की विस्तृत कीजिए, यहाँ तक कि जीव-मात्र उसमें आजाये जैसे कि गांधीजी ने किया है। “अपने पड़ोसी को तू अपनी तरह प्रेम कर।” “ठीक, पर पड़ोसी कौन?” तो गांधीजी उत्तर देते हैं: ‘जीव मात्र तेरा पड़ोसी है।’ इस भाव को अपनाते

और विस्तारने से वस्तु-मात्र के अन्तरंग (यानी ईश्वर या प्रकृति) को ही क्या हम नहीं पालेंगे ? सो प्रेम से अधिक किसीको कैसे जाना या पाया जा सकता है ? और 'प्रेम ही सही प्रार्थना है' । पशु-पक्षी, कीट मनुष्य, जीव-मात्र का जो जितना श्रेष्ठ प्रेमी है उतना ही वह उत्कृष्ट उपासक है ।"

पर ऊपर के शब्द-परिवर्तन के पक्ष में जो कहा जा सके वह कहने पर भी प्रश्न शेष रह सकता है कि 'सत्य' और 'वास्तव' को क्यापिवाची शब्दों के तौर पर इस्तेमाल करने की बादत जो दार्शनिकों तक में फैली हुई है, ज्ञान के स्वरूप-निर्णय के दृष्टि-कोण से देखने से उसका समर्थन नहीं होता है । प्लेटो ने ज्ञान में श्रेणियाँ रखी हैं । सामान्य जीवन में जो इन्द्रियगोचर या इच्छा वन्मना द्वारा प्राप्त होता है वह ज्ञान एक । और उनके हेतु और कारण सवर्गी वैज्ञानिक ज्ञान दूसरा । इन सिरों के बीच फिर तारतम्य है ही । पहले के उदाहरण में हम अपन सूर्योदय के परिचय-ज्ञान को ले सकते हैं । अपनी बुरी पर सूर्य के चारों ओर घबरी के घूमने के ज्ञान को दूसरी प्रकार का ज्ञान कहना होगा । इन दोनों ही में ज्ञान और ज्ञेय-वस्तु में पारंपरिक अन्तर, रहता है । लेकिन प्लेटो का मानना था कि एक और भी ऊँचा घटक है, जहाँ ये दोनों मिल जाते हैं, फिर भी जो इनसे ऊँचा रहता है । वहाँ ज्ञान में प्रत्यक्ष अनुभूति भी है और मानसिक अनुमान और चेष्टा को भी स्थान है । दोनों ज्ञान रहकर दाना की अपूर्णता का ज्ञान भी वहाँ रहता है । हम मान ले कि कंपलर को यही विम्व-रूप-दर्शन हुआ था, जब कि उसने नम-मण्डल को मानव की भाँति न देखकर बैसे देखा जैसे कि स्वय-ईश्वर ज्ञान में वह भासमान हो । याकि कवि जब ऐसा वर्णन करता है कि मानो तमाम बन्तु उसमें हैं और वह उनमें, तब उसकी अनुभूति उसतक उठती है । पश्चिम में पाठकों को इस सिद्धान्त में बड़ी अडचन हुई और उसपर वे सीझे भी हैं । पर पूर्वी पाठकों को तो यह ऐसा लगता है जैसा कि खुद सपने में देखी उनकी ही बात हो । वह ऐसी प्रत्यक्ष है जिसकी साक्षी दार्शनिक या कवि के अनुभव में तो हो, पर सन्त के तो वह नित्य जीवन की वस्तु है । मैं तो मानता हूँ कि पूरव के लोगों का यह स्वप्न सच्चा है और निह्द्वार' से उनको प्राप्त हुआ है ।

१. मूल में शब्द है 'हार्न-गेट' । ग्रीक कवियों के अनुसार शूरे सपने तो आदमियों के पास स्वर्ग से हाथीदात के एक सुन्दर द्वार में से भोजे जाते थे । लेकिन सच्चे सपने एक सींग (Horn) में होकर पहुँचते थे । उस 'हार्न-गेट' को अनुवाद में सिंह-द्वार कहा है ।
—सम्पादक

: ५७ :

ईश्वर का दीवाना

रेजिर्नॉल्ड रेनॉल्ड्स

[लन्दन]

ईश्वर ने अपने दीवानों को अजीब वेद्यों में दुनिया को जाँचने के लिए भेज दिया और कह दिया कि “जाओ तुम ऐसे ज्ञान का प्रचार करो जो समय के पूर्व हो। सब दुःख आख खोलकर सहो और परिवर्तन का मार्ग साफ करो।”

ये डबल्यू जी होल की ‘दी फूल्स ऑव गॉड’ (ईश्वर के दीवाने) तीर्थक कविता के प्रारम्भ के शब्द हैं। इस कविता को मैंने १९२९ ई० में हिन्दुस्तान जाने के कुछ महीनों पहले ‘विश्वभारती’ त्रैमासिक पत्रिका में देखा था। यह कविता बहुत प्रसिद्ध तो नहीं है, पर मुझे इसमें सन्देह है कि मेरी पढ़ी किसी कविता ने मेरे मन पर इतना अधिक और स्थायी प्रभाव डाला हो जितना उक्त कविता ने। इसका कारण उसके पद्यों में वास्तविक खूबी का होना नहीं था, बल्कि यह था कि वे भविष्यवाणी के रूप में सिद्ध हुए।

कविता में यह वर्णन किया गया है कि ईश्वर अपने प्यारे भूखों को आदेश देता है “बहरे हो जाओ, किसीकी टालो मत, और दुनिया की बुद्धिमानों के रास्ते से सदा उलटे होकर बचो।”

वे चलते हैं “और आराध में पले हुए लोगों को परिश्रम और भूख-प्यास का उपहार देते हैं। आज उन्हें सब गालियाँ देते हैं, कल घम्यवाद देते हैं।”

१ His fools in vesture strange
God sent to range
The world and said . “Declare
Untimely wisdom, bear
Harsh witness and prepare
The paths of change.”

२ And proffering toil and thirst
To men in softness nursed,
To day by all are cursed,
To-morrow blessed

अपनी साधना के दमियान वे त्याग देते हैं 'मनुष्यों की स्वीकृति और प्रशंसा से भरे हुए सुविधा-पूर्ण मार्ग को ।' १

लेकिन 'श्रद्धा के दीवाने', वे दावा करते हैं "उस प्रकाश के देखने का, जो मनुष्यों के भाग्यों को चमका देता है, उन्हें बादशाह बना देता है और उनमें धार्मिक कार्य करने की शक्ति देदेता है ।" २

उस कविता को पढ़ने के बाद कुछ ही महीनों के अन्दर—मैं बड़े आदर के साथ कहूँगा—दुनिया के सबसे एक नम्बर के दीवाने महात्मा गांधी से मिले । शीघ्र ही मैंने यह पता लगा लिया कि मुझे प्रभावित और प्रेरित करनेवाली उन पक्तियों का आकर्षक वर्णन इस पुरुष पर अक्षरशः घटित होता था ।

चाहे विरोध में किसीने कुछ भी दलीले दी हों, मेरा तो खयाल ऐसा नहीं है कि गांधीजी कोई चतुर आदमी हैं । दस साल पहले से, जबसे मेरा उनसे पहलेपहल परिचय हुआ, मैंने सदा अपनेआपको उनके शब्दा और बायों की अक्सर बेहद आलोचना करनेवाला महसूस किया है । मैं उन अन्धश्रद्धालुओं में से नहीं हूँ, जिनके मत में महात्माजी सभी भूल ही नहीं कर सकते । न तो मैं उन्हें एक 'मसीहा' समझता हूँ और न 'अवतार' ही मानता हूँ । अगर वह महान् होने का दावा करे और उसके लिए अपनी राजनैतिक बुद्धिमत्ता पर निर्भर रहे तो मेरी समझ में उनका यह दावा कच्चा होगा । उनकी जाँच तो दूसरी ही कसौटी द्वारा करनी होगी ।

अगर गांधीजी की वास्तविक महत्ता को पूरी-पूरी तरह समझाने चले तो हिन्दू-धर्म के इतिहास की उसकी शारभिक अवस्था से खोज करनी होगी और उन सब अनगिनतों सुधार-आन्दोलनों पर जोर देना होगा जिनका प्रत्येक धर्म के विकास में एक स्थान होता है । कारण यह है कि प्रत्येक सभ्यता धर्म जर्जर होकर नष्ट होता है और अपने नाश की ओर जाते हुए वह जीवन के नये बीज, जिनमें आत्मा जीवित रहती है, निरन्तर फेंकता रहता है, पुराना चोला नष्ट होजाता है और मृत शाखायें मुरझा जाती हैं ।

मैंने एक बार एक शक्तिशाली अमरीकन ईसाई को गांधीजी के किसी शिष्य के साथ शास्त्रार्थ करते सुना । उसने पूछा कि महात्माजी पर सबसे गहरा प्रभाव किस पुस्तक का पड़ा है ? पैसिल और नोटबुक तैयार थी और हम सब जानते थे कि वह

- १ The comfortable ways
Of men's consent and praise
- २ To see the light that rings
Men's brows and makes them kings
With power to do the things
Of righteousness.

क्या आशा हो सकती है ? यह झूठा सपना है कि जीव शरीर छोड़ देने से उससे जा मिलेगा । यदि अब ईश्वर को प्राप्त कर लिया जायगा तो तब भी प्राप्त हो जायगा । यदि यह न हो सके तो हम नरक में जायेंगे ।”

ईसाई मन के कैथलिक और प्रोटेस्टेंट सम्प्रदायों की परम्पराओं की समता अधिकतर धर्मों में खोजकर निकाली जा सकती है । हरेक प्रथा-प्रणाली में अपने विशिष्ट अवगुण होने हैं और ऊँचे-ऊँचे गुण भी । प्रोटेस्टेंटवाद का पूर्ण विकास उसके उन्मूल्यतम प्यूरिटनो में मिलेगा । हमारे युग में हम प्यूरिटन में सिवाय उसके असहनीय निषेधों के और कुछ देखना ही नहीं चाहते । प्रारम्भ में प्यूरिटन मत को किन-किन विरोधों का सामना करना पड़ा, यह हम आज आसानी से भूल जा सकते हैं । अपने असली स्वरूप में प्यूरिटन केवल एक कठोर हकीम हैं जो अपने अजीर्ण के रोगी को खाने-पीने में पथ्य-अपथ्य और समय का आदेश देता हैं । हो सकता है प्यूरिटन का यह लक्ष्य बुद्धिपूर्वक न रहा हो, पर यह तो उसका इतिहास-सिद्ध कर्म था ।

जहाँ कहीं भी समाज-मुद्धार आन्दोलन या क्रांतियाँ होती हैं, वहाँ कट्टरतावाद का आग्रह ईँटा जा सकता है । यह तो उन पुरुषों और स्त्रियों के अनुशासन का एक अंग-मांस है जिन्हें अपनी शक्ति एक वस्तु पर केन्द्रित करने के लिए बहुतकुछ परित्याग करना पड़े । इसलिए आधुनिक भारत के नेता कट्टरवादी (प्यूरिटन) ही और उन सब का प्रमुख एक निर्मम तपस्वी है, यह कोई आकस्मिक घटना ही नहीं है । जबतक हम उन जमीरों और वक्त्रों को न तौड़ फेंकें जों हिन्दुस्तानियों को अशिक्षित, अकर्मण्य, जानि-भाँति के कट्टर भक्त और अन्य विश्वासी बनाये हुए हैं तबतक साम्राज्यवाद के खिलाफ होनेवाला उनका विद्रोह आगे नहीं बढ़ सकता । गांधीजी राजनैतिक आस्था की आन्दोलन के सवालन में समर्थ इसीलिए हो सके कि उन्होंने पुजारियों की सत्ता का सामना लिया, कट्टरता के हिमायतियों की बुराई—अस्पृश्यता के खिलाफ कदम उठाया, महिलाओं की गिरी हुई हालत को सभाला, बाल-विवाह, सार्वजनिक स्वास्थ्य की अवहेलना, धार्मिक असहिष्णुता, शादी विवाह की फिजूलखर्ची तथा अफीमखोरी का—चौड़े दिनों में उन सब सामाजिक दुराचरणों का सघ्न विरोध किया जिनमें देश में राजनैतिक जड़ना आ गई थी ।

एक बार पुन विदित होगा कि हिन्दुस्तान में एक लम्बी परम्परा चली आ रही है जिसके बीच-बीच में अत्यन्त महत्वपूर्ण उद्भूतियाँ होती रहती हैं, जिससे हमें हिन्दुओं की कट्टरता की अनुदार धारा के विरोध में होनेवाली गांधीजी की प्रवृत्तियों का महत्व हमारी समझ में आ सकता है ।

गांधीजी के बहुत पहले हिन्दुस्तान में 'ईश्वर के दीवाने' थे । बंगाल के 'बाउलों' में मुसलमान और हिन्दू, खासकर नीची जाति के शामिल थे । बबीर साहब का रंग उन में देख पड़ता है । उन्हें लिखित श्रमा की महत्ता या मन्दिरों की पवित्रता की परवा

नहीं थी, उनका एक गीत यही बात कहता है—

मन्दिर-मस्जिद से है तेरा
मार्ग ढका मेरे भगवान ।
मार्ग रोक्ते गुरु पुजारी—
सुनता हूँ तेरा अह्वान ।*

उनकी अपरिग्रह में, आत्मसम्मान में, और आत्मसाक्षात्कार में श्रद्धा होती थी।
उनका ईश्वर 'अन्तस्थ गुरु' या 'अन्तर्वासी' होता था ।

एक बाउल ने ही कहा था—मानो मुझे और उन लोगों को चेतावनी दी थी
जो अपने थोड़े-से ज्ञान से उस अपरिमेय का मूल्यांकन करने चलते हैं—

स्वर्णकार उपवन में आया
और कसौटी पर कस उसने
कमल-फूल का मूल्य बताया ।†

अगर सुनार की कसौटी पर रखा जाय तो कमल का कोई मूल्य नहीं है।
हमारे परिचित साधन भी प्रायः इसी प्रकार भ्रामक सिद्ध हो सकते हैं, जब मानवी
बुद्धिमत्ता ईश्वर के दीवानी के ऊपर बैठकर उसका निर्णय करने चलती है।

: ५८ :

विश्व-इतिहास में गांधीजी का स्थान

काउण्ट हारमन काइज़रलिंग

{ आर्चड्याट, जर्मनी }

हम ऐसे बड़े ज़बर्दस्त और बहुमुखी सभ्यों के युग में रह रहे हैं जो ससार के
इतिहास में शायद ही पहले कभी हुए हो। काल और व्यवधान पर विजय पालेने से
अब एक-दूसरे से अलग होने का विचार ही भ्रमपूर्ण जान पड़ता है। गत महायुद्ध से
पूर्व ससार के सभी देशों में अल्पसंख्यकों का, चाहे उन्होंने किसी सिद्धान्त का दावा
क्यों न किया हो, राज्य था। परन्तु आज जनता जागी है, अथवा यों कहें कि सभी

१ Thy path, O Lord, is hidden by mosque and temple .
Thy call I hear, but priest and guru bat the way.

२ A goldsmith, methinks has come to the garden :
He would appraise the lotus, forsooth,
By rubbing it on his touchstone.

जगह बहुसंख्यको के हाथ राजनैतिक और सामाजिक शक्ति आई है, जिससे वह जबरदस्त शक्ति बन गई है, बल्कि बहुसंख्यकत्व आज के युग का एक खास गुण बन गया है। जिस प्रकार विद्युत-शक्ति विद्युत की दो विरोधी धाराओं (पॉजिटिव और नेगेटिव) की आवश्यक सहचारिता द्वारा व्यक्त होती है (जहाँ कि एक ध्रुव (Pole) अपने विरोधी ध्रुव को प्रेरित ही नहीं, बल्कि पैदा भी करता है) उसी प्रकार जीवन भी परस्परविरोधी और संपर्कशील शक्तियों का अस्थिर सन्तुलन है, जिनमें से बहुत-सी ध्रुवत्व (Polar) गुणवाली है। इसीलिए ऊपर जिन परिवर्तनों की रूपरेखा बताई गई है उन्होंने ऐसी स्थिति पैदा कर दी है जहाँ मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक धरातल पर अपरिमित शक्तिधारी धारामें एक-दूसरे के साथ मिलकर काम करती हैं। जितनी अधिक-से-अधिक शक्तिशाली विद्युत्‌धाराओं की हम रूपरेखा कर सकते हैं उनसे इन धाराओं की तुलना की जा सकती है। सत्ता के भिन्न-भिन्न आन्दोलनों के साथ जो निश्चित विचार जोड़े गये हैं उनका तो कुछ महत्व ही नहीं है और वे हमेशा भ्रम में डालनेवाले होते हैं। इसकी वजह यह है कि उनमें से हरेक को बनानेवाले उपयोग इतने अधिक होते हैं कि वे सब उस नाम के अंतर्गत नहीं आते। दूसरे जैसा कि समस्त इतिहास बतलाता है, एक आन्दोलन के 'नाम और रूप' के पीछे जो वास्तविक शक्ति होती है और उनके नाम व रूप में कालान्तर में समानता बहुत कम रह जाती है। बहुधा देखा गया है कि एक आन्दोलन जो एक खास उद्देश्य को लेकर चला वह कालान्तर में जैसे जीवन बढ़ता गया, किसी दूसरे रूप में ही बदल गया। इसलिए आज जितने सत्ताधारी आन्दोलन चल रहे हैं और उनके लिए जो नाम रख गये हैं, मैं

१. यहाँ संकेत उस विचार की ओर है जो प्रारम्भ में जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक हेगल ने बड़े बल के साथ उपस्थित किया था। हेगल ने कहा था कि अन्तिमसत्ता तथा मनुष्य समाज की जागृति की रचना में तीन मौलिक अंग प्रतीत होते हैं। ये Thesis (अवस्था) Anti-thesis (विरोधी अवस्था) Synthesis (समन्वय) हैं। मान यह है कि हर कोई अवस्था अपने से निम्न अथवा विरोधी अवस्था को प्रेरित और पैदा करती है और फिर वे दोनों अवस्थाएँ एक तीसरी अवस्था में समन्वय को प्राप्त हो जाती हैं। हेगल के अपने दृष्टान्त से इस विचार को यहाँ और स्पष्ट कर देना ज्यादा अच्छा होगा। यूनान के दार्शनिक इतिहास का हवाला देते हुए हेगल कहता है कि उस अवस्था को जबकि परिवर्तनशीलता को पूर्ण तथा भ्रम बतलाया गया था, थोसिस माने तो उसके बाद में आनेवाली अवस्था को, जिसमें परिवर्तनशीलता ही एकमात्र सत्ता मानी गई, anti thesis (विरोधी अवस्था) कह सकते हैं। उनके बाद जो तीसरी अवस्था आई, कि परिवर्तनशीलता तथा अपरिवर्तनशीलता दोनों को सत्य माना और उनमें एक यथार्थ मिलान का प्रयत्न किया गया, उसे सिंथेसिस (समन्वय) कह सकते हैं। —संपादक

उनको ठीक नहीं मानता । सत्ता का कोई राष्ट्र जो प्रजातंत्र या समाजवाद या स्वतंत्रता या अनीश्वरता के नाम पर लड़ाई छेड़ता है, उस समय जो कुछ वह कहता है उसका वही मतलब नहीं होता जिसका कि वह दावा करता है । वास्तव में तो सबकेसब अधेरे में उस उद्देश्य के लिए जो उन्हें अभी तक मालूम ही नहीं है, भटकते फिर रहे हैं । उस उद्देश्य की आखिरी स्परेखा उन्हें उसी समय मालूम होगी जब कि वे न केवल गर्भान्तर्गत-अवस्था (जिसमें बि हरेक इस समय है) से बाहर ही आ जायें, बल्कि उसके बाद काफी बढ़ भी जायें । आज मनुष्य जिन उद्देश्यों और ध्येयों के लिए लड़ रहे हैं उनमें से कोई भी अन्तिम विजय प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि सत्ता इस समय सघर्ष के बिनालक्ष्यो में, भयंकर शक्ति के केन्द्रों में, बँटा हुआ है । सघर्ष के विस्फोट के अनंतर जो कुछ बचे उसका एकानुरूप समन्वय ही अधिक स्थिर समतुल्य पैदा कर सकता है । परन्तु यह समन्वय बड़े दूर की दान है और उसतक पहुँचना बड़ा कठिन है ।

इसके साथ ही एक कठिनाई और भी है, जिसपर विचार करना है, और वह यह कि यह बात आसानी से नहीं कही जा सकती कि इस समय जो बड़ी-बड़ी शक्तियाँ काम कर रही हैं उनमें से कौनसी देर तक टिकी रहेगी और कौनसी शक्ति, जिसका इस समय अस्तित्व भी नहीं है, सत्ताख्यापी शक्ति बन उठेगी । लेकिन अगर हम यहाँ पर दो सिद्धान्तों को समझ लें, जिनकी महत्ता की अभी तक कम ही समझा गया है, तो वे हमें एक अधिक सूक्ष्म भविष्यवाणी करने में सहायक होसकेगे । इनमें से पहला सिद्धान्त तो प्राचीन चीन की देन है । इसके अनुसार प्रत्येक ऐतिहासिक घटना स्थूल व प्रत्यक्षरूप में घटित होने के पच्चीस वर्ष पूर्व ही घटित होजाती है । विचार यह है कि आज के दक्खे न कि आज के बयस्क पुरुष, पच्चीस साल में दुनिया पर राज्य करेंगे, अतः उस भविष्य के रूप का अनुमान दक्खों के जीवन और भावना का ठीक अन्दाज लगाकर कर सकते हैं । दूसरा सिद्धान्त है ध्रुव नियम का सिद्धान्त (लॉ ऑफ़ पोलैरिटी) ।^१ इसके अनुसार प्रत्येक त्रिप्रासील शक्ति (यदि हम इसे ज्य तिष की परिभाषा में कहें तो) ध्रुवत्व गुणवाली विरोधी शक्ति के साथ सम्बन्ध जोड़ती है । इसी प्रकार एक दृढ़ सिद्धान्त, अपनी दृढ़ता व शक्ति के कारण, एक विरोधी सिद्धान्त पैदा करता और उसे बल देता है ।

एक आन्दोलन एक ही दिशा में जितने खोरो से चलेगा उतनी ही तेजी से उसका विरोधी दिशा में आन्दोलन होने की सम्भावनाएँ हैं । येरे विचार में केवल इसी दृष्टि

१. यह सिद्धान्त यह है कि एक भौतिक पदार्थ में दो विरोधी गुण होते हैं । जैसे कि चुम्बक लोहे में एक ओर लोहा खींचने का गुण और उससे ठीक दूसरा ओर लोहे को पीछे धकेलने का गुण । अगर एक प्रकार के गुणवाले दो ध्रुव एक-दूसरे के पास लाये जायेंगे तो वे एक-दूसरे को पीछे धकेलेगे । —संपादक

से महात्मा गांधी की ऐतिहासिक महत्ता का अनुमान लगाया जा सकता है। इस विशाल दृष्टि से तो उनकी महत्ता वास्तव में बहुत बड़ी मालूम होती है। पहले कोई भी युग हिंसा से इतना ओतप्रोत नहीं था जितना कि आज का हमारा युग है। क्योंकि आज सभी गोरी जातियोवाले देशों के बहुसंख्यक किसी-न-किसी प्रकार हिंसा के पक्ष में हैं। इसी प्रकार काली जातियोवाले देशों के बहुसंख्यक भी इसके पक्ष में हैं। इस सबको देखते हुए यह निश्चित ही है कि बल-प्रयोग से क्रान्ति करनेवाला यह आन्दोलन उस समय तक समाप्त नहीं होगा जबतक कि वह इस सम्बन्ध में इन सभी अवसरों व सम्भावित उपायों का प्रयोग न कर ले। पृथ्वी के किसी-न-किसी भाग में अनेकों शान्तिवाजियों तक लम्बी-लम्बी लड़ाइयाँ होंगी, संघर्ष ही संघर्ष होंगे। और क्योंकि ऐसा ही रहा है और होगा, ईशान्ति अहिंसा के जाहिरा निपेक्षात्मक विचार द्वारा प्रेरित किया हुआ आन्दोलन प्राणभूत एवं ऐतिहासिक महत्ता प्राप्त कर सकता है जो कि उसे इससे भिन्न परिस्थितियों में न तो मिलती और न अभीतक कभी मिली ही है। ऐसा इसलिए भी होगा, क्योंकि अहिंसा के आदर्श और उसके विरोधी आदर्श में जो ध्रुव संघर्ष है वह एक ओर ध्रुवत्व (Polarity) अथवा ध्रुव-संघर्ष का चोतक है। वह है साध्य बनाम साध्य की अपेक्षा साधन की प्रमुखता। और मेरे विचार से यही दूसरा ध्रुवत्व महात्माजी को एक प्रतीक के रूप में अमर बनाता है, फिर चाहे घटनाओं के घरातल पर उनके द्वारा आरम्भ किये गये आन्दोलन की सकलता कैसी ही क्यों न हो।

जेमुइट लोगो का सिद्धान्त है कि लक्ष्य पवित्र तो साधन सब उचित है। (धर्माभिमानियों पाश्चात्या ने सचमुच ही 'रेड इण्डियनों' के साथ व्यवहार करने में इसी सिद्धान्त पर अमल किया था।) परन्तु जब तक यह सिद्धान्त चलता रहेगा उस समय तक संसार की स्थिति में वास्तविक एवं स्थायी रूप से सुधार होना दूर की बात है। विनाशकारी साधनों का प्रयोग बढ़ले में प्रति-विनाशकारी साधनों को पैदा करेगा और इस तरह सिलसिले का अन्त न होगा। बुद्ध ने कहा ही है "अगर घृणा का जवाब घृणा से ही दिया जाता रहेगा, तो घृणा का अन्त फिर कहाँ है?"

संसार में आज बल प्रयोग और आक्रमण द्वारा अपना प्रसार करने का ढंग चल रहा है। आज सभी शक्तिशाली जातियाँ ने उसी ढंग को अपना रक्खा है। और भी जैसे समय बीतता जायेगा, अधिकाधिक जातियाँ उस ढंग में पड़ेगी। महात्मा गांधी ही इस के विपरीत-ध्रुव (Counter pole) अथवा विरोधी धारा के जीवित प्रतीक हैं। जिस प्रकार शान्तिवादी चीन को आत्म-रक्षा के लिए आक्रामक बनना पड़ा है उसी प्रकार भारत में भी, जहाँ कि और जातियों के साथ बहुत-सी लड़ाका और और जातियाँ भी रहती हैं, बढ़त करके ऐसी ही घटनाएँ घटने की सम्भावना है। परन्तु महात्माजी तो उपरि-वर्णित विरोधी-ध्रुव (अर्थात् अहिंसा) के सबसे स्पष्ट,

महान्, विशुद्धहृदयी एकचित्त प्रतीक रहेंगे। वास्तव में उस दिशा में अभी तक वह अकेले ही एक विशाल जन-आन्दोलन के प्रतिनिधि हैं। अहिंसा वास्तव में हिन्दुओं के सबसे प्राणभूत आदर्शों से मिलनी जुलती है, प्राणभूत इसलिए कि भारत के हृदय में इनकी गहरी जड़ जमी हुई है। व्यक्तिगत रूप से मेरी यह पक्की धारणा है कि महात्माजी एक दूसरे कारण से भी एक बड़े ऐतिहासिक महापुरुष होंगे। वह दो विभिन्न युगों के संधि द्वार पर खड़े हैं। एक ओर तो वह भारतीय ऋषियों के पुराने आदर्शों के प्रतीक हैं और दूसरी ओर वह बिल्कुल आधुनिक जननायकों की श्रेणी में भी गणनीय हैं। इस सीमा तक तो उनका ऐतिहासिक महत्व जॉन वेपटिस्ट के समान ही है। एकगी ऋषि तो मेरी कल्पना में भावी मानव-समाज में, जिसे मैं 'वसुधैव कुटुम्बकम्'^१ की सज्ञा देता हूँ, वैसा कोई विशेष भाग अब न हो सकेगा जैसा भूत काल में था। भविष्य का लक्षण होगा धर्म का और तेज का समन्वय। शीघ्र का नम्रता के साथ वरण होगा।

मानव समाज के भविष्य के उस पुरुष में पूर्णता होगी, आध्यात्मिक और भौतिक शक्तियों का उसमें समन्वित सन्तुलन होगा। और यदि कोई जीवित है जिसका भाग उस भविष्य के पूर्ण पुरुष के निर्माण और आह्वान में सबसे अधिक गिना जायगा तो वह महाव्यक्ति हैं युग-संधि का अधिवासी गांधी।

: ५६ :

योग-युक्त जीवन की आवश्यकता

डा. सार्वेन्द्रो जी मेह्रियाणा, एम. ए.

[सन्देश]

मानव-जाति किसी दिन हमारे युग को समझेगी, जिसमें मानव कलाओं में सबसे कठिन कला अर्थात् शासनकला (और मनुष्य द्वारा प्रतिपादित यह अन्तिम कला होगी) वर्चस्वता से ऊँची उठनी शुरू हुई। हमारी आँखों के सामने और हमारे पीछे राज्य-शासन की कला वर्चस्वता से परिपूर्ण है। अगर मुझे विरोधाभास की भाषा का प्रयोग करने दिया जाय तो मैं कहूँगा कि अभी तो राज्य शासन की कला का विचार ही नहीं बना है। शासनकला का उद्देश्य तो यह है कि समाज और व्यक्ति के जीवन की धाराओं में सन्तुलन और समन्वय हो। शासन-कला का जो विचार इस समय लोगों

१ लेखक की प्रमुख पुस्तक (World in the making) का दूसरा अध्याय देखिए।

के मन में है वह एक अपूर्ण व अपरिपक्व विचार है।"

आदि जानियों की परम्पराएँ एवं प्रथाएँ, उनके मुखियाओं के अत्याचारी कार्य एशिया के पुराने सामन्तों का गौरव रोम के सम्राटों की नीललोहित (अर्थात् कालिमा लिये हुए) प्रतिभा और रक्तमय आनक, रोम के पोपा का आशीर्वादपूर्ण हाथ मध्ययुग के वीरतापूर्ण और जघन्य युद्ध, साम्राज्य-निर्माताओं और विजेताओं के साहसपूर्ण और जघन्य साहसिक कार्य, आदेश से अनुमति और अनुमति से विवेक तक कानून का विकास, उद्योग धन्यो के बृह-युद्ध और उनके हड़ताल और तालाबन्दी के उग्र साधन जिनसे समाज के एक कोने में एक छोटेसे सघर्ष को हल करने में सारा समाज क्रियाहीन होजाता है राष्ट्र-संघ का उत्थान एवं प्रथम पर अन्तिम नहीं पतन मार्क्सवादका उत्थान एवं प्रथम (पर अन्तिम नहीं) पतन, यन्त्ररूप अत्याचार के प्रतीक फ्रासिज्म एवं नाज़ीवाद का उद्भव—ये सब सघर्ष तथा अन्य अनेक, जिन्हें दिमाग्र पकड़ नहीं सका है, मनुष्य-समाज की उसी चिर समस्या को सुलझान के लिए प्रस्तुत किये गये अस्थायी और जल्दी मिटजानेवाले हल हैं, जो काल (समय) और स्थान (विभिन्न देशों) की परिस्थितियों और निकट-आवश्यकताओं के अनुसार बनाये गये हैं। वह समस्या है मानव-समाज व मनुष्य की जीवन-धाराओं में सन्तुलन पैदा करने की समस्या।

१ इन पक्षितों में लेखक का भाव स्पष्ट करना आवश्यक है। लेखक का कहना है कि शासन-कला का उद्देश्य यह है कि मानव-समाज और मनुष्य इन दोनों के हितों में सन्तुलन पैदा करदे। इसी उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए प्रसिद्ध दार्शनिक लॉक के अनुसार शासनसत्ता का केवल यही अर्थ था कि समाज को बनानेवाले अंग, यानी व्यक्ति, स्वेच्छा से समाज के हितों के लिए काम करें और उस हित के साधन के लिए अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता का कुछ अंश त्याग दें। उदाहरणार्थ समाज के हित के लिए वह 'चोरी' करने की स्वतंत्रता त्याग देगा। इसी सिद्धांत को दृष्टि में रखते हुए लेखक का विचार है कि उल्लूक शासन वह होगा जिसमें समाज के हित व व्यक्ति के हितों में ठीक सन्तुलन हो। परन्तु जैसा कि आगे चलकर लेखक कहता है, आजकल जितनी भी शासन-कलाएँ हैं उनमें यह बात नहीं है। अभी तक विचारकों के मन में यही विचार निश्चित नहीं है कि व्यक्ति को कितनी स्वतंत्रता और उसके हितों को कितना महत्व दें और समाज के हितों को कितना। —संपादक

आज की शासन-कला को लेखक ने उर्बरे बताया है, क्योंकि उनमें मनुष्य की बुरी प्रवृत्तियों को दूर करने की शक्ति नहीं है, बल्कि मनुष्य को कुचल देने की भावना है; जबकि प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक प्लेटो का सिद्धान्त है कि शासन तो ऐसा होना चाहिए कि वह मनुष्य को शिक्षित करके उसकी सभी बुरी प्रवृत्तियों को निकाल फेंके। इसी लिए उसने शासन को शिक्षण-व्यवस्था (System of education) कहा है।—स०

२ लेखक ने जहाँ-जहाँ इन शब्दों का प्रयोग किया है वह व्यापक रूप में है। इनका

मनुष्य अपनी त्वचा को अपने शरीर की सीमा समझ अपनेको स्वशासित ही नहीं, बल्कि स्वतंत्र प्राणी भी समझता है। पूर्वी देशों के निवासियों की अपेक्षा हम यूरोपियन ज्यादा इस भ्रम में पड़े हुए हैं। परन्तु सभी व्यक्ति कम या अधिक मात्रा में एक किसी-न-किसी रूप में अपनेको स्वतंत्र घटक समझते हैं। परन्तु थोड़ा भी विचार बताने के लिए पर्याप्त है कि केवल शरीर-आत्म की दृष्टि से भी मनुष्य घूमने-फिरने या गमन करनेवाली प्रवृत्तियों वाला वृक्ष^१ है जिसने अपनी जड़ें और मिट्टी समेटकर अपने पैर में रखली है ताकि वह चल फिर सके।

जिस प्रकार मूँगे की मूँगे की द्रोप-माला, अथवा मधु-मक्षिका की मक्खी के झुंड से पृथक् कल्पना नहीं की जा सकती उसी प्रकार शारीरिक दृष्टिकोण के अतिरिक्त अन्य किसी दृष्टिकोण से व्यक्ति की मनुष्य से (अधिक स्पष्ट शब्दों में मनुष्य की मानव-समाज से) अलग कल्पना ही नहीं की जा सकती वास्तव में मनुष्य समाज या समूह का एक घटक (unit) है।

परन्तु मुख्य प्रश्न (समस्या) तो यह है कि इस समाज या समूह के दुहरे उद्देश्य या ध्येय हैं। (एक तो अपने ध्येय की प्राप्ति और साधना, दूसरा समाज के ध्येय व लक्ष्य की प्राप्ति और साधना)। मधुमक्खियों में तो मधुमक्खियों का व्यक्तिगत ध्येय तथा उसे कार्य में प्रयुक्त करनेवाली प्रेरक भावना मधुमक्खी के झुंड के ध्येय से पृथक् नहीं है, परन्तु हमारा विश्वास है, चाहे वह ठीक हो या गलत, यह अलग और महत्वहीन बात है कि प्रत्येक व्यक्ति का अपना व्यक्तिगत ध्येय होता है। इसी कारण मनुष्य का जीवन बहुमुख समस्या का रूप बन जाता है। यदि हमें केवल समाज या समूह के हितों का ही विचार करना पड़े तो उसका हल यद्यपि कठिन अवश्य होगा, परन्तु वह समस्या

प्रयोग समाज (जो कि मानव-समाज का बहुत छोटा अंग है) व व्यक्ति के लिए नहीं, बल्कि मानव-समाज और मनुष्य के लिए है। उसका आदर्श यह है कि आजकल भिन्न जातियों ने जो अपने-अपने राष्ट्र की सीमाएँ, व अपनी-अपनी जातियों के विशेष गुण बना लिये हैं सब मिट जाने चाहिए, मानव-समाज को एक हो जाना चाहिए और मनुष्य को अपनेको एक राष्ट्र या जाति का अंग समझने के बजाय सारे मानव-समाज का अंग समझना चाहिए। अगले चरे में उसीने सीमाएँ स्थिर करने की इसी प्रवृत्ति पर कटाक्ष करते हुए कहा है कि मनुष्य अपनी कल्पना मानव जाति या मानव-समाज से भिन्न करता है; परन्तु वास्तव में उसको या उसके हितों और ध्येयों की मानव-समाज से भिन्न कल्पना ही नहीं सकती। —संपादक

१ कुछ पश्चिमी दार्शनिकों का मत है कि मनुष्य वास्तव में वृक्ष है। भेद केवल इतना है कि वृक्ष एक जगह स्थिर रहता है और चल फिर नहीं सकता परन्तु मनुष्य चल फिर सकता है। —संपादक

एकमुखी ही होगी। किन्तु जब समूह के हितों और ध्येयों के साथ हमें व्यक्ति के हितों और ध्येयों का भी ध्यान रखना पड़ता है तब तो हमारी कठिनाई चौगुनी बढ़ जाती है।

सक्षेप में सामूहिक जीवन की समस्याओं की दो धारयाँ हैं—

व्यक्ति की धारा, जिसको वर्षों में बनायें तो वह ७० वर्ष की होगी।

समाज या समूह की धारा जिसे शताब्दियाँ द्वारा ही मापा जा सकता है।

इसके साथ ही चरम-ध्येय के ध्रुव भी दो हैं—

पहला तो व्यक्ति का जो अपने-की ही अपना अन्तिम ध्येय समझता है और है भी।

दूसरा समूह या समाज का, जो अपनेमें अपना अन्तिम ध्येय मानता है।

इस व्यवस्था की उलझने यही समाप्त नहीं हो जाती, क्योंकि इनके अतिरिक्त कुछ समूह और भी हैं, जिनके मनुष्य अंग हैं। इनमें से कुछ तो इतने ज्वरदस्त होगये हैं कि वे मनुष्य को कुचले डाल रहे हैं।^१ राष्ट्र मानव-समुदाय का वह एकल रूप है जिनमें और रूपों से इस समय कहीं अधिक जोर है।

उसकी जीवन-धारा शताब्दियों में मापी जा सकती है। मानव-समुदाय के जितने रूप हैं उनमें यह रूप (राष्ट्र) सबसे ज्यादा देर तक जीनेवाला (चिरायु) हो, मो नहीं है। चिरायु तो बहुत मानव-जाति—इस पृथ्वी पर बसनेवाले सभी मनुष्यों का समाज—ही है। और क्योंकि यह (मानवजाति) सभी काल और सभी स्थानों में व्याप्त है, अतः यही मनुष्य-समाज का सबसे सुस्पष्ट रूप है। इस प्रकार जीवन-धाराओं और चरम-ध्येयों की हमारी सरणी इस प्रकार बनती है —

धारयाँ

मनुष्य

राष्ट्र

मानव-जाति

चरम-ध्येय

मनुष्य

राष्ट्र

मानव-जाति

सारा इतिहास इन दोनों में सन्तुलन के लिए संघर्ष ही है। स्वतन्त्रता की पताका के नीचे जिनने गृह-युद्ध और क्रांतियाँ हुईं वे मनुष्य की धारा और उसके चरम-ध्येय में सन्तुलन प्राप्त करने के लिए हुईं, एकतन्त्री (डिक्टेटोरशिप) शासन के झण्डे के नीचे जो प्रति-क्रियाएँ और अलगाव हो रहे हैं, वे राष्ट्र की धारा और चरम ध्येय में सन्तुलन के लिए और अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध भी विभिन्न देशों की धाराओं और ध्येयों में सन्तुलन के लिए ही हुए हैं। पर इन सबके साथ एक और संघर्ष निरन्तर और अनवरत चल रहा है। वह वास्तविक शान्ति प्राप्त करने और आध्यात्मिक और भौतिक एकता अथवा दोनों को प्राप्त करने के लिए चल रहा है। यह मानवसमाज की धारा और ध्येय में सन्तुलन के लिए है।

अब प्रश्न यह है कि किसी भी युग की अपेक्षा आज यह संघर्ष ही सबसे विकट क्यों होगा ?

१. यहाँ लेखक का निर्देश राष्ट्रों की ओर है। —संपादक

इसका उत्तर यह है कि यद्यपि आजकल हमारी सरणी में तीसरी वस्तु यानी मानव जाति की एकता, इतिहास के पहले किसी भी समय की अपेक्षा ज्यादा जल्दी से प्रमुख व महत्त्वपूर्ण स्थान पा गई है, पर (इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए) वह आध्यात्मिक मार्ग की अपेक्षा भौतिक मार्ग पर ही ज्यादा बढ़ी है ।

मानव-जाति की एकता प्राप्त करने के लिए उसने पहले आध्यात्मिक या धर्म का मार्ग ग्रहण किया^१ परन्तु उसका परिणाम मयकर और विनाशकारी हुआ । धर्म के अत्यन्त पवित्र मन्त्रों (सिद्धान्तों) के विपर्यास से प्रत्येक स्थान में धर्म के कारण सघर्ष, कलह, फूट और रक्तपात हुआ । तब मानव जाति ने स्वतंत्र विचार और विवेक-बुद्धि द्वारा प्रत्येक प्रश्न का निर्णय कर लेने की पद्धति से, जिसे उन्नीसवीं शताब्दी में विज्ञान का धर्म भी कहा गया, अपने उद्देश्य तक पहुँचने का प्रयत्न किया । इस बार भी उसे सफलता पूरी मिली । परन्तु वह उतनी ही विनाशकारी थी । सफलता पूरी इसलिए कि मानव जाति ने प्रकृति की शक्तियों पर आश्चर्यजनक विजय प्राप्त करने और वैज्ञानिक सत्य की रक्षा के लिए एकता के अन्य सब आदर्शों का (यहाँ धार्मिक आदर्शों की ओर निर्देश है) परित्याग करके मानव जाति की एकता प्राप्त की । मानव जाति इतनी सर्वव्यापक पहले कभी नहीं थी जितनी कि वह आज है । उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम भाग में वैज्ञानिक आविष्कारों की लहर के साथ उसकी सख्या अक-गणित के परिमाण से बढ़ी ।^२ पर आजकल तो वह वस्तुतः ही बढ़ गई है । गमन की इतनी अधिक शक्ति उसे प्राप्त है कि वह सर्वव्यापक अपनेको अनुभव कर सकती है । सख्या और गमन-शक्ति में वृद्धि से घनता भी बढ़ी है । आज मानव समाज का शरीर बहुत विस्तृत हो गया है पर उतनी ही उसमें एकता की भावना और चेतना भी बढ़ी है, ऐसा नहीं है । वह भावना तो बहुत ही कम बढ़ी है ।

और यह उन्नति विनाशकारी इसलिए हुई कि मानव समाज के दो अंगों, मनुष्य और राष्ट्र, ने इस परिवर्तन को स्वीकार नहीं किया । वे व्यक्ति और राष्ट्र अपने-ही-अपने में चरम ध्येय हैं, इसीकी चेतन अथवा अर्द्ध-चेतन भावना में वे बन्ध रहे, मानो वृहद् मानव जाति से कोई सम्बन्ध ही नहीं था ।

यही कारण है कि मानव जीवन के व्यक्तिगत, राष्ट्रीय और सार्वभौमिक इन तीन रूपों में सन्तुलन आज इतना कठिन हो रहा है । पर मानव-समाज में इतिहास

१ लेखक का भाव यह है कि सत्तार में मानव-जाति की एक करने के लिए विविध प्रकार से प्रयत्न हुए । लोगों ने सारे सत्तार में एक धर्म की स्थापना करके मानव-जाति को एक करने का प्रयत्न किया । —सम्पादक

२ यह सख्या इसलिए बढ़ी, क्योंकि वैज्ञानिक आविष्कारों से उत्पादन अधिक हुआ । एक अयंशास्त्र विशेषज्ञ का सिद्धान्त है कि जैसे पैदावार बढ़ती है, उसी परिमाण में जन सख्या भी बढ़ती है । —सम्पादक

की तो यह चिरसमस्या है ।

जब कभी समाज में सन्तुलन के भंग होने का खतरा पैदा हुआ, जिससे कि समाज के उन अंगों के ध्येय ही खतरे में पड़ गये, तब समाज ने उस सन्तुलन को बनाये रखने के लिए बल-प्रयोग का सहारा लिया ।^१ इस प्रकार अपने नैतिक आदर्श से भटककर मनुष्य ने जबर्दस्त समाज की, स्वस्थसमाज अथवा, अधिक स्पष्ट शब्दों में, दमन करने, कुचलने तथा एकाधिकार जगानेवाले समाज को जबर्दस्त समाज समझने को मूल की। परन्तु यह स्पष्ट ही है कि समाज की उन्नति बल-प्रयोग के क्रमशः ह्रास में होती है । समाज पूर्णता की ओर उतना ही विकसित होता जाता है जितनी उसके सुचारु संचालन में बल-प्रयोग और दबाव की मात्रा कम होती है ।

अतः समाज के प्रति बल-प्रयोग मनुष्य-शरीर के प्रति शल्य-प्रयोग के समान एक अस्थायी उपचार है, जो तत्काल के लिए वह काम कर देता है जिसे रणकाय की जीवन-शक्ति स्वयं अंतरंग से करने में असमर्थ है ।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यह समस्या^२ सन्तुलन के आधार पर ही हल की जा सकती है । और क्योंकि मनुष्य, राष्ट्र और मानव-समाज का परस्पर ऐक्य-सन्तुलन ही निश्चित ध्येय है, अतः न तो उदारतावाद, न सत्तावाद (चाहे सत्ता साम्यवादी हो या फ़ासिस्ट, इससे कोई भेद नहीं पड़ता) और न कोई विश्ववाद ही अपनेमें इस समस्या को हल कर सकते हैं । मानव-जाति अपनी वर्तमान दबर् अवस्था से उस समय तक ऊँची न उठेगी जबतक कि ससार के अधिकांश देशों में अधिकांश व्यक्ति इस बात को अनुभव न करले कि हमारे उदारतावाद, हमारे साम्य-फ़ासिस्ट-सत्तावाद और विश्ववाद, सबको ऊँचे उठकर एक उस विराट् कल्पना में लीन होजाना है कि जिसका मूल समस्त मानव-जाति के अखण्ड ऐक्य में होगा ।

अतः आज की हमारी समस्या का सार और समाधान करने में कम और होने

१. यह बात सन् १९३१ में ससार की विचार-धारा से स्पष्ट होती है और उसी की ओर वहाँ निर्देश भी है । सन् १९३१ में यूरोप में अन्तर्राष्ट्रीयता की लहर बड़े जोर से चली थी । जब मनुष्य-समाज के दूसरे रूप राष्ट्र ने इससे अपने लिए खतरा पैदा होता देखा तो उसने सुरक्षित बल-प्रयोग करके उसे कुचल दिया और उसके स्थान में उप-राष्ट्रीयता (Aggressive Nationalism) को जन्म दिया । —सम्पादक

परन्तु इससे, जैसा कि लेखक आगे चलकर कहता है, समाज की शक्ति बनी न रही । दूसरों को दखाने और शोर मचाने के लिए तो यह शक्ति पर्याप्त है (जैसी कि जर्मनी की), परन्तु इसमें ठोसपन या वास्तविक शक्ति नहीं है । —सम्पादक

२. यहाँ फिर उसी समस्या का निर्देश है, जिसका द्वितीय प्रथम पत्र में किया गया है । अर्थात् मनुष्य-समाज और मनुष्य की जीवन-धाराओं में सन्तुलन स्थापित करने की समस्या । —सम्पादक

में अधिक है। प्रवृत्ति की न होकर वह बुद्धि की है। कुछ का कुछ करे, यह जरूरत नहीं है। स्वयं हम कुछ-कुछ होजावे, जरूरी यह है। यदि हमें सत्सार को बदलना है—और यह बदलेगा अवश्य, अन्यथा तो यह और इसके साथ हम भी समाप्त हो जायेंगे—तो हमें इसी प्रकार से स्वयं विकास आरम्भ करना होगा।

इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए दो बातें आवश्यक हैं। एक तो यह कि मनुष्य-समाज के प्रमुख पुरुषों के मन में इस विकास की धारा स्पष्ट हो और उन्हें इसका ज्ञान हो। दूसरे, इसकी भावना मनुष्य-जीवन के विस्तृत क्षेत्रों में व्यापक बने। पहली प्रक्रिया प्रमुखतः धीमी पर कोरी बौद्धिक नहीं है। सम्पूर्ण सभ्य सत्सार में, जिसमें एकतंत्री (टोटेलिटारियन) देश भी शामिल हैं, हम यह परिवर्तन देख रहे हैं। दूसरी प्रक्रिया अधिक कठिन है, क्योंकि एक जीवित सन्देश जीवन द्वारा ही फैलाया जा सकता है। अतर्गामी ऐक्य के साथ योग जिसने साधा है, वही जीवन लोगों में अतर्गत ऐक्य की निष्ठा जगा सकता है। ऐसा पुरुष है गांधी। जीवन उसका योग्युक्त है। यही कारण है कि चायद सबसे सम्पूर्ण भाव में वह आज-दिन के युग के लिए काल पुरुष है। क्योंकि वह कर्म का नहीं, विचार का नहीं, जीवन का ही साधक है।



सम्पादक को प्राप्त पत्रों के अंश

: १ :

माननीय वाइकाउण्ट हैलीफेक्स, एम. ए., डी. सी. पल.

[फरिन ऑफिस, लन्दन]

मेरी इच्छा है कि आप गांधीजी के अभिनन्दन में जो ग्रन्थ तैयार कर रहे हैं, उसके लिए आपके निमंत्रण को स्वीकारकर मैं एक लेख लिख सकता। जो आज के भारत को जानने हैं, या उसके बारे में अधिक जानना चाहते हैं, वे सभी उस पुस्तक को उत्सुकतापूर्वक पढ़ेंगे। लेकिन काम का बोझ मुझ पर इतना है कि भय है कि लेख भेजना मेरे लिए सम्भव न होगा।

भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रकृति और अर्थ एक प्रकार से बहुत हद तक और अपूर्व रूप में गांधीजी के व्यक्तित्व में मूर्तिमान हुई है। आदर्श के प्रति उनकी निष्ठा, और जो कर्त्तव्य माना है, उसके लिए अपने ऊपर हर प्रकार का बलिदान स्वीकार करने की उनकी उद्यतता के कारण देशवासियों के हृदयों में उनका अद्वितीय स्थान बन गया है।

मुझे वे दिन सदा याद रहेंगे जब कि सुल्ह के रास्ते की तलाश में हम लोगों ने बहुत नजदीक और साध होकर काम किया था। उनके और मेरे अपने विचारों में किसी समय, कुछ और जो भी अन्तर रहा हो, उस गम्भीर आत्मिक शक्ति को पहचाने बगैर मैं कभी नहीं रह सका, जिसकी प्रेरणा से अपने विश्वास और निष्ठा के लिए बड़े-से-बड़े उत्सर्ग की ओर बढ़ बढ़ते रहे हैं और चूने नहीं है।

: २ :

अपटन सिस्लेयर

[पसाडेना, कैलीफ़ोर्निया]

गांधीजी के व्यक्तित्व और काम के प्रति अपनी गम्भीर सराहना प्रकट करने में आप और अन्य बन्धुओं का साथ देते सधमुच मुझे बड़ी खुशी होती है। उनके सब विचारों से तो मैं सहमत नहीं हो पाता हूँ। दुनिया के दो विपरीत भागों में रहकर हममें वंसी सहमति की आशा भी मुश्किल से की जा सकती है। लेकिन उनकी उच्च भावना और हार्दिक मानवी वरणा ने सारी दुनिया के मानव-हितैषियों का उन्हें स्नेह-भाजन बना दिया है।

: ३ :

आर्थर एच० कॉम्पटन
पी-एच. डी., एल-एल. डी.

[प्रोफेसर ऑफ फिजिक्स, शिकागो यूनिवर्सिटी]

आपको अवसर मिले तो मेरी इच्छा है कि आप गांधीजी को मेरे परम आदर के भाव पहुँचा दें। दुनिया के लिए उनका जीवन देन है। उस जमाने में जब कि यह बेहद अनिवार्य है कि हम मनुष्य-जानि की जरूरी समस्याओं की शांति के उपाय से मुलझाने का रास्ता पायें, गांधीजी ने भारतवासियों में आत्म-साक्षात्कार जगाने में मदद पहुँचाई है। वह अग्रणी हैं, मार्ग-प्रदर्शन में कि कैसे अहिंसा और शांति के उपाय ज्यादा कारगर हो सकते हैं।

सस्ता साहित्य मण्डल

‘सर्वोदय साहित्य माला’ की पुस्तकें

[नोट—X चिन्हित पुस्तकें अप्राप्य हैं]

१—दिव्य जीवन	1२)	२५—स्त्री और पुरुष	11)
२—जीवन साहित्य	१1)	२६—घरो की सफाई	1२)
३—तामिल वेद	111)	२७—क्या करे ?	१)
४—व्यसन और व्यभिचार	111२)	२८—हाथ की कटाई-बुनाईX	11७)
५—सामाजिक कुरीतियाँX	111)	२९—आत्मोपदेशX	1)
६—भारत के स्त्री-रत्न	३)	३०—यथार्थ आदर्श जीवनX	111७)
७—अनोखाX	१1२)	३१—जब अंग्रेज नहीं आये थेX	1)
८—ब्रह्मचर्य-विज्ञान	111२)	३२—गया गोविंदसिंहX	11२)
९—यूरोप का इतिहास	२)	३३—श्रीरामचरित्र	१1)
१०—समाज-विज्ञान	111)	३४—आधुन-हरिणी	1)
११—खद्दर का सम्पत्ति शास्त्रX	111३)	३५—हिंदी मराठी कोषX	२)
१२—गोरो का प्रभुत्वX	111२)	३६—स्वाधीनता के सिद्धान्तX	11)
१३—चीन की आकाशX	1७)	३७—महान् मातृत्व की ओर	111२)
१४—दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह	१1)	३८—शिवाजी की योग्यता	1२)
१५—विजयी बारडोलीX	२)	३९—तरंगित हृदय	11)
१६—अनीति की राह पर	11२)	४०—नरमेघ	१11)
१७—सीता की अग्नि-परीक्षा	1७)	४१—दुखी दुनिया	1२)
१८—कन्या शिक्षा	1)	४२—खिन्दा लाशX	11)
१९—कर्मयोग	1२)	४३—आत्म-कथा(गांधीजी)	१)१1)१11)
२०—कलवार की करतूत	२)	४४—जब अंग्रेज आयेX	१1२)
२१—व्यावहारिक सभ्यता	11)	४५—जीवन विकास	१1)
२२—अंधरे में उजाला	11)	४६—किसानों का दिगुलX	२)
२३—स्वामीजी का वलिदानX	1७)	४७—फाँसी	1२)
२४—हमारे जमाने की गुलामीX	1)	४८—अनासक्मियोग-गीताबोध (दे० नवजीवन माला)	

४९—स्वर्ण विहानX	17	७३—मेरी कहानी (ज० नेहरू) २11
५०—मराठो का उत्थान पतन २11	17	७४—विश्व-इतिहास की झलक
५१—भाई के पत्र	17	(जवाहरलाल नेहरू) ८
५२—स्वगतX	17	७५—पुत्रियाँ कंसी हो ? 11
५३—युगधर्मX	17	७६—नया शासन विधान-१ 111
५४—स्त्री-समस्या	111	७७—(१) गाँवों की कहानी 11
५५—विदेशी कपड़े का मुकाबिलाX	111	७८—(२-९) महाभारत के पात्र 11
५६—चित्रपट	111	७९—सुधार और सगठन 1
५७—राष्ट्रवाणीX	17	८०—(३) सतवाणी 11
५८—इंग्लैण्ड में महात्माजी	111	८१—विनाश या इलाज 11
५९—रोटी का सवाल	1	८२—(४) अंग्रेजी राज्य में हमारी आर्थिक दशा 11
६०—दैवी सम्पद्	17	८३—(५) लोक-जीवन 11
६१—जीवन-सूत्र	111	८४—गीता मथन 111
६२—हमारा कलक	111	८५—(६) राजनीति प्रवेशिका 11
६३—बुद्बुद	11	८६—(७) अधिकार और कर्तव्य 11
६४—सपन या सहयोग ?	111	८७—गांधीवाद समाजवाद 111
६५—गांधी-विचार-रोहन	111	८८—स्वदेशी और ग्रामोद्योग 11
६६—एशिया की क्रान्तिX	111	८९—(८) सुगम चिकित्सा 11
६७—हमारे राष्ट्र-निर्माता-२ १11	111	९०—(१०) पिता के पत्र पुत्री के नाम (ज० नेहरू) 11
६८—स्वतंत्रता की ओर	111	९१—महात्मा गांधी 17
६९—आगे बढ़ो ।	11	९२—ब्रह्मचर्य 11
७०—बुद्ध-वाणी	111	९३—हमारे गाँव और किसान 11
७१—काँग्रेस का इतिहास	२11	९४—अभिनन्दन-प्रश्न १11 २
७२—हमारे राष्ट्रपति	1	